भोट-भारतीय ग्रन्थमाला-३०

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिः

भिक्षुरविश्रीज्ञानविरचितया

अमृतकणिकाख्यटिप्पण्या

आचार्यविभूतिचन्द्रविरचितेन

अमृतकणिकोद्योतनिबन्धेन च

सहिता

भोटविद्या संस्थानम्

सम्पादकः

डॉ० बनारसीलालः

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्दः २५३८ ख्रिस्ताब्दः १९९४

PUBLISHER'S NOTE

We have great pleasure to present to the scholars the *Āryamañjuśrīnāmasaṃgīti* with the *Amṛtakaṇikā Ṭippaṇī* by Ācārya Raviśrījñāna and its sub-commentary *Amṛtakaṇiko-dyotanibandha* by Ācārya Vibhūticandra, being published by the Central Institute of Higher Tibetan Studies in the Bibliotheca IndoTibetica Series.

During the last one or two decades, scholars in India as well as other countries have become more familiar with the study of the Buddhist Tantras. As a result, a number of original Sanskrit Buddhist works have been brought out. I hope the present edition will be of much benefit to the scholars in this field.

The *Āryamañjuśrīnāmasaṃgīti*, a composition in the style of *stotras*, is a well-recognized and famous work. It is famous for its being representative of almost all the Buddhist tantras. This work enchants the various names of the Tathāgata by various epithets, in the manner of eulogy. Each of these epithets in this work contains mystic doctrines of the Buddhist tantras. The deep meaning of these names has been exhibited by the commentaries.

Fortunately, there are three Sanskrit commentaries on this work, available in various libraries in the world. For the last several years, Dr. Banarsi Lal has been engaged in collecting and studying the relevant material. He deserves our thanks for his commendable efforts in preparing the present critical edition. We are also thankful to the proprieters of Shivam Printers and their staff for a neat printing of this work.

Sarnath
Kārtika Pūrṇimā
November 18, 1994.

S. Rinpoche
Director

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिः

भिक्षुरविश्रीज्ञानविरचितया

अमृतकणिकाख्यटिप्पण्या

आचार्यविभूतिचन्द्रविरचितेन

अमृतकणिकोद्योतनिबन्धेन च

सहिता

भोट-भारतीय-ग्रन्थमाला-३०

प्रधान सम्पादक : प्रो० एस० रिन्पोछे

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ, १९९४

मूल्य : सजिल्द रु० १२०.००
अजिल्द रु० ८०.००

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-२२१ ००७

मुद्रक :
शिवम् प्रिन्टर्स
सी० २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी-२२१ ००२

BIBLIOTHECA INDO-TIBETICA–XXX

ĀRYAMAÑJUŚRĪNĀMASAṀGĪTI

with

AMṚTAKAṆIKĀ- ṬIPPAṆĪ

by

BHIKṢU RAVIŚRĪJÑĀNA

and

AMṚTAKAṆIKODYOTA-NIBANDHA

of

VIBHŪTICANDRA

भोटविद्या संस्थानम्

Edited by

Dr. BANARSI LAL

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

B. E. 2538 C. E. 1994

དཔར་སྐྲུན་པའི་ཆེད་བརྗོད།

དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོ་འི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་འཕགས་བོད་པོད་ཕྱིང་ཁོངས་འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པ་དང་། སློབ་དཔོན་ཉི་མའི་དཔལ་ཡེ་ཤེས་ཀྱིས་མཛད་པའི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པའི་མདོར་བཤད་བདུད་རྩིའི་ཐིགས་པ། དེ་ལ་སློབ་དཔོན་བིབྷཱུཏིཙནྡྲ (རྣམ་བྱང་ཟླ་བ) འི་འགྲེལ་ཚུང་ཨམྲྀཏཀཎིཀཱ་ཊིཔྤཎི་བཙནྣ (བདུད་རྩི་ཐིགས་པ་སྟོན་མའི་བཤད་སྦྱར་) བཅས་སྤེལ་གཅིག་ཏུ་དཔར་སྐྲུན་གྱིས་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱི་སྤྱན་ལམ་དུ་འབུལ་ལམ་ཞུ་ཕུལ་པར་དགའ་བ་སྐྱེས།

འདས་པའི་ལོ་ངོ་བརྒྱ་ཕྲག་གཅིག་གཉིས་ནང་རྒྱ་གར་དང་མཚུངས་པར་ཕྱི་རྒྱལ་ཡུལ་གྲུ་ཁག་ཏུའང་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱིས་ནང་པའི་སྔགས་གཞུང་ལ་ཐུགས་མོས་ཆེ་ཆེར་གནང་བའི་འབྲས་བུར་ནང་པའི་སྔགས་ཕྱོགས་ཀྱི་ཡིགས་སྒྱུར་ཆ་གཞུང་མང་པོ་ཞིག་དཔར་དུ་ཐོན་ཡོད་པ་དང་ཆབས་ཅིག་ཞིབ་འཇུག་ཆེད་རྩོམ་ཡང་མང་པོ་ཐོན་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་པར་ཐེངས་འདིས་མཁས་དབང་དོན་གཉེར་ཅན་རྣམས་ལ་ཕན་ཐོགས་ཆེ་ཆེར་ཡོང་བའི་རེ་བ་ཡོད།

འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པ་འདི་ནི་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་ནང་བསྟོད་པའི་འགྲོས་ཀྱིས་ཀུན་ནས་བཅིངས་པའི་ཚིགས་མཐོང་ཆེ་བའི་གསུང་རབ་གྲགས་ཅན་ཞིག་ཡིན་ལ་འདི་ཉིད་ནང་པའི་རྒྱུད་སྡེ་སྤྱིའི་དོན་ཐུབ་ཀྱི་རང་བཞིན་དུའང་གྲགས་ཡོད། འདིའི་ནང་ཚིག་ཀང་སྣ་ཚོགས་ཀྱིས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མཚན་རྣམས་བསྡུས་ཡོད་པས་ཚིག་ཀང་རེ་རེའི་ནང་ནང་པའི་རྒྱུད་ཀྱི་ཟབ་གནད་རྣམས་འདུས་ཡོད་པར་བརྟེན་གསུང་རབ་འདིའི་འགྲེལ་པ་རྣམས་སུ་ཟབ་ཅིང་བརླིང་བའི་གཞུང་དོན་རྣམས་གསལ་ཐུབ།

प्रकाशकीय

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के भोट-भारतीय ग्रन्थमाला के अन्तर्गत आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति को आचार्य रविश्रीज्ञान रचित टिप्पणी अमृतकणिका और उसके ऊपर आचार्य विभूतिचन्द्र की उपटीका अमृतकणिकोद्योतनिबन्ध को एक साथ विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।

भारत के साथ साथ विदेशों में भी इधर एक दो दशकों के मध्य बौद्धतन्त्रों के अध्ययन के प्रति विद्वानों का रुझान बढ़ा है फलस्वरूप बौद्धतन्त्रों के अनेक मूल संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। इसके साथ साथ अनेक शोधात्मक आलेख भी प्रस्तुत हुए हैं। हमें आशा है प्रस्तुत संस्करण इस क्षेत्र के विद्वानों के लिये अत्यन्त लाभप्रद होगा।

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति बौद्धतन्त्रों का एक मान्य एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो स्तोत्रात्मक शैली में निबद्ध है। इसकी प्रसिद्धि है कि यह प्रायः सभी बौद्धतन्त्रों का प्रतिनिधि स्वरूप है। इसमें विभिन्न विशेषण पदों द्वारा तथागत के नामों का संगायन हुआ है। इसके प्रत्येक विशेषण पद में बौद्धतन्त्र के गूढ़ तत्त्वों का सन्निवेश है। इसकी टीकाओं में इस गाम्भीर्य का आभास मिलता है।

सौभाग्य से विश्व के विभिन्न ग्रन्थ संग्रहालयों में मूल संस्कृत में इसकी तीन टीकाएं प्राप्त हुई हैं। डॉ० बनारसी लाल ने विगत कई वर्षों से इससे सम्बन्धित सामग्रियों को संकलित कर अध्ययन किया है और परिश्रम पूर्वक इस संस्करण को तैयार किया है, अतः वह इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं। इसके सुन्दर प्रकाशन के लिये हम शिवम् प्रिंटर्स के व्यवस्थापक एवं कर्मचारियों को भी साधुवाद देना चाहेंगे।

सारनाथ, वाराणसी
कार्तिक पूर्णिमा
१८ नवम्बर, १९९४

एस० रिन्पोछे
निदेशक

प्रकाशकीय

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के भोट-भारतीय ग्रन्थमाला के अन्तर्गत आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति को आचार्य रविश्रीज्ञान रचित टिप्पणी अमृतकणिका और उसके ऊपर आचार्य विभूतिचन्द्र की उपटीका अमृतकणिकोद्योतनिबन्ध को एक साथ विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।

भारत के साथ साथ विदेशों में भी इधर एक दो दशकों के मध्य बौद्धतन्त्रों के अध्ययन के प्रति विद्वानों का रुझान बढ़ा है फलस्वरूप बौद्धतन्त्रों के अनेक मूल संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। इसके साथ साथ अनेक शोधात्मक आलेख भी प्रस्तुत हुए हैं। हमें आशा है प्रस्तुत संस्करण इस क्षेत्र के विद्वानों के लिये अत्यन्त लाभप्रद होगा।

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति बौद्धतन्त्रों का एक मान्य एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो स्तोत्रात्मक शैली में निबद्ध है। इसकी प्रसिद्धि है कि यह प्रायः सभी बौद्धतन्त्रों का प्रतिनिधि स्वरूप है। इसमें विभिन्न विशेषण पदों द्वारा तथागत के नामों का संगायन हुआ है। इसके प्रत्येक विशेषण पद में बौद्धतन्त्र के गूढ तत्त्वों का सन्निवेश है। इसकी टीकाओं में इस गाम्भीर्य का आभास मिलता है।

सौभाग्य से विश्व के विभिन्न ग्रन्थ संग्रहालयों में मूल संस्कृत में इसकी तीन टीकाएं प्राप्त हुई हैं। डॉ० बनारसी लाल ने विगत कई वर्षों से इससे सम्बन्धित सामग्रियों को संकलित कर अध्ययन किया है और परिश्रम पूर्वक इस संस्करण को तैयार किया है, अतः वह इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं। इसके सुन्दर प्रकाशन के लिये हम शिवम् प्रिंटर्स के व्यवस्थापक एवं कर्मचारियों को भी साधुवाद देना चाहेंगे।

सारनाथ, वाराणसी
कार्तिक पूर्णिमा
१८ नवम्बर, १९९४

एस० रिन्पोछे
निदेशक

PUBLISHER'S NOTE

We have great pleasure to present to the scholars the *Āryamañjuśrīnāmasaṁgīti* with the *Amṛtakaṇikā Ṭippaṇī* by Ācārya Raviśrījñāna and its sub-commentary *Amṛtakaṇikodyotanibandha* by Ācārya Vibhūticandra, being published by the Central Institute of Higher Tibetan Studies in the Bibliotheca IndoTibetica Series.

During the last one or two decades, scholars in India as well as other countries have become more familiar with the study of the Buddhist Tantras. As a result, a number of original Sanskrit Buddhist works have been brought out. I hope the present edition will be of much benefit to the scholars in this field.

The *Āryamañjuśrīnāmasaṁgīti*, a composition in the style of *stotras*, is a well-recognized and famous work. It is famous for its being representative of almost all the Buddhist tantras. This work enchants the various names of the Tathāgata by various epithets, in the manner of eulogy. Each of these epithets in this work contains mystic doctrines of the Buddhist tantras. The deep meaning of these names has been exhibited by the commentaries.

Fortunately, there are three Sanskrit commentaries on this work, available in various libraries in the world. For the last several years, Dr. Banarsi Lal has been engaged in collecting and studying the relevant material. He deserves our thanks for his commendable efforts in preparing the present critical edition. We are also thankful to the proprieters of Shivam Printers and their staff for a neat printing of this work.

S. Rinpoche
Director

Sarnath
Kārtika Pūrṇimā
November 18, 1994.

དཔར་སྐྲུན་པའི་ཆེད་བརྗོད།

དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོ་འི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་འཕགས་བོད་བོད་ཞིང་ཁོངས་འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པ་དང་། སློབ་དཔོན་ཉི་མའི་དཔལ་ཡེ་ཤེས་ཀྱིས་མཛད་པའི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པའི་མདོར་བཤད་བདུད་རྩིའི་ཐིགས་པ། དེ་ལ་སློབ་དཔོན་བི་བྷཱུ་ཏི་ཙནྡྲ (ནམ་བྱུང་ཟླ་བ) འི་འགྲེལ་ཆུང་ཨམྲིཏཀཎིཀཱོ་དྱོཏནིབནྡྷ (བདུད་རྩི་ཐིགས་པ་སྒྲོན་མའི་བཤད་སྦྱར་) བཅས་སྤེལ་གཅིག་ཏུ་དཔར་སྐྲུན་གྱིས་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱི་སྤྱན་ལམ་དུ་འབུལ་ལམ་ཞུ་ཐུབ་པར་དགའ་བ་སྐྱེས།

འདས་པའི་ལོ་ངོ་བཅུ་ཕྲག་གཅིག་གཉིས་ནང་རྒྱ་གར་དང་མཚུངས་པར་ཕྱི་རྒྱལ་ཡུལ་གྲུ་ཁག་ཏུའང་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱིས་ནང་པའི་སྔགས་གཞུང་ལ་ཐུགས་མོས་ཆེ་ཆེར་གནང་བའི་འབྲས་བུར་ནང་པའི་སྔགས་ཕྱོགས་ཀྱི་ཡིགས་སྒྱུར་ཅ་གཞུང་མང་པོ་ཞིག་དཔར་དུ་ཁྲིན་ཡོད་པ་དང་ཆབས་ཅིག་ཞིབ་འཇུག་ཆེད་རྩོམ་ཡང་མང་པོ་ཁྲིན་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་པར་ཐེངས་འདིས་མཁས་དབང་དོན་གཉེར་ཅན་རྣམས་ལ་ཕན་ཐོགས་ཆེ་ཆེར་ཡོང་བའི་རེ་བ་ཡོད།

འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པ་འདི་ནི་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་ནང་བསྒྲོད་པའི་འགྲོས་ཀྱིས་ཀུན་ནས་བཅིངས་པའི་ཚིས་མཐོང་ཆེ་བའི་གསུང་རབ་གྲགས་ཅན་ཞིག་ཡིན་ལ་འདི་ཉིད་ནང་པའི་རྒྱུད་སྡེ་སྤྱིའི་དོན་ཐུབ་ཀྱི་རང་བཞིན་དུའང་གྲགས་ཡོད། འདིའི་ནང་ཚིག་ཀང་སླ་ཚིགས་ཀྱིས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མཚན་རྣམས་བསྡུས་ཡོད་པས་ཚིག་ཀང་རེ་རེའི་ནང་ནང་པའི་རྒྱུད་ཀྱི་ཟབ་གནད་རྣམས་འདུས་ཡོད་པར་བརྟེན་གསུང་རབ་འདིའི་འགྲེལ་པ་རྣམས་སུ་ཟབ་ཅིང་བརླིང་བའི་གཞུང་དོན་རྣམས་གསལ་ཐུབ།

སྟབས་ལེགས་པ་ཞིག་ལ་འཛམ་གླིང་གི་དཔེ་མཛོད་ཁག་ཏུ་ལེགས་… … སྦྱར་ཕྱོག་གཞུང་འདིའི་འགྲེལ་པ་གསུམ་ཙམ་རྙེད་ཀྱི་ཡོད། ཌོཀྟརབནརསི ལཱལ་ནས་འདས་པའི་ལོ་འགའ་ཤས་ནས་འདི་དང་འབྲེལ་བའི་ཆ་ཀྱེན་རྣམས་མཁོ་བསྒྲུགས་ཀྱིས་ཉམས་ཞིབ་མཛད་དེ་འབད་རྩོལ་ཆེན་པོས་པར་ཕྲེངས་འདི་གོ་སྒྲིག་གནང་བར་ཐུགས་རྗེ་ཆེ་ཞུ་དང་། གསུང་རབ་འདི་སྤུས་ལེགས་དཔར་སྐྲུན་གནང་བར་ཤེ་ཏྲཾ་པར་ཁང་གི་ལས་བྱེད་ཆེ་ཕྲ་རྣམས་ལའང་ལེགས་… སོ་བཙས། ཡུ་ཀྲ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ངེས་སྟོན་པ་ཟམ་གདོང་སྤྲུལ་སྐུས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༨ ཟླ་ ༡༡ ཚེས་ ༡༨ སྨིན་དྲུག་ཟླ་བའི་བོད་ཚེས་ ༡༥ ལ་བྲིས།

प्राक्कथन

बौद्ध तन्त्रों में आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति का स्थान अन्यतम है। प्रायः सभी महायानी देशों में इसका व्यापक प्रचार एवं प्रसिद्धि देखी जा सकती है। इसकी इन विशिष्टताओं को देखकर ही हमारे परम श्रद्धेय गुरु स्व० पं० जगन्नाथ उपाध्याय जी ने मुझे इसके विषय पर शोध करने का सुझाव दिया था। उनकी अजस्र प्रेरणा के कारण ही मैं इससे सम्बद्ध सामग्रियों को संकलित करने में समर्थ हुआ और इसी के फलस्वरूप आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति को आचार्य रविश्रीज्ञान रचित टिप्पणी अमृतकणिका और अमृतकणिका पर विभूतिचन्द्र के अमृतकणिकोद्योत निबन्ध के साथ बौद्ध तन्त्र के अनुरागी विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो रहा हूँ।

नामसंगीति एवं उसकी टीकाओं पर कार्य करते हुए मुझे नामसंगीति की शताधिक पाण्डुलिपियों की सूचनायें मिलीं और उन्हें अवलोकन करने का भी अवसर मिला। किसी एक संस्करण में उन सभी पाण्डुलिपियों का प्रयोग करना दुष्कर था साथ ही साथ अनावश्यक भी प्रतीत होता है क्योंकि नामसंगीति जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की एक नहीं सैकड़ों प्रतियाँ हैं जिन्हें भक्तजनों ने व्यक्तिगत पाठ एवं संग्रह के लिए तैयार किया है। इस प्रकार की पाण्डुलिपियों में प्रतिलिपिकार द्वारा की गयी अशुद्धियां ही मुख्य रहती हैं और इसके चार-पांच सम्पादित संस्करण भी उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से नामसंगीति के इस संस्करण में मुख्य रूप से दो ताड़पत्रीय प्रति 'क' एवं 'ख' का आधार लिया गया है। अनेक पाण्डुलिपियों के मध्य ये दो प्रतियाँ ही प्राचीनतम प्रतीत हुई जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है। इसके अतिरिक्त एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की दोनों प्रतियाँ भी प्रयुक्त हैं। कुछ पाठ डा० रघुवीर द्वारा सम्पादित संस्करण से भी लिये हैं। मूल पाठ के संशोधन में यथा सम्भव अमृतकणिका तथा विलासवज्र की नाममन्त्रार्थावलोकिनी से भी सहायता ली गई है।

अमृतकणिका के सम्पादन में चार पाण्डुलिपियों से सहयोग लिया है। जिनका विवरण यथास्थान दिया गया है। भोट पाठ पीकिंग संस्करण (भाग, ४८, सं० २१११) से लिये गये हैं। भोट पाठ से मिलान शोध प्रबन्ध को शीघ्र पूर्ण करने की दृष्टि से सम्पन्न किया था। इस संस्करण के अन्तिम चरण में पुनरीक्षण सम्भव नहीं हो पाया अतः सम्भव है सूक्ष्म अन्वीक्षण में कुछ पाठान्तर मिलें। टिप्पणी के सम्पादन में उद्योत से भी यत्र तत्र सहायता ली गई है। पहले केवल नामसंगीति एवं अमृतकणिका ही प्रकाशित करने का विचार था परन्तु जब प्रूफ संशोधन के प्रसंग में अनेक बार उद्योत

को देखना पड़ा और इसी बीच इसकी प्रतिलिपि भी तैयार हो गयी तो दो अन्य पाण्डुलिपियों से मिलान के पश्चात् इसे भी प्रस्तुत संस्करण में इस विचार से जोड़ दिया गया है ताकि अध्येताओं को इसका लाभ मिल सके। इसमें तोक्यो विश्वविद्यालय की ताडपत्रीय प्रति ही सबसे प्राचीन जान पड़ती है। शेष दो प्रतियाँ सम्भवतः इसी से प्रतिलिपि की गई हैं ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि इस प्रति में जहाँ जहाँ त्रुटित एवं छूटे हुए खाली स्थान हैं वहाँ पर शेष दो प्रतियों में भी उसी का अनुसरण किया है।

इसमें अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ कोई अर्थ संगत पाठ बन नहीं पाता उन स्थलों में (?) चिह्न दे दिया गया है और जहाँ अस्पष्ट एवं खाली स्थान है उन स्थलों को (¨)देकर इङ्गित किया गया है।

उद्योत का भोटानुवाद मुझे हस्तगत नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका भोटानुवाद नहीं हुआ, यद्यपि प्रयास अवश्य किया गया होगा। क्योंकि तोक्यो विश्वविद्यालय की पाण्डुलिपि के हाशिये में अनेक पत्रों में एक-एक दो-दो वाक्य अनूदित कर तिब्बती उमेद् अक्षरों में उट्टंकित हैं।

अमृतकणिका और उद्योत दोनों में अपभ्रंश वचनों को बहुलता से उद्धृत किया है और अनेक वचनों की संस्कृत में व्याख्या भी की है। इन अपभ्रंश वचनों के सम्पादन के प्रसंग में जिन वचनों के उद्धरण दोहाकोश आदि पूर्व सम्पादित ग्रन्थों में प्राप्त हुए हैं वहाँ उक्त वचनों का परिमार्जन सन्दर्भित ग्रन्थों के आधार पर किया गया है तथा शेष वचनों का यथा सम्भव सुसंगत पाठ देने का प्रयास किया गया है।

इस कार्य को पूर्ण करते हुए अनेक विध कारणों से प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं। सर्व प्रथम स्व० पं० जगन्नाथ उपाध्याय जी का स्मरण हो आता है, जिनकी यह प्रबल इच्छा थी कि शीघ्रातिशीघ्र यह साहित्य सम्पादित होकर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत हो जाना चाहिए। उनकी बौद्ध तन्त्रों के प्रति विशेष रुचि थी। इसी प्रसंग में उन्होंने कालचक्रतन्त्र की बृहत्-टीका विमलप्रभा के सम्पादन का निर्णय लिया था और हम बहुत से छात्रों को भी बौद्ध तन्त्रों से सम्बद्ध साहित्य में अनुसंधान के लिए प्रवृत्त किया था। इसी प्रसंग में मुझे मञ्जुश्रीनामसंगीति और संस्कृत में प्राप्त उसकी टीकाओं पर अनुसन्धान करने के लिए दिया। उन दिनों मैं आचार्य अन्तिम वर्ष का छात्र था। बौद्धतन्त्रों से हम लोगों का अधिक परिचय नहीं था। अल्पज्ञात विषय होने के कारण इसकी अध्ययन की दिशाएँ भी निश्चित नहीं थीं। प्रारम्भ में विषय, भाषा, लिपि आदि अनेक विषम समस्याएँ थीं। प्रो० उपाध्यायजी तब कहा करते थे कि सम्प्रति बौद्ध तन्त्र के विषय हमारे समक्ष बीहड़ जंगल के समान हैं, हमें इसके भीतर

प्रवेश कर, इसे घेर कर, इसके चप्पे चप्पे को छान कर विवरण तैयार करना होगा क्योंकि हमारे सामने परम्परा की भी समस्या है, तभी हम इसका वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन प्रस्तुत कर सकेंगे। उनकी इस प्रेरणा से प्रेरित होकर ही मैं इसके अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुआ और यथामति सम्पादित कर इस कार्य को विद्वानों के समक्ष आलोचना के लिए प्रस्तुत कर उनको इच्छाओं को पूर्ण कर रहा हूं। हमें दुःख है कि काल के क्रूर हाथों ने इसे फलीभूत देखने के लिए उन्हें हम से पृथक् कर दिया। फिर भी उनकी अन्तःप्रेरणा रूपी सन्तति, जो हम सभी शिष्यों में विद्यमान है, के कारण आनन्दानुभव कर रहा हूँ।

इस ग्रन्थ के पूर्ण होने में अनेक महानुभावों का आशीर्वाद, मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है। उसी के फलस्वरूप यह पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत कर पा रहा हूं। सर्व प्रथम मैं संस्थान के निदेशक आदरणीय प्रो० एस० रिन्पोछे जी का आभार कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करता हूं, जिन्होंने मेरे कार्य को संस्थान से प्रकाशित कराने की स्वीकृति प्रदान कर मुझ पर अनुकम्पा की है। दुर्लभ-बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना के दोनों गुरु पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी एवं पं० जनार्दन पाण्डेय जी का मैं सदैव आभारी हूं जिन्होंने इस कार्य को शीघ्र पूर्ण करने के लिए सतत प्रेरणा ही नहीं दी अपितु पद-पद पर अपने अमूल्य सुझावों और सहयोग द्वारा उपकृत किया। विशेष रूप से पाण्डेय जी का कृतज्ञ हूं जिन्होंने मेरे शोध प्रबन्ध से लेकर इस ग्रन्थ के पूर्ण होने तक समय-समय पर अपना श्रमसाध्य सहयोग प्रदान किया और इस ग्रन्थ के सम्पादन कार्य से लेकर अन्तिम प्रूफ तक देख कर मुझ पर महती अनुकम्पा की है। आपके सहयोग के बिना सम्भवतः मैं इस ग्रन्थ को इस रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ न होता। संस्थान के ही ही रिसर्च प्रोफेसर और हमारे गुरु प्रो० रामशंकर त्रिपाठी जी का भी अत्यन्त आभारी हूं। जिन्होंने हमें छात्र जीवन से लेकर आज तक सतत बौद्ध अध्ययन के लिए प्रेरित किया और इस ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन के लिए हमें उत्साहित किया। मैं विश्वभारती शान्तिनिकेतन के प्रो० सुनीति कुमार पाठक का भी आभारी हूं जिन्होंने मेरे कार्य को देखकर शीघ्र प्रकाशित करने के लिए हमें प्रेरित किया। काठमाण्डू में गुरुवर पं० दिव्यवज्रवज्राचार्य जी की भी मुझपर असीम कृपा रही है, काठमाण्डू प्रवास के दौरान आपने अमूल्य निर्देश एवं सुझावों द्वारा मेरी सहायता की और अपने व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध सामग्री के उपयोग करने के लिए अनुमति प्रदान की। मैं परम स्नेही मित्र श्री ठिनलेराम शाशनी को भी धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बराबर रुचि प्रदर्शित की और सहयोग प्रदान किया। अपने जापानी मित्र फुरुओसाका का भी स्मरण करना चाहता हूं, जिन्होंने मेरे अनुरोध पर तोक्यो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध अमृतकणिकोद्योत की जेराक्स प्रति उपलब्ध कराई।

मैं अपने सहयोगी मित्रों डॉ० वङ्छुग दोर्जे नेगी, डॉ० ठाकुरसेन नेगी, डॉ० टशी सम्फेल एवं श्रीविजयराज वज्राचार्य का भी आभारी हूँ जिनके सहयोग के फलस्वरूप यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

संस्कृत विश्वविद्यालय के सम्बद्ध अधिकारियों का भी मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे अपने शोध प्रबन्ध से इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की। अन्त में मैं उन सभी संस्थाओं और पुस्तकालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को भी धन्यवाद देना चाहूंगा जहाँ से मुझे उक्त सामग्रियाँ प्राप्त हुईं।

विद्वानों के समक्ष प्रथम बार यह ग्रन्थ सम्पादित होकर प्रस्तुत हो रहा है। मेरी अल्पज्ञता के कारण और विषय की दुर्बोधता के कारण यह सम्पादन कितना उपादेय हो पाया है विद्वज्जन निर्णय करेंगे। आशा है कृपालु विद्वान् त्रुटियों की ओर इंगित कर हमारा मार्ग दर्शन करेंगे।

कार्तिक पूर्णिमा
१८ नवम्बर, १९९४

बनारसी लाल
शोध अधिकारी
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

भूमिका

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति का बौद्ध देशों में विशेषकर महायानानुयायी प्रदेशों में व्यापक प्रचार और प्रसार तथा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इसके महत्व का इस बात से भी पता चलता है कि इस ग्रन्थ का अनुवाद प्रायः सभी भाषाओं में जैसे चीनी, मंगोलियायी, तिब्बती आदि में हुआ है। नेपाल में यह अपने मूलरूप संस्कृत में ही प्रचलित है। मञ्जुश्रीनामसंगीति के महत्व एवं विशिष्टता का ज्ञान उस प्राचीन घटना से भी होता है जब आचार्य चन्द्रगोमिन् की आचार्य चन्द्रकीर्ति से भेंट होती है। चन्द्रकीर्ति के यह पूछने पर कि किन-किन ग्रन्थों के जानकार हो ? चन्द्रगोमिन कहते हैं कि वह व्याकरण और नामसंगीति को ही जानते हैं। इससे चन्द्रकीर्ति समझ जाते हैं कि चन्द्रगोमिन् समस्त शास्त्र एवं तन्त्र के ज्ञाता हैं क्योंकि व्याकरण एवं नामसंगीति को जानने का तात्पर्य ही यही था। अतः नामसंगीति सभी तन्त्रों का निकष या सार रूप है। इसकी विशिष्टता का भान इस तथ्य से भी होता है कि प्राचीन भारतीय आचार्यों ने छठी-सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक २६ से अधिक टीकाएँ इस पर लिखीं। सम्भवतः शायद ही कोई दूसरा ग्रन्थ हो जिस पर इतनी अधिक टीका-टिप्पणियां रची गयीं हों। इसके अतिरिक्त पचासों ग्रन्थ नामसंगीति के साधन, मण्डल, अभिषेक, विधि, होम इत्यादि विषयों पर रचे गये। इन सभी टीका टिप्पणियों एवं अन्य ग्रन्थों की सूचना हमें भोटानुवाद में सुरक्षित कन्ग्युर एवं तन्ग्युर संग्रह से मिलती है।

नामसंगीति की मूल विषयवस्तु पर विचार करने से पूर्व तन्त्र की पृष्ठभूमि तथा इनके तथागत द्वारा प्रवचन होने के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। मञ्जुश्रीनामसंगीति बौद्ध तन्त्रों में सर्वाधिक ग्राह्य एवं मान्य ग्रन्थ है। परम्परागत मान्यता के अनुसार इसे बुद्धवचन ही माना जाता है। इसीलिये भोटानुवाद में इसका संकलन कन्ग्युर संग्रह में हुआ है। इसके आधुनिक वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से भी इसका काल स्थिर किया जा सकता है। फिर भी इसके काल के सम्बन्ध में इदमित्थं रूप से निर्धारण करना कठिन है। इसके काल निर्णय के प्रसंग में इससे सम्बन्धित प्राचीन साहित्य एवं इस शैली के स्तोत्रात्मक ग्रन्थों के रचना काल आदि महत्त्वपूर्ण तथ्य हो सकते हैं।

महायानी परम्परा के अनुसार इसका प्रवर्तन भगवान बुद्ध ने ही किया है। नामसंगीति के सम्बन्ध में इसी का एक प्रसिद्ध वचन है—

यातीतैर्भाषिता बुद्धैर्भाषिष्यन्ते ह्यनागताः।
प्रत्युत्पन्नाश्च सम्बुद्धा यां भाषन्ते पुनः पुनः॥

बौद्ध तन्त्रों के काल के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों की दृष्टि सर्वथा वैज्ञानिक तथा तकनीकी है। वे तन्त्रों का प्रारम्भ ही सातवीं शताब्दी से स्वीकार करते हैं। कुछ ही विद्वान् हैं जिन्होंने बौद्ध तन्त्रों के काल को कुछ और आगे बढ़ा कर तीसरी चौथी शताब्दी मे स्थापित किया है। परम्परागत मान्यता के सन्दर्भ में भोट आचार्यों की स्थापनायें भी महत्त्वपूर्ण हैं। अतः इस प्रसंग में भोट ग्रन्थों का अवलोकन करना अवश्यंभावी हो जाता है। भोट ग्रन्थों में बौद्ध तन्त्रों के चारों प्रमुख तन्त्रों—क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तरयोगतन्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रवचन भगवान् बुद्ध ने किस परिषद् के समक्ष, किसकी अध्येषणा से और किस स्थान पर किया इन सबका सम्पूर्ण विवरण मिलता है। इस प्रकार के मुख्य ग्रन्थों में आचार्य खस् ड्ुब जे एवं बुस्तोन रिन्पोछे कृत 'सामान्य तन्त्र व्यवस्था' नामक ग्रन्थ तथा आचार्य चोंखापा कृत 'महामन्त्रमार्गक्रम' हैं।

नामसंगीति के काल के सन्दर्भ में उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करें तो इसका काल पांचवीं-छठी शताब्दी के आस-पास आंका जा सकता है। नामसंगीति की शैली में नामसंकीर्तन से युक्त ग्रन्थों का प्रणयन बौद्धेतर शाखाओं में भी हुआ है इस प्रकार के ग्रन्थों में मुख्य विष्णुसहस्रनाम और ललितासहस्रनाम हैं। विष्णुसहस्रनाम को महाभारत के अनुशासनपर्व का भाग माना जाता है। इस दृष्टि से इस शैली के स्तोत्रों की रचना का काल बहुत आगे तक जा सकता है। क्योंकि महाभारत का काल ३००० साल ईसा पूर्व या उससे भी पूर्व माना जाता है। ऐसी स्थिति में भगवान् बुद्ध के काल में भी इस प्रकार के स्तोत्रात्मक ग्रन्थ उपदिष्ट हुए हों, इसका अपलाप नहीं किया जा सकता। फिर भी हमें इस सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाणों पर आधारित हो कर निष्कर्ष निकालना युक्ति-युक्त जान पड़ता है।

नामसंगीति के काल निर्धारण में दूसरा प्रमुख तथ्य है—नामसंगीति के प्राचीन टीकाकार आचार्यों का समय। इसके प्रारम्भिक टीकाकार आचार्यों में चन्द्रगोमिन्, विमलमित्र, विलासवज्र और डोम्बी हेरुक आदि हैं। इन में भी "आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिमहाटीका" के रचयिता आचार्य चन्द्रगोमिन् सबसे प्रथम जान पड़ते हैं। आचार्य चन्द्रगोमिन् आचार्य चन्द्रकीर्ति के समकालीन हैं, इनका काल छठी-सातवीं शताब्दी है। अतः नामसङ्गीति का काल इससे पूर्व ही स्वीकार किया जा सकता है। नामसंगीति साधन से सम्बन्धित एक ग्रन्थ आचार्य नागार्जुन-प्रणीत भी मिलता है, परन्तु एकाधिक नागार्जुन होने से हम इन्हें माध्यमिक दर्शन के प्रवर्तक नागार्जुन

कुल ८१२ नाम संग्रहीत हैं, वागीश्वरसाधन के अनुसार इसमें ८०० नाम ही होने चाहिये। इन में वज्रधातुज्ञानमण्डल गाथा को छोड़कर शेष पाँच परिच्छेद पाँच तथागतों के ज्ञान से सम्बद्ध हैं। यथा आदर्शज्ञान, सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान, प्रत्यवेक्षणा-ज्ञान, समताज्ञान तथा कृत्यानुष्ठानज्ञान। समस्त चराचर जगत जो पाँच स्कन्धों में विभाजित किया जाता है और पाँच स्कन्ध पाँच तथागत के प्रतीक हैं। इस प्रकार समस्त जगत् में जो भी धर्म (वस्तु) है सभी का संगायन इन परिच्छेदों में हो जाता है इन से अवशिष्ट कुछ नहीं रह जाता। जैसे कहा है—"पञ्चबुद्धात्मकु सर्वजगोऽयम्"।

इस प्रकार विलासवज्र का यह कथन—"इसमें समस्त स्थावर-जंगम जगत के नामों का संगायन हुआ है" समीचीन जान पड़ता है। इसके पश्चात् पञ्च तथागत ज्ञान-स्तुति गाथा में उपरोक्त पाँच तथागत ज्ञानों की स्तुति की गई है। अनुशंसा में नामसंगीति के धारण, वाचन, द्वारा होने वाले पुण्यों एवं लाभ का निर्देश किया गया है। मन्त्रविन्यास इसका महत्त्वपूर्ण परिच्छेद है, जिस प्रकार प्रज्ञापारमिता सूत्र संक्षेपी-करण होते होते अन्त में मन्त्र एवं धारणी के रूप में प्रस्तुत होते हैं उसी तर्ज में यहाँ भी मन्त्र विन्यास का परिच्छेद समाविष्ट है और अन्त में उपसंहार गाथा के साथ नामसंगीति पूर्ण होती है। इतना परिचय नामसंगीति के मात्र बाह्य कलेवर का ही है। इस का विषय अत्यन्त गूढ़ एवं गम्भीर है। इसके एक एक नाम की विशद व्याख्या मिलती है।

नामसंगीति का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद

भारत वर्ष से विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रवेश के साथ ही अनुवाद कार्य भी प्रारम्भ हुआ। बौद्ध शास्त्रों का विशाल वाङ्मय जो आज अपने मूल संस्कृत में अप्राप्त है, वह चीनी एवं भोट अनुवादों में सुरक्षित है। उसी परम्परा में आर्यमञ्जुश्रीनाम-संगीति का भी विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया। यहाँ संक्षेप में उन अनुवादों का विवरण देना समीचीन होगा।

१. चीनी अनुवाद—नामसंगीति के चीनी भाषा में कई अनुवाद हुए जो दान-पाल (९८० ई०) के चीन पहुंचने के बाद प्रारम्भ हुए। नान्जियो[1] ने अपने सूची पत्र में इसके अनुवादक का नाम K' hwui दिया है, जो Yuen dynasty १२८०-१३६८ ई० में वर्तमान थे। इसके दूसरे अनुवादक Kin-stun kh हैं, जो

1. Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripiṭaka, B. Nanjio, p. 227, 306.

प्रत्येक आनन्द काय-वाक्-चित्त तथा ज्ञान के भेद से सोलह प्रकार का हो जाता है। इसे नामसंगीति (५.५-८) में बताया गया है। आनन्द आदि चित्त अर्थात् बोधिचित्त या बिन्दु की स्थिति पर निर्भर करता है। जब बोधिचित्त निर्माणकाय में हो तो तब वह आनन्द, धर्मकाय में हो तो परमानन्द, संभोगकाय में हो तो विरमानन्द तथा महासुखकाय में हो तो सहजानन्द को उत्पन्न करता है। मुद्रा का स्पर्श आनन्द है, सुख की इच्छा परमानन्द तथा विराग विरमानन्द है। इन तीनों से अतीत अवस्था सहजानन्द है। परमानन्द को भव भी कहा गया है, भव इस अर्थ में कि यह जन्म-मरण के आवागमन का मूल है। "परमानन्दः सांक्लेशिकसुखभोगलक्षणत्वाद् भवः संसारः' (पृ० ६१)। विरमानन्द विरागस्वरूप होने के कारण निर्वाण है अर्थात् यह सांक्लेशिक रागों को नाश करने वाला है और सहजानन्द न भव है और न ही निर्वाण, यह भव और निर्वाण से अतीत है—

परमानन्दं भवं प्रोक्तं निर्वाणं च विरागतः।
मध्यमानन्दमात्रं तु सहजमेभिर्विवर्जितम् ॥

(हे० त० १.८.३४)

क्षणों के भेद के आधार पर ये आनन्द आदि उत्पन्न होते हैं। एवंकार की स्थिति में क्षणों के ज्ञान से ही सुख का बोध होता है। विचित्र क्षण में आनन्द, विपाक में परमानन्द, विमर्द में विरमानन्द और विलक्षण में सहजानन्द उत्पन्न होता है। विचित्र क्षण आलिंगन, स्पर्श आदि विविध प्रकार के हैं। उस सुख ज्ञान का भोग विपाक है। मैंने सुख का भोग किया, इस प्रकार का आलोचनात्मक ज्ञान विमर्दक्षण है। और विलक्षण इन तीनों से भिन्न राग और अराग से विवर्जित क्षण है। इसी को कृष्णपाद योगपरक दृष्टि से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—स्पर्श का प्रारम्भिक क्षण विचित्र है, कमल-कुलिश योग विपाक क्षण है, इसके पश्चात् मन्थान से उत्पन्न रागानल से दलित जगद्राशि विमर्दक्षण है। इस प्रकार का योग, जिसमें कमल में रागवह्नि और पवन सहचर हैं, यही सम्बोधि का मार्ग है, यही विलक्षण क्षण कहलाता है, जो केवल योगियों के लिए गम्य है—

स्पर्शस्यादौ विचित्रः कमलकुलिशयोर्योगतोऽसौ विपाकः
पश्चान्मन्थोत्थरागानलदलितजगत्सङ्घराशिर्विमर्दः ।
तस्मिन्निध्यायमाने पवनसहचरे रागवह्नौ सरोजे
सोऽयं संबोधिमार्गः सकलजिनतनुर्योगिगम्यो विलक्षणः ॥

(उद्धृत-क्रियासंग्रह, पृ० ३५७)

एकक्षणाभिसम्बोधि स्वभावकाय से, पंचाकाराभिसम्बोधि धर्मकाय से, विंशत्याकाराभिसम्बोधि सम्भोगकाय से और मायाजालाभिसम्बोधि निर्माणकाय से। इन चार अभिसम्बोधियों की प्राप्ति के लिये चार प्रकार का वज्रयोग प्रतिपादित है। यथा ज्ञानवज्रयोग द्वारा एकक्षणाभिसम्बोधि, चित्तवज्रयोग द्वारा पंचाकाराभिसम्बोधि, वाग्वज्रयोग द्वारा विंशत्याकाराभिसम्बोधि तथा कायवज्रयोग द्वारा मायाजालाभिसम्बोधि का लाभ होता है।

उत्पत्तिक्रम की अवस्था में सबसे पहले एकक्षणाभिसम्बोधि का लाभ होता है। जन्मोन्मुख प्रतिसन्धि के लिये आलय विज्ञान जिस समय मातृगर्भगृह में माता-पिता के समरसी भूत बिन्दुद्वय के साथ एकत्व लाभ करता है, इस एकत्व लाभ का प्रथम क्षण एक महा क्षण है। इस क्षण में जो सुख की संवित्ति, अर्थात् बोध होता है, उस क्षण को एकक्षणाभिसम्बोधि कहा गया है। इस अवस्था में काय रोहित मत्स्य के सदृश एकाकार रहता है। मातृगर्भ में जब रूपादि वासनात्मक पाँच संवित्तियां होती हैं, तब यह क्षण पंचाकाराभिसम्बोधिक्षण कहलाता है। इस अवस्था में गर्भस्थकाय कूर्मसदृश पंचस्फोटाकार होता है। जब यह पंचाकारज्ञान पृथिवी आदि चार धातुओं और वासनाओं के भेद से बीस[1] प्रकार का हो जाता है, तब वह क्षण विंशत्याकाराभिसम्बोधि कहलाता है। इस अवस्था में गर्भस्थ काय भी बीस अंगुलियों से परिपूर्ण हो जाता है। काय का इस अवस्था तक विकास मातृगर्भ में ही होता है। इसके पश्चात् मायाजालाभिसम्बोधि क्षण आता है, इस क्षण के लाभ के लिये गर्भस्थ काय को गर्भ से निष्क्रमण करना पड़ता है। गर्भ से निष्क्रमण के बाद मायाजाल के सदृश अनन्त भावों की संवित्ति के क्षण को ही मायाजालाभिसम्बोधिक्षण कहा जाता है।

इस उत्पत्तिक्रम की अवस्था में उपर्युक्त चार वज्रयोगों द्वारा इन क्षणों की अभिसम्बोधि का तथा काय का निरूपण होता है। विशुद्ध ज्ञानविज्ञानात्मक अच्युत बिन्दु ही एकक्षणाभिसम्बोधि की अवस्था में सर्वार्थदर्शी वज्रसत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। इस अवस्था में, स्वाभाविककाय के २१६०० श्वास-प्रश्वास चक्र का क्षय हो जाता है। यह अवस्था ज्ञानवज्रयोग है। यही वज्रसत्त्व पंचाकाराभिसम्बोधि में परमाक्षरसुख क्षण में महासत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। यह चित्तवज्रयोग है। परमाक्षर सुखात्मक क्षण को अवस्था धर्मकाय की है। महासत्त्व वाग्वज्रयोग द्वारा विंशत्याकाराभिसम्बोधि के क्षण में बोधिसत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। यह अवस्था सम्भोगकाय की है। बोधिसत्त्व ही कायवज्रयोग द्वारा मायाजालाभिसम्बोधि

---

१. पांच इन्द्रिय, पांच इन्द्रियविषय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रियक्रिया।

क्षण में समयसत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। यह निर्माणकाय की अवस्था है। इसमें अनन्त मायाजालों से काय का स्फुरण होता है। इस स्फुरित काय में षोडश आनन्द आदि सुखों का निरोध हो जाता है[1]। इस प्रकार अच्युत बिन्दु से निष्पन्न ज्ञानवज्र, चित्तवज्र, वाक्वज्र तथा कायवज्र निराभास, निरंजन, अज्ञात, अकृत और भावाभाव से विवर्जित होता है—

यत्कायं सर्वबुद्धानां निराभासं निरञ्जनम्।
अज्ञातमकृतं शुद्धमभावादिविवर्जितम्॥
(पृ० १९)

वज्रयोग

संवृति एवं परमार्थ के संयोग को वज्रयोग कहा गया है। इसे अद्वय, युगनद्ध और अक्षर भी कहा है[2]। यह योग अस्ति और नास्ति से अतिक्रान्त शून्यता और करुणा से अभिन्न है[3]। वज्रयोग चार प्रकार का है—विशुद्धयोग, धर्मयोग, मन्त्रयोग और संस्थानयोग। इनकी प्राप्ति के लिये चार विमोक्ष आवश्यक हैं। ये हैं—शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित और अनभिसंस्कार। विशुद्धयोग के लिये शून्यता विमोक्ष प्राप्त करना पड़ता है। शून्यता का अर्थ है निःस्वभावता। जिस ज्ञान में शून्यता का भाव ग्रहण होता है, वही शून्यताविमोक्ष है। इसके प्राप्त होने पर तुरीय अवस्था का ध्वंस होता है और अक्षर सुख उत्पन्न होता है। धर्मयोग के लिये अनिमित्त विमोक्ष लाभ करना पड़ता है। विकल्प चित्त ही निमित्त हैं। जिस ज्ञान की अवस्था में चित्त निर्विकल्प होता है, उसे ही अनिमित्त विमोक्ष कहा जाता है। इसके प्राप्त होने पर सुषुप्ति अवस्था का क्षय होता है। जब निर्विकल्प चित्त में मैत्री का उदय होता है यही चित्तवज्र धर्मयोग कहलाता है। मन्त्रयोग के लिये अप्रणिहित विमोक्ष लाभ करना पड़ता है। निर्विकल्प चित्त में प्रणिधान का अभाव होता है। इसे ही अप्रणिहित विमोक्ष कहा गया है। इसके लाभ से स्वप्न अवस्था का क्षय होता है। इससे जो मुदिता संचरित होती है, वही मन्त्रयोग कहलाता है। संस्थान योग के लिये अनभिसंस्कार विमोक्ष आवश्यक है। प्रणिधान के अभाव में अभिसंस्कार नहीं रहता, इस विमोक्ष के लाभ से जाग्रत् अवस्था का क्षय होता है[4]।

---

१. से० टी०, पृ० ६-७
२. से० टी०, पृ० ७०
३. वि० प्र०, भाग–१, पृ० ४४
४. से० टी०, पृ० ५-६

षडंग योग

नामसंगीति की टीकाओं में षडंग योग की विशद व्याख्या उपलब्ध होती है। षडंग योग की साधना द्वारा तन्त्र में निष्पन्नक्रम की साधना की जाती है। षडंग योग का प्राप्य पद काय-वाक्-चित्तवज्र है। ये छः योगांग हैं— प्रत्याहार, धारणा, अनुस्मृति, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। प्रत्याहार तथा धारणा द्वारा कायवज्र तथा उसके लक्षणों तथा अनुव्यञ्जनों की सिद्धि होती है। प्राणायाम और धारणा द्वारा वाग्वज्र तथा मूलवायु में अधिकार प्राप्त होता है और सर्वज्ञ वाक् की सिद्धि होती है। अनुस्मृति और समाधि द्वारा चित्तवज्र की प्राप्ति होती है। अनुस्मृति के समय चण्डाली को बोधिचित्त द्वारा द्रवित कर उष्णीष से मणिचक्र तक पहुंचाने से चार आनन्दों को उत्पत्ति होती है। इसमें सहजानन्द ही समाधि है। सहजानन्द की अवस्था में नाभि में चण्डाली के प्रज्वलित होने पर योगी देव बिम्ब का साक्षात्कार करता है। इस अवस्था में अनुरागपूर्ण सुख की उत्पत्ति होती है। यही अनुस्मृति कहलाती है। इसकी उत्पत्ति के लिये धारणा द्वारा मध्यमा नाडी में वायु को स्थिर कर चण्डाली को प्रज्वलित करना पड़ता है। इस प्रकार वायु को मध्यमा नाडी में स्थिर करना ही धारणा कहलाती है। धारणा की अवस्था प्राप्त करने के लिये प्राणायाम द्वारा ललना और रसना नाडियों में बहने वाली वायु को मध्यमा में प्रवेश कराना पड़ता है। यही प्राणायाम योग कहलाता है। ललना और रसना में बहने वाली वायु तभी मध्यमा में प्रवेश करेगी, जब प्रत्याहार और ध्यान द्वारा मध्यमा नाड़ी की पहचान हो। यह प्रत्याहार योग द्वारा दिन और रात्रि में उदय होने वाले लक्षणों के बाद सम्भव होती है। प्रत्याहार द्वारा लक्षणों को पहचान लेने के बाद ध्यान द्वारा वे स्थिर होते हैं। नामसंगीति के विभिन्न विशेषण पदों की व्याख्या में षडंग योग की विस्तृत व्याख्या की है।

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीति के सम्पादन में प्रयुक्त मातृकाएँ

क. राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या–४.२२८५, ताडपत्र

ख. राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या–५.१६४, ताडपत्र

ग. एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, संख्या–५७

घ. एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, संख्या–५६

ङ. डॉ० रघुवीर के संस्करण का 'न' पाठ

च. डॉ० रघुवीर के संस्करण का 'प' पाठ

छ. डॉ० रघुवीर के संस्करण का 'च' पाठ

ना.अ. नाममन्त्रार्थावलोकिनी

अ. क. अमृतकणिका नामसङ्गीतिटिप्पणी

भो. देगे संस्करण, तो. ३६०

अमृतकणिका नामसङ्गीतिटिप्पणी के सम्पादन में प्रयुक्त मातृकाएँ

क. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या–४.२०, पत्र संख्या–१००, ताडपत्र

ख. केसर पुस्तकालय, काठमाण्डू, नेपाल सं० १४, पत्र संख्या—७०
(माईक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू संख्या सी० १४.१०)

ग. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या—५.१६९, नेपाली कागज, पत्र संख्या–४८

द. व्यक्तिगत संग्रह, पण्डित दिव्यवज्र वज्राचार्य, मार्सं गली काठमाण्डू, नेपाल

भो. भोटानुवाद—तन्ग्युर, पीकिंग संस्करण भाग–४८, संख्या–२१११

अमृतकणिकोद्योतनिबन्ध के सम्पादन में प्रयुक्त मातृकाएँ

क. टोक्यो विश्वविद्यालय पुस्तकालय, सं० १८, पत्र संख्या-९०, ताडपत्र

ख. आशा स्फु कुटि, काठमाण्डू, DH. 366, पत्र संख्या–५६

ग. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू, नेपाल, लगत संख्या–३.६५५,
पत्र संख्या–९५

●

ग्रन्थस्थ-संकेत सूची

अ. व. सं.	अद्वयवज्रसंग्रह	प्र. पि.(प्रज्ञा. पि.)	प्रज्ञापारमिता पिण्डार्थ
अ. श.	अध्यर्धशतक	प्र. वा.	प्रमाणवार्तिक
अ. सा.	अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता	प्र. श.	प्रतिपत्तिसारशतक
अचि. स्त.	अचिन्त्यस्तव	बो. च.	बोधिचर्यावतार
अनु. सं	अनुत्तरसन्धि	बो. वि.	बोधिचित्तविवरण
अभि. अ.	अभिसमयालंकार	म.भा (शा.प.)	महाभारत (शान्तिपर्व)
अभि. को.	अभिधर्मकोश	म. वि.	मध्यान्तविभाग
आ. मा.	आलोकमाला	म. शा.	मध्यमकशास्त्र
का. त.	कालचक्रतन्त्र	मध्य.	मध्यमकावतार
गी.	गीता	महा.सू.(म.सू.)	महायानसूत्रालंकार
गु. त.	गुह्यसमाजतन्त्र	रत्ना.	रत्नावली
च. गी. को.	चर्यागीतिकोश	लो. स्त.	लोकातीतस्तव
च. श.	चतुःशतक	वि.	विंशिका
चतु. स्त.	चतुस्तव	वि. प्र.	विमलप्रभा
दो. को.	दोहाकोश	वि. व्या.	विग्रहव्यावर्तनी
ना. सं.	नामसंगीति	स्वा. प्र.	स्वाधिष्ठानप्रभेद
पं. क्र.	पञ्चक्रम	हे. त.	हेवज्रतन्त्र

विषय-सूची

ही हैं, निश्चय पूर्वक कह नहीं सकते। यदि यह माध्यमिक दर्शन के संस्थापक आचार्य की ही रचना हो तो हम नामसंगीति के काल को कम से कम द्वितीय शताब्दी तक ले जा सकेंगे। इसके अन्य टीकाकार आचार्यों का काल विद्वानों ने सातवीं-आठवीं या इसके बाद ही स्वीकार किया है।

इस सम्बन्ध में एक अन्य तथ्य पर ध्यान देना भी आवश्यक जान पड़ता है वह है प्रज्ञापारमिता शास्त्रों का काल और प्रज्ञापारमिता सूत्रों की शैली। नामसंगीति मूलतः स्तोत्र ग्रन्थ है परन्तु जब हम इसके परिच्छेदों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें स्वतः प्रज्ञापारमिता सूत्रों की शैली परिलक्षित दीखती है। जैसे भगवान् के समक्ष सूत्र की देशना के लिये अध्येषणा करना, भगवान् द्वारा सत्त्व के कुल, गोत्र एवं अध्याशय को जानकर, तदनुरूप गम्भीरशास्त्र का प्रवचन करना और जो भी कुल-दुहिता और कुलपुत्र इस सूत्र का वाचन करेंगे, श्रवण करेंगे, पाठ करेंगे, इसकी पुनः पुनः आवृत्ति करेंगे, इसे धारण करेंगे, इससे वह अपरिमित पुण्यों तथा गङ्गानदी के बालु कणों के समान पुण्यों के भागी बनेंगे। इस दृष्टि से हम नामसंगीति का काल प्रज्ञापारमिता शास्त्रों के समकाल में करीब-करीब दूसरी-तीसरी शताब्दी का स्वीकार कर सकते हैं।

वस्तुतः तन्त्रों के बुद्ध द्वारा देशित होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं होना चाहिये। भगवान् बुद्ध ने तीन बार धर्मचक्र प्रवर्तन किया — प्रथम बार मृगदाववन ऋषिपत्तन सारनाथ, वाराणसी में, द्वितीय गृध्रकूट पर्वत पर महायान का और तृतीय श्रीधान्यकटक में मन्त्रनय का। भोट परम्परा के अनुसार ऐसी मान्यता है कि बोधि प्राप्त करने के प्रथम वर्ष में सारनाथ में स्थविरवादी मत का, तेहरवें वर्ष में गृध्रकूट पर्वत पर महायान का और सोलहवें वर्ष में धान्यकटक में मन्त्रनय का प्रवर्तन किया। कालचक्रतन्त्र के सम्बन्ध में विमलप्रभा टीकाकार पुण्डरीक ने स्पष्ट ही उद्धृत किया है कि इसकी देशना तथागत ने बोधि के बारहवें मास में चैत्र पूर्णिमा के दिन धान्य-कटक में दी। नामसंगीति के टीकाकार रविश्री ने इसके प्रवर्तन के सम्बन्ध में लिखा है कि श्रीधान्यकटक महाचैत्य स्थान में नाना तन्त्रों के श्रवण के इच्छुक विनेय जनों के द्वारा अध्येषणा करने पर श्रीशाक्यसिंह भगवान् बुद्ध ने चैत्र पूर्णिमा के दिन धर्मधातुवागीश्वर मण्डल के ऊपर आदिबुद्ध को विस्फारित कर उसी दिन अभिषेक देकर बृहत् और लघुतन्त्र के भेद से देशना दी[1]। बृहदादिबुद्ध में भी प्रज्ञापारमिता

---

१. श्रीधान्यकटके महाचैत्यस्थाने नानातन्त्रश्रवणार्थिभिरध्येषितः श्रीशाक्यसिंहो नाम बुद्धो भगवान् चैत्रपूर्णिमायां श्रीधर्मधातुवागीश्वरमण्डलं तदुपरि श्रीमान्नक्षत्रमण्डलमादिबुद्धं विस्फार्य तत्र तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवादिभ्यः सर्वमन्त्रनीतिं बृहल्लघुतन्त्र-भेदेन देशितवान् (पृ० १)

एवं मन्त्रनय को देशना के सम्बन्ध में कहा है कि जिस प्रकार प्रज्ञापारमिता की देशना गृध्रकूट में शास्ता ने की उसी प्रकार मन्त्रनय की देशना भगवान् ने श्रीधान्य में की—

गृध्रकूटे यथा शास्त्रा प्रज्ञापारमितानये।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना[1] ॥

नामसंगीति का शाब्दिक अर्थ

नामसंगीति में दो शब्द हैं नाम और संगीति। यह मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्व के नामों की संगीति है, अतः मञ्जुश्रीनामसंगीति कहलाता है। आचार्य विलासवज्र अपनी टीका नाममन्त्रार्थावलोकिनी में 'नाम' और 'संगीति' को स्पष्ट करते हुये बतलाते हैं कि—गान ही गीति है, सम्यक् गीति संगीति है, नामों की सम्यक् गीति ही नाम-संगीति है—"गानं गीतिः सम्यग्गीतिः सङ्गीतिः, नाम्नां संगीतिर्नामसंगीतिरिति"। यहाँ नाम को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि क्रिया, चर्या, योगतन्त्र, सूत्र, अभिधर्म, विनय, समस्त लौकिक-लोकोत्तर, स्थावर-जङ्गम जगत् नाम है। उनकी संगीति ही नाम संगीति है—"नामानि योगक्रियाचर्यातन्त्रप्रवचनसूत्राभिधर्मविनयलौकिकलोकोत्तराणि स्थावरजङ्गमानि च, तेषां नाम्नां संगीतिरिति"। आचार्य रविश्री ने अपनी नाम-संगीति टिप्पणी अमृतकणिका में नामसंगीति के अर्थ को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि यह नाना तन्त्रों से उपलक्षित है, जो महासुखाकार और सहजानन्द स्वरूप है। उसी महासुखाकार सहजानन्द का सम्यक् ज्ञान ही नामसंगीति है—"नानातन्त्रोपलक्षित-महासुखाकार-सहजानन्दसुखस्य नाम्नां सम्यग् ज्ञानं नामसंगीतिः" (पृ० ९)। यहाँ आचार्य का नाना तन्त्रों से उपलक्षित कहने का तात्पर्य यह है कि नामसंगीति अपने पूर्ववर्ती अनेकानेक तन्त्रों से स्तोत्र के रूप में प्रस्तुत हुई है। अर्थात् मूलरूप से सभी महत्त्वपूर्ण तन्त्र नामसंगीति में प्रतिनिधित्व पा सके हैं। अतः स्थापित किया जा सकता है कि यह सभी प्राचीनतम मुख्य तन्त्रों की प्रतिनिधि है। इसी कारण इस ग्रन्थ ने विशेषकर महायानी और मन्त्रयानी सम्प्रदायों एवं अनुयायियों में सर्वाधिक ग्राह्य एवं मान्य होकर व्यापक महत्त्व प्राप्त किया।

ऊपर नामसंगीति के जिन नामों की चर्चा की गई है वे विशेषण के रूप में आठ सौ बारह नाम इसमें संग्रहीत हैं। इसमें प्रत्येक नाम की विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा है। क्योंकि इनमें प्रत्येक नाम की दार्शनिक एवं साधनात्मक व्याख्या की जा सकती है। साधनमाला में संग्रहीत वागीश्वरसाधन में इसे आठ सौ नाम वाली नाम-

---

१. सेकोद्देशटीका-पृ० १, ना० सं० पृ० १

संगीति कहा है—"अष्टशतनामधेयां नामसंगीतिम्"। आचार्य मञ्जुश्रीमित्र नामसंगीति के विलक्षण एवं विशिष्ट ज्ञाता थे। इन्होंने नामसंगीति पर "आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति-टीका" के अतिरिक्त इसके साधन, मण्डल, होम, अभिषेक इत्यादि विषयों पर लगभग तीस से अधिक ग्रन्थों की रचना की है। इनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने नामसङ्गीति के एक-एक नाम पर साधना की और सिद्धि प्राप्त की।

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति की अन्तिम पुष्पिका में यह उद्धृत है कि यह मायाजालषोडशसाहस्त्रिका के समाधिजाल पटल से उद्धृत की गयी है। षोडशसाहस्त्रिका मायाजाल महायोगतन्त्र उपलब्ध नहीं होता है। सम्भवतः नामसंगीति उस बृहत् तन्त्र के समाधिजाल पटल में हो। यह तन्त्र तिब्बती अनुवाद में भी उपलब्ध नहीं होता है। अतः हम निश्चित रूप से कहने में असमर्थ हैं कि क्या नामसंगीति इसका एक अंग है या इसके समाधिजालपटल का लघु अथवा संक्षेपीकृत रूप है ? क्योंकि हमें अनेक बौद्ध तन्त्रों का संक्षिप्त रूप और बृहत् रूप देखने में मिलता है। जैसे लक्षाभिधान का लघु रूप ५१ परिच्छेदों में निबद्ध लघुतन्त्र (चक्रसंवरतन्त्र), बृहदादिबुद्ध का द्वादशसाहस्त्रिका कालचक्रतन्त्र तथा गुह्यसमाज और हेवज्रतन्त्र भी इसी प्रकार संक्षिप्त रूप हैं। नामसंगीति के सम्बन्ध में इसकी अध्येषणा और उपसंहार में आये अंश भी इसका स्पष्टीकरण करते हैं। यथा—

मायाजाले महातन्त्रे या चास्मिन् संप्रगीयते।
महावज्रधरैर्हृष्टैरमेयैर्मन्त्रधारिभिः ॥

(पृ० ९)

श्रेयोमार्गो विशुद्धोऽयं मायाजालनयोदितः।

(पृ० १०९)

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति १४ परिवर्तों में विभाजित है। इसमें कुल १६७ श्लोक तथा अनुशंसा के गद्य अंश भी सम्मिलित हैं। अनुशंसा मूल नामसंगीति का अंश है या नहीं, यह अभी निर्धारण करना शेष है। क्योंकि अनेक टीकाकारों ने इसकी भी व्याख्या की है, परन्तु कुछ टीकाकारों ने इसे प्रकारान्तर से व्याख्यायित मान कर छोड़ दिया है। इसके परिवर्तों में अध्येषणा से लेकर उपसंहार तक है। वस्तुतः नामसङ्गीति की मूल विषयवस्तु छः परिच्छेदों में ही समाहित मानी जाती है। यह है—वज्रधातुमण्डलज्ञान गाथा के "तद्यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकारसम्भवः" से लेकर कृत्यानुष्ठानज्ञानगाथा के अन्तिम श्लोक "सर्वसम्पत्करः श्रीमान् मञ्जुश्री श्रीमताम्बरः" तक।

प्रारम्भिक अध्येषणा गाथा में वज्रधर भगवान् को प्रणाम कर कृताञ्जलि की अवस्था में भगवान् के सामने स्थित हो कर मायाजालमहातन्त्र में संगीतित, मन्त्रधर और महावज्रधरों द्वारा धारित, अतीत, अनागत और प्रत्युत्पन्न बुद्धों द्वारा देशित, गम्भीर, उदार, और महान् अर्थों से युक्त, अप्रतिम शान्तिकारक, जो आदि मध्य और अन्त में कल्याणकारी है इत्यादि अनेकानेक गुण विशेषणों से युक्त नामसंगीति का उपदेश वज्रधर अपने हित के लिये, अज्ञानपङ्क में निमग्न सत्त्वों के उद्धार के लिये राग-द्वेष-मोह आदि क्लेशों द्वारा जिन का चित्त व्याकुल हो गया है, उन सभी सत्त्वों के हित के लिये तथा अनुत्तर फल को प्राप्त करने के लिये अध्येषणा करता है।

तब भगवान् बुद्ध जो मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, स्मित हास्य से युक्त होकर, वज्रधर की ओर मुखातिब होकर कहते हैं कि तुम जगत् के हित के लिये करुणा से युक्त हुये हो और महान् अर्थों से युक्त पवित्र मञ्जुश्री के ज्ञानकाय (नामसंगीति) को सुनने के लिये उद्यत हुये हो। हे गुह्याधिपति ! मैं तुम्हें इसकी देशना करता हूं, तुम एकाग्रमन होकर इसका श्रवण करना। यह गुह्याधिपति के अध्येषणा करने पर भगवान् का प्रतिवचन है। अतः इस परिच्छेद का नाम ही प्रतिवचन है। तीसरा परिच्छेद षट्कुलावलोकन का है। इस में पञ्चस्कन्धात्मक सत्त्वों के कुलों का निरीक्षण भगवान् करते हैं, तथा छठा कुल यहाँ वज्रधर का अभिप्रेत है। कुलानुवीक्षण की यही परम्परा बौद्ध तन्त्रों के अभिषेक के प्रसंग में भी प्रचलित है। अभिषेक के समय भी सर्वप्रथम सत्त्व के कुल का निर्धारण होता है। तब तत्कुलानुरूप नामकरण कर उसे तन्त्र का अभिषेक दिया जाता है। जगत् में सत्त्व अनेक हैं तदनुसार कुल भी अनेक हैं। इन सभी कुलों को क्रमशः पाँच तथागत कुलों में अन्तर्भुक्त कर लिया जाता है। बौद्ध दर्शन में भी यह मान्यता है कि सभी जगत् के पदार्थ अथवा धर्म पाँच स्कन्धों के भीतर समाहित हो जाते हैं। तदनुसार यहाँ पाँच तथागत कुल तथा छठे वज्रधर कुल का अवलोकन किया गया है। चौथा परिच्छेद मायाजालाभिसम्बोधि का है। बौद्ध तन्त्र का मुख्य तथ्य यह है कि सत्त्व को महाकरुणा से युक्त होने के साथ-साथ शून्यता अर्थात् वस्तुओं की निःस्वभावता का भी साक्षात्कार करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सत्त्व महाकरुणा और शून्यता से युक्त हो। यही तथ्य अभिषेक के प्रसंग में भी परिलक्षित होता है क्योंकि अभिषेक प्रदान करने से पूर्व सत्त्व के चित्त में महाकरुणा उत्पन्न करने के लिये बोधिचित्तोत्पाद का अभ्यास किया जाता है। इसके बाद ही अभिषिक्त होकर उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम की साधना का अधिकारी होता है। मायाजालाभिसम्बोधि का विषय अत्यन्त गम्भीर एवं दुरूह है। एक प्रकार से इसी में तन्त्र के दार्शनिक पक्ष का प्रस्फुरण होता है। इस के पश्चात् मूल नामसंगीति के छः परिच्छेद आते हैं। जिनका निर्देश पहले किया जा चुका है। इस में

१११३ ई० के लगभग वर्तमान थे। चीनी भाषा में नामसंगीति के मुख्य चार अनुवाद हैं[१]।

2. मंगोल अनुवाद--मंगोल भाषा में इसका अनुवाद Choi gi odser (१२१४-१२९४ ई०) ने किया[२]।

3. भोटानुवाद—भोटानुवाद में इसे "आर्यमञ्जुश्रीज्ञानसत्वस्य परमार्था नामसङ्गीतिः" (ḥPhags Pa ḥJam dPal Ye Śes Sems Kyi Don Dam Paḥi mTshan brJod) कहा है। भोट भाषा में भी इसके विभिन्न अनुवाद किये गये एवं उन अनुवादों में समय-समय पर संशोधन भी हुए। पीकिंग संस्करण कन्युर के अनुसार इसके अनुवादक bLo Gros brTan Pa हैं। बाद में पुनः bLo Gros brTan Pa द्वितीय ने इसे संशोधित किया। देगें संस्करण के अनुवादक कमलगुप्त एवं महान् अनुवादक रिन्छेन जङ्पो (Rin Chen bZaṅ Po ९५८-१०५५ ई०) हैं[3]। इसे भी बाद में bLo Gros brTan Pa ने संशोधित किया। यह १४ वीं शताब्दी में वर्तमान थे[४]।

4. अंग्रेजी अनुवाद—मञ्जुश्रीनामसङ्गीति के दो अंग्रेजी अनुवाद भी इस समय प्राप्त हैं[५]।

नामसंगीति की प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्रियां

नामसंगीति के संस्कृत में प्रकाशित कई संस्करण एवं पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं। इसकी चार टीकाएँ भी संस्कृत में उपलब्ध होती हैं और परिवार ग्रन्थों की भी कुछ पाण्डुलिपियां प्राप्त हैं। जिनका संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है—

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति के संस्कृत पाठ के आज तक पांच भिन्न भिन्न संस्करण सम्पादित हो चुके हैं। पहली बार इसका सम्पादन रूसी विद्वान्

---

1. Indian Buddhism—H. Nakamura, p. 326.
2. Buddhism in Mangolia, p. 9-10.
3. A Complete Catalogue of the Tibetan Buddhist Canon, Sendai, Japan, 1934.
4. The Blue Annals, p. 310, 329.
5. I. The Litany of Names of Mañjuśri—R. Davidson, (Tantric and Taoist Studies. MCB. Vol. XX Bruxells, 1981).
   II. Chanting the Names of Mañjuśri-By Prof. Alex Wayman.

अधिकतर प्रतियाँ नेपाली संवत् ८०० से १००० के मध्य की हैं। फिर भी कुछ मातृकाएँ निश्चय ही काफी प्राचीन प्रतीत होती हैं, इनमें से एक केसर पुस्तकालय में संरक्षित ताडपत्रीय प्रति (सं० ११८), जिसका समय नेपाली संवत् २४२ है, अतः यह १०वीं ११वीं शताब्दी की जान पड़ती है। एक अन्य ताडपत्रीय प्रति राष्ट्रीय अभिलेखालय में उपलब्ध है (सं० ४.२२८५)। इसके अन्त में प्रतिलिपिकार ने जो समय दिया है, तदनुसार यह नेपाली संवत् ३५१ के अश्विनी शुक्ल प्रतिपदा के दिन लिपिबद्ध की गई है। इस प्रकार यह प्रति भी १२वीं शताब्दी के लगभग की विदित होती है।

नामसंगीति की टीका-उपटीका एवं परिवार ग्रन्थ

आर्यमञ्जुश्री नामसंगीति के व्यापक प्रचार का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सातवीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक विभिन्न भारतीय आचार्यों ने इस पर २६ टीका, उपटीका, पञ्जिका एवं वृत्तियाँ लिखकर इसके साहित्य को समृद्ध किया। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न भारतीय आचार्यों ने इसके विभिन्न पक्षों—साधना, मण्डल, जप, होम, अभिषेक आदि विषयों पर पचासों परिवार ग्रन्थों की रचना की, जिनका भोटानुवाद तन्ग्युर संग्रह में संगृहीत है।

१. टीकाग्रन्थ

इस विशाल साहित्य का ज्ञान हमें भोटानुवाद के माध्यम से विशेष रूप से मिलता है। तन्ग्युर संग्रह में जो आर्यमञ्जुश्री नामसंगीति की टीकाओं का विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है—

१. अमृतकणिकानाम आर्यनामसंगीतिटिप्पणी- (रविश्री)
(ḥPhags Pa mTshan Yaṅ Dag Par brJod Pa [mDor-bŚad] bDud rTsiḥi Thigs Pa Śes Bya Ba. Tibetan Tripiṭaka, Peking ed. (TTP.) Vol. 48, Sr. No. 2111)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति अमृतबिन्दुप्रत्यालोकवृत्तिनाम- (अनुपमरक्षित)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa bDud rTsiḥi Thigs Pa sGron Ma gSal Ba Śes Bya Ba. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2112)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिव्याख्यान- (मञ्जुश्री निर्माणनरेन्द्रकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rNam Par bŚad Pa. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2113)

४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिटीका विमलप्रभा- (राजा पुण्डरीक)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa Dri Ma Med Paḥi Ḥod S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2114)

५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिस्वानुशंसावृत्ति- (कीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Phan Yon Gyi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2115)

६. आर्यनामसंगीत्यभिसमय- (अवलोकित)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi mṄon Par rTogs Pa. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2116)

७. नामसंगीतिवृत्तिनामार्थप्रकाशकरणदीपनाम- (विमलमित्र)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa mTshan Don gSal Bar Byed Paḥi sGron Ma S̄es Bya ba. TTP. Vol. 67, Sr. No. 2941)

८. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति-अर्थालोककरनाम -(सुरतिवज्र)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Don gSal Bar Byed Par S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, No. 2942)

९. नामसंगीत्युपसंहारवितर्कनाम- (अद्वयवज्र)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi N̄e Bar bsDus Paḥi rNam Par rTog Ge S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, Sr. No. 2943)

१०. उपसंहारवितर्कसहिता संक्षिप्तनामार्थप्रदीपनाम- (प्रज्ञागुरु)
(N̄e Bar bsDus Paḥi rNam Par rTog Ge Daṅ sByor Baḥi bsDus Don mTshan Gyi sGron Ma S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, No. 2944)

११. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिटीकानाम सारोपायिका- (अद्वयवज्र)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa N̄iṅ Po mṄon Par rTags Pa S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, Sr. No. 2945)

१२. नामसंगीतिवृत्ति- (मञ्जुश्रीमित्र)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 74, Sr. No. 3355)

१३. आर्यनामसंगीतिटीकानाम नाममन्त्रार्थावलोकिनी- (विलासवज्र)
(ḥPhags Pa mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rGya Cher ḥGrel Pa mTshan gSaṅ sṄags Kyi Don Du rNam Par lTa Ba S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 74, Sr. No. 3356)

१४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिटीका- (मञ्जुश्रीकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rGya Cher bŚad Pa. TTP. Vol. 74, Sr. No. 3357)

१५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति- (चन्द्रभद्रकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Pa Śes Bya Baḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol-75, Sr. No.3358)

१६. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति- (अवधूतीपा)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3359)

१७. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति नामार्थप्रकाशकरणनाम- (अद्वयगुप्त)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa mTshan Don gSal Bar Byed Pa Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3360)

१८. मञ्जुश्रीनामसंगीतिलक्षभाष्य- (स्मृतिज्ञानकीर्ति)
(ḥJam dPal mTshan brJod Kyi bŚad ḥBum. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3361)

१९. आर्यनामसंगीत्युपदेशवृत्तिनाम- (कुमारकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Man Ṅag Gi ḥGrel Pa Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3362)

२०. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमहाटीकानाम- (चन्द्रगोमिन्)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rGya Cher ḥGrel Pa. (Śes Bya Ba). TTP. Vol. 75, Sr. No. 3363)

२१. नामसंगीतिवृत्ति- (डोम्बी हेरुक)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3365)

२२. नामसंगीतिवृत्तित्रिनयप्रकाशकरणदीपनाम
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa Tshul gSum gSal Bar Byed Paḥi sGron Ma Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3364)

२३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिपञ्जिकासंग्रहनाम- (रत्नाकरगुप्त)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi dkaḥ ḥGrel bsDus Pa Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3366)

उपर्युक्त २५ टीकाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य टीकाओं की भी सूचना मिलती है, जैसे विभूतिचन्द्र की अमृतकणिकोद्योत निबन्ध, जो रविश्री द्वारा रचित अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी पर है। दूसरी टीका गूढपदा आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति टीका है[1]। तीसरी टीका योगसारावली क्रियासमुच्चयकार जगद्दर्पण की होनी चाहिए क्योंकि क्रियासमुच्चय में वह लिखते हैं कि "अस्मत्कृतनामसंगीतिटीकायां योगसारावल्याम्"[2]। इससे विदित होता है कि उनकी भी नामसंगीति पर एक टीका अवश्य रही होगी जो आज उपलब्ध नहीं है और न ही इसका भोटानुवाद उपलब्ध है। इस प्रकार अन्य भी टीकाएँ हो सकती हैं जिनकी आज हमें किसी प्रकार की सूचना नहीं है। यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि इस पर प्राचीनतम टीका चन्द्रगोमिन् विरचित महाटीका ही प्रतीत होती है और सबसे परवर्ती विभूतिचन्द्र का अमृतकणिकोद्योत निबन्ध। विभूतिचन्द्र का समय १३वीं शताब्दी का है, यह भारत में बौद्ध धर्म के संरक्षक अन्तिम आचार्यों में से एक थे। तुर्कों के आक्रमण के बाद ये नेपाल की ओर चले गये थे और कुछ समय बाद वहाँ से तिब्बत चले गये।

यद्यपि यहाँ हम टीकाओं की ऐतिहासिकता एवं विशेषताओं का विश्लेषण नहीं करेंगे क्योंकि यह अपने में एक विस्तृत अध्ययन का विषय है, तथापि इसकी ओर कुछ संकेत अवश्य करना चाहेंगे। आचार्य विलासवज्र अपनी टीका की विशेषता बतलाते हुये कहते हैं कि सूत्र, अभिधर्म, मध्यमक, विज्ञानवाद, इतिवृत्तक, क्रिया-चर्या-योगतन्त्रों के अध्ययन के पश्चात् यह ग्रन्थ लिखा गया है तथा यह टीका मन्त्र-चर्यानुयायी परम्परा से रची गई है। रविश्री अमृतकणिका टिप्पणी को अधिकतर दार्शनिक एवं योगपरक, विशेषकर षडङ्ग योग की दृष्टि से प्रतिपादन करते हैं। नेपाल के प्रसिद्ध परम्परागत विद्वान् पण्डित दिव्यवज्र वज्राचार्य का मानना है कि विलासवज्र की नाममन्त्रार्थावलोकिनी की व्याख्या अद्वयवादी परम्परा की है तथा अमृतकणिका की व्याख्या द्वयवादी है। यह अभी परीक्षणीय है। यहाँ यह बतला देना समीचीन होगा कि मञ्जुश्रीनामसंगीति की टीकाओं में से केवल चार टीकाओं की संस्कृत पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। ये हैं आचार्य विलासवज्र की "नाममन्त्रार्थावलोकिनी-नाम नामसंगीतिटीका", आचार्य रविश्री की "अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी", आचार्य विभूतिचन्द्र की इस टिप्पणी पर रचित "अमृतकणिकोद्योत निबन्ध" तथा रायल

---

1. The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, New Series Vol. VIII. p. 25, Ms. No. 34.

2. क्रियासमुच्चय-शतपिटक सीरीज सं० २३७, पृ० २२२

I.P. Mineof ने १८८५ में किया[१]। परन्तु यह संस्करण अब दुर्लभ हो गया है। दूसरा संस्करण प्रो० रघुवीर ने विभिन्न पाण्डुलिपियों के पाठ भेद, भोट और मंगोल पाठ के साथ शतपिटक सीरीज में प्रकाशित किया है[२]। तीसरा संस्करण कलकत्ता विश्व-विद्यालय से सन् १९६३ में दुर्गादास मुखर्जी ने एशियाटिक सोसायटी, बंगाल में उपलब्ध दो पाण्डुलिपियों और भोट पाठ की सहायता से पाठ भेद पूर्वक सम्पादित किया[३]। इस संस्करण में अनुशंसा को परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित किया है। चौथा संस्करण रोनाल्ड एम० डेविडसन्[४] का है। उपर्युक्त तीनों संस्करणों के माध्यम से और तन्ग्युर में उपलब्ध कुछ टीकाओं के भोट पाठ की सहायता से यह संस्करण सम्पादित है। साथ में इसमें नामसंगीति का आङ्ग्लभाषा अनुवाद भी दिया गया है। पांचवां संस्करण प्रो० एलेक्स वेमेन ने सम्पादित किया है[५]।

उपर्युक्त संस्करणों के अतिरिक्त भी नेपाल में नित्य पाठ के लिये भक्तों ने अनेक संस्करण प्रकाशित किये हैं।

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति की पाण्डुलिपियां

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति की शताधिक पाण्डुलिपियां ताडपत्र एवं अन्य पत्रों में विश्व के विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। नेपाल में व्यक्तिगत संग्रहों में भी काफी मात्रा में उक्त ग्रन्थ की पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त स्तोत्रसंग्रह के ग्रन्थों में भी इसका पाठ उपलब्ध हो जाता है। यद्यपि इन सभी मातृकाओं की सूचना देना यहाँ सम्भव नहीं है। इसका किञ्चित् विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है[६]। उन सभी पाण्डुलिपियों का काल निर्णय भी एक कठिन समस्या है, क्योंकि अधिकतर मातृकाएँ व्यक्तिगत संग्रहों में संरक्षित हैं। तथापि पुस्तकालयों में उपलब्ध पाण्डु-लिपियों, जिनका किंचित् निर्देश सूची पत्रों में उपलब्ध हो जाता है, के अनुसार

1. St. Petersburg University, Histirio Philogical Faculty. Vol. 16, 1885, p. 137.
2. Shata Pitaka Series, Vol. 18, International Academy of Indian culture, New Delhi.
3. Āryamañjuśrināmasamgiti, Ed. Durga Dass Mukherjee, University of Calcutta, 1963.
4. The Litany of Names of Mañjuśrī, by R. Davidson, Tantric and Taoist Studies, Melanges Chinois et Buddhiques, Vol. XX, Bruxelles, 1981.
5. Chanting the Names of Mañjuśri—By Alex Wayman.

६. नामसंगीति की अध्ययन सामग्रियां (२)-धीः ३, पृ० १२७–१४०

इस योगावस्था को प्राप्त करने के लिए मुद्रा आवश्यक है। चार प्रकार की मुद्राएँ प्रतिपादित हैं—कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा और समयमुद्रा। इन चार मुद्राओं से क्षण का ज्ञान और क्षण के ज्ञान से सुख, अर्थात् आनन्द आदि का प्रादुर्भाव होता है। मुद्रा का अर्थ ही है जो सुख प्रदान करती है—"मुदं सुखविशेषं राति ददातीति मुद्रा" (सें० टी०, पृ० ५६)। तन्त्रशास्त्र में साधना के लिये अभिषेक के समय मुद्रा-समर्पण भी किया जाता है। कर्ममुद्रा स्तनकेश से युक्त कामधातु के सुख का हेतु है। इसमें कर्म आलिंगन, चुम्बनादि व्यापार हैं। इससे उपलक्षित जो सुख है, उसे प्रदान करने वाली कर्ममुद्रा है[1]। कर्ममुद्रा के साथ एवंकार योग में प्रतिष्ठित होकर क्षण तथा क्षणों के ज्ञान से आनन्द उत्पन्न होते हैं[2]। यहाँ चंचल बिन्दु ही संवृति बोधिचित्त है। बिन्दु के स्थिर हो जाने पर उसकी ऊर्ध्व गति होती है और अन्त में उष्णीष कमल में पहुँचने पर आनन्द का आविर्भाव होता है। इसे निष्यन्द फल भी कहा जाता है। धर्ममुद्रा धर्मधातु स्वरूप है। यह निर्विकल्प, निष्प्रपञ्च, अकृत्रिम, उत्पाद रहित करुणास्वभाव है। यह परमानन्द का उपायभूत है। सहजस्वभाव प्रज्ञा से उत्पन्न होने के कारण सहज है। धर्मधातु के अन्य अनेक लक्षण प्रतिपादित हैं, यथा यह अन्धकार को हटाने वाली किरण सदृश है। यह गुरूपदेश के समान है, जो शिष्य को समस्त प्रकार की भ्रान्तियों से निवृत्त करता है। यह ललना और रसना के मध्य स्थित अवधूती के समान है। महामुद्रा निःस्वभाव है, क्लेश-ज्ञेयादि आवरणों से निर्मुक्त है और शरत्कालीन मध्याह्न गगन के सदृश स्वच्छ और निर्मल है। यह भव और निर्वाण स्वरूप अनालम्बन करुणा तथा महासुख स्वरूप है। इसका फल समय-मुद्रा है। समयमुद्रा में वज्रधर स्वयं सत्त्वार्थ के लिये हेरुक रूप में निर्माणकाय में विस्फुरित होते हैं। इसी समयमुद्रा को गृहीत कर आचार्य पाँच प्रकार के ज्ञान – आदर्श, समता, प्रत्यवेक्षणा, कृत्यानुष्ठान और सुविशुद्धधर्मधातु का प्रकाश करते हैं तथा आदियोग, मण्डलराजाग्री, कर्मराजाग्री, बिन्दुयोग और सूक्ष्मयोग की भावना करते हैं[3]।

अभिसम्बोधि एवं काय

सम्बोधि, अर्थात् सम्यक् ज्ञान ही अभिसम्बोधि है। यह चार प्रकार की है, एकक्षणाभिसम्बोधि, पंचाकाराभिसम्बोधि, विंशत्याकाराभिसम्बोधि और मायाजाला-भिसम्बोधि। ये चार अभिसम्बोधियां चार प्रकार के कायों से संश्लिष्ट हैं। यथा

---

१. से० टी०, पृ० ५६

२. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० ३२

३. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० ३३-३५

२४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिगुह्यापनोपायिकावृत्ति ज्ञानदीपनाम- (स्मृतिज्ञानकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi gSaṅ Ba Daṅ lDan Paḥi sGrub Paḥi Thabs Kyi ḥGrel Pa Ye Śes gSal Ba Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3411)

२५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिपञ्जिका- (माध्यमिकानन्द)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi dKaḥ ḥGrel. TTP. Vol. 86, Sr. No. 4831)

साधनमाला की भूमिका में दो टीकाओं—लीलावज्र कृत आर्यनामसंगीतिटीका और इन्द्रभूति कृत आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति[1] का उल्लेख है, जो ऊपर वर्णित टीकाओं से भिन्न हैं।

२. उपटीका ग्रन्थ

आचार्य रविश्री की अमृतकणिका टीका पर विभूतिचन्द्र ने उद्योत नामक टीका लिखी। यद्यपि यह तन्ग्युर संग्रह में उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसकी संस्कृत पाण्डुलिपियां प्राप्त हैं।

३. परिवार ग्रन्थ

नामसंगीति के मण्डल, साधन आदि विषयों पर अनेक लघु ग्रन्थ भी हैं, जो तन्ग्युर संग्रह में उपलब्ध हैं। उन्हें निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(क) साधन सम्बन्धी

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन
(TTP. Vol. 67, Sr. No. 2959)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3368)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन- (महाअवधूतपाद)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3427)

४. नामसंगीतिसाधन- (सिंहाचल)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3441)

५. नामसंगीतिसाधननाम- (प्रभाकर)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3442)

1. Sādhanamālā. G. O. S. No. 41, Introduction pp. 56, 98

६. नामसंगीतिनामसाधन- (धर्मकीर्ति)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3443)

७. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधननाम- (सोमश्री)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3446)

८. आर्यनामसंगीतिसाधन
(TTP. Vol. 80, Sr. No. 4297)

९. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधनोपायिका- (श्रीमद् वरबोधि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3406)

१०. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन गुह्यप्रदीपनाम- (प्रज्ञागुरु)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3423)

११. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधनोपायिका- (वज्रकर्मसिद्धि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3425)

१२. नामसंगीत्याम्नायेन सिद्धपूजाचक्रवरलब्धसाधन
(TTP. Vol. 80, Sr. No. 4295)

(ख) भावना एवं उपदेश

१. नामसंगीति-अनित्यभावना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3384)

२. नामसंगीत्यनुसारेण मध्यमेन्द्रियद्वादशप्रतीत्यसमुत्पादभावना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3393)

३. नामसंगीत्यनुसारेण श्रेष्ठेन्द्रियतत्त्वभावना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3394)

४. नामसंगीति-अध्ययनानन्तरभावना- (श्रीमद् वरबोधि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3407)

५. नामसंगीतिकुशलमूलपरिणामना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3383)

६. मञ्जुश्रीनामसंगीतिपठनोपदेश- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3382)

७. नामसंगीति-अनित्यतासंसारोद्वेगोपदेश- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3385)

८. नामसंगीतिविषत्रयनिवारणोपदेश- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75. Sr. No. 3386)

९. नामसंगीतिबचनोपदेश- (शाक्यश्रीभद्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3344)

(ग) मण्डलविधि

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3369)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3370)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3371)

४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3372)

५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3373)

६. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3374)

७. नामसंगीतिमण्डलविधि-आकाशविमलनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3367)

८. नामसंगीतिमण्डलविधिकर्म- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3379)

९. नामसंगीतिविधिसूत्रपिण्डित- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3419)

१०. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसर्वापायविशोधनमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3402)

११. मञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (शान्तिगर्भ)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3422)

१२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलोपायिका- (सोमश्री)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3447)

१३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसर्वमण्डलस्तोत्र- (सोमश्री)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3348)

१४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिचक्षुर्विधिनाम- (स्मृतिज्ञानकीर्ति)
(TTP. Vol. 86, Sr. No. 4835)

१५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिचक्षुर्विधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3400)

१६. मञ्जुश्रीनामसंगीतिमहाबोधिशरीरविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3395)

(घ) होम

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिहोमविधिसंग्रहनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3396)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसर्वापायविशोधनहोमविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3403)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिहोमकर्म- (श्रीमद् वरबोधि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3408)

(ङ) अभिषेक तर्पण आदि अन्य विषय

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति-अभिषेकविधि- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3375)

२. नामसंगीति-तर्पण- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3376)

३. नामसंगीति-आसनयोग- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3377)

४. नामसंगीति-भूतबलि- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3378)

५. नामसंगीति-प्रदक्षिणाक्रियायोग- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3380)

६. मञ्जुश्रीनामसंगीति-सप्ताङ्गसम्भारोपाय- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3381)

७. मञ्जुश्रीनामसंगीति-प्रणिधानकर्मनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3397)

८. मञ्जुश्रीनामसंगीति-मारमन्त्रचक्र- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3401)

९. मञ्जुश्रीनामसंगीति-चक्रक्रम
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3424)

एशियाटिक सोसायटी के संग्रह में उपलब्ध "गूढ़पदा" नामक टीका। अन्य सभी टीकायें मूल संस्कृत में उपलब्ध नहीं है मात्र इनका भोट अनुवाद सुरक्षित है।

आचार्य रविश्रीज्ञान एवं उनकी टिप्पणी अमृतकणिका

आचार्य रविश्रीज्ञान की नामसंगीति पर अमृतकणिका टिप्पणी अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। इसके अतिरिक्त उनकी दो अन्य टीकाएँ षडङ्ग योग पर हैं जो कालचक्र-तन्त्र और नामसंगीति में प्रतिपादित षडङ्ग योग पर प्रकाश डालती हैं। इन रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि वे कालचक्रतन्त्र परम्परा के एक प्रसिद्ध आचार्य थे। यद्यपि आचार्य रविश्रीज्ञान के जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना उपलब्ध नहीं होती, तथापि यथालब्ध सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि वह बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वर्तमान थे। वे शुभाकरगुप्त, शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०) एवं धर्माकरशान्ति के समकालीन थे। ये सभी आचार्य अभयाकर गुप्त के अनुयायी थे। अभयाकर गुप्त को बौद्ध शासन का संरक्षण करने वाले प्रसिद्ध आचार्यों में अन्तिम माना जाता है[1]। आचार्य अभयाकर गुप्त (१०८४-११०३ ई०) का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। ये विक्रमशील महाविहार के एक महान् आचार्य थे[2]।

अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी में आचार्य अपने को शबरपाद की परम्परा से जोड़ते हुए मंगलाचरण में कहते हैं—

> विषयविषयिव्योमाश्लेषप्रवृत्तिनिमित्तकं
> रविशशितमोवत्मवृत्याशरारिचलक्रियम्।
> स्फुरदुरुतरज्ञानज्योतिः श्रुतिशबराधिपं
> मणिमयशिलारूढं गूढं नमामि निरास्पदम्॥ (पृ० १)

शबरपाद या शबरीपा (६५७ ई०) प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में एक थे। सिद्ध शबरीपा की परम्परा में लुईपा (६६९ ई०), दारिकपा (७५३ ई०), सहजयोगिनी चिन्ता (७६५ ई०) एवं डोम्बी हेरुकपाद (७७७ ई०) आदि प्रमुख हैं।

आचार्य अनुपमरक्षित ने, जो नडपाद (९९० ई०) के समकालीन थे, कालचक्र-तन्त्रानुसारी षडङ्गयोग पर ग्रन्थ लिखा है। इस पर आचार्य रविश्री ने भी षडङ्गयोग टीका एवं गुणपूर्णी नामक टिप्पणी लिखी है। यद्यपि षडङ्ग योग की परम्परा काफी

---

१. भारत में बौद्धधर्म का इतिहास–लामा तारनाथ, पृ० १३२

२. निष्पन्नयोगावली, गा. ओ. सी. १०९, भूमिका पृ० १०–११

पुरानी है, तन्ग्युर संग्रह में षडङ्गयोग पर बहुत से ग्रन्थ उपलब्ध हैं। द ब्ल्यू एनाल्स के रचयिता जोन नु पल के अनुसार षडङ्गयोग परम्परा में निम्नलिखित प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं अवलोकितेश्वर, अनुपमरक्षित, श्रीधरानन्द, भास्करदेव, रविश्रीज्ञान, धर्माकर-शान्ति, रत्नरक्षित, नरेन्द्रबोधि, मुक्ति-पक्ष, शाक्यरक्षित, सुजात, वृद्धघोष एवं धर्मस्वामी[1]।

कुछ लोग रविश्रीज्ञान को धर्माकरशान्ति का शिष्य मानते हैं, परन्तु शुभाकर गुप्त के अनुसार रविश्रीज्ञान के शिष्य श्रीधर्माकरशान्ति थे[2]। विभूतिचन्द्र भी अपने अमृत-कणिकोद्योत में अमृतकणिका के पदों की व्याख्या करते हुए कहते हैं—"परमाक्षर-ज्ञानसिद्धिसुधानिधिमपेक्ष्यामृतस्य स्वल्पतरा कणिका सैवाचरति यज्ज्ञानं या लक्षतिलक-गौडगोपालभूपतिगुरोः पण्डितचक्रचूडामणेर्धर्माकरशान्तिचरणादधिगतं ज्ञानं तत् टिप्यते लिख्यते" (पृ० ११३)। अतः यह ज्ञात होता है कि धर्माकरशान्ति ही रविश्रीज्ञान के गुरु थे।

आचार्य रविश्रीज्ञान की तीन निम्नलिखित रचनाओं की सूचना तन्ग्युर संग्रह में उपलब्ध होती है—

१. षडङ्गयोगटीका (तो० १३६८)
२. गुणपूर्णीनाम षडङ्गयोगटिप्पणी (तो० १३८८)
३. अमृतकणिका आर्यनामसङ्गीतिटिप्पणी (तो० १३९५)

आचार्य रविश्रीज्ञान कालचक्रतन्त्र के एक महान् आचार्य थे। नामसंगीति पर आचार्य की इस टिप्पणी में भी कालचक्रतन्त्र एवं उसकी टीका विमलप्रभा को प्रचुर मात्रा में उद्धृत किया है। कालचक्रतन्त्र और नामसंगीति दोनों प्रमुख तन्त्र हैं। विमलप्रभा टीकाकार भी स्थान-स्थान पर नामसंगीति को उद्धृत करते हैं और नाम-संगीति को साक्षी मानकर कालचक्र तन्त्र के पदों की व्याख्या करते हैं। सेकोद्देशटीका में भी नरोपा ने पुनः पुनः नामसंगीति के श्लोकों को उद्धृत किया है। रविश्रीज्ञान के समक्ष सेकोद्देश टीका और विमलप्रभा अवश्य थी, क्योंकि उन्होंने बिना नाम उद्धृत किए ही नामसंगीति के पदों की व्याख्या के प्रसंग में इन दोनों ग्रन्थों के प्रसंगों का भरपूर उपयोग किया है, विशेषकर षडङ्गयोग के प्रसंग में। नामसंगीति के पदों की व्याख्या के प्रसंग में आचार्य ने कालचक्रतन्त्र ही नहीं, अपितु हेवज्रतन्त्र, सेकोद्देश, गुह्यसमाज, मूलतन्त्र, सर्वरहस्यतन्त्र आदि अनेक मूल ग्रन्थों एवं नागार्जुन, आर्यदेव, सरहपाद, कृष्णपाद आदि अनेक आचार्यों को भी उद्धृत किया है।

---

1. The Blue Annals, p. 800.
2. The Blue Annals, p. 764.

टीका के प्रारम्भ में ही आचार्य अपने आदिगुरु शबराधिपति को स्मरण करते हैं। विभूतिचन्द्र अपने उद्योत में अमृतकणिका के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह कालचक्र एवं हेवज्र आदि तन्त्रों के रहस्यों और श्रीसरह, शबर, कृष्णपाद आदि आचार्यों के उपदेश के आधार पर आचार्य रविश्रीज्ञान ने रची—"श्रीनारोपाद-पञ्जिकामधीत्य श्रीकालचक्रहेवज्रादितन्त्ररहस्यान्विता श्रीशबरसरहकृष्णपादाद्युपदेशाश्रिता रविश्रियः" (पृ० २१६)।

अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी की पाण्डुलिपियाँ

आचार्य रविश्रीज्ञान द्वारा रचित इस टीका की कई संस्कृत पाण्डुलिपियाँ विभिन्न पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों में उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल में इसकी दो प्रतियाँ संगृहीत हैं[१]। काठमाण्डू के ही केसर पुस्तकालय में भी एक प्रति उपलब्ध है, जिसका माईक्रोफिल्म नेपाल जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन प्रोजेक्ट ने किया है[२]। इसकी एक प्रति कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भी संगृहीत है[३]। माईक्रोफिश प्लेट के रूप में इसकी एक प्रति द इन्स्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज ऑफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्युयार्क में भी प्राप्त है[४], जो किसी व्यक्तिगत संग्रह की प्रति प्रतीत होती है।

विभूतिचन्द्र एवं उनका अमृतकणिकोद्योत निबन्ध

आचार्य विभूतिचन्द्र की यद्यपि पांच छह ही मौलिक कृतियों की सूचना है तथापि आचार्य ने सैकड़ों संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भोट भाषा में किया, जिसकी सूचना तन्ग्युर संग्रह में मिलती है। आचार्य विभूतिचन्द्र १३वीं शताब्दी में विद्यमान थे और जगद्दल विहार (जगत्तला, बंगाल) के आचार्य थे[५]। आचार्य की एक संक्षिप्त

---

१. (क) राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, लगत संख्या–४.२०, पत्र संख्या–१००, आधार-ताडपत्र, लिपि नेवारी

(ख) राष्ट्रीय अभिलेखालय, लगत संख्या–५.१६९, पत्र सं०–४८, आधार नेपाली कागज, लिपि देवनागरी

२. रील सं० सी० १४.१०, पत्र संख्या–७०

३. Catalogue of Buddhist Sanskrit Mss, C. Bendall p. 29, Add, 1108, Folios–53.

४. MBB-I-152, Folios–40.

५. भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म-नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० ११

जीवनी भोट साहित्य में उपलब्ध होती है[1]। तदनुसार वे शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०) के साथ तिब्बत गये हुए नौ पण्डितों में से एक थे। यह व्याकरण और अभिधर्म के विद्वान् थे, उन्होंने शबरीपा की परम्परा से षडङ्गयोग प्राप्त किया था। वहाँ पर ड्री-खुङ् जिगतेन गोन्पो से उनका शास्त्रार्थ हुआ था। जब शास्त्रार्थ में वह पराजित हो रहे थे तो उन्होंने महामुद्रावादी ड्रि-खुङ् के मत की निन्दा की। इस पर ड्रि-खुङ् के शिष्य अत्यन्त क्रोधित हुए और आचार्य के चीवर नोच डाले। इससे खिन्न होकर आचार्य ने सात दिनों तक तारा की साधना की। सात दिनों तक लगातार पूजा करने के बाद भी देवी के सन्तुष्ट न होने पर इसका कारण जानना चाहा। तब देवी ने प्रायश्चित्त करने एवं प्रायश्चित्त स्वरूप किसी देवता का मन्दिर बनवाने का आदेश दिया। इसके अनन्तर आचार्य ने ड्रि-खुङ् के पास जाकर प्रायश्चित्त किया। बाद में स्निङ्-मो नामक पर्वत पर चक्रसंवर का एक मन्दिर बनवाया और वहाँ महापण्डित ड्रि-खुङ् के काय के बराबर चक्रसंवर की मूर्ति स्थापित की, जिसके बारे में यह प्रसिद्धि है कि यह आकाश के मध्य स्थापित है। ये तिब्बत में अनेक वर्ष रहे और त्रिसंवरमाला ग्रन्थ की रचना की तथा अनेक संस्कृत ग्रन्थों का भोटानुवाद किया।

यद्यपि इस संक्षिप्त जीवन परिचय में आचार्य के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं है तथापि अन्य सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य जगद्दल महाविहार के प्रसिद्ध आचार्यों में से एक थे। इस महाविहार की स्थापना पालवंश के अन्तिम राजा रामपाल ने की थी। राजा ने इसमें अवलोकितेश्वर एवं तारा की मूर्तियों की स्थापना की। आचार्य विभूतिचन्द्र और दानशील इस विहार के प्रसिद्ध आचार्य थे और मोक्षाकर गुप्त यहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक हुए[2]।

विक्रमशील विहार के आचार्य अभयाकर गुप्त के एक शताब्दी पश्चात् भारतवर्ष में बौद्ध धर्म समाप्त हो रहा था। विक्रमशील विश्वविद्यालय को तुर्कों ने विनष्ट कर डाला था। इस समय शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०) के साथ १२०३ ई० में दानशील एवं संघश्री आदि बौद्ध पण्डितों के साथ विभूतिचन्द्र भी नेपाल होते हुए तिब्बत पहुँचे[3] और वहाँ बौद्ध परम्परा की सुरक्षा की। जोन नु पल के अनुसार ड्रग सोदनम् ग्यलछन् (११८२-१२६२ ई०) ने आचार्य को नेपाल से तिब्बत के दिङ्री नामक स्थान में बुलाया और आचार्य से षडङ्गयोग का अध्ययन किया। जिसे आचार्य ने

---

1. Bibliographical Dictionary of Tibetan Buddhism, p. 867.
2. Obscure Religious Cult–S. Dasgupta, p. 13.
३. पुरातत्त्वनिबन्धावली–पृ० २१८

शबरीपा की परम्परा से प्राप्त किया था[1]। तिब्बत में वे बुस्तोन रिन्पोछे (१२९०-१३६४ ई०) से भी मिले। बुस्तोन रिन्पोछे ने उनसे सद्धर्म के उपदेश की प्रार्थना की[2]। इस प्रकार आचार्य विभूतिचन्द्र का काल हम १२०० से १३०० ई० के मध्य स्थिर कर सकते हैं।

विभूतिचन्द्र कालचक्र तन्त्र परम्परा के आचार्य थे, इस परम्परा में इनकी मुख्य कृति "अन्तर्मञ्जरी" है। ये अपने उद्योत में भी इस परम्परा का किञ्चित् संकेत देते हैं—"श्रीनारोपादपञ्जिकामधीत्य, श्रीकालचक्रहेवज्रादितन्त्ररहस्यान्विता श्रीशबरसरहकृष्णपादाद्युपदेशाश्रिता रविश्रियः" (पृ० २१६)। भोटानुवाद तन्ग्युर संग्रह में इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

१. अन्तर्मञ्जरी (तो० १३७७)
२. पिण्डीकृतसाधनपञ्जिका (तो० १८३२)
३. त्रिसंवरप्रभामालानाम (तो० ३७३७)
४. बोधिचर्यावतारतात्पर्यपञ्जिका विशेषद्योतनीनाम (तो० ३८८०)

यद्यपि तन्ग्युर संग्रह में उक्त चार ही ग्रन्थ आचार्य के नाम से उद्धृत मिलते हैं, तथापि अन्य कृतियाँ भी आचार्य के नाम से उपलब्ध होती हैं—

१. अमृतकणिकोद्योतनिबन्ध
२. श्रीवज्रविलासिनीस्तोत्र[3]
३. ज्योतिषवैद्यकक्कोडपत्र[4]

आचार्य रविश्रीज्ञान द्वारा रचित अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी पर विभूतिचन्द्र की यह उपटीका है। भोट अनुवाद तन्ग्युर संग्रह में यह प्राप्त नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका भोटानुवाद नहीं हुआ परन्तु टोक्यो यूनिवर्सिटी की पाण्डुलिपि को देखने से यह आभास होता है कि इसका अनुवाद करने का प्रयास अवश्य किया गया क्योंकि इस पाण्डुलिपि के हाशिये पर यत्र तत्र भोट लिपि में वाक्य उद्धृत मिल जाते हैं। इसकी चार संस्कृत पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। एक प्रति

1. The Blue Annals–p. 727.
2. Mystic Tales of Lama Taranath–B. N. Datt, p. 38.
३. धीः अंक १, पृ० ४
4. The Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXIII, Part–I, 5–310, पत्र-12, लिपि-मागधी

३. प्रत्यवेक्षणाज्ञान

प्रत्यवेक्षणाज्ञान का स्वरूप आदिशुद्ध, अनुत्पन्न तथा अनाविल है। सभी संज्ञात्मक वर्ण अकार-कुलोद्भव हैं और अकार सभी वर्णों में अग्र है। इससे उत्पन्न सभी देव-मण्डल प्रभास्वर स्वभाव हैं। इन सभी में एकाकार प्रभास्वरता का दर्शन करना ही प्रत्यवेक्षणा कहलाती है।

४. समताज्ञान

आदर्शज्ञान के उत्पन्न होने के बाद योगी में समताज्ञान का उदय होता है। इसमें समस्त जगत् को स्वप्नवत् कल्पनाप्रसूत और प्रतिबिम्बवत् स्वीकार किया जाता है। इसमें सभी धर्मों के प्रति अहंकार ममकार से रहित शून्यता-भावना अर्थात् सर्वधर्मनैरात्म्य की भावना उत्पन्न होती है। उस समय योगी सभी प्राणियों तथा तथागतों के चित्त में कोई अन्तर नहीं देखता, सभी में एकाकार, एक स्वभाव सम्बोधि का दर्शन करता है।

५. कृत्यानुष्ठानज्ञान

सभी लोकों में, सदा बुद्धकृत्यों और नानाविध चर्याओं द्वारा लोकहित सम्पादन करने वाला ज्ञान कृत्यानुष्ठानज्ञान कहलाता है। इसकी विशेषता बताते हुए आचार्य पद्मवज्र कहते हैं कि यह ज्ञान परमनिर्मल है, जिसमें अक्षोभ्य, वैरोचन आदि तथागत तथा लोचना आदि उनकी मुद्राएँ भी स्थित होती हैं और उनकी भावना की जाती है।

आनन्द, क्षण एवं मुद्रा

आनन्द, क्षण एवं मुद्राओं का उल्लेख तथा उनकी साधना विधि का निरूपण बौद्धतन्त्रों में साथ-साथ किया गया है, क्योंकि ये परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। चार प्रकार के आनन्द, चार क्षण एवं चार प्रकार की मुद्राएँ हैं। आनन्द, परमानन्द विरमानन्द तथा सहजानन्द—ये चार आनन्द हैं। विचित्र, विपाक, विमर्द तथा विलक्षण—ये चार क्षण हैं। कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा और समयमुद्रा—ये चार मुद्राएँ हैं। इनमें से प्रत्येक की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता मानी गयी है। यथा—

आनन्देन सुखं किञ्चित् परमानन्दं ततोऽधिकम्।
विरमेण विरागः स्यात् सहजानन्दं तु शेषतः॥

(हे० त० १.८.३२)

राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू में संगृहीत है[१]। एक अन्य प्रति नेपाल में किसी व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध है, जिसकी सूचना एच० तकाओका ने अपने सूची पत्र में दी है[२]। सम्भवत: इसी प्रति की माईक्रोफिश के रूप में एक प्रति द इन्स्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज ऑफ वर्ल्ड रिलिजन्स, न्यूयार्क में भी प्राप्त है[३]। टोक्यो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी इसकी एक ताडपत्रीय प्रति सुरक्षित है[४]।

भोट आचार्यों द्वारा रचित नामसंगीति की स्वतन्त्र टीकायें

भारत से बौद्ध धर्म के साथ बौद्ध तन्त्र भी भोट देश पहुँचा और वहाँ के आचार्यों ने इसे साधना के रूप में अपनाकर बौद्ध तन्त्र परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा। भोट देश में आचार्यों ने अपनी परम्परा के अनुसार नामसंगीति पर भी कई स्वतन्त्र टीकाएँ रचीं, उनमें जिन टीकाओं की सूचना अब तक मिली है, उनका विवरण देना यहाँ उपयोगी होगा—

1. mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa rNam gSum bŚad Pa[5]—Roṅ Zom Chos bZaṅ.
2. ḥPhags Pa ḥJam dPal rGyud bŚad[6]—Bo Doṅ Pan Chen Phyog Las rNam rGyal.
3. mTshan brJod Kyi ḥGrel Pa rNal ḥByor rGyud Lugs[7]—Bo Doṅ Pan Chen Phyog Las rNam rGyal.
4. ḥJam dPal Gyi mTshan brJod Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa rJe bTsun ḥJam Paḥi dByaṅs Gyi Byin rLabs Gyi Char Myur Du ḥBebs Byed bsTod sPhrin Gyi sGra dByaṅ[8]—Yoṅ ḥDzin Ye Śes rGyal mTshan.
5. ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Don rNam Par bŚad Pa rGyud Don gSal Byed sGron Me gSal Ba[9]—mThu sTobs Ñi Ma.

---

१. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू-लगत सं० ३.६५५, पत्र-९५
2. Microfilm Catalogue of Buddhist Sanskrit Manuscripts in Nepal, 1981, Vol. I, ed. by H. Takaoka, Page 112, Reel No. 112, Dh.366, Folios-56.
3. MBB. I-22, Folios-55.
4. A Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Tokyo University Library, by S. Matsunami, 1965, No. 18, p. 352.
5. 6. 7. 8. 9. देखें-The Litany of Names of Mañjuśrī. by. R. Davidson-P.14.

में हुआ। नामसंगीति में इन्हीं के आधार पर समस्त तन्त्रों को विभाजित कर उनका संगायन हुआ है। ये ज्ञान हैं—सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान, आदर्शज्ञान, प्रत्यवेक्षणाज्ञान, समताज्ञान और कृत्यानुष्ठानज्ञान।

बौद्ध तत्त्वचिन्तकों ने समस्त जगत को पञ्चस्कन्ध, द्वादश आयतन और अष्टादश धातु के अन्तर्गत माना है। इसी प्रकार तन्त्रों में भी यावत् चराचर जगत् को पाँच तथागतों तथा उनके ज्ञान के आधार पर संगृहीत किया गया है। ये पांच तथागत एवं उनके ज्ञान ही पञ्च स्कन्धों के प्रतीक हैं—''पञ्चस्कन्धाः समासेन पञ्च बुद्धाः प्रकीर्तिताः, (गु० त० १७.५०)। क्योंकि पञ्चबुद्ध-स्वभाव होने के कारण ही पञ्चस्कन्ध पञ्च जिन-स्वरूप हैं—''पञ्चबुद्धस्वभावत्वात् पञ्चस्कन्धा जिनाः स्मृताः'' (ज्ञा० सि० २.१), इसलिए तन्त्रशास्त्र में समस्त जगत् को पञ्चबुद्धात्मक कहा गया है—''पञ्चबुद्धात्मकु सर्वजगोऽयम्''।

१. सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान—

सत्त्व दो प्रकार के आवरणों से आवृत रहता है उनके नाम हैं क्लेशावरण और ज्ञेयावरण। जब वह इन दोनों आवरणों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है, तो इस प्रकार के इन आवरणों से मुक्त सत्त्व को वज्रसत्त्व कहा जाता है और उसके ज्ञान को सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान। वह इन दो आवरणों से आवृत सभी प्राणियों की मुक्ति के लिए भावना करता है। इस ज्ञान का स्वभाव भी शुद्ध, अनाविल, विज्ञानधर्मतातीत तथा प्रकृतिप्रभास्वर है। यह आकाश की भाँति सभी लक्षणों से रहित आदि मध्यान्त शुद्ध एवं निर्मल है।

२. आदर्शज्ञान

आकाश के समान निराधार, व्यापक और लक्षण रहित धर्मकाय को आदर्श-ज्ञान कहा गया है। जिस प्रकार मनुष्य अपना प्रतिबिम्ब दर्पण में देख सकता है, उसी प्रकार योगी आदर्शज्ञान के उत्पन्न होने पर उसमें धर्मकाय के स्वरूप का साक्षात्कार करता है। आचार्य पद्मवज्र आदर्शज्ञान को बुद्धों के लिए भी अविज्ञेय मानते हैं—

> बुद्धानामप्यविज्ञेयमपर्यन्तगुणोद्भवम् ।
> ज्ञानं तदुच्यते ह्यत्र श्रीमदादर्शसंज्ञितम् ॥
>
> (गु० सि० ४.१७)

आदर्शज्ञान सभी ज्ञानों का निमित्त होने के कारण महाज्ञानाकर के सदृश है। अपरिच्छिन्नता, सदानुगम तथा सभी प्रकार के ज्ञेयों में असंमूढता इसका स्वरूप है।

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिः

अध्येषणा

ॐ नमो मञ्जुश्रीकुमारभूताय[1]

अथ वज्रधरः श्रीमान् दुर्दान्तदमकः परः ।
त्रिलोक[2]विजयी वीरो गुह्यराट् कुलिशेश्वरः ॥ १ ॥

नामसङ्गीतिटिप्पणी-अमृतकणिका

ॐ नमो मञ्जुनाथाय[3]

विषयविषयिव्योमाश्लेषप्रवृत्त(त्ति)निमित्तकः(कम्)
रविशशितमोवर्त्मावृत्या[4]शरादि(रि)[5]चलक्रियम् ।
स्फुरदुरु[6]तरज्ञानज्योति(:)श्रुतिशबराधिपं
मणिमयशिलारूढं गूढं नमामि निराप(स्प)दम् ॥

अमृत[7]कणिकायमानं सद्गुरुपादप्रसादतोऽधिगतम् ।
[8]तद्दीप्यते ममासीत(समासात्) स्वस्मृतये नामसङ्गीतौ ॥

इह खलु श्रीधान्यकटके महाचैत्यस्थाने[9] नानातन्त्रश्रवणार्थिभिरध्येषितः श्रीशाक्यसिंहो नाम बुद्धो भगवान् चैत्रपूर्णिमायां श्रीधर्मधातुवागीश्वर[10]मण्डलं तदुपरि श्रीमा(म)न्नक्षत्रमण्डलमादिबुद्धं विस्फार्य तत्र तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवादिभ्यः सर्वमन्त्रनीतिं बृहल्लघुतन्त्रभेदेन देशितवान् । उक्तञ्च **श्रीबृहदादिबुद्धे**—

गृध्रकूटे यथा [11]शास्त्रा प्रज्ञापारमिता[12]नये ।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना ॥ इति ।

तत्र चेयमेव नामसङ्गीतिः परमदुरवगाहपरमार्थनिर्यासाधिकरण[13]त्वेन सर्वमन्त्रनय[14]प्रधानभूता । अत्र च वज्रधरस्य भगवतः परमाक्षरज्ञानं सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां

---

१. ग. ॐ नमो मञ्जुनाथाय । २. ग. ङ. त्रैलोक्य० । ३. ख. द. नमो बुद्धाय, भो. ḥJam dPal gŚon Nur Gyur Pa (मञ्जुश्रीकुमारभूताय) । ४. द. भैरारि, भो. rTsibs Can (अरा) । ५. ग. बल । ६. ग. तरज्ञज्ञानज्योतिः । ७. द. कणिकानाम् । ८. द. भो. तद्दीप्यते समासात् स्वस्मृतये नामसङ्गीतेः । ९. ग द. 'स्थाने' नास्ति । १०. वागीश्वरमण्डल-निष्पन्नयोगावली पृ० ५४ । ११. ग. शास्त्रे, क. शास्तः । १२. द. नयं । १३. भो. sÑiṅ Poḥi dBaṅ Du Byas Pa Ñid (रसाधिकरणत्वेन । १४. ख. प्रबोध ।

हृदयभूतं तथागतेन [1]संप्रकाशितम्, षट्कुलनाडीसमन्वितषट्चक्रव्यवस्थितद्वाषष्ट्यधिक-शतनाडी[2]निरोधा विशुद्धया द्वाषष्ट्यधिकशतश्लोकैः, शेषैश्चानुशंसादिकमिति ।

तत्र तावत्, अथ वज्रधरः श्रीमानित्यादिषोडशश्लोकैरध्येषणाव्याजेन तदेव परमाक्षरमाह—

अथेति । अकारेणात्र नैरात्म्यप्रतिपादकत्वेन सर्वाकारवरोपेता [3]शून्यता प्रोक्ता । [4]थकारेणाप्यक्षोभ्य[5]स्वभावप्रतिपादनेन निरालम्बकरुणा । एतच्च [6]सुविशदं संपुटं[7] (सुविशदस्फुटं) **हेवज्रटीकायां** व्याख्यातम् । तयोरद्वैधात्[8] मणिवरटकान्तःस्थित-सहजानन्द[9] शुक्रमेव शब्दाभिधेयम्, अथेत्युच्यते । उक्तञ्च—

एकारे मध्यवंकारः सर्वबुद्धसुखालयः ।
[10]खधातौ वज्रसत्त्वोऽयं कायवाक्चित्तयोगतः ॥

कायो बिन्दुरिन्दुः शुक्रं च वाग् विसर्गो[11] रजो रविः ।
चित्ताकारास्त्वमी प्रोक्ता[12] एवंधातौ व्यवस्थिताः ॥ इति ।

(वि० प्र०, भाग १, पृ० ३५)

अत एव शून्यताकरुणाभिन्नं महासुखज्ञानवज्रं तादात्म्येन धरतीति **वज्रधरः** । वज्रमभेद्यज्ञानमस[13]त्संकल्पास्थित(तं) स्कन्धक्लेशमृत्युविघ्नमारैरभेद्यत्वात् । अत एवोक्तम्—

मारः स्वचित्तं न परोऽस्ति मारस्तथागतं न(तत्वेन) तथागतानाम् ।
मारस्य भंगो विजयो मुनिश्च(नेश्च) चित्तेन चित्तप्रतिबोध एव ॥

तत् सूचकं पञ्च[14]शू(सू)चिकवज्रं बहिः तदीयस्तत्त्व[15] (तदन्तस्तत्त्व)सूचनार्थं धरतीति वा वज्रधरः । मत्वर्थः[16] श्रीरद्वयं ज्ञानं तदनुभवरूपत्वेन तादात्म्येन नित्ययोगात् **श्रीमान्**, श्रुतमिति मयार्थः[17] । तदुक्तम्—

एवं [18]वज्राब्जमध्यान्तवज्री तिष्ठति बिन्दुधृक् ।
स एवा[19]व्यतिभिन्नात्मा मयेति[20] प्रकटीकृतम्[21] ॥

सुखमिति (श्रुतमिति) श्रुतं ज्ञातं मया चात्मेव चात्मनेति[22] ।
श्रीमदा[23]दिबुद्धे चोक्तम्—

---

१ ग. प्रकाशितम् । २. क. निरोध्य । ३. ख. द. शुन्यतोक्ता । ४. द. थकारेणाक्षो० । ५. ख. स्वरूप । ६. क. स्व । ७. द. विषदस्पुट । ८. द. तत्त्वात्, क. ख. ०द्वैतात् । ९. ग. सहजानन्त । १०. क. ख. ग. द. आकाशे । ११. क. ख. ग. द. भो. वह्नि । १२. क. ख. एष । १३. ग. संकल्पो । १४. द. शूक । १५. क. ग. तदायतत्त्व । १६. क. ख. मयेत्यर्थः । १७. क. ख. ग. योऽर्थः । १८ क. वज्रान्तमध्यन्तु । १९. क. ख. एव व्यति० । २०. द. मतेति । २१. ख. कृतः । २२. द. चात्मानिति । २३. ख. श्रीआदिबुद्धे ।

तन्त्रेऽप्येवं[1] मया यत् श्रुतमिति वचनं तन्मया ज्ञातमेव
वज्री चन्द्रद्रवाद्यः शिरसि गल[2]हृदब्जे च नाभौ च गुह्ये।
वज्रस्त्रीणां भगे तत्परकमलगते [3]बिन्दुमोक्षत्रयेण
बुद्धक्षेत्रे[4] प्रविष्टः[5] तदिह स भगवान् योगिभिर्वेदितव्यः॥ इति।
(का० त० ५.९५.)

अत्र च वज्रधरो नान्योऽपि तु महावज्रधर एव। चतुरशीतिधर्मस्कन्धसहस्राणामन्य[तम]स्य सकृदुद्[6]ग्रहणार्थसामर्थ्यात्त[7]दुक्तम्—

व्याख्याताहमहं धर्मः श्रोताहं स्वगणैर्वृतः।
साध्योऽहं जगतः शास्ता[8]लोकोऽहं लौकिकोऽप्यहम्॥
सहजानन्दस्वभावोऽहं परमान्तं विरमादिकम्।
भावोऽहं नैव भावोऽहं बुद्धोऽहं वस्तुबोधनात्॥
(हे० त० २.२.३९-४०)

मां न जानन्ति ये मूढाः कौसीद्योपहताश्च ये।
[9]विहरेऽहं सुखावत्यां सद्वज्रयोषितो[10] भगे॥
(हे० त० २.२.३७-३८)

आदिकर्मिकसत्त्वावतरणाय तु बुद्धनाटकमध्येषकसङ्गीतिकारादिक[11]मिति। हरिहरहिरण्यगर्भादिभिर्दमयितुमशक्यत्वात् दुर्दान्ताः, षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासप्रश्वासः, तेषां परमाक्षरज्ञानमहारसाबिद्धतया[12] तद्रूपोपघाताद् **दुर्दान्तदमकः, पर** उत्कृष्टः। अयमेव 'प्राणिनश्च त्वया घात्या' (हे० त० १.३.२९, गु० स० १६.५९) इत्यस्यार्थः। अत एवोक्तम्—

वीरक्रमो न बाह्ये देहे प्राणक्षयो ह्यसावुक्त(ः)। इति।
(वि० प्र०, भाग-१ पृ० ७)

उक्तञ्च **विमलप्रभायाम्**। पुनरुक्तञ्चा**दिबुद्धैः**—

योगी प्राणातिपातं दिननिशिकुरुते प्राणनाशः स उक्तः।
(का० त० ४.१४५)

सर्वज्ञपदलाभाय न बाह्ये प्राणातिपातः। बाह्ये यः[13] प्राणातिपात [14]उक्तो दुर्दान्तदमनाय स तेषां योगबलेनाकृष्टः। पुनस्तस्मिन्नेव काये प्रवेशनीयो योगिनेति

---

१. क. ख. ग. तन्त्रेष्वेवं। २. द. गतदलहृदब्जे, क. ख. हृदगलब्जे। ३. मु. बीज। ४. क. ख. ग. द. क्षेत्रं। ५. द. प्रतिष्ठः। ६. द. गृहणाद्य। ७. क. ख. द. सामर्थ्यादुक्तं। ८. क. लोकोलौकि०। ९. क. ख. ग. द. विहरेयं। १०. क. ख. ०ङ्गेषु च। ११. क. कादि। १२. ख. रसविद्धतया। १३. क. ख. बाह्यादयः। १४. क. उक्ता, द. तदुक्त।

दुर्दान्तिदमको भवति, न तु दुर्दान्तान्तक इति । त्रयो लोकास्त्रिलोकम्, कायवाक्-चित्तम्, तद्विजेतुं वशयितुं ज्ञानेन सहैककलोलीकर्तुं शीलं यस्य स तथा । उक्तञ्च—

चतुर्बुद्धासनासीनं वज्रपद्मसुसंस्थितम् ।
अनुभूतं क्रमेणैव चतुरानन्दलक्षणम् ॥

एवं व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन कायवाक्चित्तज्ञानभेदेन चतुर्विधं परमाक्षरसुखम् । उक्तञ्च—

भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य बोधिचित्तं न चोत्सृजेत् ।
भावयेद् बुद्धबिम्बं तु त्रैधातुकमशेषतः ॥ इति ।

विगत[1]श्वश्चलद्रूपश्वासवातो यस्य स तथा । गुह्यं [2]श्रावक-प्रत्येकबुद्धयानयो-रुत्तरं वज्रयानं कायवाक्चित्तज्ञानैकलोलीभावो वा तत्र महासुखरूपतया [3]राजत इति **गुह्यराट्** । पञ्चगु[4]ह्यराजत्वाद् वा गुह्यराट् । उक्तञ्चादिबुद्धेन[5]—

योगी प्राणातिपातं दिननिशि कुरुते प्राणनाशः स उक्तः
यः शब्दो वक्त्रहीनः प्रभवति हृदयेऽसौ मृषावाद एव ।
सर्वज्ञज्ञानभूमेर्ग्रहणमपि च यद् योगिनः स्तेयमुक्तं
सौख्यं [6]बिन्दु(द्व)प्रपाते भवति च परदारस्य सेवाऽविरागात् ॥

प्राणायामानलेन द्रवमपि शशिनः पानकं मद्यपानम्
उष्णीषेऽङ्गुष्ठ[7]पर्वाद् व्रजति तिथिवशात् पूर्णिमान्तं[8] स्वचित्तम् ।
उष्णीषादङ्गुलीषु व्रजति पुनरिदं कृष्णपक्षावसाने
सा चर्या योगिनो वै प्रतिदिनसमये त्विष्टसिद्धिप्रदा या ॥
(का० त० ४.१२४-१२५)

वि(द्वि)कल्पराजे—

प्राणिनश्च त्वया घात्या वक्तव्यञ्च मृषावचः ।
अदत्तञ्च त्वया ग्राह्यं सेवनं परयोषितः ॥
एकचित्तं प्राणिवधं[9] प्राणश्चित्तं यतो मतम्[10] ।
[11]सत्त्वानुत्तारयिष्यामि मृषावादं च शब्दितम्[12] ॥
योषिच्छुक्रमदत्तञ्च परदाराः स्वाभसुन्दरीति ॥
(हे० त० २.३.२९-३०)

---

१. क, ग. द. इव । २. क. श्रावकश्च, ख. ग. श्रावकं च । ३. ग. यौगत । ४. द. राजनाद् वा । ५. क. ग. द. बुद्धे । ६. क. विद्रुप्रसान्ते, ग. चित्तप्रयान्ते, भो. Thig Le Ma Lhuṅ (बिन्दुपात) । ७. ख. द. प्रभावात् । ८. मु. द. पूर्णिमान्ते । ९. क. ख. प्राणिबद्धं । १०. क. ग्रहम् । ११. मु. लोका । १२. भो० Rab Tu bsGrags (प्रसिद्धं) ।

कुलिशे वज्रशिखरपुरे स्थिरत्वेन ईश्वरत्वात् **कुलिशेश्वरः** । यथारुतोऽर्थस्त्वन्यत्रापि सुलभत्वान्नोक्तः ॥ १ ॥

विबुद्ध[1]पुण्डरीकाक्षः [2]प्रोत्फुल्लकमलाननः ।
प्रोल्लालयन्[3] वज्रवरं स्वकरेण मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥

विबुद्ध इति । **विबुद्ध**[4]**पुण्डरीकं** स्फुटी[5]भूतमाकाशधातुस्तेनाक्षि सहजज्ञान[6]मस्य स तथा । विबुद्धं विकसितं पुण्डरीकं शुक्रपूर्णत्वात् श्वेतगुणयुक्तं पद्म[7]वज्रशिखरे तत्राक्षं[8] पञ्चचक्षुरुद्भवं ज्ञानं यस्य[9] वा स तथा । विबुद्धपुण्डरीकं योगिसत्त्वानां हृदयं तत्र अक्षरसुखज्ञानं तादात्म्येन यस्य वा स तथा । वज्रातिशयघर्षणेन **प्रोत्फुल्लं** विकसितं **कमलं** [10]रजःशुक्र[11]योगेन सितरक्तगुणयुतं स्त्रीपद्मं तत्राननं ज्ञानं यस्य स तथा । एवं व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन कायवाक्चित्तज्ञान[12]स्वरूपचतुर्बिन्दु[13]परमाक्षरसुखज्ञानता प्रतिपादिता । एवं विधं निर्विकल्प(पं) परमाक्षरसुखज्ञानं **वज्रवरं** स्वकरेणात्मीयाद्वैतज्ञानरश्मिस्फुरणेन जगदर्थहेतुतया **प्रोल्लालयन्** । अथवा षडङ्गयोगेनात्मनिमित्तेन विवृत्या [14]प्रतिचक्रमुल्लासयन् उत्तोलयन् **स्वकरेण** निर्विकल्पात्मवेद्यकरुणा[15][16]शून्यताऽद्वैतबोधेन उष्णीषचक्रमासादयन्नित्यर्थः । **मुहुर्मुहुः** मिथ्यासंकल्पस्य क्षणमप्यसम्भवात् ॥ २ ॥

भृकुटीतरङ्ग[17]प्रमुखैरनन्तैर्वज्रपाणिभिः ।
दुर्दान्तदमकैर्वीरैर्वीरबीभत्सरूपिभिः ॥ ३ ॥

भृकुटीति । **भृकुटी** ललाटसंकोचः, तेन ऊर्णाचक्रे बोधिचित्तागमनं सूचितम्, तस्य शुक्रस्य [18]**तरङ्गो** लहरी सहजाभिलाषतरलत्वात् । तत्र विषये प्रकृष्टं [19]**मुखमुपायः** षडङ्गयोगलक्षणो येषां ते यथा । अत एवा**नन्तै**रन्तद्वयरहितैः अविकल्पसुखैरित्यर्थः । वज्राणि आदर्शादिपञ्चज्ञानानि [20]पाणी(णा)विवायतत्वात्तादात्म्येन येषां तैस्त[21]था**गतैर्वज्रपाणिभिः** । धर्मधात्वात्मकत्वेन सर्वविकल्पानां महासुख[22]रूपतापादनात् **दुर्दान्तदमकै**रत एव **वीरैर्म**हासुखसमाधिस्थैः । वीरमच्युतबोधिचित्तत्वात् । बीभत्समाकाशाशयत्वेन रूपं महा[23]रागस्वरूपं तादात्म्येन तद् योगाद् **वीरबीभत्सरूपिभिः** ॥ ३ ॥

---

१. छ. विबुद्धः । २. ङ. प्रफुल्ल । ३. ग. प्रोल्लालयवज्रवर, ङ. प्रोल्लालयद्वज्रवरः । ४. द. विबुद्धं । ५. द. भूताकाश, ग. भूत्वाकाश । ६. भो. Ye Śes Chen Mo (महाज्ञानं) । ७. ग. पद्मं । ८. ग. तत्रोक्तं । ९. ग. अस्य । १०. ग. वज्रः । ११. ख. योनिनं । १२. ख. द. 'ज्ञान' नास्ति । १३. ग. परमाक्षरं सुखं । १४. द. उल्लासयन्, ङ. प्रोल्लासयन् । १५. ख. प्रीति । १६. भो. 'शून्यता' नास्ति । १७. ग. टरङ्ग० । १८. ग. तरङ्गा । १९. क. ग. सुख । २०. द. पाणिरिवा । २१. भो. ख. 'तथागतैः' नास्ति । २२. ग. भूपता । २३. छ. विराग ।

उल्लालयद्भिः स्वकरैः [1]प्रस्फुरद्वज्रकोटिभिः ।
प्रज्ञोपायमहाकरुणाजगदर्थकरैः परैः ॥ ४ ॥

उल्लालयेति । **उल्लालयद्भि**राकाशे, भव्यसत्त्वानां महासुखं पूर्वोक्तं वज्रवर-मुल्लासयद्भिः । स्वमनन्यवेद्यं कं सुखं रान्ति अनुभवन्तीति **स्वकरैः** । महासुखशुक्रस्य वज्रकमलकर्णिकागतत्वेन **प्रस्फुरन्ती** विकसन्ती **वज्रस्य** महासुखस्थानस्य **कोटिरग्र**[2]भागो येषां तैः । प्रज्ञा सर्व[3]धर्मविकल्परूपा शून्यता । उक्तञ्चादिबुद्धे—

त्यक्त्वेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां
सम्यक्संबोधिहेतोर्जिनवरजननीं भावयेद् दिव्यमुद्राम् ।
निर्लेपां निर्विकारां खसमहततमां व्यापिनीं योगगम्यां
कूटस्थां ज्ञानतेजां भवकलुषहरामा[4]दिबुद्धानुविद्धाम् ॥ इति ।
(का० त० ४.१९९)

सैव उपायस्तेन साधिता महाकरुणा महासुखरूपि[णी][5] बोधिचित्ततया स्फरणलक्षणं जगदर्थं कुर्वतीति । तैः **प्रज्ञोपायमहाकरुणाजगदर्थकरैः** लोकातिक्रान्तत्वात् **परैः** ॥ ४ ॥

हृष्टतुष्टा[6]शयैर्मुदितैः क्रोधविग्रहरूपिभिः ।
बुद्धकृत्यकरैर्नाथैः सार्द्धं [7]प्रणतविग्रहैः ॥ ५ ॥

हृष्टेति । हृष्टैस्तादात्मिकसुखेन, तुष्टै आनुबन्धिकसुखेन, आशयः कायवाक्चित्त-लोलीभूतः सहजकायो येषां तैर्**हृष्टतुष्टाशयैः**, अत एव सत्त्वार्थकरणाय **मुदितैः** । **क्रोधेन** सर्वधर्मशून्यतास्फुटीभावेन, क्रोधे विरमपर्यन्ते वा 'क्रोधो विरमपर्यन्तः' इति पीठ[8]-विवृतिः । **विगतो ग्रह** अशक्ति (आसक्ति)स्तद्रूपिभिस्तत्स्वरूपिभिः । अत एव **बुद्ध-कृत्यकरैः** । निर्विकल्पसुख[9]स्फरणाद् एव सत्त्वार्थकरणसामर्थ्यात् **नाथै**र्योगीश्वरैः सेव्यैः **सार्द्धमे**कीभूतैः **प्रणतविग्रहैः** महासुखनिमग्नकायवाक्चित्तैः ॥ ५ ॥

प्रणम्य [10]नाथं [11]संबुद्धं भगवन्तं [12]तथागतम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदमाह स्थितोऽग्रतः ॥ ६ ॥

---

१. घ. प्रस्फुल्ल । २. क. भावो । ३. क. ख. ग. धर्मविकल्प । ४. मु. कालचक्रानु० । ५. ख. द. 'रूपी' नास्ति । ६. ग. ०सयि० । ७. ग. प्रणम्स० । ८. भो. gDan bŚir (चतुः पीठे) । ९. क. स्फरति, ख. स्फरणत् । १०. ग. नाथ । ११. ग. सम्बुद्धो । १२. ग. तथागतः ।

प्रणम्येति। **प्रणम्या**मुखीकृत्य, **नाथम**च्युतबोधिचित्तम्, **सम्बुद्धं** प्रवुद्धसुखम्, भगोऽत्र ललाटचक्रमध्याद् गुह्यवरटकगतो ज्ञानबिन्दुस्तदुदितप्रभास्वरज्ञानं **भगवन्तं** तथा सहजसुखाकारेणोष्णीषकर्णिकातो वज्रमणिवरटके आगतं विवृत्या मणिवरटकात् पुनरुष्णीषचक्रगतं **तथागतम्**। उक्तञ्च—

आगतश्च गतश्चैव व्याप्य विश्वव्यवस्थितः।
[२]गत्यागतिनिरोधाश्च(च्च) तथागत इति स्मृतः॥ इति।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वाऽवहिर्गतो भूत्वा, प्राणायामबलेन संघट्टं कृत्वा वा, **इदं** स्वसंवेद्यं सुख**माहा**नुभूतवान्। **अग्रतः स्थितः** समाध्यानुगमात् मणिवरटकान्तःस्थितः॥ ६॥

मद्धिताय ममार्थाय अनुकम्पाय मे विभो।
मायाजालाभिसंबोधे[३] यथालाभी भवाम्यहम्॥ ७॥

मद्धितेति। **मद्धिताय** वज्रमणिवरटकानुभूतसुखानुबन्धाय। अत एव **ममार्थाय** सर्वसत्त्वानां तत्सुखोत्पादाय। तथतारूपेणाभिन्नत्वेन तत्सुखोत्पादनमेव मत्प्रयोजनम्। **अनुकम्पाय** स्वपरेषामसत्संकल्पप्रक्षालनाय। महासुखस्वभावेन त्रैलोक्यव्यापकत्वेन **विभो** इति सम्बोधनम्। षोडशकायानन्दादिबिन्दुनिरोधेन प्रादेशिकस्कन्धधात्वायतनानां निरोधाद् **मायाजाल**वन्निःसंगं सुखत्वेन त्रैलोक्यस्या[४]**भिसम्बोधिः** साक्षात्कारस्तस्याः **लाभी** सन् तादात्म्येन। अत एवाह-अकार-हंकारसंपुटत्वेन युगनद्धरूपो **भवामि यथा**, तथा नामसङ्गीतिं प्रकाशयतु सम्बुद्ध इति सम्बन्धः॥ ७॥

अज्ञानपङ्कमग्नानां क्लेशव्याकुलचेतसाम्[५]।
हिताय सर्वसत्त्वानामनुत्तरफलाप्तये॥ ८॥

अज्ञानेति। **अज्ञानम**विद्यावासना तदेव **पङ्कः** दुस्तरत्वेन **तन्मग्नानां हिताय** महासुखोल्लासाय। **क्लेश**[:] च्युतिदुःखम्, तेन **व्याकुलचेतसां** षड्गतिभ्रमणशीलाना**मनुत्तर**मवाच्यं प्रकृतिप्रभास्वरं महासुखं **फलं** तत्प्राप्तये प्रकाशयत्विति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः॥ ८॥

प्रकाशयतु संबुद्धो[६] भगवान् शास्ता जगद्गुरुः।
महासमयतत्त्वज्ञ[७] इन्द्रियाशयवित्परः[८]॥ ९॥

प्रकाशयत्विति। सहजसुखोल्लासेन [९]सर्वधर्मावबोधात् **सम्बुद्धः**। भगः सर्वाकारनिराकारशून्यता, तद्योगाद् **भगवान्**। षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासानां महासुखा-

१. क. मध्याज्ञ, ग. मध्याज्ञत्य। २. क. गत्यागत्योगति। ३. च. ०सम्बोधिर्। ४. क.सम्बोधेः। ५. ख. ०चेतसो, ग. ०चेतसाः। ६. ग. प्रकाशयितु संबोधो। ७. ग. ०तत्त्वज्ञा। ८. ग. ०पर। ९. द. सर्वबुद्धाव०।

भिन्नत्वेन शासनात् **शास्ता**। अत एव **जगतां** श्वासवातानां कायवाक्चित्तानां वा **गुरुस्तत्त्वोपदेष्टा**। **महासमय**चतुर्थबिन्दुस्तस्य तदेव वा **तत्त्वं** [1]सुखज्ञानं तत्तादात्म्येन जानातीति तथा। इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां ग्राह्यग्राहकभावापन्नानामाशयं [1]सुखं प्रकृतिमभेदेन वेत्तीती**न्द्रियाशयवित्**, अतएव **परो** लोकातिक्रान्तः॥ ९॥

भगवन् ज्ञानकायस्य महोष्णीषस्य गीष्पतेः[3]।
मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य ज्ञानमूर्तेः[4] स्वयम्भुवः॥ १०॥

भगवन्निति। **भगवन्निति** सम्बोधनं **ज्ञानकाय**श्चतुर्थकायः षोडशार्द्धार्द्धबिन्दुधृक्। तस्यापतितबोधिचित्तबिन्दुत्वेन विवृत्योर्ध्वगमनेनोष्णीषस्थानगतत्वात् **महोष्णीषस्य**, **गीर्ध्वनिः** षडक्षरात्मक एकार आधारात्मकः तस्य **पतिः** षष्ठो वंकारो वज्रधरः आधेयस्वभावः। तथा च वक्ष्यति—

पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः षडक्षरः॥ इति।
(ना० सं० १०.२)

एकार-वंकाररूप इत्यर्थः। **मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्येति** धर्मतासंकेतेन मञ्जुशब्देन वज्रशिखरे प्रोत्फुल्ल[5]वरकमलं तदेवाद्वयज्ञानाश्रयत्वात् श्रीस्तदुत्पन्नमद्वयज्ञानं **मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य**। सर्वसत्त्वानां हृदयविहारित्वात् [6]**ज्ञानमूर्तेः**। स्वयमात्मना हेतुनिरपेक्षत्वाद् भवति, साक्षाद् भवतीति **स्वयम्भुवः**। तद्विज्ञानं न केनचित्क्रियते न केनापि दीयते सर्वाकारान्तर्गतं सर्वरूपमकृत्रिमतया स्वसंवेद्यम्। तदुक्तम्—

न सहजं केनचिद्दत्तं न कस्माच्चागतं यतः।
आत्मना ज्ञायते पुण्याद् गुरु[7]पर्वोपसेवया॥
(हे० त० १.८.३६)॥१०॥

गम्भीरार्थामुदारार्थां महार्थामसमां शिवाम्।
आदिमध्यान्तकल्याणीं नामसङ्गीतिमुत्तमाम्॥ ११॥

गम्भीरेति। अलब्धोपदेशैर्दुरवगाहत्वाद् **गम्भीरो** मन्त्रमहायानसाध्यत्वा**दर्थो** वज्रधरत्वं यस्यां ताम्। सहजरूपेण सर्वभावस्वभावत्वात् **उदारार्थाम्**। महामुद्राभिषेकसाध्यत्वा**न्महार्थाम्**। श्रावकादिज्ञान(ा)साधारण्या**दसमाम्**। त्र्यध्वसमत्वेन निर्विकारत्वात् **शिवाम्**। **आदिमध्यान्तकल्याणीमिति** आदिरानन्दज्ञानम्, मध्ये परमानन्दज्ञानम्, अन्ते च[8] विरमानन्दज्ञानं तेषां कल्याणीं सहजज्ञानरूपादिकामत एव **उत्तम**मानन्दत्रयानुपलम्भस्वरूपत्वात्। तथा चोक्तम्—

---

१. क. ख. ग. सुखं ज्ञानं। २. क. ग. अथ। ३. ग. गीपते। ४. ग. ०मूर्ति। ५. क. वरट०। ६. ख द. ज्ञानमूर्तिः। ७. क. पर्वीय सेवयति, ख. द. पर्वोपसेवयेत्। ८. क. स्व।

आनन्दत्रयभेदेन चतुर्थं तेन लक्षयेत् ।
त्रयाणां नोप[1]लम्भत्वात् सहजं तेन गद्यते ॥
सर्वकल्याणतां याति रविणाब्जप्रकाशनात् ।

इत्यादिविस्तरः। नानातन्त्रोपलक्षितमहासुखाकारसहजानन्दसुखस्य नाम्ना सम्यक्ज्ञानं (गानं) **नामसङ्गीतिः** । सहजरूपेण तां धारयिष्यामि अद्वयभावं करिष्यामीति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः ॥ ११ ॥

याऽतीतैर्भाषिता बुद्धैर्भाषिष्यन्ते ह्यनागताः ।
प्रत्युत्पन्नाश्च[2] संबुद्धा यां[3] भाषन्ते पुनः पुनः ॥ १२ ॥

याऽतीतैरिति । **या** नामसङ्गीतिर**तीतैः** श्रुतचिन्तायुक्तै**र्भाषिता** [4]प्रतिश्रुत्करूपेणा[5]धिगता । **अनागता** भावनाप्रकर्षपर्यन्तगता **भाषिष्यन्ते** तथैवाधिगमिष्यन्ति । [6]**प्रत्युत्पन्नाश्च** वार्तमानिका(क)भावनायोगयुक्ता **भाषन्ते** [7]तथैवाधिगच्छन्ति । एतेन सर्वतथागतैः मन्त्रमहायानं देशितमित्यपि सूचितं भवति, भव्यसत्त्वापेक्षया सर्वैरेव [8]देशितत्वात् ॥ १२ ॥

[9]मायाजाले महातन्त्रे या चास्मिन् सम्प्रगीयते ।
महावज्रधरैर्हृष्टैर[10]मेयैर्मन्त्रधारिभिः ॥ १३ ॥

मायाजाल इति । **मायाजाले** मायाजालाभिसम्बोधिलक्षणे, [11]तन्यते व्युत्पाद्यत इति तन्त्रम्, महच्च तत्तन्त्रञ्चेति **महातन्त्रं** महासुखज्ञानमित्यर्थः । उक्तञ्च—

तन्त्रं प्रबन्धमाख्यातं संसारं तन्त्रमिष्यते ।
तन्त्रं गुह्यं रहस्याख्यमुत्तरं तन्त्रमुच्यते ॥ इति ।

या[12] नामसङ्गीतिः **संप्रगीयते** स्वयमेव बुद्ध्यते । **महावज्रधरै**र्ज्ञानकायात्मकै**र्महामन्त्रधारिभिः** पञ्चज्ञानात्मकसुखधारिभि**रमेयै**र्विकल्पागोचरै**र्हृष्टैः** सहजस्वभावैः ॥१३॥

अहं चैनां धारयिष्याम्या[13]निर्याणाद् दृढाशयः ।
यथा भवाम्यहं नाथ सर्वसंबुद्धगुह्यधृक् ॥ १४ ॥

---

१. ख. ग. द. ०लब्धत्वात् । २. ग. सम्बुद्धैः या । ३. ख. भाषन्ते च । ४. द. प्रतिश्रुत्को । ५. ख. द. विगता । ६. क. प्रत्युत्पन्नश्च । ७. ख. द. तथैवागच्छन्ति । ८. द. देशितमिति । ९. ग. मायाजालमहातन्त्रे । १०. ग. ०रमय । ११. क. ग. द. तन्यते, ख. तन्त्र ते । १२. ख. द. 'या' नास्ति । १३. ङ. ०निर्याणं च, ग. ०निर्याणां ।

अहम् (मिति)। तामहं **चैनां धारयिष्यामि** अद्वयीभावं करिष्यामीत्यर्थः। कियत्कालम् ? **आ निर्वाणं** यावत् द्वयच्युतषोडशानन्दस्वभावाक्षरत्वप्रापणेन द्वादशभूमीश्वरो न भवामि तावत्कालमित्यर्थः। **दृढः** [1]सारोऽच्युत **आशयः** सुखप्रकृतिर्यस्य स तथा। अहमुक्तार्थः। [2]सर्वबुद्धानां यद्गुह्यं परमाक्षरचतुर्थबिन्दु[3]स्तद्धरतीति यथा ॥ १४ ॥

प्रकाशयिष्ये[4] सत्त्वानां यथाशयविशेषतः ।
[5]अशेषक्लेशनाशाय अशेषाज्ञानहानये[6] ॥ १५ ॥

प्रकाशयिष्य इति। एवं बिन्दुधृग् भूत्वा **सत्त्वानां** भव्यानाम**ाशयविशेषतः** सहजप्रकृतितः। **यथा प्रकाशयिष्ये** तथा प्रकाशयत्विति पूर्वेण सम्बन्धः। **अशेषक्लेशनाशाय** सर्वच्युतिदुःखखण्डनाय। **अशेषाज्ञानहानये** विकल्पवासनाहतये ॥ १५ ॥

एवमध्येष्य गुह्येन्द्रो वज्रपाणिस्तथागतम्[7] ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वकायः स्थितोऽग्रतः॥ १६ ॥

इति अध्येषणागाथाः षोडश ।

एवमिति। एवं एवंकारस्वरूपं **तथागतं** व्याख्यातार[8]मध्येष्याभिमुखीकृत्य, **गुह्येन्द्रः** कायवाक्चित्तैश्वर्यलाभी, **प्रह्वकायः** सहजनिमग्नकायवाक्चित्तः। अन्यद् व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

अवधूत्याश्रितषोडशानन्दविशुद्धचा षोडशगाथा-
भिरध्येषितत्वादध्येषणागाथाः
षोडश ॥ १ ॥

---

१. ख. सारो । २. ख. संबुद्धानां । ३. द. बिन्दुं । ४. ग. प्रकासयष्य । ५. ग. अशेषो० । ६. ग. ०हानय । ७. ख. तथागतः । ८. क. ग. व्याख्यातानम० ।

प्रतिवचनम्

> अथ शाक्यमुनिर्भगवान् संबुद्धो द्विपदोत्तमः।
> [1]निर्णमय्यायतां स्फीतां स्वजिह्वां स्वमुखाच्छुभाम् ॥१॥

अध्येषणानन्तरं षट्श्लोकैः प्रतिवचनमाह—**अथेति**। सत्त्वार्थं प्रतिबुद्धानां बालजनैरतर्क्यत्वाद् देशनादिकमविरुद्धम्। **शाक्यमुनिः** सम्यक्सम्बुद्धो महावैरोचनो वज्रधरो यथोक्तं [2]**श्रीरिगिअरल्लिमहातन्त्रे**—

> शुद्धोदनो महाराजा [3]अरल्लिः [सं]प्रकाशितः।
> [4]रिगिस्तत्र महामाया प्रज्ञोपायात्मकं जगत्।
> वज्रसत्त्वस्तु सिद्धार्थः परमानन्दो महासुखः॥ इति।

भगो महामुद्रा महाप्रज्ञा, तद्योगाद् **भगवान्**। उक्तञ्च **श्रीहेवज्रे**—

> भञ्जनं भगमाख्यातं क्लेश[5]मारादिभञ्जनात्।
> प्रज्ञाबध्याश्च ते क्लेशास्तस्मात्प्रज्ञा भगोच्यते ॥ इति।

उष्णीषादिषट्चक्रेषु ज्ञानकायावबोधात् **संबुद्धः**। संवृतिपरमार्थज्ञानद्वयेन द्विपदेनोत्तमः श्रेष्ठो **द्विपदोत्तमः**। अथवा [6]द्विपदेन वज्रमणिशिखरोष्णीषाप्रतिष्ठ-प्रतिष्ठाद्वयेन उत्तमो द्वादशभूमीश्वरः। यथोक्तं **विमलप्रभायाम्**—

> एकं पदं वज्रमणौ रजोऽर्के उष्णीषशुक्रे शशिनि द्वितीयम्।
> न्यस्तं सदाऽच्छेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस्त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य॥ इति।
> (वि० प्र० १, पृ० ३)

निर्णमय्य स्थिरीकृत्य स्वजिह्वामनाहतस्वभावां ज्ञानावधूती**मायताम**नन्तानन्तलोकधातुव्यापिकां कृष्णरेखाकारामन्तरालाप्रमाणास्फुरदनेकसंभोगकायाम्। अत एव **स्फीतां स्वमुखाद्** विश्वबिम्बात्। तथा चोक्तं **बृहदादिबुद्धे**—

> धूमो मरीचिः खद्योतः दीप[7]ज्वाले तु(न्दु) भास्कराः।
> [8]तमः कलामहाबिन्दुर्विश्वबिम्बं प्रभास्वरम् ॥ इति।

अत एव **शुभां** सहजानन्ददायिनीम् ॥ १ ॥

---

१. ग. निर्णमयायता स्फीता, च. छ. निर्न० । २. क. ग. सेय्यवल्लि, ख. श्रीमत्समावर्णि, द. मेघवर्णि । ३. क. ग. अवल्लि, ख. अवण्णि, द. अरण्णि । ४. क. ख. संगिः । ५. ख. मारारि । ६. क. ख. द्विपादेन । ७. क. ख. द. ज्ञानेन्दु । ८. क. ख. द. तमो ।

स्मितं सन्दर्श्य लोकानामपायत्रयशोधनम् ।
[1]त्रिलोकाभास[2]करणं चतुर्माराारिशासनम् ॥२॥

स्मित[मिति]। **स्मितं** सहजचण्डालीज्योतिः प्रकाशं, **सन्दर्श्य** संस्फार्य, **अपाय[3]त्रयशोधनं** संसारहेत्वानन्द-परमान्द-विरमानन्दानां कायवाक्चित्तबिन्दूनां सहजानन्दरूपता[4]पादनेन विशोधकम्। **त्रैलोक्याभासकरणमालोका**[5]लोकस्य भासालोकोपलब्धिनिराभासतया निराभासलक्षणम्। **चतुर्मारारिशासनं** मणिवरटकान्तःस्थैर्यं [6]प्राप्य निर्विकल्परूपम्। अत एवोक्तम्—

वज्जकवडो भितरे चोर महा पावि लेवे।
सब्ब मारनिद्दलिआ महासुहे [7]भावि लेवे॥ इति। २॥

[8]त्रिलोकमापूरयन्त्या ब्राह्मया मधुरया [9]गिरा ।
प्रत्यभाषत [10]गुह्येन्द्रं [11]वज्रपाणिं [12]महाबलम् ॥३॥

त्रिलोकमिति। **त्रिलोकं** कायवाक्चित्तलक्षणम्, **आपूरयन्त्या** व्याप्नुवन्त्या, [13]**ब्र[ा]ह्मया** स्वयंभुवा अनाहतात्मिकया, **मधुरया** महासुखात्मिकया, **गिरा प्रत्यभाषत** प्रत्यनुभूतवान्। **गुह्येन्द्रं** सहजानन्दज्ञान**महाबलं** सकलविकल्पवायूनां निराभासीकरणसामर्थ्ययुक्तम्॥ ३॥

साधु [14]वज्रधर [15]श्रीमन् साधु ते वज्रपाणये ।
[16]यस्त्वं जगद्धितार्थाय महाकरुणयान्वितः ॥४॥

साधु वज्रधरेति। **साध्विति** जगदर्थकरणात्, **वज्रधरः** पूर्वोक्तः। **श्रीमाना**काशधातुपर्यन्तसहजानन्दरूपत्वात्। **साधु** [17]भद्रं ते (**वज्रपाणये ते**), तुभ्यं **यस्त्वं महाकरुणया**नाभोगजगदर्थवाहिन्या**न्वितः**। जगद्धितार्थाय पूर्वोक्तविकल्पवायुमहासुखतापादनाय॥ ४॥

---

१. ख. ना० अ० त्रैलोक्या, ग. त्रैलोक्य०। २. ग. करञ्च। ३. क. ख. ग. 'त्रय' नास्ति। ४. क. पादने। ५. द ग. लोकभा०। ६. ग. प्राप्तो। ७. भो. gNos Po Len (भाव लेवे)। ८. ख. त्रिलोक्य, ङ. त्रैलोक्य। ९. क. गिरां, ग. ब्रह्ममधुरयां गिरां। १०. ङ. गुह्येन्द्रो। ११. क. वज्रपाणि, ङ. वज्रपाणिः। १२. ग. ङ. महाबलः। १३. क. ख. ब्रह्मा। १४. ख. च. छ. वज्रधरः। १५. च. छ. ङ. श्रीमान्। १६. ख. यस्त्व। १७. भो. Lag Na rDo rJe Khyod (वज्रपाणये ते)।

महार्थां नाम [1]सङ्गीतिं पवित्रामघ[2]नाशिनीम् ।
मञ्जुश्रीज्ञानकायस्य [3]मत्तः श्रोतुं समुद्यतः ॥५॥

महार्थेति । निर्विकल्पसुखमहासुखत्वेन **महार्थां** सत्यार्थाम्, **नामसङ्गीतिं** सहजसुखानुभवात्मिकाम् । सकलप्रपञ्चरहितत्वेन **पवित्राम्**, [4]लौकिकाविद्याविगमाद्-घनाशिनी[5]मच्युतलोकोत्तरविकल्पदृष्टान्तसहजनिरावरणरूपत्वाद् वा पवित्राम् । **मत्तो** ज्ञानकायात् **श्रोतुमधिगन्तुमुद्यतः** प्रवृत्तः ॥ ५ ॥

तत्साधु देशया[6]म्येषः अहं ते गुह्यका[7]धिप ।
शृणु त्वमेकाग्र[8]मनास्तत्साधु भगवन्निति ॥६॥

इति प्रतिवचनगाथाः षट् ।

तत्साध्विति । [9]ते तुभ्यं [10]सहजानन्दादिविगीतम् । **देशयामि** प्रकाशयामि । **एकाग्रमना** निर्विकल्पधीः सन् **शृणु** अनुभव ॥ ६ ॥

उष्णीषादिषट्चक्रनाडीमध्यवरटकाकाशसुखानुभव-
प्रकाशका(क) षड्गाथाभिः प्रतिवचनमिति
प्रतिवचनगाथाः षट् ॥ २ ॥

---

१. ग. सङ्गीति । २. च. छ. नाशनीं । ३. ग. मन्त्रः । ४. ख. लौकिकविद्यां । ५. ख. द. 'अच्युत' नास्ति । ६. क. ख. येष, च. छ. ङ. एष । ७. क च. धिपः । ८. ख. मना । ९. द. ग. तुभ्यं तां । १०. क. ग. सहजानन्दाधिगतम् ।

षट्कुलावलोकनम्

अथ शाक्यमुनिर्भगवान् सकलं मन्त्रकुलं महत् ।
मन्त्रविद्याधरकुलं व्यवलोक्य कुलत्रयम् ॥१॥

प्रतिवचनानन्तरं षट्कुलावलोकनमाह—**अथेति**। **अथ शाक्यमुनिर्भगवान्** "गाथां भाषते स्म" (४.१) इति परेण सम्बन्धः। **सकलं मन्त्रकुलं** मन्त्रमहायानं [1]तच्च षट्चक्रेषु वज्रसत्त्वादितथागतात्मकम्। मन[2] स]त्त्राणभूतत्वात् मन्त्रं सुखमुदाहृतमिति। कुलमद्वयत्वात्। **महच्छब्देन** च षटचक्रकर्णिकागतं व्यापकं सर्वभावसमरसीभूतं बोधिचित्तं स्वसंवेद्यं प्रकृतिरूपम्। [3]अस्यैव षट्चक्रक्रमेण व्यवस्थामाह—**मन्त्रविद्याधरकुलं** निःस्पन्दानन्दशुक्ररूपवज्रधारणादक्षोभ्यो वज्रविज्ञानस्वभावः। मणिवरटकान्तर्वर्त्ती वज्रकमलकर्णिकागूढगोचर इत्यर्थः। [4]मन्त्रदीपनं [5]सहजालोककारकम्। मन्त्रि-गुप्तभाषण इत्यपि पाठः। [6]अत एव सकलमण्डलचक्रवर्त्तिरूपां विद्यां [7]स्फरणेन धारयतीति मन्त्रविद्याधरः। **व्यवलोक्य**ानुभूय स्वयमित्यर्थः। **कुलत्रयमिति** कायवाक्चित्तचक्रम्, तेन [8]नाभिचक्रे स्थितो [9]वज्ररूपस्वभावो वैरोचनः। कर्णिकानाडीगतः पिता कायस्य बीजबिन्दुः ॥ १ ॥

[10]लोकलोकोत्तरकुलं लोकालोककुलं महत् ।
महामुद्राकुलं [11]चाग्र्यं महोष्णीषकुलं महत् ॥२॥

इति षट्कुलावलोकनगाथे द्वे ।

लोकलोकोत्तरकुलमिति। [12]**लोक**शब्देन कायवाक्चित्तमुच्यते। **तदुत्तरं** धर्म-(हृदय)चक्रम्, तत्र तन्महासुखलक्षणोऽमिताभः सहजसंज्ञास्वभावः। **लोकालोककुलं महदिति**। लोको लोकादयः। तेषामालोकः प्रभास्वरम्, तस्य कुलं स्थान(नं) कण्ठचक्रे व्यवस्थितो रत्नस्वभावः, महासुख[13]वेदकत्वाद् वज्र[14]वेदनास्वभावः। महत्वञ्च पञ्चचक्रकर्णिकायां बोधिचित्त[15]प्रवाहादद्वयत्वम्। **महामुद्राकुलं चाग्र्यमिति** महामुद्राकुलममोघसिद्धिर्ललाटचक्रे स्थितः स्वसंवेद्यस्वभावो वज्रसंस्कारस्वभावः। **महोष्णीषकुलं**

---

१. क, ग. तच्च तद्वय। २. द. संत्राण। ३. ख. अस्य। ४. ग. मन्त्रं। ५. ख. द. सहजानन्द। ६. क. अत्र। ७. द. परेण। ८. द. ख. नाडिचक्रं। ९. ख, द. 'वज्र' नास्ति। १०. ङ. लोकालोकोत्तर। ११. ग. चाग्रं। १२. द. लोकलोक०। १३. द. वेधवात्। १४. ख. वेदनास्कन्धात्। १५. ग. प्रभावात्।

महदिति उष्णीषचक्रे व्यवस्थितो वज्रसत्त्वः, स तु ज्ञानात्मकत्वात् सहजप्रकृतिस्वभावः। उक्तञ्च **श्रीकालचक्रे**—

निस्पन्दानन्दशुक्रं कुलिशमपि च तद् धारणाद् वज्रधृग्वै
बीजं कायस्य शुक्रं जिनजिगिति पिता नाभिचक्रे सुखं यत्।
तल्लक्ष्यो लक्ष्यमानो(णो) हृदि परमसुखं नाथ आरोलिगेव
तद् वेद्यं येन कण्ठे धृतमचलसुखं वेदको रत्नधृक् सः॥
प्रज्ञाधृग् येन तन्त्रे शिरसि धृतमिदं शुक्रवैमल्यसौख्यं
उष्णीषे ब्रह्मरन्ध्रेऽक्षरपरमसुखं षोडशानन्दपूर्णम्।
या प्रज्ञा निःस्वभावा परमशशिकला षोडशी पूर्णिमान्ते
सानन्ता यस्य विद्याशिरसि स कुलिशे षष्ठमो वज्रसत्त्वः॥२॥

[1]षट्कुलानि संवृतिपरमार्थसत्यविशुद्धया गाथाद्वयेन
षट्चक्रेषु अद्वयज्ञानत्वेन प्रतिपादितानीति
षट्कुलावलोकनगाथाद्वयम् ॥ ३ ॥

१. क. ख. द. षट्शतानि।

मायाजालाभिसम्बोधिः

इमां षण्मन्त्र[1]राजानं संयुक्तामद्वयो[2]दयाम् ।
अनुत्पाद[3]धर्मिणीं गाथां [4]भाषते स्म गिरांपतेः ॥१॥

इदानीं त्रिश्लोक्या मायाजालाभिसम्बोधिक्रममाह—**इमामि**ति । गाथाद्वये सत्यपि **गाथामि**त्येकवचनम् । बोधिचित्त[5]कलारूपायाः आलेः साध्यत्वेन प्रधान[त्व]प्रतिपादनार्थं **षण्मन्त्रराजानं संयुक्तामि**ति । ॐ वज्रतीक्ष्णेत्यादि मन्त्रषट्कान्विताम् । **अद्वयं** शून्यताकरुणाभिन्नप्रज्ञोपायाद्वयं समाधिसम्भूतं महासुखस्वरूपं मन्त्रनीतौ । पारमितानये तु आत्मात्मीयग्राह्यग्राहकादिसकलमनोविस्पन्दरहितं सर्वधर्मनैरात्म्यस्वरूपस्वाभाविककायात्मकचित्तम्, तदुदेति अर्थद्वारेणाविर्भवतीत्यद्वयो**दयाम्** । तामनुत्पादधर्मा अभिधेयत्वेन [6]विद्यन्तेऽस्यामित्य**नुत्पादधर्मिणीम्** । तामनुत्पादरूपतां च [7]युक्तितो निश्चयतः, तथाहि—[8]तदद्वयज्ञानस्य फलभूतस्य तत्त्वज्ञानमेव हेतुरन्यस्य विपर्यासस्वभावेन संसारहेतुत्वात् । [9]तच्च तत्त्वज्ञानमनुत्पादरूपं पारमितायाने मन्त्रमहायानात्मके हेतुफलभावेन निर्दिष्टम् । गुरूपदेशक्रमायात[मिद]मुच्यते—

न सत्या नासत्या न च तदुभयी नाप्यनुभयी
निरुल्लेखा सर्वाकृतिवरमयी मध्यमकधीः ।
जिनः शास्ता सैव स्थिरचलजगत्तत्त्वमपि सा
स्वसंवित्तिर्देवी जयति सुखवज्रप्रणयिनी ॥ इति ।

मध्यमकधीः मध्यमाप्रतिपदेव बोधिमार्ग इति [10]सिद्धम् । सर्वमहायानिकानां भावाभावादिरूपयोरन्तयोरप्रतिष्ठिता धीर्मध्यमकधीः । सा धीर्न च सत्या न चासत्या न च तदुभयी नाप्यनुभयी । चतुष्कोटिविनिर्मुक्तस्वभावविषयाकारेण चतुष्कोटिविनिर्मुक्तस्वभावत्वात् । यत् खलु यद्विषयीकरोति तत्तदाकारं यथा नीलज्ञानं नीलाकारम् । अत एव निरुल्लेखा सर्वस्यैवोल्लेखस्य चतुष्कोटिसमाश्रयत्वात् । ननु यदि [11]तावद् भावाभावादिरूपयोरन्तयोरप्रतिष्ठिता धीर्मध्यमकधीः, तत्कथं बोधिसत्त्वः सर्वाकारेण दानशीलादीन् बोधिसंभारान् परिपूरयति, [12]अथ तान् बोधिसत्त्वः [13]स्वभावेनाधिगच्छति बोधिश्च मध्यमकधीस्वभावा, सा च न भावरूपा भवनधर्मकतया च भावरूपा

---

१. च. राजानः । २. ख. दयम् । ३. ख. धर्मिणी । ४. ङ. च. भाषन्ते । ५. द. कल्परूपायाः । ६ ख. विद्यते । ७. द. मुक्तितो । ८. क. ख. भो. तत्त्वज्ञान० । ९. ग. ततश्च । १० ख. द. सिद्धः । ११. ख. द. 'तावद्' नास्ति । १२. क. ग. अथवा । १३. क. सत्त्वभावेन, भो. sDug bsÑal rTogs (दुःखाधिगम) ।

दानादयः ? इत्याशङ्क्याह—सर्वाकृतिवरमयीति सर्वाकृतिवरा दानादयस्तन्मयी तत्स्वभावा। अयमर्थः—दानादयोऽपि भावाभावादिरूपेणाप्रतिष्ठिताः मध्यमकधी-स्वभावा एव। तथाहि—दानादयो भावाभावरूपाः सदसदादिरूपेण उत्पाद(दा)-योगात्। [1]कारणाधीनत्वात् च भवनधर्माणाम्। न च कारणाभिमतं बीजादि निरुद्ध(द्धं) [2]सत्कारणीभवति, नाप्यनिरुद्धम्, न चाहेतुतो भावा भवनधर्माणः, तथा-त्वेक (च) देशकालनियमायोगेन सर्वदा सर्वसम्भवप्रसङ्गात्। एवं दानादयो न भावा नाप्यभावाः। तथाहि—न ये कदाचिदपि स्वरूपेण भावीभवन्ति, ते कथमभावीभवन्ति ? भावोच्छेदरूपत्वादभावस्य। तस्मादुपादेयधर्मा वा दानादयः, प्रहेयधर्मा वा रागादय-स्तत्फल[3]भूता विशिष्टाविशिष्टदेहभोगप्रतिष्ठादयः, सर्व एव भावाभावयोरप्रतिष्ठिताः। भावादिपरिकल्पस्तु तेषामभूतपरिकल्पः। तस्मात् स्थितमेवैतत् सर्वाकृतिवरमयी मध्य[म]कधीरनुत्पाद इति। इदानीमेष्वेव दानादिषु शिक्षमाण इमामेव धर्मतामधि-मुञ्चन् सत्त्वार्थयुक्तः शीघ्रं यथा देवतायोगेन बाह्याध्यात्मपरिशुद्धिं निष्पादयेत्, तथोच्यते—भवनिर्वाणस्वभावयोरधरू(ऊ)र्ध्वदिव्योर्मके(र्मध्ये) [4]स्थाने आदिस्वरस्वभावा धीर्भगवती नैरात्म्या मध्यमकधीः, सा न सत्या नासत्या न च तदुभयी नाप्यनुभयी सुविशुद्धरूपाऽधिधर्मधातुः ज्ञानस्वभावेन चतुष्कोटिमुक्तसर्वधर्मस्वभावत्वात्। सा सर्वाकृतिवरमयी सर्वाकृतिवरा विशुद्धरूपादिस्कन्धस्वभावाश्चतुर्देव्यः। सुविशुद्ध-पृथिव्यादिस्वभावाश्चतुर्देव्यः सुविशुद्धरूपादिविषयस्वभावाश्चतुर्देव्यः, तन्मयी तत्स्वभावा, सर्वासामेव चतुष्कोटिविनिर्मुक्तमध्यमकधीस्वभावत्वात्। सा भगवती निरुल्लेखा सर्वसत्त्वानां भावाभावाद्यभूतपरिकल्पस्वभावा सर्वोल्लेखच्छेदनादेव। देवतारूपेण परिशुद्धस्कन्धधात्वायतनाहङ्कारमुत्पाद्य प्राकृतस्कन्धधात्वायतनाहङ्कारमपनीयाविकल्पिते देवतायोगे यथा तिष्ठेत्तथोच्यते—भवनिर्वाणयोर[5]प्रतिष्ठितं चित्तं मध्यमकधीः, तदेव भगवती शाश्वतोच्छेदवर्जिता आभासमात्रा ग्राह्यग्राहकवर्जिता या अवधूतीत्युच्यते। आदिस्वरस्वरूपा सैव धीः, अनुत्पादस्वभावस्य त्रैधातुकस्य समरसीभावेनाधिगमात्। सा भगवती चतुष्कोटिमुक्ता पूर्ववद्भावाभावयोरन्तयोरप्रतिष्ठानात्। सा सर्वाकृतिवरमयी सर्वेषामाकृतिवराणां चतुष्कोटिमुक्तस्कन्धधात्वायतनस्वभावचतुर्देव्यादीनां स्फरणात्। तथा च सिद्धाः—

[6]सवे परिवारे वेटिल नाचअ चीआ राअरें ॥ इति।

एतेनैतदुक्तं भवति—यथावस्थितमेव योगिनीचक्रमज्ञानमात्रमागन्तुकमपनेय-मिति। जिनः शास्ता सैव इति पारमितानयस्य फलमुक्तम्। सुखवज्रप्रणयिनीति मन्त्रनयस्य स्थिरचलजगत्तत्त्वमपि, सेति द्वयोरपि। स्वसंवित्तिरिति स्वेन संवित्तिरनुभवो

१. क. करणधीन०। २. क ख. सात्करणी। ३. क. ख. भूता विशिष्टदेह। ४. ख. ग. स्थानमादिस्वभावा। ५. ख. प्रतिस्थितं। ६. ग. सर्वे।

यस्याः सा तथा। अयमाशयः सा मध्यमकधीः न गुरुणा कथ्यते न च क्रियते। किं तु आत्मनैवानुभूयते। स्वयम्भूज्ञानमचिन्त्यज्ञानमिति ॥ १ ॥

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः स्थितो हृदि।
ज्ञानमूर्तिरहं बुद्धो बुद्धानां त्र्यध्ववर्तिनाम् ॥२॥

ॐ वज्रतीक्ष्णदुःखच्छेदप्रज्ञाज्ञानमूर्तये।
ज्ञानकायवागीश्वर [1]अरपचनाय ते नमः ॥३॥

इति मायाजालाभिसं[2]बोधिक्रमगाथास्तिस्रः।

अ आ इति। अकारादयो द्वादशैवात्र स्वरा देशिताः। [3]ऋकारादिचतुर्णां नपुंसकत्वेन वर्जनात्। पीठोपपीठादिद्वादशस्थानशरीरव्यापिनी बोधिचित्तकलासूचकाकारादिद्वादशाक्षरद्वादशकलामहासुखाकारत्वात्। उक्तञ्च—

अकारे पीठसंज्ञा च आकारे चोपपीठकम्।
इकारे क्षेत्रनामं च [4]ईकारे चोपक्षेत्रकम् ॥
छन्दोहं चोकारेण ऊकारेणोपच्छन्दकम्।
मेलापकमेकारे ऐकारे च उपमेलापकम् ॥
श्मशानञ्चैव ओकारे औकारे चोपश्मशानकम्।
पीलवं चैव अंकारे अःकारे चोपपीलकं(वं) च ॥ इति।

गुह्यादिषट्चक्रेषु प्रतिचक्रे षट्शताधिकसहस्रत्रयश्वासनिरोधेन भूमियुग्मोपलम्भसूचकमहासुखोल्लासरूपाकारादिषट्सम्पुटत्वेन द्वादशभूमीश्वरत्वात्। ताश्च [5]भूमयः समन्तप्रभा-अमितप्रभा-गगनप्रभा-वज्रप्रभा-रत्नप्रभा-पद्मप्रभा-कर्मप्रभा-अनुपमा-निरुपमा-प्रज्ञाप्रभा-सर्वज्ञता-प्रत्यात्मवेद्याख्याः। अथवा अ इ उ इति त्रयं कायवाक्चित्ताद्वयत्वेन आनन्दः। आ ई ऊ इति द्विरूपतया परमानन्दः। ए ओ अं इति त्रयं उभयस्वरात्मकं त्रिवज्रं विरमानन्दः। ऐ औ अः इति [6]त्रयं वज्राभिन्नं चतुर्थः सहजानन्दः। एतेन चतुरानन्दस्वभावो भगवाननुत्पादरूपो व्याख्यातः। ॐ वज्रकायवाक्चित्त-एकलोलीभावात् ॐ, तदेव [7]वज्रं सहजज्ञानम्, तेन तीक्ष्णः सकलविकल्पवायूपसंहारकः। स च मणिवरटकावस्थितो निस्पन्दावस्थितोऽक्षोभ्यः, [8]सकलतथागतवज्रकायत्वेन च्यवनदुःखाभावात्। दुःखच्छेदो नाभिस्थो वैरोचनः। [9]प्रज्ञाज्ञानमेव मूर्तिः

---

१. ग. अरपंचनाय। २. क. बोधिः। ३. क. ख. ग. भो. अकार। ४. द. ईकारेणोपक्षे०। ५. द. द्वादशभूमयः। ६. द. त्रिवज्रा०। ७. द. चक्रवज्रज्ञानम्। ८. द. सर्वं। ९. द. स प्रज्ञाज्ञानं।

शरीरं यस्य स **प्रज्ञाज्ञानमूर्तिः हृदि स्थितो**ऽमिताभः। **ज्ञानमेव** महासुखचित्तमेव **काय** उपचयात्मकत्वात्, यस्य स च [१]रत्नसम्भवः कण्ठचक्रवर्ती। **वाचा**(चां) स्वरव्यञ्जनात्मिकाना**मीश्वरो**ऽनाहतस्वभावोऽमोघसिद्धिरूर्णाचक्रवर्ती। [२]**अराभ्यां** प्रज्ञोपायाभ्यां [३]**पवनं** स्फुटीभावो यस्य स उष्णीषचक्रवर्ती वज्रसत्त्वः। इत्थं षट्चक्रवर्ती(ति)-स्वरूपाय सहजानन्दज्ञानाय स्वयं साक्षाद्दर्शनात्ते तुभ्यं **नमः** इति परिण(रेण) परामर्षः। इत्थं वाह्याभ्यन्तररूपेण व्याप्य विश्वं व्यवस्थितः सहजानन्दो ज्ञानवज्रश्चतुर्थः। स एव संभोगनिर्माणकायात्मको नाभ्यादिचक्रमध्यवर्ती हृदि स्थित उच्यते। उक्तञ्च—

[४]यत्कायं सर्वबुद्धानां निराभासं निरञ्जनम्।
[५]अज्ञातमकृतं शुद्धमभावादिविवर्जितम्॥

आदर्शबिम्बं सकलाङ्गयुक्तं रूपं यथा स्वच्छतरं विभाति।
अशीत्यनुव्यञ्जनलक्षणाढ्यो देहस्तथा वज्रधरस्य दे(चै)व॥
इन्द्रायुधं वियति दृष्टमनेकवर्णं लोकस्य [६]दर्शयति कर्म शुभानि यद्वत्।
एवं च वज्रधृग्व्याप्यसितादिवर्णं सम्पादयत्यविकलं खलु कर्म तद्वत्॥२-३॥
(स्वाधिष्ठानप्रभेद-५४-५५)

कायवाक्चित्तस्वरूपमहायोगसंग्राहकगाथात्रयेण
पूर्वोक्तमायाजालाभिसम्बोधिक्रम-
सूचनात्तथोक्तम्॥ ४॥

---

१. क. कश्च। २. क. ख. ग. आराधां। ३. क. पवनं। ४. क. यत्कायं, ख. यदि इयं। ५. क. तज्ज्ञात०, ग. नाज्ञातं, ख. द. भो. आज्ञातं। ६. भो. hDe Ba La Sogs Pa (सुखादि)।

वज्रधातुमहामण्डलम्

तद्यथा भगवान् बुद्धः [1]संबुद्धोऽकारसम्भवः ।
[2]अकारः सर्ववर्णाग्र्यो [3]महार्थः परमाक्षरः ॥१॥

इदानीं निरावरणस्कन्धधात्वायतनचक्रवज्रधातुमण्डलद्वारेण सर्वाकारेण सर्वाकारसर्वेन्द्रियाक्षरबिन्दुरूपमायाधरबोधिचित्त[4]वज्रस्य स्फरणमाह—**तद्यथा** । महामुद्राऽद्वैधरूपत्वात् **भगवान्**, सहजज्ञानं बुद्धिस्तद्योगाद् **बुद्धः** । मणिवरटकस्थितशुक्लत्वेन नित्यप्रबुद्धवज्रत्वेन **सम्बुद्धः** । अकारेणात्र प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी प्रज्ञापारमिता उच्यते । सा च परमाणुधर्मताऽतीता आदर्शप्रतिसेनातुल्या ततः सम्भवतीति **अकारसंभवः** सम्यक्सम्बुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुंसकपदं सहजकाय इत्युच्यते । [5]स **चाकारः सर्व** [6]**वर्णानामग्र्यो**ऽनाहतत्वात्, निरावरणत्वेन स्कन्धधात्वायतनविषयैकलोलीभावात् । उक्तञ्च—

ज्वलन्तं दीपसदृशं हृदि मध्यमनाहतम् ।
अक्षरं परमं सूक्ष्मं महार्थं परमं प्रभुम् ॥
महामुद्रा [7]स्थिता नाभौ ज्वलद्दीपशिखाकरा ।
आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तिता ॥ इति ।

सकलबुद्धगुणदायकत्वाद् **महार्थः** । अत एव **परमाक्षर** उत्पादनिरोधरहितः ॥१॥

महाप्राणो ह्यनुत्पादो [8]वागुदाहारवर्जितः ।
सर्वाभिलाप[9]हेत्वग्र्यः सर्ववाक्[10][11]सुप्रभास्वरः ॥२॥

महाप्राणेति । [11]प्रभास्वरस्फरणेन प्रकृतिधर्मेण, वामदक्षिणनासारन्ध्रयोर्दशमण्डलसञ्चाराभावेन अवधूतीगतप्राणत्वात् **महाप्राणः** । वज्रधरप्रतिबिम्बकायो मायोपमदेह[12] इत्यर्थः । अत एवा**नुत्पादो** निर्विकल्पनिरालम्बज्ञानात्मकः । **हि**र्यस्मादर्थेऽवधारणे वा । वागुदाहारः, [13]प्रव्याहार [इत्यपि] पाठः । तद्रहितत्वाद् **वागुदाहार-**

---

१. ग. सम्बुद्धोकाल० । २. ग. अकालः । ३. च. मोहार्थः । ४. द. वज्रधरस्य । ५ क ख. सहजाकारः, ग. सह चाकारः । ६. ग. वर्णानां मध्ये । ७. ख. स्थितो । ८. क. वागुदहार० । ९. ख. हेत्वग्रः । १०. च. सुभास्वरः । ११. क. ख. महाप्रभास्वर, द. प्रश्वास । १२. क. ग. महामह, ख. मायामय । १३. भो. Ṅag Gi Phreṅ Ba ḥDon Pa (वाग् प्रव्याहार) ।

वर्जितो नपुंसकजापरूपतया सर्वव्यापनात् प्रविशत्संस्थानवायुरूपः। सर्वेषामभिलापानां स्वरव्यञ्जनात्मकानां अग्रहेतुत्वात् **सर्वाभिलापहेत्वग्र्यः** पारमार्थिकशून्यताकरुणाऽभिन्नबोधिचित्तमन्त्रप्रभवत्वात्तेषाम्[1]। स च भगवान् एव उपलम्भज्ञाना[2]ना[मा]-श्रयत्वाद् मध्यमासुखसंवेदनस्वभाव इत्यर्थः। सर्वासां वाचां प्रभास्वरत्वेनावबोधनात् **सर्ववाक्सुप्रभास्वरः** परमाक्षरः [3]अकारस्वभावः ॥ २ ॥

महामहमहारागः सर्वसत्त्व[4]रतिङ्करः।
महामहमहाद्वेषः[5] सर्वक्लेशमहारिपुः ॥३॥

महामहेति। **महेति** प्रज्ञा महामुद्रा [6]सा महती यस्य स तथा। महान् रागोऽनालम्बकरुणात्मको यस्य स तथा। [7]पश्चात्कर्मधारयः। अथवा महान् लोकातिक्रान्तो **मह** उत्सवः सहजोल्लासो यस्य स तथा। तथाविधो **महारागः** [8]परमाक्षरसुख[9]पूर्णत्वाद्-[10]भूमिपूरित्वाच्च [11]वज्रानङ्गो वज्रसत्त्व इत्यर्थः। अत एव **सर्वसत्त्वरतिङ्करः**। **महामहेति** पूर्ववत्। **महाद्वेषो**ऽक्षोभ्यः। **सर्वक्लेशानां** षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासप्रश्वासानां **महारिपु**[12]र्हन्ता महासुखवेदकत्वेनाचल इत्यर्थ. ॥ ३ ॥

महामहमहामोहो [13]मूढधीर्मोहसूदनः।
महामहमहाक्रोधो [14]महाक्रोधरिपुर्महान् ॥४॥

महामहमहामोहेति। **महामहेति** व्याख्यातम्। मोहातिक्रान्तत्वान्**महामोहः**। अत एव **मूढा** निर्विकल्पा **धीः** सहजज्ञानं यस्य स तथा। [15]मोहः शुक्रच्युतिस्तस्य सुदनाद्भक्षणान्**मोहसूदनः**। **महाक्रोधः** सर्वविकल्पक्लेशशातनात्। क्रोधातिक्रान्तत्वान्महाक्रोधो विरमानन्दनिरोधः सहजानन्दः। **महाक्रोधरिपुर्महान्** कायवाक्चित्तवज्राणामेकलोलीकरणात् ॥ ४ ॥

महामहमहालोभः सर्वलोभ[16]निषूदनः।
महाकामो महासौख्यो महामोदो महारतिः ॥५॥

महामहमहालोभेति। च्यवनलोभातिक्रमान्महामहमहालोभः। परमाक्षरसुखोपायेन सत्त्वार्थापरित्यागात्। **सर्वलोभनिषूदनः** क्षर[17]सुखाङ्गसूदन इत्यर्थः।

---

१. क. ग. द. उपमन्त्र। २. सर्वत्र—नानाश्रय। ३. भो Haḥi rNam Paḥi (ह्कार)। ४. ङ. रतिकरः। ५. ग. महामाह०। ६. क. ग. 'सा' नास्ति। ७. भो. Phyis Nas ḥdZin Paḥo (पश्चात्धारयः)। ८. क. ग. द. परमाक्ष। ९. ख. द. पूर्णभूमि०। १०. ख. ०रित्वाद्। ११. ग. वज्रानङ्गो। १२. क. ग. हन्ति। १३. च. मूढधी। १४. ख. सर्वक्रोध०। १५. क. ग. मोह। १६. च. छ. निसूदनः। १७. क. ०स्वासङ्गं ख. सुखागं।

[1]**महा[कामेति]**। सहजकायाभिलाषप्रकर्षपर्यन्त[2]तया ऊर्णाब्जे केषाञ्चिन्मते मणिमूले **महाकामः** कायानन्द इत्यर्थः। तत्रैव तथैव सहजवागाभिलाषतया **महासौख्यः** वागानन्द[3]स्वभाव इत्यर्थः। तथैव तत्रैव सहजचित्ताभिलाषतया **महामोदश्चित्तानन्द** इत्यर्थः। महती रतिरस्यासौ **महारतिः**, तथैव तत्रैव सहजज्ञानाभिलाषतया ज्ञानानन्द इत्यर्थः। जाग्रदवस्थाविध्वं[4]सेन निर्माणकायस्यानन्दस्य चत्वारो भेदा दर्शिताः। उक्तञ्च—

निर्विकल्पमहासौख्य आकांक्षा[5]लक्षणार्थकः।
आनन्दोऽसौ सुखागारद्वारदेहलिकोपमः॥
अहो सौख्यं महासौख्यं अहो भुञ्जे कथं कथम्।
इत्याकांक्षा परं चित्तं स आनन्दो[6]ऽग्रणीरिव॥ इति॥ ५॥

महारूपो महाकायो महावर्णो महा[7]वपुः।
महानामा महोदारो महाविपुलमण्डलः॥६॥

महारूपेति। इदानीं परमानन्दप्रभेदा दर्श्यन्ते। तत्(तत्र) **महारूप** इति हृदये केषांचिन्मतेन मणिमध्ये महद्रूपं सुखसंकल्पप्रपञ्चो यस्य स तथा। महासुखप्रकृतित्वेन [8]त्रैधातुकव्यापकधर्मराज्याभिषेकरूपत्वात्। अत एव **महाकायः** प्रभास्वरत्वेन संभोगकायत्वात्। अनेन पदद्वयेन कायपरमानन्दः कथितः। सम्भोगालोककरणान्**महावर्णो** लोकोत्तर[9]वर्ण इत्यर्थः। प्रकृतिप्रभास्वरतया **महा**[10]**वपु**र्विभुरित्यर्थः। अनेन पदद्वयेन वाक्परमानन्द उक्तः। परमरहस्यतया नाममात्रत्यातिक्रमात् **महानामा** सुखस्यौदार्यान्**महोदारः**। आभ्यां च पदाभ्यां चित्तपरमानन्द उदीरितः। महाविपुलमिति। विस्तीर्णं [11]मण्डं सुखं सारं [12]लातीति **महाविपुलमण्डलः**। मायोपमप्रभास्वरसुखत्वेन जगद्व्यापनादनेन ज्ञानपरमानन्दः। इति स्वप्नावस्था विध्वंसेन संभोगकायस्य चत्वारः परमानन्दाः। उक्तञ्च—

भावेषु भावनारोपशून्यत्वेन विमर्दनात्।
निःस्वभावत्वयोगात्मा परमानन्दरूपकम्॥ इति॥ ६॥

महाप्रज्ञायुधधरो महाक्लेशाङ्कुशोऽग्रणीः।
महायशा महाकीर्तिर्महाज्योतिर्महाद्युतिः॥७॥

---

१. ख. 'महाकामेति' नास्ति। २. द. ०गततया। ३. भो. 'स्वभाव' नास्ति। ४. द. ०सन्। ५. द. लक्षणात्मकः। ६. क. ०ग्रताविवेति, ख. गणारिवेति। ७. च. ०वसुः। ८. ख. त्रिधातु। ९. क. ग. ०वर्त्त। १०. द. वपुश्चित्त। ११. क. मण्ड, ग. मण्डल। १२. क. ख. ग. लाभीति।

सुषुप्तावस्थाक्षयेण धर्मकायस्वरूपात् इदानीं मायोपमत्वाधिष्ठानतया विरमानन्दस्य चतुरो भेदानाह — **महाप्रज्ञायुधे**ति। महाप्रज्ञा शून्यता धर्मधातुलक्षणा तस्या आयुधं कायविरमानन्दं मणिशिखरान्ते नाभ्यब्जे वा धारयतीति **महाप्रज्ञायुधधरः**, अनेन कायविरमानन्द उक्तः। महाक्लेशाः प्राकृतरागादयः। तेषामङ्कुशभूतत्वाद् **महाक्लेशाङ्कुशः**, स च वाग्विरमानन्दः। अत **एवाग्रणीः** सहजानन्दहेतुप्राप्तत्वात्। **महायशा** अनाहतसहजोल्लासध्वनिना जगत्प्रबोधा(धना)त्। **महाकीर्तिः** महासुखेन सर्वेषां प्रमोदोत्पादनात्। अनेन पदद्वयेन चित्त[1]विरमानन्दः कथितः। सर्वधर्माणां निरोधोत्पन्ननिर्मलप्रकृतिज्योतीरूपत्वाद् **महाज्योतिः**। ग्राह्यग्राहकप्रपञ्चरहितसुखानुभवद्योतनाद् **महाद्युतिः**। आभ्यां च पदाभ्यां ज्ञानविरमानन्दः सन्दर्शितः। एतेनैतदुक्तं भवति—वज्रगुरोर्वक्त्रादविद्याप्रतिपक्षक्षणे यदुपलब्धं सुखम्, तेनैव किञ्चिच्छायानुकारिसुखदृष्टान्तेन द्वात्रिंशल्लक्षणधरो व्यञ्जनाशीतिभूषितः। [2]यथा चित्रपटो दर्पणमध्ये उपलक्षितः, तथैव ज्ञाताकारः सम्भोगदेहो ज्ञातव्यः। उक्तञ्च—

> द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ता अशीत्यनुव्यञ्जनी प्रभुः।
> योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः॥ इति।
> (हे० त० २.२.४१)

उक्तञ्च—

> अहो ज्ञातमहो ज्ञातं [3]अहो ज्ञातमिदं स्फुटम्।
> इत्याभोगपरं चित्तं विरमानन्दमात्रकम्॥ इति॥७॥

महामायाधरो विद्वान् महामायार्थसाधकः।
महामायारतिरतो महामायेन्द्रजालिकः॥८॥

इदानीं तुर्यावस्थाविध्वंसेन महासुखकायस्वरूपसहजानन्दस्य चतुरो भेदानाह— **महामाये**ति। रागविरागाभावेन महारागरूपा महामाया [4]दिव्यमुद्रा तामवाच्यां तादात्म्येन धरतीति **महामायाधरः**। अत एव **विद्वान्** मणिवरटकान्तरच्युतसुखवेदनात्। अनेन कायसहजानन्दो द्योतितः। महामाया महामुद्रा तस्याः स्फरणेन जगदर्थसम्पादनाद् **महामायार्थसाधकः**। अनेन वाक्सहजानन्दः प्रदर्शितः। **महामाया** दर्शितार्था तस्यां **रतिः** सहजसुखानुभवः, तत्र **रतो** निमग्नो महासुखैकलोलीभूत इत्यर्थः। अनेन चित्तसहजानन्दः सूचितः। महामायया बुद्धनिर्माणमायया ऐन्द्रजालिकः [5]परममायावी षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासानां परमाक्षरत्वप्रापणेन प्रतिचक्रं भूमिद्वयं प्रतिलम्भक्रमेण वज्रमणिशिखरात् प्रत्यावृत्त्या उष्णीषचक्रवरटकस्थायी **महामायेन्द्र**-

---

१. क. ग. परमानन्दः। २. क. ख. चित्रमये। ३. ख. अहो तत्त्वमिदं। ४. भो. Ye Śes Phyag rGya (ज्ञानमुद्रा)। ५. ग. परममाया।

जालिकः, मणिवरटकान्तरुष्णीषस्थानाद्वयस्थिततत्वात्। एतेन षोडशानन्दरूपो भगवान् प्रतिपादितः। तथा च **विमलप्रभायाम्—**

निर्माणकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्।
सम्भोगकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्॥
श्रीधर्मकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्।
सहजकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तं न तुर्यं द्वीन्द्रियजं सुखम्।
न[1] ज्ञानचित्तवाक्कायचतुःस्थानेषु संस्थितम्॥
[2]कर्ममुद्रापरित्यक्तं ज्ञानमुद्राविवर्जितम्।
महामुद्रासमुत्पन्नं सहजं नान्यया सह॥ इति।
(वि० प्र० १, पृ० २)

उक्तञ्च—

भावाभावविवेकताविरहितो यत्र स्वयं राजते
सान्द्रानन्दमया(यः) प्रबोधमहिमा व्योमान्तरव्यापकः।
नानाकारविशालनिर्मलतयादर्शस्फुरन्मण्डलः
प्रायः सर्वसुखालयः [स] सहजानन्दश्चतुर्था[3]ख्यया॥
ऊर्णाब्जे सहजाभिलाषतरलं हृत्पद्मसद्मोदरे
[4]कल्पानलपविकल्प[5]तल्प[6]वलित[7]चित्रं विचित्रोत्तमम्।
[8]नाभ्यब्जग्रहणैकनिष्ठमखिलव्यासङ्ग[9]भङ्गोज्वलम्
जीयाद् वज्रसरोजसङ्ग[10]सुभगं निर्द्वैत[11]शान्तात्मकम्॥
प्रसरति मणिमूले चित्तमानन्दमात्रं
पुनरपि मणिमध्येऽशेषसंकल्पलोलम्।
तदुपरि शिखरान्त(न्ते) [12]शान्तमभ्रान्तकल्पं
किमपि सहजजातं पङ्कजस्थं तनोति॥

पक्षान्तरम्॥ ८॥

महादानपतिः श्रेष्ठो महाशीलधरोऽग्रणीः।
महाक्षान्तिधरो धीरो महावीर्यपराक्रमः॥९॥

---

१. सर्वत्र 'न' नास्ति। २. क. ख. ग. द. धर्म। ३. क. ख. ग. क्षया। ४. क. ख. कृता, द. तुला। ५. क ख. ग. तस्य। ६. क. ख. ग. वसितं। ७. क. ख. चित्तं। ८ क. ख. नाभ्यक्ष। ९. क. भगो। १०. क. ख. ग. स्व। ११. क. ख. शता, ग. शाता। १२. क. ख. ग. श्रान्त।

महादानपतीति। महादानं सकलबाह्याध्यात्मिकवस्तुपरित्यागः विकल्पप्रपञ्च-मनोवर्जनञ्च, तस्य **पतिः** स्वामी, तस्य सहजानन्दभगवदायत्तत्वात्। अत एव **श्रेष्ठः** लौकिकदानपत्य[1]तुल्यत्वात्। [2]बाह्याङ्गनासम्पर्के बोधिचित्त(त्ता)च्यवनं शीलं तत्ता-दात्म्येन धरतीति **महाशीलधरोऽग्रणी**र्मणिवरटका[3]न्तस्थः। बाह्यशब्दाद्यनभिनिवेशो महाक्षान्तिः, तां धारयतीति **महाक्षान्तिधरः**। अत एव **धीरः** परमधैर्यरूपत्वादस्य। वामदक्षिणनासापुटदशमण्डलभङ्गेन श्वासवातस्यावधूतीप्रवेशो **महावीर्यम्**। तत्र **पराक्रमो** महोद्यमो यस्य स तथा ॥ ९ ॥

महाध्यानसमाधिस्थो महाप्रज्ञाशरीरधृक्।
महाबलो महोपायः प्रणिधिर्ज्ञानसागरः ॥१०॥

महाध्यानेति। सहजसुखगतं चित्तं **महाध्यानं** तदेव **समाधि**र्बहिर्विक्षेपाभावात्। तत्रास्थानयोगेन तिष्ठतीति तथोक्तः। **महाप्रज्ञा** अनाहतसर्वत्रगा सर्व[4]भावा सैव **शरीरं** प्रतिश्रुत्कोपमं महासम्भोगदेहप्रतिलम्भात्, तत्तादात्म्येन धरतीति तथा। अयं चार्थः **श्रीआदिबुद्धेनोक्तः**—

दानं त्यागो धनस्याच्युतिरपि मनसः स्त्रीप्रसङ्गाच्च शीलं
क्षान्तिः शब्दाद्यवेशो ह्युभयगतिविनाशोऽनिलस्यैव वीर्यम्।
ध्यानं प्रज्ञा च चित्तं सहजसुखगतं [5]सर्वगा सर्वभाषा ॥ इति।
(का० त० ४.१२८)

षट्पारमिताविशुद्धचेति। 'षड्भुजो हेवज्र' इति **बृहत्काश्मीरपञ्जिकायाम्**। शून्यताकरुणाभिन्नं [6]भवनिधनज्ञानबलमद्वयं **महत्** यस्य स तथा। **महोपायः** करुणा शुक्रगुणेन जगदर्थयोगाद् महोपायः। निःस्वभावभावग्रामसाक्षात्कारेऽपि महासुखैकनिष्ठतयाऽऽसंसारं जगदर्थस्फरणात्। अजत्वप्राप्त्या मायास्वप्नगन्धर्वनगर-स्वरूपं सर्वधर्मप्रतिपत्त्या प्रतिरववद् बुद्धधर्मदेशनया च प्रणिधीनां ज्ञानानां निरहङ्काराणां **सागरम्** आकरः। एतेन उपाय-बल-प्रणिधि-ज्ञानपारमिताश्चतस्रः। उक्तञ्च—

तस्याः सत्त्वार्थमृद्धिर्भवनिधनमजप्राप्तिरन्याश्चतस्रः ॥ इति।
(का० त० ४.१२८)

[7]अत्र सत्त्वार्थमित्युपायः। ऋद्धिरिति प्रणिधिः। भवनिधनमिति बलम्। अज-प्राप्तिरिति ज्ञानम्। एताश्चतस्रः पारमितास्तस्याः पारमिताया एवान्य इति विशिष्टा-कारस्था इत्यर्थः। अन्यथा गाथाबन्धस्तु आर्षत्वात् ॥ १० ॥

---

१. ग. तुल्यवान्। २. ग. बाह्यात्मना। ३. क. ०तस्तः। ४. ग. भाषा, द. भासा। ५. ग. सर्वदा। ६. ख. पूर्व। ७. क. ख. अत एव।

महामैत्रीमयोऽमेयो महाकारुणिकोऽग्रधीः ।
[1]महाप्राज्ञो महाधीमान् महोपायो महाकृतिः ॥११॥

महामैत्रीमयेति। सकलज्ञेयमण्डलमहासुखाकारतया लोकोत्तरसुखसंयुक्तजगत्स्फरणात् **महामैत्रीमयः**, अत एवामेयः। नित्यानवरत[2]स्वायत्तमहासुखत्वेन जगद्दुःखवियोगसम्पादनाद् **महाकारुणिकः**। अत एवाग्रधीः मणिवरटकशिखरे [3]महासुखानुभवात्।

मारक्लेशसमापत्तिः ज्ञेयावरणमेव च।
निर्दग्धं हि महाक्रोधैर्बलमात्रं हि रक्षितम्॥

इति चोक्तं मैत्र्यादिवशात्। प्रज्ञा महामुद्रा स(सा) तादात्म्येन विद्यते यस्य स प्राज्ञः, महांश्चासौ प्राज्ञश्चेति **महाप्राज्ञः**, युगनद्धहृदिस्थ इत्यर्थः। **महाधीमान्** सहजानन्दरूपेणैव सत्वार्थापरित्यागात्। **महोपाय**श्चतुर्विंशतिस्थानगत्यागतिसुखेन सर्वाङ्गव्यापनात्। अत एव **महाकृतिः** [4]दशकामावस्थाज्ञानी। दश[5]कामावस्थाश्च दशधूमादिनिमित्तानि प्रत्याहाराङ्गरूपाणि। तथा चोक्तं **श्रीकालचक्रे**—

चिन्ताकांक्षाज्वरोऽङ्गे [6]वरसुखकमले शुक्तिरन्याप्रवृत्तिः
कम्पोन्मादश्च घूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा।
धूमाद्या वज्रिणस्ताः प्रकटदशविधाः प्राणिनोऽङ्गेष्ववस्थाः
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियत(ताः) को जिनः कश्च कामः॥ ११॥
(का० त० ४.१२६)

[7]महाऋद्धिबलोपेतो महावेगो [8]महाजवः।
महर्द्धिको महेशाख्यो महाबलपराक्रमः॥१२॥

महाऋद्धिरिति। समाध्यङ्गस्फुटीभावेन सहजानन्दबोधिचित्तरसेन षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासव्यापनाद् **महाऋद्धिबलोपेतः**। **महावेगो**ऽच्युतबोधिचित्तत्वेन सर्वनाडीषु [9]संक्रमात्। [10]संवृतिविवृतिक्रमेण सर्वाङ्गव्यापनाद् **महाजवः**। महासुखेन लौकिकलोकोत्तरपुण्यज्ञानसंभारपूरणाद् **महर्द्धिकः**। अत एव **महेशाख्य** इति। ईष्टे प्रभवति सर्ववस्तुयथाभूताव[11]बोधायेतीशः, महेश इत्याख्या आख्यानं यस्य स महेशाख्यः

---

१. ग. महाप्राज्ञा। २. क. स्वायत्त। ३. ख. महानुभावात्। ४. ख. 'दशकामावस्थाज्ञानी' नास्ति। ५. ख. ज्ञानश्च। ६. का० त० वरमुखकमले शुष्कोऽन्ना। ७. ग. माहाऋद्धि०। ८. क. मनोद्यवः। ९. ख. द. संक्रमणात्। १०. ग. संभृतिनिवृति। ११. द. बोधीतीशः महान् ईशः।

शून्यताकरुणाभिन्नसर्वज्ञज्ञान इत्यर्थः। पञ्चानन्तर्यादिपापकर्मणामपि महासुखैक-[1]निष्ठीकरणात् **महाबलपराक्रमः**। उक्तञ्च—

[2]चण्डालवेणुकाराद्याः पञ्चानन्तर्यकारिणः।
जन्मनीहैव बुद्धाः स्युर्मन्त्र[3]यानानुचारिणः॥ इति॥ १२॥

महाभवाद्रिसंभेत्ता महावज्रधरो घनः।
महाक्रूरो महारौद्रो महाभयभयङ्करः॥१३॥

महाभवाद्रीति। **महान्** दुरुच्छेदत्वात्, **भवो** रागादिक्लेशः, स एवाद्रिः विंशति-शिखराज्ञानत्वात् तस्य **सम्भेत्ता** महारागानुरागेण सम्यगविपरीतज्ञानलाभात् महा-सुखस्थानप्राप्त इत्यर्थः। आलोक-आलोकाभास-आलोकोपलब्धिकलक्षणं निराभास-लक्षणं **महावज्रं** धरतीति स तथा। अत एव **घनो** निविडसुखत्वात्। क्रूरो(रा) दुर्दमत्वात् प्राणापानवायवः, तद[5]तिक्रमाद् **महाक्रूरः**। परमाक्षरमहारसविद्धसर्व-श्वासत्वाद् विषयेन्द्रियादीनां संसारदुःखदायकत्वरूपसंहारेण महासुखैकलयान्**महारौद्रः**। महाभयः शाश्वतोच्छेदयोरन्यतरा(र)पातस्य भयं [6]महाभयं तं करोतीति स तथोक्तः **महाभयभयङ्करः**, अप्रतिष्ठितनिर्वाण इत्यर्थः॥ १३॥

महाविद्योत्तमो नाथो महामन्त्रोत्तमो गुरुः।
महायाननयारूढो महायाननयोत्तमः॥१४॥

इति वज्रधातुमहामण्डलगाथाश्चतुर्दश।

महाविद्योत्तमेति। **महाविद्या** महामुद्रा [7]तया **उत्तमो** नित्यानुगतत्वात्। **नाथः** स्वामी। **महा[8]मन्त्रं** महासुख[9]ज्ञानं तेनो**त्तमो** निरवद्यः, तद्रूप इत्यर्थः। अत एव **गुरुरन्येषा[10]**मिति सुखमयज्ञानोपदेशात्। **महायानं** महासुखज्ञानं नीयते प्राप्यते अनेनेति महायानम्, **नयो** वज्रपद्मवरटकशिखरस्त**मारूढः** प्राप्तः सहजानन्दरूप इत्यर्थः। **महायाननये** पूर्वोक्त **उत्तमश्चतुर्थध्यान**[11]कोटिरित्यर्थः॥ १४॥

इति श्रीवज्रसत्त्वद्वारेण उष्णीषललाटकण्ठहृन्नाभि-
गुह्यमणिशिखरगत्यागतिसूचकचतुर्दशगाथाभि-
र्बोधिचित्तवज्रस्य प्रतिपादनं [12]कृतम्॥५॥

---

१. ख. निष्ठा। २. क. चण्डाला। ३. क. ख. ग. यानार्थं। ४. ख. महारागेण। ५. द. तिक्रमणात्। ६. भो. dṄos Po Med Par (अभावं)। ७. ख. द. तद्रूत्तमो। ८. क. ग. मन्त्रं। ९. क. ग. स्थानं। १०. द. मपि। ११. भो. rTse Mo ḥdZin (कोटिधृक्)। १२. ख. कृता।

सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्

महावैरोचनो बुद्धो महामौनी महामुनिः ।
महामन्त्रनयोद्भूतो महामन्त्रनयात्मकः ॥१॥

महावैरोचनेति । **महावैरोचन**शब्देन प्रकृतिप्रभास्वरं ज्ञानं [1]तन्महच्चास्य स तथोक्तः, ज्ञानमयकाय इत्यर्थः । महासुखप्रबोधाद् **बुद्धः** । अवाच्यसुखात्मकत्वेन कायवाक्चित्तमौनयोगात् **महामौनी** । अत एव [2]महासुखस्वरूपस्य यथावद् मननान्**महामुनिः** । [3]'मनसस्त्राणभूतत्वात् मन्त्रं सुखमुदाहृतम्', इति महामन्त्रं महासुखज्ञानमेव । नीयते [4]प्राप्यते इति नयस्तस्मादुद्भूतो **महामन्त्रनयोद्भूतः** । महासुखोद्भूतत्वेऽपि महासुखस्वभाव इति प्रतिपादनार्थं **महामन्त्रनयात्मक** इत्युक्तम् । अत एवोक्तम् —

मन्त्रतत्त्वमिदं व्यक्तं वाग्वज्रस्य तु [5]साधनम् ।
ज्ञानत्रय[प्र]भेदेन चित्तमात्रे नियोजयेत् ॥ इति ।
(पं० क्र० २.६६)

पुनश्चोक्तम्—

[6]बाह्यजापं त्यजेद्योगी [7]भावनायान्तरायिकम् ।
मन्त्रार्थो भगवान् वज्री वज्रात्मा तु कथं जपेत् ॥ इति ।
(पं०क्र० २.४८)

उक्तञ्च **श्रीआदिबुद्धे**—

महासुखस्वभावोऽस्य पूर्णशब्देन गीयते ।
अन्यभावान्तरं सर्वं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ इति ॥ १ ॥

दशपारमिताप्राप्तो दशपारमिताश्रयः ।
दशपारमिताशुद्धिर्दशपारमितानयः ॥२॥

दशपारमितेति । उदकादिपूर्वकलोकोत्तराद्यभिषेकदानाद्दानम् । कमलकुलिशसंयोगे बोधिचित्तरक्षणात् शीलम् । "न क्वचित् स्थिताः सर्वधर्माः" इति सर्वधर्मनिर्वि-

---

१. ख. तन्महत्तस्य, द. तन्महत्त्वं यस्य । २. ख. द. महानुभावरूपस्य । ३. द. मनसंत्राण । ४. क. ख. प्राप्यते नये । ५. ख. साधकः । ६. द. वाक्य । ७. क. ग. भावनारन्तरायिकम् ।

कल्पावगमक्षमणात् क्षान्तिः। महामुद्रास्फुटीभावोद्योगाद् वीर्यम्। चतुर्थध्याननिमज्जनाद् ध्यानम्। प्रज्ञा दिव्यमुद्रा गुरुमुखैक[1]लभ्या। उपायो हठयोगोऽपि समाध्यङ्गस्फुटीभावार्थम्। एवं च हठयोगः – यदा प्रत्याहारादिभिर्दृष्टे विम्बे सति अक्षरक्षणेनोत्पद्यते। अयंत्रितप्राणतया नादनिदानाभ्यासात् सहजानन्दाभ्यासात्, हठेन हूंकार[2]नादेन प्राणं मध्यमायां वाहयेत्। एवं सुशिक्षितायास्तन्त्रोक्तगुणयुक्ताया अनुरागिताया [3]वरकामिन्याः कक्कोले बोलं विधिवत्प्रक्षिप्य निष्कम्पतया [4]विश्रम्य तस्याः किञ्जल्कमुखे वज्रमणिं निष्पीड्य निर्भर प्रीतिरसेन क्षणं न चालयेत्ततस्तयोः क्षरद्दशोदये हूंकारोच्चारणपुरःसरं सद्गुरुप्रसादीकृतमामुखयतश्चतुर्थसहजानन्दानुभवेन बोधिचित्तबिन्दुनिरोधस्ततोऽक्षरक्षणलाभः। एवं च समाध्यङ्गस्फुटीभाव इत्यर्थः। समाध्यङ्गस्फुटीभावेन एकक्षणाभिसम्बोधिक्षणोदये सर्वं स्वपरार्थनिष्पत्तिः प्रणिधिः। [5]बलं महासुखसामर्थ्यम्। ज्ञानं मणिवरटकान्तः[6]प्रवृत्तिविवृत्या उष्णीषचक्रपर्यन्तं महासुखज्ञानम्। एता दशपारमिताः प्राप्तः साक्षात्कृतवान् **दशपारमिताप्राप्तः**। दशपारमिता एवाश्रयो यस्य स तथा सुखैकनिष्ठबोधिचित्तस्वभाव इत्यर्थः। [7]दशपारमितानाम् आश्रयः **दशपारमिताश्रयः**। आधाराधेयभावेन तादात्म्या**द्दशपारमिताशुद्धिः**। उक्तञ्च—

आधाराधेयसम्बन्धो [8]यावदक्षरतां व्रजेत्।
चित्तमक्षरतां [9]प्राप्तं नाधाराधेयलक्षणम्॥

अत एव **दशपारमिता नयो** मार्गभेदेन यस्य स तथा॥ २॥

दशभूमीश्वरो नाथो दशभूमिप्रतिष्ठितः।
दशज्ञानविशुद्धात्मा दशज्ञानविशुद्धधृक्॥३॥

दशभूमीति। दशानां भूमीनां प्रमुदितादीनां चतुर्विंशतिपीठोपपीठादिलक्षणानाम**ीश्वरः** प्रधानं सहजज्ञानाकारेण व्यापकत्वात्। अस्यायमर्थः —

दानात्प्रमुदितो योगी शीलवान् विमलो भवेत्।
क्षान्त्या प्रभाकरी वीर्यादर्चिष्मान् पुण्यवानसौ॥
ध्यानादभिमुखा[10]कृष्टः प्रज्ञया तु सुदुर्जयः।
दूरङ्गमो महोपायो बलवानचलो भवेत्॥
साधुः [श्च] प्रणिधानेन धर्ममेघस्तु ज्ञानवान्।
जिनस्तथागतः प्रत्यात्मवेद्य एकादशो भवेत्॥ इति।

---

१. द. लब्धा। २. क. ग. नादित। ३. क. ख. ग. वरटकामिन्याः। ४. द. विश्रमतयो। ५. क. ख. ग. एवं। ६. ख. प्रभृति। ७. क. ख. ग. दशपारमिताया। ८. द. यावन्नाक्षरतां। ९. द. इष्टं। १०. क. ग. हृष्टः, ख. कृष्णः।

उक्तञ्च **श्रीसर्वरहस्यतन्त्रे**—

[1]सर्वस्वं सर्वबुद्धानां स्वचित्तं धर्मसंग्रहः।
धर्मनैरात्म्ययोगेन मारयेन्म्रियते स्वयम्॥
स्वचित्तमेव मर्तव्यं मारयेच्चित्तमेव च।
स्वचित्तमेव [2]संबुद्धो बोद्धव्यं चित्तमेव च॥ इति।

उक्तञ्च—

दशभूमिमतिक्रम्य स्तब्धलिङ्गं भवेत्ततः।

अन्यत्र च—

स्तब्धलिङ्गः स्वयं भूत्वा निषद्य [3]जघनोपरि।
लिङ्गवज्रमधिष्ठाय वज्रसत्त्वोऽयमादिजः॥ इति।

नाथः समाध्यनुगमात्। सकलसत्त्वानामनाभोगेनाधिष्ठानात्, **दशभूमिप्रतिष्ठित** इति। दशभूमयो दशधातूनाम् उपसंहारः। ते च वायुश्चित्तं बोधिचित्तं रक्तमज्जाऽस्थीनि स्नायुः मांसम् इन्द्रियाणि चर्म चेति। तेषामुपसंहारः समरसीभावः। तत्र प्रतिष्ठितो यावदा[4]काशम् अप्रतिष्ठितनिर्वाणरूपेण। अत्र गुरूपदेश(शो) हेतुः, तमाह–**दशज्ञानविशुद्धात्मेति**। धूमादिदश निमित्तज्ञानानि। उक्तञ्च **श्रीआदिबुद्धे**—

आकाशासक्तचित्तैरनिमिषनयनैर्वज्रमार्गप्रविष्टैः
शून्याद्धूमो मरीचि[ः] प्रकटविमलखद्योत एव प्रदीपः।
ज्वालाचन्द्रार्कवज्राण्यपि परमकला दृश्यते बिन्दुकश्च
तन्मध्ये बुद्धबिम्बं विषयविरहितानेकसंभोगकायम्॥ इति।
(का० त० ५.११५)

तत्र चादौ निच्छिद्रगृहे गुहायां षडङ्गयोगमभ्यसेदिति। षडङ्गश्चात्र—

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामश्च(मोऽथ) धारणम्।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गयोग [5]इष्यते॥ इति।
(गु० त० १८.१४०)

तत्र दश धूमादीनि प्रत्याहाराङ्गमुक्तम्।

उक्तञ्च—

प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे॥ इति।
(का० त० ४.११६)

---

१. द. सर्वत्वं। २. ख. द. सर्वबुद्धो। ३. भो. Padmahi rTeṅ Du (पद्मोपरि)।
४. द. आकाशे। ५. गु० त० उच्यते।

तैर्विशुद्ध [1]आत्मा स्वरूपं यस्य स तथा विश्वबिम्बसन्दर्शनात्। चक्षुरादीन्द्रियै रूपादिविषयग्रहणं संसारिणामाहारस्तत्परित्यागः प्रत्याहारः। शून्यतालम्बनैः मांसादिपञ्चचक्षुभिरन्यरूपादिग्रहणं धूमादिबिन्दुपर्यन्तं दर्शनभेदेनाकलिपतो ज्ञानस्कन्ध इति यावत्। दशानां [2]ज्ञानानां विषयविषयिणां विशुद्धं विशुद्धेरेकत्वं विश्वबिम्बे तद्धर-तीति **दशज्ञानविशुद्धधृक्**। प्रत्याहारेण बिम्बे दृष्टे ध्यानाङ्गेन त्रैकालिकत्रैधातुक-प्रतिभासात्मकस्य प्रत्यात्मवेद्ययोगिनः स्वचेतसः प्रबन्धेन प्रवर्त्तनं भवतीत्यर्थः। तथा **आर्यदेवपादः—**

आत्मन्येव लयं गते भगवति प्राणाधिपे स्वामिनि
श्वासोच्छ्वासगणे गते प्रशमिते जीवानिले यन्त्रिते।
यो ज्योतिःप्रसरः प्रभास्वरतरो योगीश्वराणामसौ
स्वाङ्गादेव विनिर्गतो हततमास्त्रैलोक्यमाक्रामति॥

सरहपादाश्च—

अपुव्व बसन्त दूकेला सबरी।
अम्बर फुल्लई हलेई॥
तोलेई ण हत्थे न चुव्बई।
विरहे केलिकरें हि ॥
अणिमिस लोअण चिअ णिरोहें।
पवण णिरुहइ सिरिगुरुवोहें॥
(च० गी० को० पृ १९२)

कल्पविनाशान्नाशं बुद्धेरनुकल्पयन्ति किल कुधियः।
अस्मादेव तु सुधियामुदयति गगनाधिकं किमपि॥ इति।

अनेन ध्यानाङ्गमुक्तम्। उक्तञ्च—
प्रज्ञातर्कौ विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम्॥ इति।
(का० त० ४.११६)

ध्यानमक्षोभ्यो विज्ञानस्कन्धः॥ ३॥

[3]दशाकारो दशार्थार्थो मुनीन्द्रो दशबलो विभुः।
अशेषविश्वार्थकरो दशाकार[4]वशी महान्॥४॥

---

१. द. आभास्वरं। २. द. 'ज्ञानानां' नास्ति। ३. छ. दशाकरो। ४. च. वशीर्।

दशाकारेति। दशानां वामदक्षिणदशमण्डलानामाकाशादीनां निरोधाद् **दशाकारा** यस्य स तथा। स च खड्गी संस्कारस्कन्धः। अनेन प्राणायामाङ्गमुक्तम्। उक्तञ्च—

प्राणायामो द्विमार्गः स्खलनमपि भवेद् मध्यमे प्राणवेश ॥ इति।

(का० त० ४.११६)

इदानीं धारणाङ्गमाह— **दशार्थाः** प्राणापानसमानोदानव्याननागकूर्मकृकर-देवदत्तधनञ्जयाख्या वायवस्ते। **अर्थ्यन्ते** [1]अभिलष्यन्ते नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीष-कमलकर्णिका[2]गतभेदेन येन स तथा। अनेन धारणाङ्गमुक्तम्। तथा चोक्तम्—

बिन्दौ प्राणप्रवेशो ह्युभयगतिहतो धारणा चैकचित्तम् ॥ इति।

(का० त० ४.११६)

स च वेदनास्कन्धो रत्नपाणिः। स एव **मुनीन्द्रः**। सहजचण्डालीद्योतनं प्रति सामर्थ्यलाभात्। दशबलानि परमाक्षरसाधनसामर्थ्यात्। पूर्वोक्तकामावस्थालक्षणानि यस्य स **दशबलः**। सहजचण्डाल्यालोकेन त्रिलोकव्यापनाद्विभुः। अत एवाशेषाणां विश्वेषां स्कन्धधात्वायतनादीनामर्थं सहजसुखप्रकाशनलक्षणं करोतीति **अशेषविश्वार्थकरः**। अनेनानुस्मृत्यङ्गमुक्तम्। उक्तञ्च—

डोम्ब्याश्चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधरः ॥ इति। (का० त० ४.११५)

संज्ञास्कन्धो दशविध इति। सा चानुस्मृतिः डोम्ब्यां मध्यनाड्यां दशकामावस्था-भेदत इति। अत एवोक्तम्—

चण्डाल्यालोकनं यद्भवति खलु तनौ चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात् ॥ इति।

(का० त० ४.११७)

दशपूर्वोक्तवायुनिरोधलक्षणा **आकारा** यस्य स तथा। अनेन समाध्यङ्गमुक्तम्। तथा चोक्तम्—

श्रीसमाधिश्च चक्री। (का० त० ४.११५)

वैरोचनो दशविधः। समाधिर्दशवायूनां निरोध इति। एवं भगवानप्रतिष्ठित-निर्वाणोऽवाहिवायुना(वायूनां) जात इति। पुनश्चोक्तम्—

प्रज्ञोपायात्मकेनाक्षरसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिः ॥ इति।

(का० त० ४.११७)

अत एव **वशी** सकलविकल्पवायूनां [3]परमाक्षरसुखनिर्वेधवशीभावात्। महान् सहजरूपेण त्रैलोक्यस्फरणात्। एवं च लोकोत्तराभिषेकं [4]शिक्षातत्त्वं प्रकाशयेदिति।

---

१. द अभिलष्यन्ते। २. भो. bGro Ba Dań Ḥoń Baḥi (गतागत)। ३. ख. परमाक्षरण। ४. क. ख. ग. शिक्षयात् त्वं।

लौकिकाभिषेकपूर्वकोऽपि षडङ्गयोगहेतुक एव। स च षडङ्गयोगो धूमादिक्रमेण भाव्यः। उक्तञ्च—

अस्यैव साधनं कुर्यात् प्रतिभासैर[1]चिन्तितैः।
धूमादिभिर्निमित्तैस्तैः प्रज्ञाबिम्बैर्नभःसमैः॥

अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तैः प्रत्ययार्थैः स्वचेतसः।
परमाणुरजःसन्दोहैः समन्तात्परिवर्जितैः॥

धूमो मरीचिखद्योतदीपज्वालेन्दुभास्कराः।
तमोकलामहाबिन्दुर्विश्वबिम्बं प्रभास्वरम्॥

पिहितापिहितनेत्राभ्यां शून्ये [2]यन्नानुकल्पितम्।
दृश्यते स्वप्नवद्बिम्बं तद्बिम्बं भावयेत् सदा॥ इति।

व्याख्यातञ्चास्यैव निरवशेषक्लेशज्ञेयावरणेन सर्वज्ञज्ञाना[3]ग्नेः साधनं स्फुटीभावं धूमादिभिः कुर्याद् योगी। किम्भूतैस्तैः? सर्वस्मिन् **मूलतन्त्रे लघुतन्त्रे आर्यप्रज्ञापारमितादिनीतार्थ**[4]**सूत्रे** प्रसिद्धैः। अकस्मात् शून्ये प्रतिभासनात्। प्रतिभासैः सर्वविकल्पो[5]परमादचिन्तितैः तत्त्वफलस्य पूर्वरूपत्वान्निमित्तैर्ग्राह्यग्राहक-रहिता स्वभावशून्यधीः प्रज्ञा, तद्बिम्बैर्योगिप्रत्यक्षाभासैः बाह्याध्यात्मिकमलाननुलिप्तत्वात् नभःसमैः सदसदादिविकल्पकलङ्कानङ्कितत्वादस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तैः, योगिस्व-संवेद्यत्वात् प्रत्ययार्थैः स्वचेतसः। सर्वथाऽकृत्रिमोद्भूतनिःस्वभावरूपत्वात् सर्वतः परमाणुरजःसन्दोहर्वजितैः सकलबाह्याध्यात्मव्यापक[6]शुक्लधूमाकारः शून्याभासः। अयं च मेघाभासानन्तरमुत्पद्यते। यथोक्तम्—

प्रथमं मेघवद् भाति द्वितीयं धूमसन्निभम्॥इति।

एवं चलज्जलाकारा मरीचिः। खद्योतदीपा[7]कारौ प्रसिद्धौ। एतानि चत्वारि निमि-त्तानि नीरन्ध्र[8]गृहेऽन्धकारभावत्वा[9]द्रात्रियोगः आकाश[10]योगश्च यथोक्तं **श्रीसमाजादौ प्रथमद्वितीयविलोमेन**—

निरोधवज्रगते चित्ते निमित्तोद्ग्रहो जायते।
प्रथमं मरीचिकाकारं द्वितीयं धूमसन्निभम्॥
तृतीयं खद्योताकारं चतुर्थं दीपमुज्ज्वलम्।
पञ्चमं तु सदालोके निरभ्रं गगनसन्निभम्॥इति।
(गु० त० १८. १४९–१५१)

---

१. ग. अचितैः। २. ग. यमनुकल्पितम्। ३. क. ग. ०ग्रे। ४. क. ख. ग. सूत्रेष्वप्रसिद्धैः, द. सूत्रेष्वप्रसिद्धेषु। ५. द. परमानन्दचित्तैः। ६. क. ग. गुह्य। ७. क. ग. ०कारैः। ८. क. ग. गृहेश्वाऽश्व। ९. ख. रात्रे। १०. ख. 'योग' नास्ति।

ततो निरभ्रगगनसमाभासपूर्वको वह्न्याकारः शून्य[1]भासोज्ज्वलः। इन्दु-भास्कराभासौ प्रसिद्धौ। तमीति राह्वालोकः। कृष्णरत्नवदाभासः। कलेति विद्युदाभासः। महाबिन्दुरिति सचराचरद्योतकनीलवर्णचन्द्रमण्डलाकाराभासः। एतानि षड् निमित्तानि निरभ्रगगनालोकभवत्वात्। दिवायोगोऽभ्यवकाशयोगश्च। ततस्तन्मध्यगामि सम्भोगकायात्मकबुद्धबिम्बदर्शनसहितमेकक्षणे करस्थनीरोपमस्वच्छ-सर्वाकारघटपटादिदर्शनं विश्वबिम्बं प्रभास्वरमिति। पिहितापिहितनेत्राभ्यामित्यन्तरा-लाव[2]लम्बितया[3]ऽर्धोन्मीलितलोचनाभ्यां शून्ये आकाशे ग्राह्यग्राहकरहिते यन्नानुकल्पितं स्वप्नव[4]द्बिम्बं योगिप्रत्यक्षं तद्बिम्बं विश्वबिम्बं भावयेत्, ध्यानाङ्गेन स्थिरीकुर्यात्। उक्तञ्च **मध्यमायां जिनजनन्याम्**—"रत्नालोकरत्नप्रदीपचन्द्रा[5]लोकचन्द्रप्रदीप-सूर्यालोकसूर्यप्रदीपसर्वाकारदर्शीत्यादिकाः समाधयः" इति। वक्ष्यते च—

प्रत्यक्षः सर्वबुद्धानां ज्ञानार्चिः सुप्रभास्वरः॥ इति। (ना० सं० ८.४२)

आर्यनागार्जुनपादैश्च—

अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्ता बुद्धिर्येषां निराश्रया।
गम्भीरैस्तैर्निरालम्बः प्रत्ययार्थो विभाव्यते॥

कम्बलाम्बरपादैरुक्तम्—

ज्ञेयान्यत्र तु लिङ्गानि लब्धालोकेन योगिना।
सिद्धैरव्यभिचारीणि धूमवत्कृष्णवर्त्मनः॥
(आ० मा० २३५)

करोति स्तब्धतामक्ष्णोः शिरसश्चावनम्रताम्।
स्तैमित्यं चित्तचैत्तानां शून्यतां शून्यतेक्षिणाम्॥
(आ० मा० २५२)

अन्यैरपि—

विमलनभसि यस्मिन्निर्मिते लोचनार्धे
स्फुरदुरुकरुणार्द्रादाशयागाढमार्गात्।
सदसदुभयभावाभावनिर्भेद्या(द्य)कस्मात्
उदयदखिलधूमाद्यन्वयः शून्यतायाः॥

तथा—

आदावाद्यन्तनिर्मुक्तो मध्यमात्रं समाश्रितः।
तत्रस्थो वर्जयेद्यस्तज्ज्योतिरस्य दशात्मकम्॥

---

१. क. ख. ग. भासोज्ज्वल। २. ख. लम्ब०। ३. क. ग. ऽर्धो। ४. क. ख. ग. विश्वं। ५. द. लोके।

इहान्तरालावगमो महागुरुप्रसादतः पुण्यवतामुदाहृतः। अयं हि **योगीश्वरवज्र-गीतितः** प्रवर्त्तते (प्रचक्षते) [1]संवृतिप्रदः। **श्रीसरहवीरैरुक्तम्—**

मूढो अन्तरालपरिमाणह।
तुट्टै मोहजाल गुरु पुच्छिअ जाणह॥
पढमे यैं आआस विसुद्धो।
चाहंते चाहंते दिट्ठि णिरुद्धो॥
(दो० को०, पृ० २२)

तथा—

अच्चउ किं बहुबोल्लिऐ धम्मह एह पम्माण।
आवउग्घाडे लोअणे दिट्ठिविसामे जाण॥

उइ दूरे गअण मज्जो ⋯ अद्भूआ।
पेक्खु रे भुसुकु सुण्ण अरुआ॥
भुसुकु फुलिङ्गौ अनुपमफुल्ला।
लेहु रे कुसुम अनग्घ विमुल्ला॥
एहुसो फुल्ला नानवण्णे।
सो फुल्ला फुलिङ्गौ सूणारण्णे॥

तथा—

स(अ)म्बरफुलि लामाकाए अपतिठाणगुरुआ।
भावाभावविमुक्कारसअलइ सुद्ध सरूआ॥
चिन्तचिन्तते पोहाइ गेलिरती।
दीवा जाली वाट चाहन्ति सान्ती॥

तथा—

उइअउ रे भुसुकु तारा।
शान्ति भणइ पोहान्त पाहारा॥

पुनः—

पुण्णिमचन्दा उइअउ जब्बें।
चिअराअ निमिलिअ तब्बें॥
आकढकरुणा डमरुलि बाजअ।
आज्जदेव निरालें राजअ॥

---

१. क. संवृतिनिर्वृतिप्रदः।

वामे दाहिणे गुमघाट ।
भणइ काहू(ण्ह) अन्तरालें बाट ॥
अनुभाव बोहरअण सुट्ठु गूढो ।
मुच्चउ नाअर बज्झाई मूढो ॥
फुलिआ पञ्चफुल्ल अवलीना ।
आकट चौअ निरालें दीना ॥

तथा—

कीस कए लेक अब्भुआ ।
चान्दसुज्ज बान्धि जालिलि क दीवा ॥
हसइ सान्ती सअ आपणकरि सखी ।
आकासविआअल देखी ॥

पुनः—

गम्भीरधर्म(म्म) सुनिआ बढ तुट्ठो ।
णिसि अन्धारी किम्पि न दिट्ठो ॥
गअणशिहरें जइ फुल्लई फुल्ला ।
शान्ति भणइ तब्बें तुट्टइ भुल्ल (।) ॥

अन्यैश्चोक्तम्—

अन्तरालमणपवणा नयणा ।
एककाल जइ जो धम्म निउणा ॥
अवसउ अज्जइ जिनगुणरअणा ।
एत्तउ सअल तथागत वअणा ॥

पुनः—

विविहृ विअप्प विवज्जिअ चिओ ।
अन्तराल जई नअण किओ ॥
फुडपति हासइ दहविट्ठमग्ग ।
तहि योइसर सअलइ लग्ग ॥

तथा—

णिअमण सअल लक्खन रहिओ ।
अद्धउघाडें लोअनें साहिओ ॥
मज्झें पवण हालइ तब्बें ।
वज्जाणलधूम्त्रा उठ्ठइ तब्बें ॥

तस्माद् सन्देहतो धूमादिमार्गो बुद्धत्वार्थिना भावयितव्यः[१] ॥ ४ ॥

---

१. सेकोद्देशटीकायामपि उद्धृतोऽस्ति पृ० ४७-४८-४८।३ ।

अनादिर्निष्प्रपञ्चात्मा शुद्धात्मा [1]तथतात्मकः ।
भूतवादी यथावादी तथाकारी अनन्यवाक् ।।५।।

अनादीति। अनादिराद्यनुत्पन्नो निष्प्रपञ्चः सर्वासत्संकल्पवर्जितः आत्मा निरालम्बस्वभावमचित्तचित्तं यस्य स **अनादिनिष्प्रपञ्चात्मा**। विश्वबिम्बदर्शनमिति यावत्। एतेन आदावेव निर्विकल्पामुखीकरण इति हेतुरुक्तः। महारागानलेन सकलस्कन्धधात्वायत[2]नादीनां निरावरणीकरणात् **शुद्धात्मा**। एतेन मध्येऽपि निर्विकल्पः कथितः। महासुखशुक्रलिप्ततया **तथतात्मा(त्मकः)**। मणिशिखरा[3]च्युतः शुक्रबिन्दुस्वभावः। अनेन पर्यन्तेऽपि निर्विकल्पतोक्ता। **भूतम**विपरीतसुखं [4]**वदितुं** [5]साक्षात्कर्त्तुं तद्रूपेण प्रकाशयितुं शीलमस्य स तथा। अविपरीतधूमादिनिमित्तद्वारेण [6]महासुखमिति। यथा वदति सत्त्वानां तथैवात्मना करणात् **यथावादी तथाकारी**। पञ्चानन्तर्य्यबुद्धवज्रधरादीनां महासुखरूपेणैव प्रकाशनार्थं विद्यते **अनन्यवाक्** अनुभव[7]ख्यापनात् यस्य स तथा। एतेन इदमादौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं नान्यथेत्युक्तं भवति। ननु यथा बालजनैर्विकल्पितं आदौ विकल्पभावना, मध्ये द्वीन्द्रियजसुखभावना, अन्ते निर्विकल्पभावना महासुखभावनेति ? ननु—

हेतुना [8]सदृशं [9]सर्वं फलं सर्वत्र दृश्यते।
न हि कोद्रवबीजेभ्यः शाल्यङ्कुरसमुद्भवः॥

विकल्पबीजसम्भूतं सविकल्पं फलं भवेत्।
निर्विकल्पकसंभूतं निर्विकल्पफलं भवेत्॥

तस्मात्—

आदौ कल्याणं निर्विकल्प[क]भावना मध्येऽन्ते।
यथाबीजं तथा वृक्षः यथावृक्षस्तथाफलम्।
दृश्यते सर्वलोकेऽस्मिन् प्रतीत्योत्पादमेव तद्॥ इति ॥ ५ ॥

अद्वयोऽद्वयवादी च भूतकोटिव्यवस्थितः।
नैरात्म्यसिंह[10]निर्णादी [11]कुतीर्थ्यमृगभीकरः ।।६।।

अद्वयेति। **अद्वयः** सुखशुक्राद्वैधरूपः, तद्रूपप्रकाशनाद**द्वयवादी**। **भूतं** यथाभूतज्ञानम्, तदनुभवस्थानस्य मणिवरटकस्य **कोटिः** शिखरं [12]तत्र **व्यवस्थितः** अस्थान[13]योगेन सुस्थितः। नैरात्म्यं सर्वधर्माणां निराभासलक्षणं विश्वबिम्बरूपं तदेव सिंहो-

१. ग. च. छ. तथाता० । २. ग. नाडीनां। ३. क. ग. च्युतं । ४. क. वेदितुं ग. स्वचित्त । ५. क. ग. साक्षाद्धेतुरूपेण । ६. क. ग. महामुद्रा । ७. ख. स्थापनात् । ८. क. ख. सदृशं, ग. संसर्गं । ९. ग. 'सर्वं' नास्ति । १०. ङ. निर्नादी । ११. ख. कुतीर्थ्यः । १२. क. ग. ततोऽवस्थान । १३. क. ग. योगो ।

[1]ऽनुपक्रमत्वात्। तस्मान्निर्नादोऽनाहतध्वनिसमु[2]ल्लासो यस्य स **नैरात्म्यसिंहनिर्नादः**। कुत्सितं तीर्थं [3]अतत्त्वज्ञानोपायभूतं कुतीर्थमात्मादिज्ञानं तत्र भव्याः कुतीर्थ्याः। ग्राह्य-ग्राहकप्रपञ्च [4]एवान्तःस्थिरत्वात् मृगाः, तेषां तेनैवानाहतध्वनिना [5]भियं भयं [6]तदेवान्तर्धानं करोतीति **कुतीर्थ्यमृगभीकरः**।

तथा चोक्तम्—

शून्यतासिंहनादेन त्रासिताः सर्ववादिनः।
यत्र यत्र विशन्त्येते तत्र तत्रैव शून्यता ॥ इति ॥ ६ ॥
(बो० वि०, ५२)

सर्वत्रगोऽमोघगतिस्तथागतमनोजवः ।
जिनो जितारिर्विजयी चक्रवर्ती महाबलः ॥७॥

सर्वत्रेति। महासुखस्वभावतया सर्वस्कन्धधात्वायतनादिव्यापनात् **सर्वत्र गच्छतीति** तथा। अत एवामोघाऽव्याहता गतिर्यस्य सो**ऽमोघगतिः**। निरन्तराव्याहत-महासुखशुक्रगत्यागतिस्वरूप इत्यर्थः। यथैवागतो वज्रमणिवरटकं तथैव उष्णीषचक्रं गतः, **तथागतः**। महासुखोल्लासेन त्रैधातुका[7]क्रमणवेगो मनोजवः, तद्योगात् **मनोजवः**। पश्चात्कर्मधारयः। रागविरागमध्यरागविजयित्वा**ज्जिनः**। अविद्यादिद्वादशाङ्गनिरोध-ना**ज्जितारिः**। वज्ररत्न[8]शिखरे सर्वविकल्पवायुविजयित्वा**द्विजयी**। महासुख[9]शुक्र-रूपतया षट्चक्रेषु वर्तितुं शीलमस्य स **चक्रवर्ती**त्यर्थः। चतुरङ्गषडङ्गबलविजयि-त्वा**न्महाबलः** ॥ ७ ॥

गणमुख्यो गणाचार्यो गणेशो गणपतिर्वशी ।
महानुभावो [10]धौरेयोऽनन्यनेयो महानयः ॥८॥

गणमुख्येति। **गणस्य** द्वासप्ततिसहस्रनाडीगणस्य व्याप्तिः (व्याप्तौ) स्वामित्वेन [11]**मुख्यः** सहजानन्दशुक्रस्वभावः। **गणानामानन्दपरमानन्दविरमानन्दानाम् आचार्यः** सह-जरूपोपदर्शकः। गणानां पञ्चस्कन्धादीनां सहजरूपता[12]ऽपादनेन परमेश्वरत्वाद् **गणेशः**। **गणो** मायोपमा[13]र्थरूपः तथागत[14]विद्याप्रभृतयो वा तेषां पतिः **गणपतिः** स्वामी बोधिचित्तस्वभावत्वात्[15]। अत एव **वशी** तत्तत्स्वभावसंदर्शनेन सर्वरूपप्रकाशकत्वात् इति। **महानुभावः** प्रभावोऽनुभावो वाऽच्युतत्वात् यस्य स तथा। प्राणादिवायूनां महा-

१. ख. ०क्रमक्रमत्वात्। २. क. ग. ल्लालो, ख. ०लास्य, । ३. क. ख. ग. तत्त्व। ४. द. एवास्थिर। ५. ख. ग. नादियं, द. भीभयं। ६. क. ख. ग. तत्रैवा०। ७. द. क्रमेण। ८. क. शिखरैः। ९. द. चक्र। १०. ग. धौरेय। ११. द. सुखः। १२. ख. संपादनेन। १३. ख. द. स्वरूपाः। १४. द. विद्याग्रतया। १५. क. भो. प्रभास्वरः इत्यधिकः।

सुखनिमज्जनी [1]करणधुरन्धरत्वाद्धौरेयः। सहजानन्दस्वरूपत्वेन [2]अन्वध्यप्रकृतिभिरनेयत्वात् **अनन्यनेयः**। **महानयो** निरालम्बनिराभासधूमादिप्रतिभासो यस्य स तथा ॥ ८॥

वागीशो वाक्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरनन्तगीः।
सत्यवाक् सत्यवादी च चतुःसत्योपदेशकः ॥९॥

वागीशेति। **वाचामीशः**, प्रत्याहाराङ्गस्फुटीभावेन [3]अबन्ध्यवचनत्वेन वरदानादिसामर्थ्यात्। अनेनार्थप्रतिसंविल्लाभ उक्तः अच्युतशुक्रत्वेनानाहतध्वनिरूपाया **वाचः पति**र्वहिर्वागुदाहारवर्जनादिति। अनेन शब्दप्रतिसंविल्लाभः उक्तः। सर्वधर्मनैरात्म्यप्रकाशनाद् **वाग्मी** धर्मप्रतिसंविल्लाभश्चानेन उक्तः। वज्रजापादिना सत्सुखप्राप्ते **वाचस्पतिः**। अनेन च प्रतिभानप्रतिसंविल्लाभ उक्तः। एवं [4]चतुःप्रतिसंविल्लाभेन अनन्ता गीर्वाग् यस्यासौ **अनन्तगीः**। सर्वसत्त्वानां यथाभव्यतया प्रकृतिप्रभास्वरात्मका-[5]दिधर्मचक्रस्य प्रवर्तकत्वात् संवृतिसत्यविरोधेन धर्मप्रकाशनात् **सत्यवाक्**। संवृतिसत्यं च स्वाधिष्ठानमायोपमशरीरं तस्य शुद्धिहेतुः परमार्थ[6]सत्यं प्रभास्वरमिति। **सत्यवादी** शून्यताकरुणाभिन्नस्वसंवेद्यज्ञानप्रकाशनात्। **चतुःसत्योपदेशकः** चतुःसहजा[7]नन्दाद्युपदर्शकः ॥ ९ ॥

अवैवर्तिको ह्यनागामी [8]खड्गः प्रत्येकनायकः।
नानानिर्याणनिर्यातो महाभूतैककारणः ॥१०॥

अवैवर्तिकेति। चतुश्चक्रकर्णिकागतागतत्वेन चतुःशताधिकचतुर्दशसहस्रश्वासनिरोधादवैवर्तिकोऽचलाभूमिलाभीत्यर्थः। **अनागामी** क्लेशावशादसंसारित्वात्। खड्ग इव **खड्गः** अच्युतत्वेन सकलनाडीषु स्फरणात्। प्रत्येकं सकलनाडीनां [9]महासुखताप्रापणात् **प्रत्येकनायकः**। निर्यान्ति निर्गच्छन्ति विकल्पक्लेशदुःखानि येभ्यस्तानि निर्याणानि नाना [च] तानि निर्याणानि चेति नानानिर्याणानि, षटचक्रकमलवरटकानि तेषु निश्चयेन महासुखरूपतया निर्यातो **नानानिर्याणनिर्यातः**। महाभूतानां पञ्चानां एकमद्वितीयं कारणं हेतु**र्महाभूतैककारणः**। आर्षत्वात् पुंस्त्वम्। तथा चोक्तं **कृष्णपादानां**(**दैः**)—

पञ्च महाभूअ बिअ अई सामग्गीए जइअ।
पूहवि अव तेअ गंधवह गअण सज्जइअ॥
गअण समीरण सुहवासे पञ्चेहि परिपुण्णए।
सअल सुरासुर एहु उअत्ति बढिए सुण्णए॥ इति।
(दो० को०, पृ० ४१)

---

१. द. ०करणे। २. क. ग. धन्वतादि, ख. धन्धतादि। ३. द. अन्वध्य। ४. क. ख. ग. चतुर्थ। ५. द. ०दिना। ६. द. सत्यं च। ७. क. ख. ग. नन्दोपदर्शकः। ८. क. ख. खड्ग। ९. ख. द. महासुखरूपता।

तथा च श्रीहेवज्रतन्त्रे चोक्तम्—

> बोलकक्कोलयोगेन कुन्दुरुं कुरुते व्रती।
> स्पर्शात्काठिन्यधर्मेण पृथिवी तत्र जायते॥
> बोधिचित्तद्रवाकारादब्धातोश्चैव सम्भवः।
> तेजो जायते घर्षणाद् गमनाद्वायुः प्रकीर्तितः।
> सौख्यमाकाशधातुश्च पञ्चभिः परिवेष्टितः॥ इति॥ १०॥
> (हे० त० १.१०.३८–४०)

अर्हन् क्षीणा[1]स्रवो भिक्षुर्वीतरागो जितेन्द्रियः।
क्षेमप्राप्तोऽभयप्राप्तः शीतीभूतो ह्यनाविलः॥११॥

अर्हन् क्षीणेति। सम्यक्समाधिवशात् सकलविकल्पक्लेशानरीन् हतवान् इत्यर्हन्। बोधिचित्तप्रयोगेण तदुत्पादितदृष्टान्तदार्ष्टान्तिकावाच्यतत्त्वसुखत्वेन सकलपरिसमाप्तार्थत्वात् सद्गुरूपदेशवशेन चतुर्थाभिषेकक्षणे तुर्यक्षणातीतत्वेन शिष्यस्य तत्क्षणाद् एवातीवश्रद्धायोगेन सकलाविद्याप्रहाणात् **क्षीणा आस्रवा यस्य** यतो वा स तथा। पञ्चकामोपभोगेनापि भिन्नक्लेशत्वाद् **भिक्षुः**। प्रभास्वरप्रवेशेन विगतप्राकृतरागतया महासुखानुभवाद् **वीतरागः**। उष्णीषमणिशिखराश्रितत्वेन सर्वेन्द्रियविषयानभिभवनीयत्वात् द्वीन्द्रियसंयोगानुत्पन्नत्वाद्वा **जितेन्द्रियः**। पञ्चकामोप[2]करणतयाऽपूर्वाश्चर्यसुखप्राप्तत्वात् **क्षेमप्राप्तः**। अच्युतसुखत्वेन तत्सुख[भङ्ग]त्रासाभावाद**भयप्राप्तः**। सूहजानन्दमहारसविद्धतया सकलकायवाक्चित्तोपप्लवानलप्रशमनात् **शीतीभूतः**। हिरेवमर्थे। रागविरागाद्यलिप्तत्वाद्, **अनाविलो** ज्ञानकायः॥११॥

[3]विद्याचरणसम्पन्नः सुगतो लोकवित्परः।
निर्ममो निरहङ्कारः सत्यद्वयनयस्थितः॥१२॥

विद्याचरणेति। **विद्या** महाप्रज्ञा ज्ञानम्, तस्या **आचरणं** चतुर्थाभिषेकमज्जनं **तत्सम्पन्नः** तदद्वैध[4]रूप इत्यर्थः। अनासङ्गसुखतया संसारसुखात् प्रशस्तमपुनरावृत्या यावद् गन्तव्य[5]तया गतः **सुगतः**। स्कन्धधात्वायतनादिरूपं **लोकं** महासुखत्वेन **वेत्ती**ति तथा। **परः** आनन्द-परमानन्द-[6]विरमानन्दोत्तमत्वात् उत्कृष्टः। आत्मात्मीयादिपरिकल्पप्रहीणत्वात् **निर्मम**स्तथतात्मक इत्यर्थः। सुखं भुक्तं मयेति चेति सुखनिश्चयादहंकारविगमान्निरहंकारः। वज्रसत्त्वोऽहंकारोऽपि न कार्यः इति यावत्। संवृतिसत्यं मायोपमं स्वाधिष्ठानलक्षणं परमार्थसत्यं प्रभास्वरपरिज्ञानं तत् **सत्यद्वयम्**। तथा चोक्तम्—

> स्वाधिष्ठानं शून्ये त्रैधातुकदर्शनं नामेति।

---

१. ग. आश्रवो। २. द. करेण तद्। ३. ग. विद्याश्च। ४. ख. रूपज, द. रूपकः। ५. क. ख. ग. तयावगतः। ६. क. ख 'विरमानन्द' नास्ति।

तदेव **नयो** मार्गस्तत्रस्थः तत्साक्षात्कर्ता सकल[1]श्वासहर्तेत्यर्थः ॥ १२ ॥

संसारपारकोटिस्थः कृतकृत्यः स्थलस्थितः ।
कैवल्यज्ञान[2]निष्ठ्यूतः प्रज्ञाशस्त्रो विदारणः ॥१३॥

संसारपारेति। सम्यक् सारः संसारः आनन्दं परमानन्दसुखम्, तस्य पारं विरमानन्दज्ञानं, तस्य कोटिः सहजानन्द[3]सुखज्ञानं, तत्र तिष्ठतीति **संसारपारकोटिस्थ**श्चतुर्थध्यानकोटिधृगित्यर्थः। **कृतं कृत्यं** चतुर्थाभिषेकज्ञानदानं येन स तथा। पञ्चकामोपभोगेन साधितं निर्वाणसुख**स्थलं** परमक्षेमस्थानीयत्वात्, तत्र **स्थितो**ऽच्युतो ज्ञानकाय इत्यर्थः। **कैवल्यज्ञानं** शुद्धाद्वयधर्मतालक्षणं धर्मकायात्मकम्। ततो **निष्ठ्यूतो** निर्यातः परमाक्षरसुखस्वभाव इत्यर्थः। **प्रज्ञा** [4]विश्वबिम्बदर्शनलक्षणा सैव **शस्त्रं** सकलक्लेशनिषूदनात् यस्य स तथा। अत एव हेयोपादेयविकल्पजालं विदारयतीति **विदारणः** ॥ १३ ॥

सद्धर्मो धर्मराड् भास्वान् लोकालोककरः परः ।
धर्मेश्वरो [5]धर्मराजः श्रेयोमार्गोपदेशकः ॥१४॥

सद्धर्मेति। [6]सश्चासौ सद्गुरूपदेश[7]लभ्यत्वात् [8]धर्मश्च एवंकाररूपः सुखस्वलक्षणधारणात् **सद्धर्मः**। उक्तञ्च—

धर्मस्कन्धसहस्राणां चतुरशीति[9]संख्यया।
सर्वाश्रयं पिता माता द्व्यक्षरं कथितं मया॥

एकारस्तु भवेन्माता वकारस्तु पिता स्मृतः।
बिन्दुस्तत्र भवेद्योगः स योगः परमाद्भुतः॥

एकारः पद्ममित्युक्तं वकारो वज्रमेव च।
बिन्दुस्तत्र भवेद् बीजं तत्प्रसूतं जगत्त्रयम्॥

एकारस्तु भवेत्प्रज्ञा वकारः सुरताधिपः।
बिन्दुश्चानाहतं तत्त्वं तज्जा[10]तान्यक्षराणि च॥

यो विजानाति तत्त्वज्ञो धर्ममुद्राक्षरद्वयम्।
स भवेत् सर्वसत्त्वानां धर्मचक्रप्रवर्तकः॥

[11]अन्यत्र च—

एकारो गगना[12]लोके धर्मधातुः प्रकीर्तितः।
वंकारः सुगतव्यूह एकारे संव्यवस्थितः॥

---

१. ख. द. श्वासप्रश्वाससंहर्ता। २. ग. निष्ठूत। ३. ख. ग. द. 'सुख' नास्ति। ४. क. ग. 'विश्व' नास्ति। ५. ख. धर्मराजा। ६. द. सच्चासौ। ७. ख. लम्ब। ८. द. धर्मोत्तम। ९. क. ग. संज्ञया। १०. द. तान्यपराणि। ११. ख. नास्ति। १२. द. लोको।

ए रहस्यं खधाती वा भगे धर्मोदयेऽम्बुजे ।
सिंहासने स्थितो वज्री उक्तं तन्त्रान्तरे मया ॥

वं वज्री वज्रसत्त्वश्च वज्रभैरव ईश्वरः ।
हेरुकः कालचक्रश्च आदिबुद्धादिनामभिः ॥

अन्यत्र च—

एवंकार जे बुज्झिअ ते बुज्झिअ सअल असेस ।
धम्मकरण्डहो सोहु रे णिअ-पहुधरवेस ॥ इति ।

धर्मो धर्मधातुः स्वाधिष्ठानं तत्र तेन वा राजत इति **धर्मराट्**, सहजज्ञानालोकरूपत्वात् । **भास्वान्** भासनशीलः । निरन्तरनिराभासभावनया धूमादिदर्शनिमित्तबुद्धबिम्बेना[1]ज्ञानतमोवृतानां लोकानामालोकं करोतीति **लोकालोककरः । परः** उत्कृष्टः प्रकृतिप्रभास्वरमण्यन्तर्गतपरममहासुखरश्मिरूपः सूर्याद्यालोकोत्कृष्टत्वात् । **धर्मेण** सहजानन्दचतुष्टयेन **ईश्वरस्**त्रिलोकस्वामी नित्यं बोधिचित्तरसास्वादनैश्वर्यात् । धर्मेण महा[2]सुखवर्षेण लोकान् रञ्जयतीति **धर्मराजः । श्रेयोमार्गस्य** स्वाधिष्ठानलक्षणस्यो**पदेशकः** प्रकाशकः ॥ १४ ॥

सिद्धार्थः सिद्ध[3]सङ्कल्पः सर्वसङ्कल्पवर्जितः ।
निर्विकल्पोऽक्षयो धातुर्धर्म[4]धातुः परोऽव्ययः ॥१५॥

सिद्धार्थेति । सर्वधर्माणां ज्ञानाकारेण प्रतिभासकत्वात् **सिद्धो** निष्पन्नोऽर्थः परमार्थो यतो यस्य वा स तथा । बुद्धवज्रधरसम्पादितभावनाभ्यासात् **सिद्धो** नित्यं [5]स्वमुखीकृत्य, **संकल्पो** ग्राह्यग्राहकविकल्पो यस्य स तथा । अत एव **सर्वसंकल्पै**रात्मात्मीयग्रहाभिनिवेशै**र्वर्जित**स्त्यक्तः । अभिषेकसमयाचारादिकाले निर्विकल्पेन चित्तेन सर्वकरणा**न्निर्विकल्पः** । प्रभास्वरनिष्ठतया क्षयाभावा**दक्षयः** । सर्वधर्मप्रकृतिकत्वा**द्धातुः** । कायत्रयात्मक[6]महासुखैकरूपत्वा**द्धर्मधातुः** । अच्युतत्वा**दव्ययः** । स्वयम्भूसहजाख्यत्वात् **परः** । एतेन निर्विकल्पकभावनैव महामुद्रासिद्धिहेतुरित्युक्तं भवति ॥ **१५** ॥

पुण्यवान् पुण्यसंभारो ज्ञानं [7]ज्ञानाकरं महत् ।
ज्ञानवान् सदसज्ज्ञानी संभारद्वयसम्भृतः ॥१६॥

---

१. ख. ज्ञानतमो इत्यारभ्य करोतीति पर्यन्तं नास्ति । २. द. भो. सुखरत्नवर्षेण । ३. क. संकल्प । ४. च. घ. धातुपरो । ५. क. स्वस्वीकृत्य, द. सुखीकृतः । ६. द. महाकरुणैक । ७. क. ख. ङ. ज्ञानान्तरं, छ. ज्ञानाकरो महान् ।

पुण्यवानिति । पुण्यं महाकरुणारागरञ्जिताचित्तचित्तेन समाध्यङ्गाभिमुखीकरणं सुखं (पुण्यं) तादात्म्येन तद्योगात् **पुण्यवान्** । उक्तञ्च—

न विरागात्परं [1]पापं न पुण्यं सुखतः परम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन च्युतिसौख्यं विवर्जयेत् ॥ इति ।

महामुद्रासिद्धयुपायसुखज्ञानत्वात् **पुण्यसंभारः** । उक्तञ्च--

गिरीन्द्रमूर्ध्नः प्रपतेत् तु कश्चित्
नेच्छेच्च्युतिं स च्यवते तथापि ।
गुरुप्रसादाद्विहितोपदेशा-
न्नेच्छेद्विमुक्तिं स तथा विमुक्तः ॥ इति ।
(पं. क्र. २.६९)

ज्ञानसंभारपूरणाद् **ज्ञानम्** । मण्यन्तर्गतानुपलम्भसुखज्ञानरूपत्वात् नाना-[2]सुखाकरत्वात् **ज्ञानाकरः** । तदुक्तम्—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमा[3]ल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
(गीता १३.१३)

महत् इति षोडशकलारूपत्वात् महत् । चण्डालीयोगेन सकलविकल्पेन्धन-दहनतया निर्विकल्पज्ञानेन नित्ययोगात् **ज्ञानवान्**, मायोपमस्वाधिष्ठानवशीकृतस्कन्ध-धात्वायतनत्वेन प्रतिभासात् । उक्तञ्च—

श्रीमन्मण्डलमाण्डलेयनिवहं तज्ज्ञानबिम्बं परं
ज्ञाने[4]नाकलया[5]ऽस्यनेन सकलं लोकञ्च मायादिकम् ।
इन्दोर्बिन्दुपदं यदम्बरतले तद् व्यापि दृष्टं न किं
[6]स्वच्छैः ख्याति निराकरोति च तमो लोकस्य चालोकनम् ॥

सर्वालीकभ्रान्तिविगमाच्च **सदसज्ज्ञानी** । [7]स्वसंवेद्यसहजानन्दरूप इत्यर्थः । अनन्तरोक्तसम्भारद्वयोपेतत्वात् **सम्भारद्वयसंभृतः** ॥ १६ ॥

शाश्वतो विश्वराड् योगी ध्यानं ध्येयो धियां पतिः ।
प्रत्यात्मवेद्यो ह्यचलः [8]परमाद्यस्त्रिकायधृक् ॥१७॥

---

१. क. ग. पुण्यं । २. क. ख. ग. सुखकरणत्वात् । ३. क. क. ग. श्रुतिमान् । ४. ख. द. नालोकनया । ५. क. मणेन, ख. ग. मलेन । ६. द. स्वकैः । ७. भो. 'स्वसंवेद्य' नास्ति । ८. ग. परमाद्या० ।

[**शाश्वतेति** ।] सर्वरोमकूपाग्राकाशव्यापिबुद्धादिसंस्फरणरूपत्वात् [1]**शाश्वतः**, प्रभास्वरनिष्ठतयाऽच्युतसुखत्वात् शाश्वतः। विश्वं द्वासप्ततिनाडीसहस्रं तत्र सुखरूपेण राजत इति **विश्वराट्**। कायवाक्चित्तैकीकरणाद् **योगी**। चतुरानन्दैकत्वाद् **ध्यानम्**। योगीन्द्रैर्वज्रमणौ उष्णीषे चानुभवनीयत्वात् **ध्येयः**। सर्वतथागतज्ञानकायत्वाद् **धियाम्पतिः**। षष्ठो वज्रधरः कुमारीसुरतसुखवदनन्यवेद्यत्वात् **प्रत्यात्मवेद्यः**। उक्तञ्च—

वक्तुं न शक्यते सौख्यं कुमार्याः सुरतं विना।
यौवने सुरतं प्राप्य स्वतो वेत्ति महासुखम्॥
एवं न शक्यते वक्तुं समाधिरहितं सुखम्।
समाधावक्षरं प्राप्ताः स्वतो विन्दन्ति योगिनः॥ इति।

विकल्पवायूपरमाद**चलः**। वज्रसत्त्वरूपत्वात् **परमाद्यः**। [2]सहजान्तर्वर्तिकायवाक्चित्तत्वात्**त्रिकायधृक्**॥ १७॥

पञ्चकायात्मको बुद्धः पञ्चज्ञानात्मको विभुः।
पञ्च[3]बुद्धात्ममुकुटः पञ्चचक्षुरसङ्गधृक्॥१८॥

पञ्चकायेति। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त-तुरीय-तुरीयातीतत्वेन **पञ्चकायात्मकः**। आत्मसुखावबोधरूपत्वाद् **बुद्धः**। पञ्चकुलात्मकत्वेन आदर्शादिज्ञानात्मकत्वात्**पञ्चज्ञानात्मकः**। उक्तञ्च—

बोलककक्कोलयोगेन स्पर्शात्काठिन्यवासना।
कठिनस्य मोहधर्मत्वात् मोहो वैरोचनो मतः॥
बोधिचित्तं द्रवं यस्मात् द्रवमब्धातुकं मतम्।
अपामक्षोभ्यरूपत्वात् द्वेषोऽक्षोभ्यनायकः॥
द्वयोर्घर्षणसंयोगात्तेजः संजायते सदा।
रागोऽमितवज्रः स्याद्रागस्तेजःसमुद्भवः॥
कक्कोलहेतु यच्चित्तं तत्समीरणरूपकम्।
ईर्ष्या अमोघसिद्धिः स्यादमोघो वायुसम्भवः॥
सुखं रागं भवेद्रक्तं रक्तिराकाशलक्षणा।
आकाशं पिशुनवज्रः स्यात्पिशुनमाकाशसम्भवः॥ इति।
(हे० त० २.२.५३–५७)

---

१. भो. 'शाश्वतः' नास्ति। २. ख. द. सहजवर्ति। ३. क. बुद्धात्मको।

अथवा मातापितृसंयोगे पितुर्बोधिचित्तबीजेन चन्द्राक्षोभ्यद्रवत्वादादर्श[1]रूपता। मातुः स्वयम्भूकुसुमेन सूर्यरत्नसम्भवरागत्वात् समता। पद्मे वज्रप्रवेशेन महारागबीजेनामिताभसुखत्वात् प्रत्यवेक्षणा। चलनस्पन्दनानुभवामोघसिद्धिरूपत्वात् कृत्यानुष्ठानम्। अन्तराभवविज्ञानप्रवेशेन वर्द्धनम्, ततो वैरोचनो जननीगर्भान्निष्क्रमणं बिम्बनिष्पत्तिः सुविशुद्धधर्मधातुः। चित्तसुखरूपेण बालाद्यवस्थाव्यापनात्। पूर्वोक्तबिम्बसाक्षात्कारेण निरावरणपञ्चस्कन्धस्फरणात् **पञ्चबुद्धात्ममकुटः**। प्रत्याहारध्यानप्राणायामधारणानुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावात् **पञ्चचक्षुः**। समाध्यङ्गयोगा**दसङ्गधृक्** ॥ १८ ॥

जनकः सर्वबुद्धानां [2]बुद्धपुत्रः परो वरः।
प्रज्ञाभवोद्भवो योनिर्धर्मयोनिर्भवान्तकृत् ॥१९॥

जनकेति। चतुरशीतिसहस्रचित्तक्षणानां [3]**बुद्धानां** महासुखरूपतया जननाज्**जनकः** सहजानन्दः। वज्ररत्नान्तर्गतसुखचित्तराशिरित्यर्थः। उक्तप्रभास्वरचित्तप्रबोधाद् **बुद्धः**, तस्य **पुत्र** आत्मजः सहजः परिदृष्टत्वेनात्यन्तप्रमाश्रयत्वात् निर्विकल्पप्रतिबिम्बनिर्यात इत्यर्थः। आनन्दत्रयातिक्रान्तत्वात्**परः** सहज इत्यर्थः। **वरः** स्वानुभवत्वात्। प्रज्ञा विश्वबिम्बः, सैव उत्पत्तिस्थानं तत्र उद्भवतीति **प्रज्ञाभवोद्भवः**। महासुखाकारसम्भोगकायो **योनिः**, सर्वसत्त्वानामुत्पत्तिस्थानत्वात्। ज्ञानकायत्वात् **धर्मयोनिः**। भवस्यान्तमवसानमानन्दत्रयावसानं सहजानन्दं करोतीति **भवान्तकृत्** ॥ १९ ॥

घनैकसारो वज्रात्मा सद्योजातो जगत्पतिः।
गगनोद्भवः [4]स्वयम्भूः प्रज्ञाज्ञाना[5]नलो महान् ॥२०॥

घनैकसारेति। **घनो** निबिडत्वादेकश्चाद्वितीयत्वात् **सारश्च** सहजसुखत्वेन सर्वकल्पनाक्लेशमलाभावात्। ज्ञानकायत्वेनाभेद्यत्वाद् **वज्रात्मा**। अत्यन्तश्रद्धावतां हृदि गुरूपदेश[6]क्षणमात्रेण बुद्धरूपेण जातत्वात् **सद्योजातः**। तदुक्तम्—"[7]तत्तु क्रमेण करुणादिगुणावदातश्रद्धावतां हृदि पदं स्वयमादधाति" इति। **जगत्पतिः** सर्वजनानां मातापितृस्थानीयं जगत्स्वामो वज्रसत्त्वस्वभाव इत्यर्थः।

गगनेति। इदानीं स्वाधिष्ठानमाह– तच्च संवृतेः शून्यदर्शनं प्रत्याहारचिह्नं नाम मेघधूमादिवत् प्रतिभासः, स च प्रथमं दृश्यते प्रदीपपर्यन्तं, तच्च निमित्तचतुष्टयं **समाजादावुक्तम्**। ज्वालादिबिन्दुपर्यन्तं षडन्यनिमित्तम्, अत्र गाथाद्वयेनोक्तम्। पूर्वोक्त निरभ्रगगनात् [भवति] प्रतिभासो यस्य स **गगनोद्भवः**। **स्वयंभूः** सर्वविकल्परहितचित्तत्वादिति। अतः **प्रज्ञाज्ञानानल** इति ज्वालाप्रतिभासः। वैरोचनो महादीप्ति-

---

१. द. रूपत्वात्। २. बुद्धपुत्रपरो। ३. द. 'बुद्धानां' नास्ति। ४. ख. स्वयम्भू।
५. ख. ग. अचलो। ६. द. कथनं। ७. द. तन्त्र।

रिति चन्द्रप्रतिभासः, स एव ज्ञानज्योतिर्विरोचन इति। जगत्प्रदीप इति [1]सूर्य प्रतिभासः। ज्ञानोल्को राहुप्रतिभासः। महातेजाः प्रभास्वर इति विद्युत्प्रतिभासः। विद्याराजोऽग्रमन्त्रेश इति बिन्दुप्रतिभासः, स च नीलवर्णचन्द्रमण्डलाकारः। मन्त्रराजो महार्थकृदिति सर्वाकारत्रैधातुकभावप्रतिभासो मायास्वप्न[2]प्रतिसेनातुल्यो दृश्यते योगिनेति[3]। व्युत्पत्तिस्तु गगनं बुद्ध[4]बिम्बः तत्रोद्भवतीति तथोक्तः। [स्वयम्भूः] स्वयमात्मना भवतीति तथा, प्रज्ञाज्ञानं सहजचण्डालीज्ञानं, तदेवानल इवानलो यस्य स तथा। सर्वव्यापनात् महान् ॥ २० ॥

वैरोचनो महादीप्तिर्ज्ञानज्योतिर्विरोचनः ।
जगत्प्रदीपो [5]ज्ञानोल्को महातेजाः प्रभास्वरः ॥२१॥

[**वैरोचनेति**] प्रकृतिप्रभास्वरज्ञानं विरोचनः, स एव **वैरोचनः**। महती दीप्तिरस्येति **महादीप्तिः**। ज्ञानमेव ज्योतिर्यस्येति **ज्ञानज्योतिः**। विरोचते दीप्यत इति **विरोचनः**। प्रदीपवज्जगदालोककारकत्वात् **जगत्प्रदीपः**। ज्ञानमेवोल्का यस्य स **ज्ञानोल्कः**। महातेजोऽवभासो[6] यस्य स **महातेजाः**। अत एव **प्रभास्वरः**॥ २१ ॥

विद्याराजोऽग्रमन्त्रेशो मन्त्रराजो महार्थकृत् ।
महोष्णीषोद्भूतोष्णीषो विश्वदर्शी वियत्पतिः ॥२२॥

[**विद्याराजेति**] विद्याया महामुद्राया राजा स्वामी **विद्याराजः**। महासुखप्रधानत्वात् **अग्रमन्त्रेशः**। पारमार्थिकमन्त्रराजत्वान्[7]महा**मन्त्रराजः**। महासुखरूपेण त्रैलोक्यस्फरणाद् **महार्थकृत्**। महश्चा(महांश्चा)सौ उष्णीषश्चेति महोष्णीषः, सर्वतथागतबिन्दुः। उष्णीषाकारेण गगने राशीभूय व्यवस्थित[8]त्वात्। उष्णीषोद्भूतोज्ञानबिन्दुर्**महोष्णीषोद्भूतोष्णीषः** [9]ऊर्णामार्गेण तेजोराशिमुखेन योऽसौ भगवान् सर्वतथागतज्ञानसत्त्वः सर्वतथागतोष्णीषेभ्यो निश्चर्य वज्राकारो मूर्ध्नि स्थितः। उक्तञ्च—

> येनाकृष्य मनोभवः स्वकुलिशान्नीतो ललाटं स्वकं
> प्रज्ञाज्ञानबलेन शाक्यमुनिना वज्रं महोष्णीषगम्।
> सालम्बा ननु शून्यता [10]सकरुणा नालम्बनी यस्य वै
> तस्मै देवनरासुराहिगुरवे विश्वैकशास्त्रे नमः ॥ इति।

(वि० प्र० पञ्चमपटलस्य मङ्गलाचरणम्)

---

१. क. ग. ज्वाला। २. से० टी० प्रतिभासेन। ३. तुलनीयं–से० टी०, पृ० ४०। ४. द. बिम्ब। ५. ग. ज्ञानजोतिल्का। ६. क. ग. भासस्य। ७. ख. 'महामन्त्रराजः' नास्ति। ८. क. ग. भूतत्वात्। ९. भो. Auḍḍhi (ओड्ड)। १०. क. स्वकरुणा, ख. सुकरुणा।

विश्वं नानाप्रकारं स्वाधिष्ठानसमाधिना एकक्षणाभिसम्बोधिं दर्शयितुं शीलं यस्य स **विश्वदर्शी**। वियतः शून्यतायाः पतिः **वियत्पतिः**, सुख(शून्य)पतिरित्यर्थः। उक्तञ्च—

> निराभासस्य चित्तस्य स्थितिराकाशलक्षणा।
> आकाशभावनैवैषा शून्यताभावना मता ॥ इति ॥ २२ ॥

सर्वबुद्धात्मभावा[1]ग्र्यो जगदानन्द[2]लोचनः।
[3]विश्वरूपी विधाता च पूज्यो मान्यो महाऋषिः ॥२३॥

[**सर्वबुद्धेति**।] **सर्वेषां बुद्धानां** शाश्वतादीनां **आत्मभावः** स्वसंवेद्यसहज-सुखज्ञानं तेन [4]**अग्र्यः** श्रेष्ठः सर्वतथागत[5]ज्ञानकाय इत्यर्थः। [6]जगति आनन्देन सहजानन्दरूपेण लोचयति पश्यत्यनुभवतीति **जगदानन्दलोचनः**। स्थिरचलानां भावानां सुखेन [7]नानारूपेण दर्शनाद् **विश्वरूपी**। यथाभव्यतया सर्वमन्त्रमुद्राभिसमयमण्डलोत्सङ्गादिकरणाद् **विधाता**। सहजात्मकतया पूज्यत्वात् **पूज्यः**। नित्यं बाह्याध्यात्मिकं मुद्रासेवनेनातिक्रमणीयत्वात् **मान्यः**। परमाक्षरज्ञानत्वात् **महाऋषिः** ॥ २३ ॥

कुलत्रयधरो मन्त्री महासमयमन्त्रधृक्।
रत्नत्रयधरः श्रेष्ठस्त्रियानोत्तमदेशकः ॥२४॥

कुलत्रयेति। कायवाक्चित्त[8]मेतत्**कुलत्रयं** महासुखं [9]कुलीनतया धरतीति स तथा। लोकोत्तरज्ञानधरत्वात् **मन्त्री**। **महासमयमन्त्रं** सत्सुखाभि[10]संबोधि[11]समाधि धरतीति तथा। **रत्नानि** धर्मसम्भोगनिर्माणाख्यानि सहजैकरूपाणि तद्धारणात्तथा। अत एव **श्रेष्ठः** अनादिनिधनत्वात्। **त्रियानोत्तमदेशकः**चतुर्थानन्दप्रकाशकः। उक्तञ्च —

> खवज्रधातुमध्यस्थं वज्रमण्डलभावना।
> कायवाक्चित्ताहंकारं ध्यात्वा कल्पं स तिष्ठति ॥ इति ॥ २४ ॥

अमोघपाशो विजयी वज्रपाशो महाग्रहः।
वज्राङ्कुशो महापाशः वज्रभैरव भीकरः ॥२५॥

इति सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान[12]गाथाः पादोनपञ्चविंशतिः।

---

१. ख. ग्रो। २. ग. रोचनः। ३. ङ. विश्वरूपो। ४. क. मुख्यः। ५. क. ख. 'ज्ञान' नास्ति। ६. द. जगदानन्देन। ७. ग. द. नानारूप। ८. ग. भेदेन। ९. द. [illegible]। १०. द. सम्बोधि। ११. द. 'समाधि' नास्ति। १२. ख. स्तुतिगाथाः।

अमोघपाशेति । अमोघोऽवन्ध्यः, पाश इव **पाशः** षडङ्गयोगलक्षणो यस्य स तथा । बोधिचित्तवज्रविनेयानां सत्वानां बिम्बदर्शनेन तथताप्रतिभासकत्वात् । वज्रोपमत्रैलोक्यसमाधिना वायुनिरोधाद् **विजयो** । **वज्रस्य** चित्तवज्रस्य [१]पाश इव **पाशो** यस्य स तथा अन्तःप्राणबन्धेन चित्तवज्रस्यापि बन्धनात् । **महांश्चासौ** [२]**ग्रहो** बोधिचित्तापरित्यागेऽविकल्पयोगेन यस्य स तथा । वज्रेणाङ्कुशवत् सर्वसुखसमाधीनामाकर्षणाद्वज्राङ्कुशः । पाशशब्देन [३]नाभ्यधः कुण्डलाकारेण स्थितो नागाकृतिर्वासुकिनामा [४]नाडीविशेषः । तेनावधूतिमार्गेण ब्रह्मस्थानं गत्वा स बोधिचित्ताकर्षणेन स्कन्धधात्वायतनानां व्यापनात् **महापाशः** ।

हृदयैकनाडीसहितशिरःशिखादक्षिणकर्णपृष्ठवंशवामकर्णचक्षुर्भ्रूमध्यस्कन्धद्वयकक्षस्तनयुग[५]नाभिनासाग्रमुखकण्ठहृदयमेढ्रगुह्यगुदोरुजंघापादपृष्ठाङ्गुल्यङ्गुष्ठजानुव्याप्य(स)सहजानन्दबोधिचित्तप्रति[६]पादिकया पञ्चविंशतिस्वरूपबोधिचित्तचन्द्रपदविशुद्धया पादोनपञ्चविंशतिश्लोकया सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्य लोकोत्तरविज्ञानस्कन्धाक्षोभ्यस्वभावेन व्याख्या दर्शिता ॥ ६ ॥

---

१. ख. पाशमेव पाशः । २. क. महांग्रहो, द. महाग्रहो । ३. क. नाड्यधः । ४. ख. नाभी । ५. द. नाडी । ६. क. ग. पादकया ।

आदर्शज्ञानम्

वज्रभैरवभीकरः ॥२५॥

क्रोधराट् षण्मुखो भीमः [1]षण्नेत्रः षड्भुजो बली ।
दंष्ट्राकरालः कङ्कालो [2]हलाहलः शताननः ॥१॥

इदानीं वज्रभैरवभीकर इत्यादिपादेन सार्द्धदशश्लोक्या आदर्शज्ञानस्य व्याख्यानमाह— वज्रमवधूती, तस्या अनन्तरे(अन्तरे) [3]भैरम्भ[4]वायुरया(वा)-दनाहतादुत्थितात्सुखमयरूपादिस्कन्धतया महासुखस्वभावो [5]दृष्टिविकल्पानां भियमभावं करोतीति **वज्रभैरवभीकरः** ॥ २५ ॥

क्रोधराडिति । क्रोधराट् विरमानन्दादनन्तरं राजत इति **क्रोधराट्** । महासुख-स्वभावो मञ्जुश्रीरूपः । षण्मुखानि उपायभूतानि प्रत्याहारादि[6]**षण्मुखानि** यस्य स तथा । सर्वदुःखच्छेदकत्वेन **भीमः** । स्कन्धधात्वायतनेन्द्रियविषयकर्मेन्द्रियाणा[7]मन्त-हितत्वात् । आकाशमिव स्वच्छत्वेन षण्नेत्राणि षडभिज्ञास्वभावानि यस्य स **षण्नेत्रः** । षड्विषयान्महासुखस्वभावतया भुक्त इति **षड्भुजः** । महारागात्मकज्ञानेन स्कन्धादि-वेगसामर्थ्याद् **बली** । [8]द्रंष्टा चण्डाली तस्या गुरूपदेशात् ज्वलितायाः [9]शिखरभूतत्वाद् **दंष्ट्राकरालः** । कं सुखं कलयतीति **कङ्कालः** । हलाहल आकाशज्ञानतया वज्रान्तः प्राणबन्धः ते[न] सकल[10]नाडीगतसुखतया शतमनन्तानि आननानि सुखज्ञानानि यस्य स **हलाहलशताननः** ॥ १ ॥

यमान्तको [11]विघ्नराजो वज्रवेगो भयङ्करः ।
विघुष्टवज्रो हृद्वज्रो मायावज्रो महोदरः ॥२॥

यमान्तकेति । **यमं** द्वयं स्वपराभिनिवेशस्तस्यान्तको युगनद्धवाहीत्यर्थः । **विघ्नो** मारः स्वचित्तप्रसरः "मारः स्वचित्तं न परोऽस्ति मारः" इति । तद्विनाशेन राजत इति **विघ्नराट्** । **वज्रस्य** सम्यग् ज्ञानस्य **वेगः** [12]प्रसरः तद्रूपत्वात्तथा । ...दबिन्द्वेकीकरणेन सकलविकल्पकवलनाद्(लीकरणाद्) **भयङ्करः** । अनन्तरोक्तक्रमेण शून्यताकरुणयोर-

---

१. ङ. पट्नेत्र, छ. षड्नेत्रः । २. च. हालाहल । ३. ख. भैरम । ४. ख. वायुरयया० । ५. क. ख. द्रष्ट । ६. क. ग. द. पट्कानि । ७. द. ०मन्तरहित्वात् । ८. ख. तं द्रंष्टा, द. [illegible] । ९. क. ख. शेखर । १०. क. नाभी । ११. क. ख. घ. विघ्नराट्, च. विघ्ननराट्, ङ. विघ्नराट् । १२. क. ग. प्रसवः ।

भेदादनाहतधर्मधातुरूपतया विघुष्टमहाशब्दो **वज्रमभेद्यमस्य**, तेन वा अभेद्यः, स तथा। सहजकायत्वात् **हृद्वज्रः**। **माया** मनोविवर्त्य(र्त्त) **वज्रो**ऽभेद्यत्वाद्यस्य स तथा। धर्मधातुरूपतया सकलभावक्रोडीकरणाद् **महोदरः** ॥ २ ॥

कुलिशेशो वज्रयोनिर्वज्रमण्डो नभोपमः।
[1]अचलैकजटाटोपो गजचर्मपटार्द्रधृक् ॥३॥

कुलिशेशेति। **कुलिशे** वज्ररन्ध्रद्वयाभ्यन्तरे ओडियाने जालन्धरसंज्ञके महासुखस्वभावेन **ईश्वरत्वात्**। तथा **वज्राणां** सर्वतथागतकायवाक्चित्तज्ञानवज्राणां **योनि**रुत्पत्तिस्थानं सहजा[2]नन्दोत्पत्तित्वात्। तेषां दिव्यसुखास्वादरूपत्वाद्वज्र[3]**मण्डो**ऽभेद्यसारः। निरावरणतया सर्वाकारवरोपेतशून्यतास्वभावत्वान्न**भोपमः**। निश्चलीकृतप्राणत्वा**दचलः**, सर्वसमरसीभावा**देकजटाया** इवा**टोप** आडम्बरो यस्य स तथा। दिव्यमुद्राप्रयोगेण महासुखरूपतया [4]धर्म[धातु]पर्यन्तगतशुक्रं श्वेत**गजचर्म**[5]**पटार्द्रं** सहजत्वात्तत्तादात्म्येन **धरतीति** तथा ॥ ३ ॥

हाहाकारो महाघोरो [6]हीहीकारो भयानकः।
अट्टहासो महाहासो वज्रहासो महारवः ॥४॥

हाहाकारेति। महासुखोल्लासध्वनिर्हाहा तत्कारित्वात् **हाहाकारो** ध्वनिविशेषरूपत्वात्। घोरातिक्रान्तो **महाघोरः**। [7]पूर्ववत् सुखनादरूपत्वात् **हीहीकारः**। महा[8]सुखरन्ध्रे पराक्रमो **भयानकः**। महामुद्राप्रयोगेण प्रत्युच्चैः हकाराष्टकरूपत्वाद**ट्टहासः**। दिव्याङ्गनालिङ्गनवज्रनाट्यसुखत्वात् **महाहासः**। स्वसंवेद्यत्वेन **वज्रहासो** ज्ञानहासः। **महारव**स्त्रैलोक्यमहासुखनादः ॥ ४ ॥

वज्रसत्त्वो महासत्त्वो वज्रराजो महासुखः।
वज्रचण्डो महामोदो वज्रहूंकारहूंकृतिः ॥५॥

वज्रसत्त्वेति। अभेद्यबोधिचित्तरूपत्वाद् **वज्रसत्त्वः**। बोधिचित्तेन कायमापूर्याविच्छिन्नप्रवाहज्ञानबिन्दुरूपत्वात् [9]**महासत्त्वः**। वज्रान्तर्गतमहासुखरूपतया राजत इति **वज्रराजः**। अत एव **महासुखः**। अप्रतिष्ठितसुखनिर्वाणगतिवेगित्वाद् **वज्रचण्डो** वज्रवेगः। सदसत्पक्षाभावेनाच्युतामृतमोदनान्**महामोदः**। वज्रहूंकारस्य बोधिचित्तराजस्य

---

१. ख. छ. अचलो ह्येक। २. ख. द. नन्दोद्भूतत्वात्। ३. क. ख. मण्डलाऽभेद्य। ४. क. ग. चर्मं। ५. ख. ग. तदार्द्रं। ६. च. छ. हीहीकार। ७. ख. पूर्वादखण्डनाद०, ग. पूर्ववत् अखण्डानाहतरूप०। ८. द. वज्ररन्ध्रे। ९. ख. द. महासुखः।

चतुःहूंकाररूपचतुरानन्दचतुष्यनिरूपेण ओडियान-जालन्धर-पुल्लीरमलय-मरुसञ्चाराद् वज्रहूंकारहूंकृतिः ॥ ५ ॥

वज्रबाणायुधधरो वज्रखड्गो निकृन्तनः ।
विश्ववज्रधरो वज्री एकवज्री रणञ्जहः ॥६॥

वज्रबाणेति । अवधूतीबाणवज्रेण नासारन्ध्रद्वयनिरोधाद् वज्रमवधूती, तदेव बाणायुधं तद्धारणाद् **वज्रबाणायुधधरः** । महासुखाधारतया **वज्रमद्वयज्ञानमेव खड्गः** सर्व-[1]क्लेशनिषूदनत्वाद्यस्य स तथा । अत एव परमवासनां निकृन्ततीति **निकृन्तनः** । [2]पञ्च-वर्णप्राणादिवायुर्विश्ववज्रम् । तदुक्तम्—

पञ्चज्ञानमयं श्वासं पञ्चभूतस्वभावकम् ।
निश्चार्य यन्नासाग्रे पिण्डरूपेण कल्पयेत् ॥

पञ्चवर्णमहारत्नं प्राणायाम इति स्थि(स्मृ)तम् ।
स्वमन्त्रहृदये ध्यात्वा चित्तं बिन्दुगतं न्यसेत् ॥
(गु० त० १८. १४६-१४८)

नासाग्रे सर्षपं नाम प्राणायामस्य कल्पना ।
प्राणायामे स्थिताः पञ्चरश्मयो बुद्धभाषिताः ॥

पञ्चवर्णमयं श्वासं प्राणायामस्य कल्पना ।
नासिकाग्रे प्रयत्नेन भावयेद्योगवित् सदा ॥ इति ।

तच्चाक्षोभ्यादिपञ्चतथागतस्वभावं लोचनादिपञ्चदेवीस्वभावं च वामदक्षिण-नासापुटे सञ्चारि धरति निश्चलीकरोति इति **विश्ववज्रधरः** धूममरीचिप्रतिभासतया । अभेद्यज्ञानधारित्वाद् **वज्री** । द्वन्द्वयोगेनाद्वयज्ञानत्वादेक**वज्री** । कर्ममुद्राजघनान्तरे विकल्पसुखरमणं [3]रणं जहाति(तीति) **रणञ्जहः** ॥ ६ ॥

वज्रज्वालाकरालाक्षो वज्रज्वालाशिरोरुहः ।
[4]वज्रावेशो महावेशः शताक्षो वज्र[5]लोचनः ॥७॥

वज्रज्वालेति । [6]ज्ञानचण्डालीज्वलनाद्वज्रज्वालया आदर्शप्रतिसेनातुल्यया **करालं** दन्तुरं **अक्षि**मांसादिचक्षुर्महासुखदर्शनं यस्य स तथा । वज्रज्वालावदभेद्यतया शिरसि रोहतीति **वज्रज्वालाशिरोरुहः** । महासुखतया उष्णीषक्रमणाद् वज्रस्य ज्ञान-

---

१. ख. द. संक्लेश । २. ख. पञ्चवज्र । ३. क. ग. 'रणं' नास्ति । ४. ङ. वज्रवेशो । ५. ग. रोचनः । ६. ख. द. 'ज्ञान' नास्ति ।

वज्रस्य प्राणापाननिरोधेन ध्वननकम्पनादिनाधिष्ठानं तद्योगाद् **वज्रावेशः** त्रैधातुकमहामुद्राभिषेकदायीत्यर्थः। महासुखतया सर्वभावस्वभावत्वाद् **महावेशः**। सर्वदृष्टिरहिततया दिव्यस्पर्शसुखावत्यानु[1]भवज्ञानत्वात् **शताक्षः**। मांसादिचक्षुरादेः विश्वदर्शनाव्याहतदर्शनाद् **वज्रलोचनः**॥ ७॥

वज्ररोमाङ्कुरतनुर्वज्र[2]रोमैकविग्रहः।
वज्र[3]कोटिनखारम्भो वज्रसारघनच्छविः॥८॥

वज्ररोमेति। सार्द्धत्रिकोटि[4]रोमाभ्यन्तरशुक्रवहनाडिकानामङ्कुरः प्रकृत्याभासः स एव तनुराभोगेण(तनुरनाभोगेन) ज्ञानाद्यस्य **वज्ररोमाङ्कुरतनुः**। **वज्रम**भेद्यज्ञानं तदेव रोमेव **रोम** निरन्तरोद्गमनाद् **एकम**द्वितीयं शरीरं **विग्रहो** यस्य स तथा। सहजाकाशतनुरित्यर्थः। वज्रकोटौ नखा इव रक्तश्वेतगुणयोगाद् नखाः सहजानन्दबिन्दवः, तैरारभ्यत इति **वज्रकोटिनखारम्भः**, ज्ञानकाय इत्यर्थः। **वज्रसारा** निर्विकारा **घना** निरन्तरा सुखत्वेन लम्बमाना **छविः** स्पर्शसुखात्मिका वज्रजिह्वानाडी यस्य स तथा॥ ८॥

वज्रमालाधरः श्रीमान् वज्राभरण[5]भूषितः।
हाहाट्टहासो निर्घोषो वज्रघोषः षडक्षरः॥९॥

वज्रमालाधरेति। वज्रं पीठोपपीठादिशरीरस्थानं लयभोगादिक्रमेण सहजोत्पत्तिर्वज्रमालासहजबिन्दुमाला तां धरतीति **वज्रमालाधरः**। **श्रीमान्** [अ]द्वैतज्ञानी। सर्वाङ्गव्यापिपरमाक्षरसुखशुक्ररूपतया **वज्राभरणभूषितः**। दिव्याङ्गनालिङ्गनसंभूतसुखध्वनिर्**हाहा** अस्य **अट्टहासो** विकासो यस्य स तथा। निर्गतो बहिर्घोषान्**निर्घोषः**, अन्तः सुखस्वयम्भूः सुखनाद इत्यर्थः। उक्तञ्च—

वियद्गंगातीरे तरणिशशभृन्मध्यवसतो
गुरोराज्ञालेशादुभयपवनः स्वतनुविधौ।
ययोर्योगे चित्ताद्यनुभवसुखस्वादरसिकाः
यमन्तर्वीक्षन्ते कमपि सुखनादः स जयति॥
सूर्येन्दुद्युतिकर्बुरीकृतमहासन्ध्यानुबन्धिश्रियो
यस्यानुत्तरकाललालितजगत्तादात्म्यमापद्यते।
यश्चाभासनि(ति)कामिनीसमरसक्रीडासुखैकध्वनिः
ज्ञानात्मा स तनुर्जयी विजयते सम्भोगकायो जिनः॥

---

१. ख. भवशत्वात्। २. ङ. लोमैक। ३. ग. कोटिर्नखा। ४. क. ख. रोमस्यान्तर, द. रोमान्तर। ५. छ. भूषणः।

तानि व्यञ्जनकानि ताश्च रुचयस्ते षोडशापि स्वराः
विस्फूर्ज्जन्ति च संहरन्ति च यतः संलीयमाना अपि ।
आपातालतलोच्छलत्कलकलः सम्भोगभूमीश्वरो
ब्रह्मस्तम्भविजृम्भितो विजयते वज्री नभो दुन्दुभिः ॥ इति ।

कायोऽपि सर्वाकाशव्यापि महासुखनादत्वाद्[१] **वज्रघोषः** । षट्चक्रेषु अक्षरसुख-वेदनात् **षडक्षरः** ॥ ९ ॥

मञ्जुघोषो महानादस्त्रैलोक्यैकरवो महान् ।
आकाशधातुपर्यन्तघोषो घोषवतां वरः ॥१०॥

इति आदर्शज्ञानगाथाः [१]पादेन सार्धं दश ।

मञ्जुघोषेति । सर्वचक्रेष्वागतबिन्दुप्राणसन्मिश्रज्ञानविज्ञानैकलोलीभूतनादत्वाद् **मञ्जुघोषो** मञ्जुश्रीः । वज्रकमलकर्णिकाकाशगत[२]स्तथानादरूपत्वान्**महानादः** । **त्रैलोक्य**मालोकाद्याभासत्रयं शून्यातिशून्यैकैकीकरणात् । [३]आस्फानकसमाधिना **एकम**द्वितीयं तदेव[४]**रवः** सर्वशून्यप्रभास्वरं यस्य स तथा । अत एव **महान्** । चक्षुरादीनां निःस्वभावतया सर्वधर्माणां [५]**आकाशधातुपर्यन्तं** निष्ठा यस्य स **घोषः** सुखनादो यस्य स तथा । निःस्वभावता(तया) सर्वधर्माणां **घोषवतां वरः**, मणिवरटकोष्णीषवर्ती भगवान् सुखबिन्दुरिति ॥ १० ॥

हृद्गतप्राणवाहिनाडीसप्तकविण्मूत्रशुक्रशोणितवाहिनाडिचतुष्टक-
निरावरणताप्रतिपादकसपाददशश्लोक्या आदर्शज्ञानस्य
लोकोत्तरसत्यरूपस्कन्धवैरोचनमुखेन व्याख्या ॥७॥

---

१. च. पादोन । २. ख. द. तथागतसुखनाद । ३. ख. आस्फलक, ग. आस्थानक । ४. ख. रवैः । ५. क. बोधिपर्यन्तो, ग. बोधिरपर्य० ।

प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्

तथताभूतनैरात्म्यभूतकोटिरनक्षरः ।
शून्यता[1]वादिवृषभो गम्भीरोदारगर्जनः ॥१॥

तथतेत्यादिना ज्ञानार्चिः [2]सुप्रभास्वर इति पर्यन्तेन द्वयाधिकचत्वारिंशच्छ्लोक्या सुविशुद्धसंज्ञास्कन्धामिताभद्वारेण प्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तुतिमाह—तथतेति। **तथता** वामदक्षिणवाहभङ्गेनावधूतीवाहः।

उक्तञ्च—

नाडिकादिस्वभावेन देवतातत्त्वयोगतः।
तासामेतत्परं शुद्धं स्वरूपं निःस्वभावता ॥

यत्प्रज्ञोपाययोरैक्यं सर्वाकारैकसंवरम्।
सावधूती विधूतात्मा मध्यमाप्रतिपन्नता ॥

आदिमध्यान्तसंकल्पसम्बन्धानवधानतः ।
[3]शुद्धः स्फटिकसंकाशः [4]प्रकाशः सोऽवधूतिकः ॥

(प्र० श० ४५-४७)

सैव **भूतानां** पृथिव्यादीनां **नैरात्म्यं** आत्मात्मीयानुपलम्भः। तदेव **भूतकोटि**र्यथाभूतनिष्ठा यस्य स तथा तन्निष्ठ[5]सुख[6]स्वभाव इत्यर्थः। अच्युतकरुणारसपूर्णत्वा**दनक्षरः**। [7]कायवाक्चित्तनिरोधेन स्वसंवेद्यसुखप्राप्तिः शून्यता, तत्प्रकाशनात् **शून्यतावादी**। सर्वमारारिविध्वंस[8]धुरन्धरत्वाद् **वृषभः**। एकपदं वा। **गम्भीरोदार**स्य शून्यताकरुणाभिन्नस्य [9]सुखस्य **गर्जन**मुल्लासो यस्य स तथा। तथा च **विमलप्रभा[या]** [10]"शून्यस्य भावः शून्यता अतीतानागतं ज्ञेयं शून्यं, तस्य दर्शनं भावः शून्यता"। गम्भीरोदाराऽतीतानागताभावाद् गम्भीरा। अतीतानागतदर्शनादुदारेति ॥ १ ॥

धर्मशङ्खो महाशब्दो धर्मगण्डी महारणः ।
अप्रतिष्ठितनिर्वाणो दशदिग्धर्मदुन्दुभिः ॥२॥

---

१. ख. वादी०। २. क. सुभास्वर। ३. ख. ग. शुद्ध। ४. ख. प्रकाश, भो. Rab Byed (प्रकरणः)। ५. ख. सुखं। ६. क. ख. स्वस्वभाव। ७. भो. 'काय' नास्ति। ८. क. ग. पुरन्धर। ९. ख. 'सुखस्य' नास्ति। १०. क. ग. शून्यता स्वभावः, द. शून्यभाव।

धर्मशङ्खेति। धर्मोदयोद्[1]भूतत्वात् प्रतिश्रुत्कोपमधर्मदेशनाच्च **धर्मः**, शङ्खवन्निर्मलत्वाच्च **शङ्खः**। महासुखबिन्दुमयो मनोराजः। पद्मान्त[2]राळेन नासिकायां वज्रोद्भवं क्षीरसमुद्ररूपं चिन्तामणि सर्वजगत्स्वभावं श्रीहेरुकं [3]वेद्मि महासमुद्रमित्युक्तेः। बुद्धत्वदायकनिःस्वभावसुखनादरूपत्वान्**महाशब्दः**। सकलसुखमयवाग्वज्रसमाधिविस्फारितसर्वधर्मप्रकाशकधर्मज्योति(ती)रूपत्वाद् **धर्मगण्डी**। अनुपमसुखनाद[4]धर्मरणनान्**महारणः** विरमानन्दः संसारत्वात् [5]प्रतिष्ठितः। [6]मण्यग्रात्पतनान्निर्वाणं तदभावान्न विद्यते **प्रतिष्ठितञ्च निर्वाणञ्च** यस्य स तथा। अनुत्तरानन्दधर्म[7]सुखकोषकल्याणप्रकाशनाद् **दशदिग्धर्मदुन्दुभिः** ॥ २ ॥

अरूपो रूपवानग्र्यो नानारूपो मनोमयः।
सर्वरूपावभासश्रीरशेषप्रतिबिम्बधृक् ॥३॥

अरूपेति। आकाशनिष्ठतया सर्वचित्तचैतसिकाविद्याप्रतिभासनिरोधान्न विद्यते प्रकृतिस्वरूपातिरिक्तं **रूपं** यस्य स तथा। धर्मकायरूपकायैकलोलीभावादनाविलरूपत्वाद्**रूपवान्**। हृदयसुखकरसूर्यमण्डला[8]धारत्वेन सर्वमारप्रमथनशीलत्वाद**ग्र्यः**। द्वासप्ततिनाडीसहस्रेषु प्रकृतिरूपेण सुखधर्मधातुरूपनिस्पन्दरूपत्वान्**नानारूपः**। एकक्षणाभिसंबोधिरूपत्वान्**मनोमयः**। निरासङ्गतया पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशचक्षुःश्रोतघ्राणजिह्वाकायमनसां प्रत्यात्मवेद्यतया प्रतिभासनात् **सर्वरूपाव**[10]**भासश्रीः**। विश्वबिम्बदर्शनेन कृष्णरेखायामनन्तान[11]न्तज्ञानकायाभिन्नसम्भोगकायप्रतिभासनाद् **अशेषप्रतिबिम्बधृक्**। उक्तञ्च—

[12]यद्वेमरूप्यमणिशङ्खशिलाप्रवाल-
वैडूर्यताम्ररजतादिषु संस्थितश्च।
तत्रैक एव हि शशी गगनोदरान्त-
र्व्यावर्तमान [13]वपुषा प्रति[14]भाति यद्वत् ॥

एवं स नाथः खलु चित्तवज्रो नानाविधस्तिष्ठति जन्तुवर्गे।
स चाव्ययः [15]स्वात्मनि विश्वरूपो मायामयो व्याप्तसमस्तलोकः ॥ इति ॥३॥
(स्वा०प्र० ५६-५७)

---

१. क. ख. भूतत्वा। २. ग. द. ०राळे नर नासि०। ३. ग. संबोध्य। ४. भो. Śes Rab Chos Grogs Phyir (प्रज्ञाधर्मरणनान्)। ५. भो. Mi gNas Paḥo (अप्रतिष्ठितः)। ६. क. रत्नाग्रात्, ख. रत्नाग्रोपेत, द. रत्नाग्रोपेतत्वात्। ७. क. ग. सुखै। ८. ख. शो। ९. ख. धारणत्वेन। १०. क. भाष०। ११. क. ख. ग. ०तानज्ञान०। १२. क. ख. यद्वेव। १३. ग. वपुया। १४. ख. 'भाति' नास्ति। १५. ख. द. 'स्व' नास्ति।

अप्रधृष्यो महेशाख्यस्त्रैधातुकमहेश्वरः ।
समुच्छ्रितायं[1] मार्गस्थो धर्मकेतुर्महोदयः ॥४॥

अप्रधृष्येति । सर्वविकल्पासंहार्यत्वाद**प्रधृष्यः** । अद्वयपुण्यज्ञानसम्भारनिष्ठारूपत्वान्**महेशाख्यः** । **त्रैधातुकं** धर्मसंभोगनिर्माणाख्यं तत्र **महेश्वरो** ज्ञानकायः। समुच्छ्रितोऽत्युच्चो विकल्परहितत्वात् आर्यः। [2]मृग्यते इति मार्गः षट्चक्र[3]कमलकर्णिका तत्र महासुखरूपतया स्थितत्वात् **समुच्छ्रितायंमार्गस्थः** । मणि[4]वरटके सकलक्लेशविजयित्वाद्धर्मस्य तत्त्वरत्नस्य केतुरवाच्यसुखत्वाच्च ध्वजः **धर्म[5]केतुः** । धर्मसुखाद्वैततया आकाशधातुस्थामेयबुद्धबिम्बानन्तप्रतिभासतया **महानुदयः** [6]सुखस्य समुल्लासो यस्य स तथा ॥ ४ ॥

त्रैलोक्यैककुमाराङ्गः स्थविरो वृद्धः प्रजापतिः ।
द्वात्रिंशल्लक्षणधरः कान्तस्त्रैलोक्यसुन्दरः ॥५॥

त्रैलोक्यैककुमाराङ्गेति । त्रैलोक्यं कायत्रयम्, तदेकस्तदभिन्नो महासुखकायः, स एव कुमारो धर्मधातुरूपेण विकाराभावात्, स एवाङ्गं सर्वोत्पत्तिहेतुर्यस्य स [7]**त्रैलोक्यैककुमाराङ्गः** । दिव्यमुद्रासमुद्भूतसुखरूप इत्यर्थः । पूर्वोक्तमुद्राप्रकर्षगतत्वात् सर्वसिद्धिज्येष्ठत्वाच्च **स्थविर** इत्युच्यते, महाराजसमाधिक्रमेण । बुद्धज्ञानमयत्वाद् **वृद्धः** । ज्ञानं[8]प्रबोधेन तुर्यातीतप्रभास्वरमयज्ञानबिम्बमयत्वेन सर्वजन्तुनामुत्पादनात्प्रजानां जन्तूनां पतिः **प्रजापतिः** । शुक्लप्रति[9]पदादिपञ्चदशकलातिक्रान्तषोडशकलाद्येकलक्षणरूपत्वात् द्वात्रिंश[10]ल्लक्ष्यन्त इति लक्षणानि तानि धरतीति **द्वात्रिंशल्लक्षणधरः** । संवृतिविवृतिक्रमेण षोडशानन्दद्वयधारणाद्वा तथा । सर्वधर्मैकरसत्वेन सर्वजनाभि[11]लषणीयत्वात् **कान्तः** । स्वाधिष्ठानस्फुटीभावेन(ना)सेचनकरूपत्वात् त्रैलोक्येन काय (त्रिलोक्येव त्रैलोक्यं) **त्रैलोक्यत्वेन सुन्दरः** । उक्तञ्च—

द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ता अशीत्यनुव्यञ्जनी प्रभुः ।
योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः ॥
(हे० त० २. २.४१)

ततश्च महता तेन सर्वसत्त्वानुकम्पया ।
कृतं नैर्माणिकं कायं द्वात्रिंशद्वरलक्षणम् ॥

---

१. ख. मान० । २. क. ग. मार्ग्यंत । ३. भो. 'कमल' नास्ति । ४. ख. वरटका । ५. ग. हेतुः । ६. ख. द. सुखसमु० । ७. क. त्रैलोक्यकुमा० । ८. क. ग. प्रबोधे । ९. क. ग. पदानि । १०. ग. लक्षं तु, द. क्षन्तु । ११. ख. द. लावणीय ।

विना तेन न सौख्यं स्यात् सुखं हित्वा भवेन्न सः ।
शुक्राकारो भवेद् भगवान् तत्सुखं कामिनी स्मृतम् ॥
(हे० त० १.८.५०)

न तत् प्रत्येकबुद्धानां श्रावकाणाञ्च गोचरम् ।
गोचरं बुद्धपुत्राणां वज्रपद्मोद्भवं पदम् ॥ इति ।

दुन्दुभोक्तम्—

पञ्चबुद्धात्मकं सर्वजगोऽयं [1]पश्यतु कु(सु)नाटकदिव्यं ।
[2]एहु (कू) सो परममहासुखनामा नृत्यति एकमनेकरसेन ॥ इति ॥ ५ ॥

लोकज्ञानगुणाचार्यो लोकाचार्यो विशारदः ।
नाथस्त्राता त्रिलोकाप्तः शरणं तायी [3]निरुत्तरः ॥६॥

लोकज्ञानेति । लोकानां चक्षुरादीनां ज्ञानं निरावरणप्रतिभासस्तस्य गुणः पञ्चकामोप[4]भोगेन संसार[5]दोषाऽनुपलेपस्तस्याचार्य उपदेष्टा **लोकज्ञानगुणाचार्यः** । यथाक्रमतया चतुर्थाभिषेकपर्यन्तदानाल्लो**काचार्यः** । नानारूपस्फरणेन जगदर्थकरणा[6]विरामाद्विशारदो निर्भयः, अभेद्य[7]सुखज्ञान इत्यर्थः । [8]अद्वययोगेन सुस्थितत्वान्नाथः । त्राता परमार्थत्राणीयसंवृतिसत्यैकरूपतया सदाऽच्युतरूपत्वात्त्राता । सर्वाकारशून्यताप्रकाशरूपत्वेन च्यवनसुख[9]ग्रहग्रस्तानां निर्मलज्ञानोपदेशोपस्थितोऽपि त्रैलोक्य आप्तः, पञ्चकामोपभोगेऽपि क्षीणदोषः **त्रिलोकाप्तः** । पञ्चभूतानां महासुख[10]निष्ठीकरणात् **शरणं** । [11]तायी सुखमयज्ञानसन्तानः तस्यानुपच्छेदेन [12]योगात्तायी, सनातनश्चतुर्लक्षण[13]रूप इत्यर्थः । त्रैलोक्यव्यापकसहजानन्दरूपत्वान्निरुत्तरः ॥ ६ ॥

[14]गगनाभोगसम्भोगः सर्वज्ञज्ञानसागरः ।
अविद्याण्डकोश[15]संभेत्ता भवपञ्जरदारणः ॥७॥

गगनेति । गगनं कमलकुलिशसंयोगे वरटका[16]काशदेशस्तस्याभोगो विस्तारस्तत्र सम्यग्भोगोऽद्वयसुखभुञ्जनं यस्य स तथा, स **गगनाभोगसंभोगः** । कायवाक्चित्तप्रहाणात्मकमहावज्रधरज्ञानरत्नाकरत्वात् **सर्वज्ञज्ञानसागरः** । [17]**अविद्या** संसारवासनासैवाण्डकोषो जगदुत्पत्तिहेतुत्वात् । तस्य **सम्भेत्ता** महासुखैकतापादकः । भवः कायवाक्-

---

१. ख. पश्यतु चित्त, ग. पश्यन्तु, द. पश्यकु । २ ख. एइसो, ग. एफुसो, द. एइसा । ३. क. ख. अनुत्तरः । ४. क. भोगेग । ५. ख. दोषगायलेप० । ६. क. ख. द. विरागा० । ७. क. ग. 'सुख' नास्ति । ८. द. अभय । ९. ख. ग्रहस्तानां । १०. ख. निष्ठा । ११. क. तायः । १२. क. योगो । १३. द. रूपलक्षण । १४. ष. गगनभोग । १५. क. ख. भेत्ता । १६. क. काशस्तस्या० । १७. ख. अविद्याण्ड ।

चित्त[1]स्वरूपापरिज्ञानं स एव [2]पञ्जरोऽनिर्गमहेतुत्वात् । तद्दारयतीति **भवपञ्जरदारणः** ॥ ७ ॥

शमिताशेष[3]संक्लेशः संसारार्णवपारगः ।
ज्ञानाभिषेकमुकुटः सम्यक्संबुद्धभूषणः ॥८॥

शमितेति । शमिता निरावरणतां नीता **अशेषाः** सवासनाः **संक्लेशा** अविद्यादिद्वादशाङ्गानि येन स तथा, पञ्चकामवशीकृतः । पञ्चोपादानस्कन्धाः संसारः, स एवार्णवः रागादिव्याकुलत्वात्, तस्य पारं निरावरणस्कन्धादिप्रतिलम्भस्तत्र गच्छतीति **संसारार्णवपारगः । ज्ञानं** चतुर्थानन्दरूपम्, तदेवा[4]भिषिच्यते निरावरणीक्रियते स्कन्धधात्वादिकमनेनेत्य**भिषेक**श्चतुर्थो बिन्दुस्स एव बिन्दु**र्भूषण**मस्य स तथा, **सम्यक् संबुद्धान्** वा भूषयतीति तथा । अनेन चतुर्थाभिषेकरूपो भगवान् उक्तः । उक्तञ्च—

कर्ममुद्राप्रसङ्गेऽपि [5]ज्ञानमुद्रानुरागिणे ।
रक्षणीयं महासौख्यं बोधिचित्तं दृढव्रतैः ॥
अनेन रक्षितेनैव बुद्धत्वमिह जन्मनि ।
शीलसम्भारसम्पूर्णं पुण्यज्ञानसमन्वितम् ॥
दश पारमिताः प्राप्ताः [6]सम्बुद्धास्त्र्यध्ववर्तिनः ।
अनेन सर्वसंबुद्धैर्धर्मचक्रं प्रवर्तितम् ॥

वातैः संघट्टमानैस्तडिदनलशिखा द्रावयेन्मूर्ध्नि [7]चन्द्रं
यो यो बिन्दुर्द्रुतोऽस्मादगलहृदयगतो नाभिगुह्ये निरुद्धः ।
बिन्दोः स्पन्दद्रवं यत् कुलिशमणिगतं सन्निरुद्धं ध्वजाग्रे
प्रज्ञा[8]ज्ञानक्षणं [9]तद्यदि ददति सुखं बिन्दु[10]मालाच्युतेन ॥
(का० त० ५.७५)

जाग्रत्स्वप्नस्वरूपं पुनरपरमिदं सुप्ततूर्यस्वभावं
काय[11]स्थं श्वासलीनं विचरति विषयान् निश्चलं चित्तलीनम् ।
ज्ञानस्थं स्त्रीप्रसङ्गात् क्षणमपि च भवेद् बोधिचित्ते[12]द्रुते च
निर्माणादेः क्रमेण प्रभवति नियतं चित्तवज्रश्चतुर्धा ॥

---

१. ख. द. 'स्व' नास्ति । २. क. ग. द. पञ्जरो निर्गम । ३. क. संक्लेश । ४. ख. ०भिरुच्यते । ५ ग. कर्म । ६. क. ख. संबुद्धः । ७. ख. ग. द. चक्रं । ८. क. ज्ञानं, ख. ज्ञाने । ९. ख. यद्यदि । १०. क. माना । ११. ख. स्था । १२. क. ख. ग. द्रुतेन ।

एवं चित्तं चतुर्धा त्रि[1]विधभवगतं प्राणिनां बिन्दुमध्ये
योगीन्द्रैः रक्षणीयं स(श)मसुखफलदं व्यापकं मोक्षहेतोः।
बिन्दोर्मोक्षे क्व मोक्षो गतपरम[2]सुखे योगिनां जन्मबीजे
तस्मात्संसारसौख्यं क्षण इह यतिभिः सर्वदा वर्जनीयः ॥ इति।

(का० त० ५.१२५-१२६)

समाजे चोक्तम्—

पतिते बोधिचित्ते तु सर्वसिद्धिनिधानके।
मूर्च्छिते स्कन्धविज्ञाने कुतः सिद्धिरनिन्दिता ॥

विमलप्रभायां च—

क्षरति प्रज्ञासंगे यस्य सितं तस्य केन सुखवृद्धिः।
कुसुमं वसन्तसमये पतति फलं केन चूतस्य ॥ इति।

(वि० प्र० १, पृ० ५)

श्रीज्ञानवज्रसमुच्चययोगतन्त्रे च—

सर्वासा[3]मेव मायानां स्त्रीमायैव [4]प्रशस्यते।
ज्ञानत्रयप्रभेदोऽयं स्फुटमत्रैव लक्ष्यते ॥ इति।

(अनु० सं० ३६)

उक्तञ्च—

आलोकरात्रि[5]भागः स्फुटरविकिरणः स्याद्दिवालोकभासः
सन्ध्यालोकोपलब्धिः प्रकृतिभिरसकृद्युज्यते स्वाभिरेव।
नो रात्रि[6]र्नैव सन्ध्या न च भवति दिवा यः प्रकृत्या विमुक्तः
सः स्याद् बोधिक्षणोऽयं वरगुरुकथितो योगिनामेव गम्यः ॥

नैशं ध्वान्तं विनष्टं व्यपगतमखिलं [7]सान्ध्यतेजश्च यस्मिन्
भास्वान्नोदेति यावत् [8]क्षण इह विमले दर्शयेद् भूतकोटिम्।
शिष्यायाचार्यमुख्यो विनि[9]हततिमिरो [10]बाह्यसम्बोधिदृष्ट्या
प्राप्नोत्यध्यात्मसौख्यं किमपि पदवरं बुद्धबोधिक्षणेन ॥ इति।

अन्यत्र च—

योगाचाराभिसंबोधिर्मध्यन्तःसुखसाधनम्।
मध्यमकाभि[11]संबोधिरच्युत्यन्ते च विलक्षण ॥ इति।

---

१. ख. त्रिभयभव। २. ख. सुखि। ३. च० गी० को०, पृ० ५३ खलु। ४. च० गी० को०, पृ० ५३ विशिष्यते। ५. ख. भागो। ६. ख. न्निव। ७. ख. द. साव्य। ८. क. ख. क्षणः। ९. क. हित। १०. ग. वाक्य। ११. क. संबोधि।

एवमुभयोर्व्यति[1]भिन्नं एकलोलीभूतं परमाक्षरसुखलक्षणं चतुर्थमित्युच्यते। उक्तञ्च—

आचार्यो गुह्यप्रज्ञा च [2]चतुर्थं फल[3]रूपता।
तदेतेषु कथं नाम महान्तो [4]विप्रतिपेदिरे॥
परमविरमयोर्मध्य[5]लक्षं(क्ष्यं) ये प्रति[6]जानते।
शब्दस्य संगतिं यत्नात्कुर्वन्ति यदि नाम [7]ते॥
न तेषामिह सेकोऽयं चतुर्थो घटते पुनः।
तृतीयं फलरूपत्वाद् निष्पन्नं [8]चेत्स्वरूपतः॥
[9]आदौ कार्यस्य निष्पत्त्या पश्चाद्धेतुनात्र किम्।
सेकोऽयं दर्शित[स्त]स्य सिद्ध्यर्थं नान्यहेतुना॥
तस्य चेदग्रतः सिद्धिः किमर्थं स पुनर्भवेत्।
फलस्य यदि निष्पत्तौ पश्चात्सेकोऽभिधीयते॥
आश्वास-प्रभेदोऽत्र बुद्धवज्र[10]धरयोः कथम्।
पूर्ववज्रधराश्वासः पश्चाद् बुद्धस्य चेद् भवेत्॥
एवं हेतोः फलस्यापि [11]व्यक्तता केन [12]वार्यते।
गाथाया अनुरोधेन द्वयोर्मध्ये भवेद्यदि॥
[13]लक्ष्यं नैवान्यथार्थत्वाद् गाथाया इव तत्त्वतः।
लक्ष्यस्यैवानुरोधेन गाथार्थो युज्यते पुनः॥
न हि गाथानुरोधेन लक्ष्यमन्यत्र नीयते।
श्रीसमाजेऽथ हेवज्रे भेदो नास्तीह तत्त्वतः॥
साधनस्य तु भेदेन भेदास्तत्रोपवर्णिताः।
तत्र सेकास्त्रिधा प्रोक्ता इति चेल्लोकत[14]स्तु सः॥
लोकोत्तराभिषेकस्तु प्रोक्तोऽपि न स्फुटीकृतः।
प्रज्ञाज्ञानाभिषेकेण ज्ञातव्यः स चतुर्थकः॥
इत्येवं निपुणं ज्ञातुं सेवितव्यो हि सद्गुरुः।
तस्माद् कदाचित्संगत्या [15]लक्ष्यं मध्ये वदन्ति ये॥

---

१. भो. dByer Med Pa (अभिन्नं)। २. क. चतुर्थपील०, ख. चतुर्थस्फल। ३. क. रूपतः। ४. ख. प्रतिष्ठेदिति। ५. क. लक्षये, ख. द. ०येत्। ६. ख. द. जयते। ७. ख. द. हे। ८. ग. च स्वरूपतः। ९. भो. hBras Bu Dan Por (आदौ फलस्य)। १०. ग. धरः। ११. क. द. व्यस्तता। १२. क. वाच्यते, द. धारयते, भो. Chol Ba (व्यक्तिक्रमत)। १३. क. लक्ष। १४. ख. त। १५. क. लक्ष्यां।

तथाप्यागम[1]युक्ति[2]भ्यामन्त एव न संशयः।
सहजस्यान्तर्भावित्वाद् गाथायाः संगतिः कथम् ॥
क्रियते चेन्न दोषोऽयं गाथार्थ[3]स्यास्ति संगतेः ॥

सहजानन्दयोर्मध्ये परमविरमौ यदाऽऽनन्दसहजानन्दापे[4]क्षया मध्ये परमविरमौ स्थितः तदा परमविरमयोरित्यादिना [5]चानादरे षष्ठीविधानात्। भावनादृत्येति वा सम्यग्निति चतुर्थं वीक्ष्य दृढीकुरु। श्रीहेवज्रेऽष्टमपटले "विरमान्तं पुनस्तथा" (१.८.२४) इति वचनात्। विरमस्यान्तःसहज इति स्फुटमवगम्यत एव, तथा सुरता[6]नन्दं समस्तं चैतत्सुखोपायः सर्वविदिति, अतिसंगतमेव। एतदानन्दत्रयं सहजहेतुभूतसुरतानन्द-स्वरूपं तदानन्दत्रयसुखस्वरूपमुपायो हेतुः। साक्षात् परम्परया अस्य [7]सहजात् सर्ववित् सहजानन्दस्वरूपकः। उक्तञ्च—

विरमानन्दो (मेन) विरागः स्यात् सहजा[8]नन्दं शेषत ॥ इति।
(हे० त० १.८.३२)

विशिष्टो रागो विराग आलोचनरूपो[9]ऽनुभूतसुखविकल्परूप इति यावत्। तथा तृतीयं रागनाशत्वाच्चतुर्थं तेन भाव्यते। तथा—

परमानन्दं भवं प्रोक्तं निर्वाणं च विरागतः।
मध्यमानन्दमात्रं तु सहजमेभिर्विवर्जितम् ॥ इति।
(हे० त० १.८.३४)

परमानन्दः सांक्लेशिकसुखभोगलक्षणत्वाद् भवः संसारः। विरमानन्द-स्यालोचनात्मकतया सांक्लेशिकरागनाशत्वान्निर्वाण[10]रूपत्वम्। मध्यमानन्दमात्रं मध्यमं [11]सुखसामान्यरूपत्वात्। एभिः त्रिभिरानन्दैर्विवर्जितं सहजं फलमित्यर्थः। तथा—

न रागो न विरागश्च मध्यमा(मं) [12]नोपलभ्यत ॥ इति।
(हे० त० १.८.३५)

रागः परमानन्द [13]आसक्तिलक्षणत्वात्। सुखविकल्पतया विशिष्टत्वाद्विरागो विरमानन्दः। [14]मध्यमामध्यमसुखमात्रं प्रथमानन्दः। नोपलभ्यत इति। एतत् त्रयं [15]सहजत्वेन नोपलभ्यत इत्यर्थः।

---

१. द. युक्ति वा। २. क. ख. भ्यां मन्त्र। ३. क. ख. ग. स्याति। ४. द. क्षयोर्म। ५. क. ख. ग. नानादेव। ६. ख. नन्द तु। ७. ख. द. 'सहजात्' नास्ति। ८. क. ख. नन्दं तु। ९. क. ग. ऽनुद्धृत। १०. क. रूपत्वां, ग. रूपत्वात्। ११. क. सुखं। १२. भो. dMigs Su Med Pa (नोपलभ्यतः)। १३. क. आशक्ति। १४. क. मध्यमध्यम। १५. क. ग. सहत्वेन।

विरमादौ लक्षयेत् तच्च आनन्दत्रयवर्जितम् ॥ इति ।

(हे० त० १.१०.१८)

तत् सहजं विरम आदिर्यस्य तत्र सहजं लक्षयेदित्यर्थः । तथा—

परमान्तमध्य[1]विरमश्च शून्याशून्यं तु हेरुकम् ।

(हे० त० २.५.७०)

परमान्त एव मध्यश्चासौ विरमश्च सहजापेक्षया हेतुरुक्तः । शून्याशून्यं शून्यताकरुणाभिन्नं फलं सहजमित्यर्थः । ये [2]तु विरमं विरागं विरक्तिलक्षणं वर्णयित्वा परमविरमयोर्मध्ये लक्ष्यं सहजमेव समर्थयन्ति, तेषां मतेन क्रमयोजिताऽनन्दचतुष्टयानां गाथानाम्—

प्रथमानन्दमात्रन्तु परमानन्दं द्विसंख्यतः ।
तृतीयं विरमाख्यं च चतुर्थः सहजः स्मृतः ॥

(हे० त० १.१०.१३)

विचित्रे प्रथमानन्दः परमानन्दो विपाकके ।
विरमानन्दो विमर्दे च सहजानन्दो विलक्षणे ॥
आचार्यगुह्यप्रज्ञा च चतुर्थं तत्पुनस्तथा ।
[3]आनन्दाः [4]क्रमशो ज्ञेयाः चतुः सेचनसंख्यया ॥

(हे० त० २.३.९-१०)

कामानन्दं तु कम्पाक्षरमपि च चतुष्केण योगः स एकः
पूर्णः शक्त्युद्भवो वै भवति च परमानन्द एव द्वितीयः ।
ज्वालाबिन्दुश्च घूर्मा पुनरपि विरमानन्द एव तृतीयः
ओद्रानादश्च निद्रा भवति च सहजानन्द एव चतुर्थः ॥

(का० त० ३.१२४)

इत्येवमादीनां कथमर्थो व्याख्यायते ?

प्रथमानन्दमात्रं तु परमानन्दं द्विसंख्यतः ।
तृतीयं विरमाख्यं तु (च) चतुर्थः [5]सहजं स्मृतम् ॥

(हे० त० १.१०.१३)

तथा—

शून्यं चैवातिशून्यं च [6]महाशून्यं तृतीयकम् ।
चतुर्थं सर्वशून्यं च फलहेतुप्रभेदतः ॥

---

१. क. विरमस्य । २. क. सु निरमं । ३. क. ख. आनन्दाद्याः । ४. द. क्रमज्ञेयाः । ५. क. सहजा, ख. सहज । ६. ख. 'महा' नास्ति ।

चतुर्मुद्रान्वयग्रन्थस्तु पृथग्जनेन [न कृत इत्या[1]स्थेयमिति ।

कुम्भो गुह्याभिषेकस्तु प्रज्ञा[2]ज्ञानाभिषेकतः ।
पुन[3]रेव [4]महामुद्रा तस्या ज्ञानाभिधानकः ॥

क्षरः(रोऽ)क्षरस्ततः [5]स्पन्दो निस्पन्दश्च ततोऽपरः ।
कायवाक्‌चित्तसंशुद्ध्या अभिषेकत्रयं क्रमात् ॥

चतुर्थो ज्ञानसंशुद्धिः कायवाक्‌चित[6]शोधकः ।
बालः प्रौढ[7]स्तथावृद्धश्चतुर्थस्तु प्रजापतिः ॥

प्रज्ञास्तनाङ्गसंस्पर्शो बोधिचित्तच्युतं सुखम् ।
पयोधराभिषिक्तः स बालः [8]प्रोक्तो यतः सुखम् ॥

गुह्यस्फालाच्चिराज्ज्ञानं(जातं) बोधिचित्तच्युतं सुखम् ।
प्रौढो गुह्याभिषिक्तः स गुह्यात्प्राप्तो यतः सुखम् ॥

गुह्यास्फालचिराज्जातं वज्राग्रे स्पन्दतः सुखम् ।
प्रज्ञाज्ञानाभिषिक्तः स वृद्धः स्पन्दं गतो यतः ॥

महामुद्रानुरागाद् [9]यज्जातं निस्पन्दतः सुखम् ।
महाप्रज्ञाभिषिक्तः स यतो निःस्पन्दतां गतः ॥ इति ।

प्रजापतिः स विज्ञेयो जनकः सर्वतायिनाम् ।
वज्रसत्त्वो महासत्त्वो बोधिसत्त्वोऽद्वयोऽक्षरः ॥
असौ समयसत्त्वः स्याद्वज्रयोगश्चतुर्विधः ॥

[10]इत्यपि सहजातनियमः सहजानन्दश्चतुर्थाख्य इति । उक्तञ्च —

सहजाणन्द चउट्ठओ सो की बुच्चण जाई ॥ इति **सरहपादः** ।
(दो० को० पृ. २६)

सहजाणन्द च चतुक्खण णिअ सम्वेअण जा[ण] ॥

इति **लीलावज्रश्चेति** ॥ ८ ॥

त्रिदुःखदुःख[11]ग(श)मनस्त्र्यन्तोऽनन्तस्त्रिमुक्तिगः ।
सर्वावरण[12]निर्मुक्त आकाशसमताङ्गतः ॥९॥

---

१. क. हृयमिति, द. स्तेयमिति । २. भो. Ye Ses rJod Byed Can (ज्ञानाभिधायकः) । ३. ख. रेव च । ४. भो. Śes Rab Chen Po (महाप्रज्ञा) । ५. ख. स्पन्द । ६. ख. शोध, भो. sPyod Byed Paho (चारिकः ?) । ७ क ग. ततो । ८. क. प्राप्तो । ९. द. यज्ज्ञानं । १०. ख. द. इत्यर्थः । ११. सर्वत्र–शमनः । १२. क. ख. विनिर्मुक्त ।

त्रिदुःखेति। **त्रीणि** कायवाक्चित्तानि षष्ठ्युत्तरशतप्रकृतिपरतन्त्रतया **दुःखानि**, तेषां यद्दुःखं स्वरूपानवबोधस्तस्य प्रज्ञोपाय[1]ज्ञानबलेन [2]**गमनः** [3]गमकः (शमनः, शमकः) अत एव [4]**त्र्यन्तश्चतुर्थः**। **अनन्तो** युगनद्धवाही सर्वविकल्पवायूनां निरोधे अप्रतिष्ठित-निर्वाणत्वात्। त्रिभ्यो रागद्वेषमोहेभ्यो मुक्तिं गच्छतीति **त्रिमुक्तिगः**, **सर्वावरणविनिर्मुक्तश्च**, प्रकृतिप्रभास्वरतया **आकाशसमतां गतः** ॥ ९ ॥

सर्वक्लेशमलातीतस्त्र्यध्वानध्वगतिं गतः ।
सर्वसत्त्वमहानागो [5]गुणशेखरशेखरः ॥१०॥

सर्वविश्वबिम्बदर्शनेन सकलक्लेशाप[6]सरणात् **सर्वक्लेशमलातीतः**। धर्मधातु-(त्व)क्षयत्वेन अतीतानागतवर्तमानकालगतिरहितत्वात् **त्र्यध्वानध्वगतिं गतः**। सर्वाकारा[7]द्वयदर्शनात् **सर्वसत्त्वानां महानागो**ऽनन्तक्लेशसंग्रामविजयित्वेन। यावदिष्टा-धिगमधर्मलाभी(लाभिनः) **गुणशेखरा** गुणचूडामणयो बुद्धा भगवन्तस्तेषां **शेखरः** श्रीसहजबिन्दुः ॥ १० ॥

सर्वोपधिविनिर्मुक्तो व्योमवर्त्मनि सुस्थितः ।
महाचिन्तामणिधरः सर्वरत्नोत्तमो विभुः ॥११॥

सर्वोपधीति। धर्मार्थकाममोक्षविकल्पै[8]रकल्पितत्वात् प्रत्याहाराङ्गस्फुटीभावेन मांसादिचक्षुषां सर्वाकारशून्यता [विश्व] बिम्बदर्शनात् अन्येषां सत्त्वानां शून्यतादर्शनं प्रति जात्यन्धवत् [9]**सर्वोपधिविनिर्मुक्तः**। अत एव **व्योमवर्त्मनि** शून्यतायां **सुस्थितो**ऽविकल्पयोगेनावस्थितः। उक्तञ्च—

आकाशभावनैषा यदुत प्रज्ञापारमिता भावना ॥ इति।

महाचिन्तामणिधरः सर्वाभिलषितार्थसिद्धिदत्वात् सहज[10]बिन्दुधरः, निःस्वभाव-सहजप्रज्ञापारमितास्वभाव इत्यर्थः। **सर्वसत्त्वानां** कायवाक्चित्तबिन्दूनां **उत्तमो**ऽनुत्तररतिदायकत्वात्। अत एव **विभु**[11]र्व्यापकः ॥ ११ ॥

महाकल्पतरुः स्फीतो महाभद्रघटोत्तमः ।
सर्वसत्त्वार्थकृत्कर्ता हितैषी सत्त्ववत्सलः ॥१२॥

[12]**महाकल्पेति**। लोकोत्तराभिलषितार्थसिद्धिदत्वान्**महाकल्पतरुः**। **स्फीतः** समृद्धः। भद्रघटातिशयत्वाद् **महाभद्रघटोत्तमः**। अत एव **सर्वसत्त्वार्थकृत्**। अनाभोगेन

---

१. द. समाधिबलेन। २. क. गगणः। ३. द. 'गमकः' नास्ति। ४. क. अन्तश्च। ५. ख. गुणशेखरः शेखरः। ६. द. हरणात्। ७. क. द्वय। ८. क. ग. रकम्पितत्वात्। ९. ग. सर्वोपाधि। १०. द. वज्रधरः। ११. क. ग. व्यापिका। १२. क. ख. ग. 'महाकल्पेति' नास्ति।

सर्वसत्त्वसुखकरधर्मदानात् **कर्ता**। हितमायतिसुखमेषितुं शीलं यस्य स **हितैषी**। जगदेकपुत्रप्रेमत्वात् **सत्त्ववत्सलः** ॥ १२ ॥

शुभाशुभज्ञः कालज्ञः समयज्ञः समयी विभुः।
सत्त्वेन्द्रियज्ञो वेलज्ञो [1]विमुक्तित्रयकोविदः ॥१३॥

शुभेति। [2]शुभञ्चाशुभञ्च महासुखरूपेण जानातीति **शुभाशुभज्ञः**। कालं महासुखबोधिक्षणं जानातीति **कालज्ञः**। कायवाक्चित्तज्ञानात्मकं **समय**चतुष्टयं **जानातीति** तथा। तदुक्तं **वज्रपाणिपादैः**—"प्रज्ञाचुम्बनेनानन्दक्षणो भवति, स च कायसमयः। पद्मे वज्रप्रवेशेन परमानन्दक्षणो वाक्समयः। पद्मे वज्रस्फालनेन विरमानन्दक्षणः चित्तसमयः। वज्रमणौ बोधिचित्तेनागतेन सहजानन्दक्षणो ज्ञानसमयश्चतुर्थः"। अत एव **समयी**। तद्रूपत्वाल्लौकिकलोकोत्तरार्थव्याप्तिरूपत्वाद्**विभुः**। चतुरानन्दक्षणभक्षितसर्वसत्त्वेन्द्रियपरिज्ञानात् **सत्त्वेन्द्रियज्ञः**। अनाभोगेनैव [3]धर्मदानादि**वेलां जानातीति** तथा। आर्षत्वाद् ह्रस्वम्। कर्मसंकल्पदिव्यमुद्राद्वारेण भूचरखेचरमहामुद्रासिद्धीनां **विमुक्तीनां त्रयं** तत्र **कोविदः** पण्डितः ॥ १३ ॥

गुणी गुणज्ञो धर्मज्ञः प्रशस्तो मङ्गलोदयः।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यः कीर्तिर्लक्ष्मीर्यशः शुभः ॥१४॥

गुणीति। अभेद्यसहजस्वभावसत्त्वरजस्तमोगुणयोगाद् **गुणी**। कायवाक्चित्तस्वरूपपरिज्ञानाद् **गुणज्ञः**। लोकोत्तरधर्ममहासुखास्वादनाद्**धर्मज्ञः**। सम्यग् ज्ञानोदयक्रमेण सर्वजगतः शान्तिकरणात्**प्रशस्तः** ज्ञानकाय इत्यर्थः। मङ्गलानामलौकिकानामुदयो यस्मादिति **मङ्गलोदयः**। त्रिविधानन्दानामपि **माङ्गल्यश्**चतुर्थः सहजानन्दः, प्रभास्वरत्वात्। सर्वदाऽविनश्वरसुखरूपकीर्तितत्वात्**कीर्तिः**। सर्वसम्पदाधाररूपत्वाल्**लक्ष्मीः**। विकल्पपरित्यागसम्भूतनिर्मलप्रभास्वरयशस्त्वाद्**यशः**। सर्वसुखसञ्चयरूपत्वात् **शुभः**॥१४॥

महोत्सवो महाश्वासो महानन्दो महारतिः।
सत्कारः सत्कृतिर्भूतिः प्रमोदः श्रीर्यशस्पतिः ॥१५॥

महोत्सवेति। अविच्छिन्नसुखोत्सवत्वान्**महोत्सवः**। [4]प्राणापानस्फुटीभावेनावधूतीगत[5]प्राणत्वेन लोकोत्तरश्वासत्वान्[6]**महाश्वासः**। अवाच्याद्वयधर्मसुखप्रकाशनेन जगदानन्दरूपत्वान्**महानन्दः**। सर्वसत्त्वानां महासुखेनाप्यायनान्**महारतिः**। महासुखा-

---

१. च. विमुक्तिस्त्रय। २. क. शुभञ्चातिशुभञ्च, ग. शुभाशुभञ्चातिशुभं। ३. भो. Chos sTon Pa Sogs Paḥi (धर्मदेशनादि)। ४. क. प्राणायाम। ५. द. प्राणापानत्वेन। ६. क. महोश्वासः।

त्मकत्वेन पूजार्हत्वात्सत्कारः बोधिचित्तद्रवेण सर्वाङ्गनाडीपरिपूरक इत्यर्थः। परमार्थाभिषेकसत्काररूपत्वात्सत्कृतिः। अविच्छिन्नसुखत्वाद् भूतिः। कायवाक्चित्त-प्रहर्षयोगात्प्रमोदश्रीः। सुखं सौमनस्यं यशःस्वामित्वाद्यशस्पतिः ज्ञानकाय इत्यर्थः ॥ १५ ॥

[1]वरेण्यो वरदः श्रेष्ठः शरण्यः शरणोत्तमः।
महा[2]भयारिः प्रवरो निःशेषभयनाशनः ॥१६॥

वरेण्येति। सर्वाकारविशुद्धज्ञानमूर्तित्वाद्वरेण्यः प्रवरः। अविकल्पेन स्वाभिप्राय-परिपूरणाद्वरदः प्रभास्वरवरदातेति यावत्। शून्यताकरुणाभिन्नाग्रत्वात् **श्रेष्ठः**। विकल्पपरतन्त्राणां दीनानां **शरण्यः**, प्रभास्वरज्ञानोपदेशेन रक्षणात्। रागादीनां महारागोदयेन महासुखरूपापादनात् **शरणोत्तमः**। संसारवासना[3]भयनाशकत्वान्**महा-भयारिः**। अत एव **प्रवरः**। सर्वाकारवरोपेतशून्यता(तया) सर्वप्रपञ्चभयविदारणान्**निः-शेषभयनाशनः**। सत्त्वाशयवशेन शुद्धकायस्य नानारूपस्फुरणमिति यावत्। उक्तञ्च—

तस्माज्जातो न नष्टस्त्रिभवमपि गतः शुद्धकायो जिनस्य
सत्त्वार्थं सर्वदा न त्यजति जिनपतिः कर्मणा बाध्यते न।
एवं लोकेश्वरोऽहं त्रिभुवननिलये कर्मभूम्यां स्थितोऽर्कः
सत्त्वानां मार्गदाता नरकभयहरो नान्यदेवः कदाचित् ॥

(का० त० ५.१९४) ॥ १६ ॥

शिखी शिखण्डी जटिलो जटी मौण्डी किरीटिमान्।
पञ्चाननः पञ्च[4]शिखः पञ्चचीरकशेखरः ॥१७॥

शिखीति। अनुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावेन ज्वलितसहजचण्डाली शिखा तद्योगात् **शिखी**। चर्ममांसरक्तानि मातृसूर्यसम्बद्धानि। अस्थिस्नायुशुक्राणि पितृचन्द्रसम्बद्धानि तद्द्वययोगः शिखण्डस्तस्य निरावरणयोगेन योगाच्**छिखण्डी**। सकलकुटिलजटाबद्धवत् सर्वधर्माणामेकरसत्वेन योगाद् **जटिलः**। परमाक्षररूपेण सर्वभावैक[5]रूपी **जटी**। सकल-विकल्पक्लेशमुण्डनान्**मौण्डी**। [6]किरीटिं महोष्णीषं तद्योगात् **किरीटिमान्**। पञ्चतथा-गतात्मकधर्मकूटरूपत्वान्निरावरणीकृत[7]प्राणादिपञ्चवातत्वात् **पञ्चाननः**, पञ्चकुल-स्वभाव इत्यर्थः। आलोकालोकाभासालोकोपलब्धिप्रभास्वरधर्मधातुलक्षणः **पञ्चशिखा** यस्य स तथा। जाग्रत्स्वप्न[8]सुषुप्तितुरीयतुर्यातीतपञ्चचीरकशेखररूपत्वात्**पञ्चचीरक-शेखरः** ॥ १७ ॥

---

१. ङ. च. छ. वरण्यो। २. ग. घ. च. छ. ०भयारि। ३. द. भवभय, भो. rJigs Chen (महाभय)। ४. ग. शिखिः। ५. ख. रूपा। ६. क. किं तुर्या, ग. द. कीरीटि। ७. ख. प्राणाति। ८. क. स्वसुप्त, द. सुसुस।

महाव्रतधरो मौञ्जी ब्रह्मचारी व्रतोत्तमः ।
[1]महातपास्तपो[2]निष्ठः स्नातको गौतमोऽग्रणीः ॥१८॥

महाव्रतेति । स्कन्धधात्विन्द्रियादिनिःस्वभावीकरणं **महाव्रतं तद्धरतीति** तथोक्तः । [3]मुञ्जः, बोधिचि[4]त्तच्यवनं तद्योगान्**मौञ्जी** । अच्युतबोधिचित्तत्वादेव **ब्रह्मचारी** । अत एव **व्रतोत्तमः** । नित्यकमलकुलिशसंयोगाभ्यासेन बिन्दुमध्ये षट्श्वासक्षयीकरणेन तस्य बिन्दोः कुलिशमुखे [5]भक्षणलक्षणं **महातपो** यस्य स तथा । परमसुखपूर्ण[6]सर्वधर्मामुखीकरणात् **तपसि निष्ठा** यस्य स तथा । षडङ्गयोगपरिपूर्याऽचिन्त्यमहासुखन[7]द्यामनवरतस्नातत्वात् **स्नातकः** । परमा[8]क्षरसुखत्वादेव **गौतमः** शाक्यमुनिः सिद्धार्थः । सहजानन्दत्वाद**ग्रणीः** ॥ १८ ॥

ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मा ब्रह्मनिर्वाणमाप्तवान् ।
मुक्तिर्मोक्षो विमोक्षाङ्गो विमुक्तिः शान्तता शिवः ॥१९॥

ब्रह्मविदिति । प्रकृतिप्रभास्वरशून्यताकरुणाभिन्नज्ञानं ब्रह्म तत्तादात्म्येन वेत्त्यनुभवतीति **ब्रह्मवित्** । पञ्चाक्षररूपत्वाद् [9]हंकारः पञ्चतथागतात्मको ब्राह्मणस्तन्नादमा[10]गम्य यावदुष्णीषलयेन सर्वविकल्पवातं वाहयतीति **ब्राह्मणः** । आकाशा[11]सक्तचित्ततया प्रत्याहारादिषडङ्गसंक्षेपचतुरङ्गब्रह्मविहारचतुर्ध्यानचतुर्मुखस्वभावत्वाद् [12]**ब्रह्मा** । ब्रह्मणो निर्वाणं **ब्रह्मनिर्वाण**[13]मानन्दः । "आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्" इति वचनात् । **तदाप्तवान्** । शून्यताऽविनिर्भागवर्तित्वान्**मुक्तिः** । सम्य[14]गनुभवत्वेन यावदाकाशमविनश्वरसुखगामित्वान्**मोक्ष**श्चतुर्थार्थः । सम्यग् ज्ञानाग्निभस्मीकृतसत्त्वरजस्तमस्कन्धत्वेन **विमोक्ष** एवाङ्गं [15]सुरूपं यस्य स तथा । प्राकृतरागादिबन्धनविगमेन पञ्चकामोपभोगेन [16]महारागस्य सम्यक् परिज्ञानलाभाद्**विमुक्ति**र्**भगवान्** । उक्तञ्च—

रागेन बध्यते लोको रागेनैव विमुच्यते ।
विपरीतभावना ह्येषा न ज्ञाता बुद्धतीर्थिकैः ॥

(हे० त० २.२.५१)

---

१. क. महाताप । २. ख. निष्ठ । ३. क. ग. मौञ्जः । ४. भो. Mi hdZag Paḥo (अच्युतं) । ५. ख. द. क्षण । ६. भो. Saṅs rGyas Kyi Chos Tham Cad (सर्वबुद्धधर्मा) । ७. द. ०द्यामलविरत । ८. द. क्षण । ९. क. ख. वंकारः । १०. ख. गम्यया । ११. ख. द. सक्ति । १२. ख. 'ब्रह्मा' नास्ति । १३. ख. 'आनन्द' नास्ति । १४. द. अनुगतत्वेन । १५. क. स्वरूपं । १६. क. महाराग ।

येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः ।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फोटयेद्विषम् ॥
(हे० त० २.२.४६)

यथा पावकदग्धाश्च स्विद्यन्ते वह्निना पुनः ।
तथा रागाग्निद[1]ग्धाश्च स्विद्यन्ते रागवह्निना ॥
येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥
(हे० त० २.२.४९-५०)

अन्यत्र च —

तनु[2]तरी चित्ताङ्कुरको विषयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धैः ।
गगनव्यापी फलदः कल्पतरुत्वं कथं लभते ॥
केचिद् विषयांस्त्यक्त्वा केचिद् विषया[3]नबाधितान् कृत्वा ।
केचिद्विषयैरेव [4]तु नरवृषभाः [5]कुर्वते बोधिम् ॥ इति ।

ग्राह्यग्राहकादिचित्तोपप्लवानां प्रशान्तत्वाच्छान्तता । उक्तञ्च—"शान्तनिर्वाण-धातुः स्याद्" इति कर्ममुद्रासेवनया ।

पितरि प्राप्तं यत्सौख्यं तत्सुखं भुञ्जते स्वयम् ।
मरणं येन सुखेनेह तत्सुखं ध्यानमुच्यते ॥

शून्यताज्ञानस्वभावत्वात् सर्वतथागतज्ञानसत्त्वः शिवः, सदा सुकल्याणमिति कृत्वा अखण्डं [6]शुक्रं शिवः ॥ १९ ॥

निर्वाणं निर्वृतिः शान्तिः श्रेयो निर्याण[7]मन्तकः ।
सुखदुःखान्तकृन्निष्ठा वैराग्यमुपधिक्षयः ॥२०॥

निर्वाणमिति । भावाभावपरामर्शशून्यत्वान्**निर्वाणम्** । वाह्यानामभावान्निरालम्बः, तन्मात्रावलम्बनान्**निर्वृतिः** । [8]अकृत्रिमस्वसंवेद्य[9]महामुद्राप्रज्ञालोकरूपत्वाच्**छान्तिः** । अत एव **श्रेयः** । [10]निर्यान्ति सर्वसंबुद्धा अस्मिन्निति **निर्याणं** [11]महासुखम्, सर्वविकल्प-विगमेन पर्यन्तसुखत्वाद**न्तकः** । शुक्ररजश्च्यवनाभावेन प्रज्ञोपायाभ्यां सुखदुःखाद्वयी-भावात् **सुखदुःखान्तकृन्निष्ठा** । उक्तञ्च—

पापपुण्ण वेणिकण भु(तु) संगेलाथा किल किअ मण सुण्ण ॥ इति ।

---

१. क. ०श्चापि । २. क. तर । ३. द. निबोधितान् । ४. क. तु न । ५. ख. ग. ग. कुरुते । ६. क. ख. सुखं । ७. क. ख. ङ. अन्तगः । ८. ख. अकृतिम । ९. क. ग. 'महा' नास्ति । १०. ख. द. निर्याणम् । ११. भो. 'महा' नास्ति ।

प्राकृतवैराग्यविगमेनाच्युतमहारागरूपत्वाद्वैराग्यं भगवानेव। वासनाविगमेन अनन्तप्रकाशमुखेन सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानरूपत्वादुपधिक्षयः ॥ २० ॥

अजयोऽनुपमोऽव्यक्तो निराभासो [1]निरञ्जनः ।
निष्कलः सर्वगो व्यापी सूक्ष्मो बीज[2]मनास्रवः ॥२१॥

अजयेति। प्रभास्वरत्वेन विकल्पादिभिर्न जीयत इत्यजयः। महारागाच्युतत्वेन सर्वसुखोपमारहितोऽनुपमः। आलोकादिस्त्र्या(त्या)दिरूपाभावेनाप्रकृतिरूपोऽव्यक्तः। प्रभास्वरत्वान्निराभासः। आकाशवन्निर्लेपत्वान्निरञ्जनः। प्रतिपदादिपञ्चदशकलातीतत्वान्निष्कलो निरवयवः। ज्ञानाकाशरूपत्वात्सर्वगः। स्थिरचलस्वभावत्वाद्व्यापी। मनसाऽप्यगोचरत्वात्सूक्ष्मः। अनाभोगेन सर्वसुखजननाद् बीजं धर्मधातुज्ञानम्। प्रत्यात्मवेद्यत्वादनास्रवः ॥ २१ ॥

अरजो विरजो विमलो वान्तदोषो निरामयः ।
सुप्रबुद्धो विबुद्धात्मा सर्वज्ञः सर्ववित् परः ॥२२॥

अरजरि(इ)ति। रागविरागमध्यरागरजोऽभावादरजः महा[3]रागश्चतुर्थः। तथताविशुद्धिरूपत्वाद्विरजः। आगन्तुकमलाभावाद्विमलः। सर्वप्रकृतिविगमाद् वान्तदोषः। बहिर्विक्षेपव्याधिशातनान्निरामयः। अविपरीतप्रभास्वरावबोधात् सुप्रबुद्धः। रूपादिस्कन्धादीनां सहजतया स्वरूपावगमाद् विबुद्धात्मा। ज्ञानरूपेण सर्वधर्माणां [4]संस्थापनात्सर्वज्ञः। अनाभोगेन सर्वसत्त्वचित्तचरितपरिज्ञानात्सर्ववित्। अत एव परः ॥ २२ ॥

विज्ञानधर्मतातीतो ज्ञानमद्वयरूपधृक् ।
निर्विकल्पो निराभोगस्त्र्यध्वसंबुद्ध[5]कार्यकृत् ॥२३॥

विज्ञानेति। चक्षुरा[6]दिरवभावेनालयविज्ञानं विज्ञान[7]धर्मता तामतीतोऽतिक्रान्तः करुणाप्रबोधितशून्यतात्मक इत्यर्थः। सर्वप्रपञ्चातीतप्रभास्वरात्मकत्वाद् भगवानेव ज्ञानम्। उदारगम्भीरात्मकत्वात्तदेवाद्वयरूपधृक्। परमार्थज्ञानविकल्पस्याप्यभावान्निर्विकल्पः। उक्तञ्च—

परमार्थविकल्पेऽपि नावलोयेत पण्डितः।
[8]को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाऽप्यशुभेऽपि वा ॥ इति।
(आ० मा० ६)

---

१. ग. निरन्वयः। २. ग. घ. च. अनाश्रवः। ३. द. रागश्चेत्यर्थः। ४. द. स्थाप०। ५. ग. कायकृत। ६. क. द। ७. क. धर्मतोऽति, ग. धर्मतामतीतोऽति। ८. द. कोटि।

अनाभोगेन पञ्चकामोपभोगसुखत्वान्निर्गत **आभोगो** विकल्पप्रवृत्तिरस्य स तथा। उक्तञ्च—"पूर्वप्रणिधाना[1]हितसततानाभोगवाहि परकार्यम्" इति।

दिवारात्रिसंध्यासमाधित्रयभेदेन त्रिषु **अध्वसु** संभूताः कायवाक्चित्तनिर्माणसंभोगधर्मकायाख्या **बुद्धास्तेषां कार्यं** सत्त्वार्थरूपमहासुखानुभवनं **करोती**ति तथा॥ २३॥

अनादिनिधनो बुद्ध आदिबुद्धो निरन्वयः।
ज्ञानैकचक्षुरमलो ज्ञानमूर्तिस्तथागतः॥२४॥

अनादीति। धर्मधातुज्ञानरूपत्वेन न विद्येते **आदिनिधने** उत्पादनिरोधौ विरमक्षणच्युतिक्षणौ यस्य स तथा। सर्वपदार्थानां समतया[2]वगमाद् **बुद्धः**। सांक्लेशिकवैयवदानिकधर्माणां परमार्थतोऽभावेनाकारो निषेधार्थः। [3]**तेनादिबुद्धः**। एकक्षणपञ्चाकारविंशत्याकारमायाजालाभिसम्बोधिलक्षणं सुखमादिबुद्ध इत्यर्थः। **निरस्तो**[4]**ऽन्वयः** प्रज्ञोपायात्मको ग्राह्यग्राहकलक्षणो धर्मो येन स तथा। **ज्ञानमद्वय**[5]ज्ञानं तदेवैकमद्वितीयं **चक्षु**स्सर्वधर्मसुखदर्शित्वाद्यस्य स तथा। सकलविकल्पप्रहीणत्वा[6]**दमलः**। **ज्ञानं** शून्यताज्ञानं तदेव **मूर्त्तिः** सहजसुखावभासो यस्य स तथा। तथा तथता कर्मादिमुद्रा तत्र गतमानन्दादिसुखज्ञानं यस्य स **तथागतः**॥ २४॥

वागीश्वरो महावादी [7]वादिराड् वादिपुङ्गवः।
वदतां वरो [8]वरिष्ठो वादिसिंहोऽपराजितः॥२५॥

वागीश्वरेति। अनाहतध्वनिसमुल्लासेन सर्वचित्तक्षणरूपबुद्धानामाप्यायना**द्वागीश्वरः**। मन्थमन्थानयोगेन सर्वदा आकारमुल्लासित्वाद् वादिनाम्महनीयत्वा**न्महावादी**। मन्थनीयसर्वनाडीषु मन्थानरूपप्राणवायुप्रयोगेण बोधिचित्त[10]धारया सर्वेन्द्रियधातुपुष्टिकारीति यावत्। दिव्यमुद्राप्रयोगेण श्रावकादिनिर्वाणनिराकरणा**द्वादिराट्**। अद्वयज्ञानवादित्वाद् **वादिपुङ्गवः**। सम्यक् सर्वधर्मविबोधा**द्वदतांवरः**। सहजसुखानुभवरूपत्वा**द्वरिष्ठः**। सहजज्ञानधातुस्फरणेन विश्वार्थकरणा**द्वादिसिंहः**। सर्वकायवाक्चित्तैक्येनाच्युतबोधिचित्तत्वेन परैर्विकल्पोर्मिभिर्न जीयत इत्य**पराजितः**। अथवा पूर्वार्द्धेन हेतुत्वमुक्तमपरार्द्धेन चतुरानन्द[11]रूपं फलमुक्तम्॥ २५॥

---

१. ख. हितः। २. ख. विगमाद्। ३. क. ग. तेनानादि। ४. ख. ऽद्वयः। ५. ख. ज्ञान। ६. क. ग. दचलः। ७. ग. वादिराज। ८. ग. वारिश्रेष्ठः। ९. क. वाचामीश्वरः। १०. भो. hdZin Pa Ñid Kyi (धारणया)। ११. क. ग. रूपकं।

समन्तदर्शी प्रामोद्यस्तेजोमाली सुदर्शनः ।
श्रीवत्सः सुप्रभो दीप्तिर्भा[1]भासुरकरद्युतिः ॥२६॥

समन्तेति । समन्ताद्द्रष्टुं शीलं यस्यासौ **समन्तदर्शी** । समन्तभद्ररूपेण तद्ज्ञानलाभो, रागविनयसत्त्वापेक्षया । अद्वयधर्मधातुरूपेण महारागस्तत्र स्फरणात् । महासुखधारणया परमप्रामोद्यलाभात् **प्रामोद्यः** । तेजोमाला सहजचण्डालीज्योतिः-[2]प्रबन्धस्तादात्म्येन तद्योगात्**तेजोमाली** । **शोभनं दर्शनं** सहजसुखसाक्षात्कारो यस्य स तथा । शून्यताकरुणाऽभिन्नमहासुखज्ञानामृतपूर्णत्वाद् ज्ञानसागर इत्यर्थः । सकलजगदुत्पत्ति[3]कारणानन्यसाधारणसर्वज्ञताबीजप्ररोहभूततथागतलक्षणयोगाच्छ्**रीवत्सः** । शोभना प्रभा सहजज्ञानस्फरणात्मिका यस्य स तथा । अनन्तलोकधातुस्थितबुद्धाद्यवभासकरणाद्दीप्तिः । **भाभि[4]र्भासुकरा** पुञ्जरूपा यमान्तकादिक्रोधास्तत्स्फरणरूपा द्युतिस्तत्क्रोधविनयसत्त्वार्थं यस्य स तथा ॥ २६ ॥

महाभिषग्वरः श्रेष्ठः शल्यहर्त्ता निरुत्तरः ।
अशेषभैषज्यतरुः क्लेशव्याधिर्महारिपुः ॥२७॥

महाभिषगिति । रागविरागादि सर्वव्याधिशातनान्**महाभिषग्वरो**ऽविपरीतोपदेशभैषज्यदाता । आत्मीयमहासुखस्वरूपे परेषां नियोजनाच्छ्**रेष्ठः** । [5]सर्वविकल्पवायुशल्यशातनाच्**छल्यहर्त्ता** । अवाच्यसुख[6]स्वरूपत्वान्**निरुत्तरः** कल्पवृक्षवदविकल्पेन सर्वजगदनुग्रहस्फरणा**दशेषभैषज्यतरुः** । सकलक्लेशप्रतिपक्षप्रकृतिप्रभास्वरमहासुखाकारसाक्षात्का[7]रित्वात् **क्लेशव्याधीनां** रागविरागादिलक्षणानां **महारिपुर्**हन्ता ॥ २७ ॥

त्रैलोक्यतिलकः कान्तःश्रीमान् नक्षत्रमण्डलः ।
दशदिग्व्योमपर्यन्तो धर्मध्वजमहोच्छ्रयः ॥२८॥

त्रैलोक्येति । त्रैलोक्यं कायवाक्चित्तैकत्वं तस्य महासुखालंकृतत्वेन तिलकरूपत्वात्[8]**त्रैलोक्यतिलकः** । स्वाधिष्ठानरूपत्वात्सुन्दरः [9]**कान्तः** । [10]अद्वयस्वरूपपरमार्थसिद्धिश्रीयोगात् **श्रीमान्** । स्वसंवेद्यप्रकाशकमहासुखतया गगने नक्षत्रमण्डलवत् स्फरणान्**नक्षत्रमण्डलः** । आर्षत्वात् पुंस्त्वम् । अथवा उष्णीषे चतस्रो ललाटे षोडश एता विंशति नाड्यः श्लेष्मधातुप्रकोपिकाः । कण्ठे द्वात्रिंशद् हृदि अष्ट एता चत्वारि-

---

१. ग. भास्कर । २. ख. द. प्रासस्तादा० । ३. क. ख. द. कारणान्य । ४. क. भासुकरादीप्तिः, ग. भासुरकरादीप्त । ५. ख. सविकल्प, भो. 'सर्व' नास्ति । ६. क. ग. स्वस्वरूप । ७. ग. ०कारत्वात् । ८. क. त्रैलोक्यं । ९. ख. कान्त । १०. क. ग. अद्वयरूप ।

शन्नाड्यः पित्तधातुप्रकोपिकाः। नाभौ चतुःषष्टिनाड्यः, गुह्यकमलस्य बाह्यपरिमण्डले षोडश। एता अशीतिनाड्यो वायुधातुप्रकोपिकाः। [1]अस्यैव मध्यपरिमण्डले दश, गर्भपरिमण्डले षट्, यथासंख्यं सन्निपातप्रकोपिकाः। षट्चक्रनिरोधस्वभावः। एवं षट्पञ्चाशदधिकशतनाड्यो बालानां मृत्युदायिकाः। योगिनां सुखदायिकाः। षट्कुलनाडीभिः सार्द्धद्वाषष्ट्यधिकशतनाड्यः। एतासु च नाडीषु प्रत्येकनाड्यो दशवायुप्रचारेण स्कन्धधातुदशस्व[2]भावेन दशधा भवन्ति। एवं सर्वं दशगुणिता विंशत्यधिकषोडशशतसंख्या भवन्ति। [3]सप्तविंशतिनक्षत्रघटिकावाहिन्यः। एतन्निरोधात् श्रीमान्नक्षत्रमण्डल इति। **दशदिशा व्योम**प्रभास्वरत्वं तस्य स्फुटीभावेन **पर्यन्तः** परमार्थबिन्दुरूपः, स एव **धर्मध्वजमहोच्छ्रयो** ब्रह्मस्थान[4]गतत्वेन यस्य स तथा ॥ २८ ॥

जगच्छत्रैकविपुलो मैत्री[5]करुणमण्डलः।
पद्म[6]नृत्येश्वरः श्रीमान् रत्नच्छत्रो महाविभुः ॥२९॥

जगच्छत्रेति। सकलक्लेशतापापहारित्वेन कायवाक्चित्तैकलोलीभावरूप**जगदेवैकमद्वितीयं च्छत्रम्**। अविच्छिन्नमहासुखाधारार्पितचण्डाली[7]कनकदण्डोद्धृतत्वेन उष्णीषगतं रोमकूपपर्यन्तगतत्वेन **विपुलं** विस्तीर्णं यस्य स तथा। ज्योतिःस्वभावेन **मैत्री,** बोधिचित्तत्वेन **करुणा** तयो**र्मण्डं** सारं [8]**लातीति** स तथा। अवाच्यसुखबोधिचित्तत्वात**पद्मनर्तेश्वरः** वज्र[9]पद्मोल्लासप्रभुरित्यर्थः, अत एव **श्रीमान्**। चण्डालीज्वलनप्रयोगेण वज्रमणिशिखरे स्थितत्वात् सकलविकल्प[10]तापोपरोधात् सर्वाङ्ग[11]शीतलकरणाच्छत्रमिव च्छत्रो **रत्नच्छत्रः**। सर्वभावरूपत्वा**न्महाविभुः** ॥ २९ ॥

सर्वबुद्धमहा[12]राजः सर्वबुद्धात्म[13]भावधृक्।
सर्वबुद्धमहायोगः सर्वबुद्धैकशासनः ॥३०॥

सर्वबुद्धेति। **सर्वबुद्धानां** [14]**वैरोचनादीनां महाराजः** [15]वज्रसत्त्वो बोधिचित्तस्वभावत्वात्। **सर्वबुद्धानामात्मा** सर्वधर्मशून्यता स एव **भावः** सद्रूपस्त**द्धरती**ति स तथा, स्कन्धधात्वादिरूपसर्वतथागतहृदयविहारित्वात्। **सर्वबुद्धानां महायोगः** परमसुखाकारसमाधिरूपः। **सर्वबुद्धानां** स्कन्ध[धात्वा]दीनां **एकमेकत्वं** सुखेन **शास्ति** सम्पादयतीति तथा ॥ ३० ॥

---

१. क. अन्येव। २. ख. भावे। ३. ख. अष्ट। ४. ख. 'गतत्वेन' नास्ति।
५. क. ख. ग. च. छ. करुणा। ६. ग. घ. नर्त्तेश्वर। ७. द. कलंक। ८. क. ग. लाभोति।
९. द. गर्भोल्लास। १०. ख. द. तापाप०। ११. द. शीतली। १२. क. ख. च, छ. राजा।
१३. च. भव। १४. ख. वैरोचनानां। १५. ख. वज्रसत्वो यो।

वज्ररत्नाभिषेकश्रीः सर्वरत्नाधिपेश्वरः ।
सर्वलोकेश्वरपतिः सर्ववज्रधराधिपः ॥३१॥

वज्ररत्नेति । [1]**वज्ररत्नोऽभिषेकः** सहजानन्दसौख्यं स एव **श्रीस्तद्रूपत्वाद्** भगवानपि तथा, **सर्वरत्नाधिपस्य** बुद्धस्ये**श्वरः**। शिरसि धृतत्वात् **सर्वलोकानां** बुद्धबोधिसत्त्वानां ईश्वरो वज्रसत्त्वः स एव **पतिः** सर्वभावमयत्वात्। कायादिबिन्दुत्रयधारिणः **सर्व-वज्रधरास्तेषामधिपतिः** शून्यताकरुणाभिन्नचतुर्थबिन्दुः ॥ ३१ ॥

सर्वबुद्धमहाचित्तः सर्वबुद्धमनोगतिः ।
सर्वबुद्धमहाकायः सर्वबुद्ध[2]सरस्वती ॥३२॥

सर्वबुद्धेति । **सर्वबुद्धानाम**प्रतिघचित्तत्वेन **महाचित्त**रूपत्वात्तथा । **सर्वबुद्धानां मनसि** अचित्तचित्ते **गति**र्लयस्तादात्म्यं यस्य स तथा, तथोक्तः। धर्मधातुरूपज्ञान-कायत्वेन सर्व[3]धर्मव्यापनात् **सर्वबुद्धमहाकायः**। सर्वबुद्धानां कायवाक्चित्तानां महा-सुखामृतप्रवाहनिमज्जनाधारमहासुखपूर्णाचिन्त्यनदीरूपत्वात् **सर्वबुद्धसरस्वतिः** (ती) । आर्षत्वाल्लिङ्गव्यत्ययः सर्वबुद्धमयी सरस्वती अचिन्त्य[4]सुखा नदी यस्य [5]स तथा ह्रस्वत्वम् ॥ ३२ ॥

वज्रसूर्यमहालोको वज्रेन्दुविमलप्रभः ।
विरागादिमहारागो विश्ववर्णोज्ज्वलप्रभः ॥३३॥

वज्रसूर्येति । वज्रसूर्यस्य ज्ञानमण्डलस्य **महानालोकः** सकलत्रैधातुकावभासो मणिवरटकान्तःस्थितचित्तक्षणलक्षणो यस्य स तथा । उक्तञ्च—

वज्रसूर्यञ्च यच्चित्तं मण्यन्तर्गतमीक्षयेत् ।
ज्ञानमण्डलाकारेण त्रैधातुकावभासतः ॥ इति ।

अनाभोगेनाद्वयचित्त इति यावत्। **वज्रेन्दुर्ज्ञानेन्दुः** सुचन्द्रः तस्य **विमला** सकलविकल्पापगता **प्रभा** त्रैलोक्यावभासो यस्य स तथा। चन्द्रसूर्यराह्वग्निरजः-शुक्रचित्तज्ञानैकयोगः पदद्वयेनोक्त इत्यर्थः। **विरागस्य** विरक्तिलक्षणस्या**दिर्महारागः** सहजानन्दात्मकश्चतुर्थस्तादात्म्येन यस्य स तथा। **विश्ववर्णस्य** नानावर्ण**स्योज्ज्वला** सकलविकल्पातंकविधमनी **प्रभा** यस्य स तथा। इदं च गुरुवक्त्रम्। उक्तञ्च—

---

१. क. वज्ररश्च्योभि०, ख. वज्ररत्नेऽश्योभि०, द. वज्ररत्नाभिषेकः। २. ख. च. छ. सरस्वतिः, ङ. ०तीः। ३. द. धर्मावबोधनात् । ४. क. ख. ग. 'सुखा' नास्ति। ५. क. ख. द. वा ।

दृष्टे बिम्बे प्रकुर्यात् प्रतिदिनसमये प्राणवायोर्निरोधं
यावद्वै भ्राम्यमाणं स्वतनुपरिवृतं दृश्यते रश्मिचक्रम् ।
षण्मासैः स्पर्शहीनं व्रजति समसुखं मार्गचित्तं यतीनां
रागा[1]रागान्तगाद्यं क्षणमपि च विभो वर्द्धते श्वाससंख्यम् ॥
ओद्रा ज्वालान्तराले विरमसहजयोर्ज्ञानविज्ञानमध्ये
निद्रा घूर्माभिसन्धौ कुलिशकमलयोर्यत्सुखं द्वन्द्वयोगात् ।
वृद्धिं तस्य प्रकुर्याद् गुरुनियमवशाद् बर्द्धते नात्र चित्रं
हत्वा [2]क्लेशांश्च मारान् विशति जिनपतिं वर्षयोगात्सुयोगी ॥ इति ।
(का० त० ५.११७-११८)

उक्तञ्च **विमलप्रभायाम्** "रागो बोधिचित्तस्य शुक्लपक्षस्य पञ्चदशकलाः विरागः कृष्णपक्षस्य पञ्चदशकलाः। तन्मध्ये सहजानन्दः षोडशीकला सर्वधातूनां षोडशीकला। सर्वधातूनां समाहारः समाजः संवर" इति ॥ ३३ ॥

सम्बुद्धवज्रपर्यङ्को बुद्धसंगीतिधर्मधृक् ।
बुद्धपद्मोद्भवः श्रीमान् सर्वज्ञज्ञान[3]कोषधृक् ॥३४॥

सम्बुद्धेति। **सम्बुद्धवज्रं** प्रबुद्धकुलिशाग्रं **पर्यङ्को** वामदक्षिणपुटवाहभङ्गेनासनं यस्य स तथा। बुद्धसंगीतिस्त्रैधातुकव्यापी अनाहतध्वनिः सैव धर्मस्तद्धारणाद् **बुद्धसंगीतिधर्मधृक्**। कायवाक्चित्तज्ञानबिन्दुधृग् वा "वज्रपर्यंकतश्चित्तं (वज्रसूर्यं च यच्चित्तं) मण्यन्तर्गतमीक्षयेद्" इति वचनात्। बुद्धं निर्विकल्पज्ञानं तदेव क्लेशवासनामलाननुलिप्तत्वान्महासुखाकारत्वाच्च पद्मं महामुद्रा तद् उद्भवतीति **बुद्धपद्मोद्भवः**। अत एव **श्रीमान्**। सर्वाकारात्मकं स्वसंवेद्यज्ञानं सर्वज्ञज्ञानं तदेव कोशः सर्वधर्माणां तदन्तर्गमात् तद्धारणात् **सर्वज्ञज्ञानकोशधृक्** ॥ ३४ ॥

विश्वमायाधरो राजा बुद्धविद्याधरो महान् ।
वज्रतीक्ष्णो महाखड्गो विशुद्धः परमाक्षरः ॥३५॥

विश्वमायेति। वकारोपरि रजो विशुद्ध [4]वशब्दरूपार्द्धचन्द्रोपरि बिन्दुस्वरूपं सुखं बोधिचित्तमनाहतरूपनादान्वितं **विश्वमायां** पञ्चकामोपभोगादिरूपां **धारयती**ति तथा। ज्ञानज्योति(ती) रूपतया राजत इति **राजा**। बुद्धविद्यां चतुर्बिन्दुलक्षणां धरतीति **बुद्धविद्याधरः**। अत एव **महान्**। ऊर्णागतवैमल्यरूपतया सहजज्ञानरूप[5]त्वाद् **वज्रतीक्ष्णः**।

---

१. ख. रागान्त ग्राह्यं। २. ख. क्लेशाश्च। ३. क. ख. कोष। ४. क. विसद्गुरुणाद्वं, भो. Ba Tshig Drag Gi No Bo (वशब्दरूपा।) ५. ख. ०त्वाद्व रतीति।

निष्पन्दरूपत्वेन विकल्पच्छेदना[1]न्महाखड्गः। [2]पुरुषाकाररूपत्वाद्विशुद्धः। विपाकरूपेण सर्वैकरसत्वात् **परमाक्षरः** ॥ ३५ ॥

दुःखच्छेद[3]महायानो वज्रधर्ममहायुधः।
जिनजिग् वज्र[4]गाम्भीर्यो वज्रबुद्धिर्यथार्थवित् ॥३६॥

दुःखच्छेदेति। दुःखं च्छिनत्तीति तथा तं **महायानं** मार्गसत्यं यस्य स तथा। **वज्रधर्मो** ज्ञानधर्मः। स एव **महायुधं** यस्य स तथा। जिनान् अक्षोभ्यादीन् जनयतीति तेनासौ **जिनजिग्**, विमलनिराभासचित्तावबोधरूप इत्यर्थः। **वज्रस्य** सम्यग्ज्ञानस्य [5]**गाम्भीर्यं** [6]ग्राह्यादिविकल्परहिता प्रज्ञा स्वभावो यस्य स तथा। वज्रमार्गाच्युतत्वेन **वज्रबुद्धिः**। फलस्वरूपस्फुटीभावाद् **यथार्थवित्** ॥ ३६ ॥

सर्वपारमितापूरी सर्व[7]भूमिविभूषणः।
विशुद्धधर्म[8]नैरात्म्यः सम्यग्ज्ञानेन्दुहृत्प्रभः ॥३७॥

सर्वपारेति। पूर्वं ज्ञानसम्भारा उक्ताः, इदानीं पुण्यसंभार उच्यते। पूर्वोक्ता दानादिपारमिताः पूरयतीति **सर्वपारमितापूरी**। पूर्वोक्त भूमिमण्डल[9][विभूषण] त्वात् **सर्वभूमिविभूषणः**। **विशुद्धधर्मस्य** चित्त[10]प्रतिवेधलक्षणस्य **नैरात्म्यं** निराभासीकरण-धर्मतारूपं प्रकृतिप्रभास्व[11]रम्, तेन समुत्पन्नः **सम्यग्ज्ञानेन्दुः** सहजानन्दश्चन्द्रस्तस्य **हृत्प्रभा** महासुखाकारा यस्य स तथोक्तः ॥ ३७ ॥

मायाजालमहोद्योगः सर्वतन्त्राधिपः परः।
अशेषवज्रपर्यङ्को [12]निःशेषज्ञानकायधृक् ॥३८॥

मायाजालेति। चन्द्रसूर्यैकत्वेन **मायाजाले** त्रैलोक्यमहासुखस्फुटीभावेन समु-(महो)द्योगो यस्य स तथा। सर्वतन्त्राणां योगादिमहातन्त्राणां तस्यैव प्रतिपाद्यत्वात् **सर्व**[13]**तन्त्राधिपः स च परः**। प्राणापानोपरोधादद्वयीभूताशेषसमाधिवज्रमयःपर्यङ्को यस्यासावशेषवज्रपर्यङ्कः। निःशेषाणां बुद्धानां ज्ञानकायं परमाद्वयीभूतं धारयतीति **निःशेषज्ञानकायधृक्** ॥ ३८ ॥

---

१. ख. द. महासुख। २. क. ग. पुरुषकार। ३. क. ख. घ. ङ. च. महायान। ४. ख. ग. घ. ०गाम्भीर्य। ५. क. गाम्भीर्यः। ६. द. बाह्या०। ७. क. भूमी। ८. ग. घ. ङ. च. छ. नैरात्म्य। ९. भो. rGyan Gyi Phyir (भूषणात्) पाठोऽयं भोटानुसारी। १०. क. ग. प्रकृति। ११. ख. ०रत्वेन। १२. अत्र 'ख' पत्र १३अनुपलब्धः। १३. क. मन्त्रा।

समन्तभद्रः सुमतिः क्षितिगर्भो जगद्धृतिः ।
सर्वबुद्धमहागर्भो विश्वनिर्माणचक्रधृक् ॥३९॥

समन्तेति । धूमादिनिमित्तस्फुटीभावेन [1]**समन्ततो भद्रं** सहजानन्दं ज्ञानं यस्य स तथा । सर्वविकल्पाभावेन सम्बोधिप्राप्तत्वेन शून्यताकार**शोभना मति**र्यस्य स तथा । क्षितिशब्देन पञ्चभूतोपलक्षणात् क्षितिगर्भो हेतुः **क्षितिगर्भः** सहजानन्दबिन्दुः, अत एव **जगद्धृतिः** सकलजगदाधारः । सर्वबुद्धानां [2]त्र्यध्ववर्त्तिनां षडङ्गयोगभावकानां उत्पत्ति-हेतुत्वात् **सर्वबुद्धमहागर्भः** सहजबोधिचित्तवज्रः । लौकिकलोकोत्तरदेवतास्फरणं विश्वनिर्माणं तदेव चक्रं मण्डलं तद्धारयतीति **विश्वनिर्माणचक्रधृक्** शुक्रजोद्वयैकलोली-भूतबाह्याध्यात्मिककायवाक्चित्तधर इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

सर्वभावस्वभावाग्र्यः सर्वभावस्वभावधृक् ।
अनुत्पादधर्मा विश्वार्थः सर्वधर्मस्वभावधृक् ॥४०॥

सर्वभावेति । सर्वेषां भावानां स्वभावः शुद्धतथागतज्ञानकायः स चासौ अग्र्यश्च **सर्वभावस्वभावाग्र्यः** । धर्मसम्भोगाद्वयीभूतनिर्माणलक्षणानां सर्वभावानां स्वभावं नैरात्म्यं धारयतीति **सर्वभावस्वभावधृक्** । [3]**अनुत्पादो** निःस्वभावस्तत्त्वं **धर्मो** यस्य स तथा । **विश्वेषामर्थः** साध्योऽभिलषणीयः । सर्वधर्माणां स्कन्धधात्वायतनादीनां स्वभावं यथाभूतपरिज्ञानं धारयतीति **सर्वधर्मस्वभावधृक्** ॥ ४० ॥

एकक्षणमहाप्राज्ञः सर्वधर्माव[4]बोधधृक् ।
सर्वधर्माभिसमयो भूतान्तमुनिरग्रधीः ॥४१॥

एकक्षणेति । **एको**ऽद्वितीयः **क्षण**स्तुर्यातीतश्चतुरानन्दैकमूर्त्तिः सहजसम्बोधि-लक्षणः तत्र **महाप्राज्ञः** । षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासमहासुखैकलयबुद्धिमान् इत्यर्थः । [5]अनेनापि चतुर्थानन्दश्रीर्मञ्जुश्रीः भगवान् । उक्तञ्च—

दम्भोलिबीजश्रुतधौतशुद्धं पाथोजभूताङ्कुरभूतपुष्टि ।
तुरीयशस्यं परिपाकमेति स्फुटञ्चतुर्थं विदुषोऽपि गूढम् ॥ इति ।
(तत्त्वरत्नावलोक–१७)

सर्वधर्माणां सर्वश्वासा[6]नामवबोधसुखैकलयावगमं धारयतीति **सर्वधर्माव-बोधधृक्** । **सर्वधर्माः** सत्त्वरजस्तमांसि [7]**अभिसमीयन्ते** साक्षात् क्रियन्ते सहजचन्द्रो-

---

१. द. समन्तभद्रं । २. ग. द. अध्ववर्त्तिनां । ३. द. भगवान्, मञ्जुश्रीः श्रीमताम्बरः' इत्यधिकम् । ४. ग. घ. रोधधृक् । ५. ख. योऽपि । ६. ख. नामावबोधि० । ७. क. अति० ।

[illegible]त्वेन येन स तथा। भूतं सत्यं तथता तस्यान्तःप्रकर्षः फलावस्था तस्य यथावन्-मननाद् भूतान्तमुनिः। अग्रधीर्वज्राग्रसुखाव[1]बोधनात् ॥४१॥

स्तिमितः सुप्रसन्नात्मा सम्यक्संबुद्धबोधिधृक्।
प्रत्यक्षः सर्वबुद्धानां ज्ञानार्चिः सुप्रभास्वरः ॥४२॥

इति [2]प्रत्यवेक्षणज्ञानगाथाः द्वाचत्वारिंशत्।

स्तिमितेति। सहजानन्दसुखाप्यायमानत्वात् **स्तिमितः**, समाधिस्फुटीभावेना-चलत्वात् **सुष्ठु प्रसन्न आत्मा** स्वरूपं यस्य स तथा। वज्ररत्नान्तर्गतं चित्तं **सम्यक्संबुद्धः** तस्य **बोधि**सुखज्ञानं [3]तद्धारयतीति तथा। स्वसंवेद्यसहजज्ञानप्रियतया **सर्वबुद्धानां** त्र्यध्ववर्त्तिनां **प्रत्यक्षः**। **ज्ञानार्चिषा** प्रकृतिप्रभास्वरनिरालम्बज्ञानेन **सुप्रभास्वरो**ऽन-न्तानन्तबुद्धक्षेत्रप्रकाशकः ॥४२॥

इति उष्णीषादिमणिशिखरान्तस्थानसप्तकेषु निरावरणीकृतषट्स्कन्ध-
धात्विन्द्रियविषयकर्मेन्द्रियक्रियाषट्कविशुद्ध्याद्वाचत्वारिंश-
च्छ्लोकया प्रत्यवेक्षणाज्ञानव्याख्या ॥ ८ ॥

---

१. क. बोधवान् २. क. प्रत्यवेक्षणा। ३. ख. द. तां धारयतीति।

समताज्ञानम्

इदानीमिष्टार्थसाधक इत्यादिना निरावरणवेदनास्कन्धरत्नसम्भवरूपेण समताज्ञानमुखेन तदेव सहजज्ञानमाह—

[1]इष्टार्थसाधकः परः सर्वापायविशोधकः ।
सर्वसत्त्वोत्तमो नाथः सर्व[2]सत्त्वप्रमोचकः ॥१॥

इष्टार्थसाधकेति । सर्वाशापरिपूरकपरमाक्षरज्ञानरूपत्वादिष्ट[3]श्चासावर्थश्चेति इष्टार्थः, तस्य साधको निष्पादकः वज्र[4]पद्मानुभूतबिन्दु[5]त्रयातीतत्वात् **परः**। **सर्वापाय**स्य संसारवासन(ना)या **विशोधको** महासुखैककर्त्ता । **सर्वसत्त्वानां** कायवाक्-चित्तानामु**त्तमो** ज्ञानकायः, अत एव **नाथो** अनाथानां महामुद्रा पद्मप्रकाशकत्वेन **सर्वसत्त्वानां प्रमोचकः** ॥१॥

क्लेशसंग्रामशूरैकः [6]अज्ञानरिपुदर्पहा ।
धीशृङ्गारधरः श्रीमान् वीरबीभत्सरूपधृक् ॥२॥

क्लेशसंग्रामेति । सर्वसत्त्वचरितक्लेशानां सम्यग्ज्ञानशस्त्रेण निकृन्तनात् । **क्लेशसंग्रामे एको**ऽद्वितीयः **शूरः** । आर्षत्वादन्यथाशब्दविन्यासः । अज्ञानं अविद्या सैव रिपुश्च्युतिः दुःखदायित्वात् तस्य दर्पो वहिर्विक्षेपः, तन्निराभासीकरणा**दज्ञानरिपुदर्पहा** । चित्तमात्रस्यापि निरसनेनापगतक्लेशोपक्लेशत्वाद् **धीः** । धर्मता सङ्केतेन **शृङ्गारः** सहजानन्दशुक्रस्त**द्धारणा**त्तथा । उष्णीषादुच्छलितबोधिचित्तधारया सर्वाङ्गाप्यायनेन लौकिकलोकोत्तरसम्पत्तिमान् **श्रीमान्** । उपायस्य [7]करुणाङ्गत्वेन वीररसत्वं प्रज्ञायाः शून्यताङ्गत्वेन बीभत्सरसत्वं तद्द्वैधरूपं महासुख**वीरबीभत्सरूपं तद्धरती**ति तथा ॥ २ ॥

बाहुदण्डशताक्षेपपदनिक्षेपनर्त्तनः ।
श्रीमच्छतभुजाभोगगगनाभोगनर्त्तनः ॥३॥

बाहुदण्डेति । **बाहुदण्डः** प्राणापानवायुदण्डद्वयं तस्य वामदक्षिण[8]नासापुटद्वयमण्डलसंक्रान्तिभेदेनानन्त्यात् **शतम्**, तस्या**क्षेप** आकृष्टिः मध्यमाप्रवेशेन कुम्भकावस्था

---

१. च. ग. घ. इष्टार्थः । २. क. सत्त्वः । ३. क. ख. द. स्वासावर्थ । ४. क. ग. पद्मार्थभूत, भो. Padmaḥi Naṅ Du Chud Paḥi (पद्मान्तर्भूत) । ५. ख. तया । ६. च. नोज्ञान । ७. ख. द. करुणांशत्वे । ८. क. नाशा ।

[illegible] पदे महासुखपदे [1]निक्षेपो लयीकरणं तेन तत्र वा नर्त्तनं सुखोल्लासो अस्य स तथा। परमाक्षरविद्धश्वासगणत्वेन श्रीमच्छतमद्वयज्ञानस्फरणानन्त्यं तद् भुंक्त इति श्रीमच्छतभुजो ज्ञानकायस्तस्याभोगो विस्तारः परिपुष्टिरस्य स तथा। सर्वभावानां शून्यतास्वभावेनावबोधाद् गगनस्याभोगो व्यापित्वम्। तत्र महासुखेन नर्त्तनं प्रवर्त्तनं अस्य स तथोक्तः ॥ ३ ॥

एकपादतलाक्रान्तमहीमण्डतले स्थितः।
ब्रह्माण्डशिखरा[2]क्रान्तपादाङ्गुष्ठनखे स्थितः ॥४॥

एकपादेति। एकपादतलेनाद्वितीयप्रतिष्ठारूपेणाक्रान्तं स्थिरीकृतमध्यसितम्। महीमण्डलतले [3]नाभ्यधो वज्रमणिशिखरे स्थितं रजो बोधिचित्तं येन स तथा। आर्षत्वाल्लकारे लोपे न निर्देशः। अथवा [4]मही शून्यता शुक्रबीजधारणात्, तस्या मण्डः सार इति योज्यम्। ब्रह्माण्डशिखरं ब्रह्मरन्ध्रं तदाक्रान्तो योऽसौ पादाङ्गुष्ठनखो [5]विधृतिकर्णोष्णीषगतवज्रसंबन्धि(बोधि)चित्तं तत्र स्थितोऽद्वय[6]योगेन —

एकं पदं वज्रमणौ रजोऽर्के उष्णीषशुक्रे शशिनि द्वितीयम्।
न्यस्तं सदाच्छेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस्त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य ॥
(वि० प्र० १, पृ० ३)

भर्तुर्बोधिचित्तवज्रस्य श्रीकालचक्रादिरूपस्य पद्यते गम्यते येन तत्पदं ज्ञानमक्षरं न्यस्तं आबोधितम्। अविद्या[7]निरोधाय वज्रमणावप्रतिष्ठितनिर्वाणभूमौ रजोऽर्के महीमण्डलतले ज्ञानधातौ एकं पदं दक्षिणमित्येकपादतलाक्रान्तः। उष्णीषभवसुखातिक्रान्ते शुक्रे शशिनि पादाङ्गुष्ठनखे [8]प्राक्कामकलोदयात्मके विज्ञानधातौ द्वितीयम्। यद् वाममिति ब्रह्माण्डशिखराक्रान्तः। सदा कालत्रये, क्लेशावरणातिक्रान्तत्वादविद्याज्ञानकर्तिकयाच्छेद्यम्। विज्ञानधर्मतातीतत्वाद् ग्राह्यग्राहककोट्याऽभेद्यम्। महासुखरूपत्वादिष्टम्। कृतकृत्यस्थले[9] मणौ स्थितं लोकाचारोज्झितत्वात्त्रिलोकमहितम्। संसारपारकोटावुष्णीषे स्थितमिति। श्रीआदिबुद्धे चोक्तम्—

प्राणायामानलेन द्रवमपि शशिनः पानकं मद्यपानम्
उष्णीषेऽङ्गुष्ठपर्वाद् व्रजति तिथिवशात्पूर्णिमान्तं स्वचित्तम्।
उष्णीषादङ्गुलीषु व्रजति पुनरिदं कृष्णपक्षावसाने
सा चर्या योगिनो वै प्रतिदिनसमये त्विष्टसिद्धिः प्रदा या ॥ इति ॥ ४ ॥
(का० त० ४.१२५)

---

१. क. निक्ष्येपो। २. ख. आक्रान्तः। ३. क. नास्य। ४. ख. महा। ५. क. ग. विवृत्ति। ६. ख. योगिन। ७. ख. द. निधाय। ८. क. ख. प्राक्कमलोदया। ९. ख. स्थलो।

एकार्थोऽद्वयधर्मार्थः　　परमार्थोऽ[1]विनश्वरः ।
नानाविज्ञप्तिरूपार्थश्चित्तविज्ञानसंततिः　　॥५॥

एकार्थेति । **एकार्थः** परमार्थरूपतया भेदाभावात् । चन्द्रसूर्ययोर्मध्यमाप्रवेशे द्वयधर्माभावाद**द्वयधर्मार्थः** । ज्ञानचन्द्रप्रकाशार्थः सर्वासङ्गभङ्गात्**परमार्थः** । आकाशतुल्यध्यानबिन्दुरूपत्वाद**विनश्वरः** । [2]आकाशवद् धर्मतारूपेणालयक्लिष्टमनः षट्प्रवृत्तिविज्ञानादिरूपोऽनुपमधर्मार्थो दृश्यते भगवानिति **नानाविज्ञप्तिरूपार्थः** । सर्वविकल्पतमोऽस्तमनतया चित्ताचित्तकरुणासन्ततिरूपत्वात् **चित्तविज्ञानसंततिः** ॥ ५ ॥

अशेषभावार्थरतिः　　शून्यतारतिरग्रधीः ।
भवरागाद्यतीतश्च　　भवत्रयमहारतिः ॥६॥

अशेषभावेति । **अशेषा भावा** एव स्फुटीभूतसहजतया **अर्थाः**, तेभ्यो **रति**रनुपमप्रीतिरस्य । उक्तञ्च—

एते ते विषयास्त एव मनसः पञ्च प्रवृत्तिक्षणाः
तान्येवोत्सुकवन्ति चेन्द्रियबलान्युत्क्लेशबीजानिलः ।
वन्द्यः सद्गुरुपादपङ्कजरजः स्पर्शः स्वयं यद्वशा-
देतन्मामकसारमित्यहरहः स्पन्दन्ति तत्त्वामृतम् ॥

सर्वधर्मस्वभावतथतावगमाच्छून्य**तारतिः** । उभयान्तापाताद**ग्रधीः** । रागविरागमध्यरागप्रकृतिविगमाद् **भवरागाद्यतीतः** । **भवत्रये** कायवाक्चित्तैकलोलीभावे महासुखे **महती** या प्राकृतमयी **रति**रस्य स तथा ॥ ६ ॥

[3]शुद्धः शुभ्राभ्र[4]धवलः　　शरच्चन्द्रांशुसुप्रभः ।
बालार्कमण्डलच्छायो　　महारागनखप्रभः ॥७॥

शुद्धशुभ्रेति । वज्रसत्त्व[5]स्वरूपत्वेनाविद्यामलविगमाच्छुद्धः । शरदभ्रशुभ्रत्वा[6]द्विशुद्धसर्वधातुद्रवत्वाच्च **शुभ्राभ्रधवलः** । वासनामात्रस्याप्यभावाच्छ**रच्चन्द्रांशु**वच्छोभना **प्रभा** यस्य स तथा । महारागानुगतः प्राणापानाद्वयसंघट्टवशात्तदात्मीयं चित्तं **बालार्कमण्डल**वदाभासत इति बालार्कमण्डलस्येव**च्छाया** कान्तिर्यस्य सहजचण्डालीज्योतिषाश्लिष्टत्वाद्वा । महासुखेन पादाङ्गुष्ठे नखपर्यन्तव्यापनाद् **महारागस्य नखपर्यन्तं** तेषु **प्रभा** छाया सुखव्याप्तिरस्य बोधिचित्तराजस्य स तथा ॥ ७ ॥

---

१. च. छ. विनेश्वरः । २. क. आकाशधर्मता । ३. च. बुद्ध । ४. ग. घ. ङ. धवल । ५. क. ग. 'स्व' नास्ति । ६. ग. विशुद्धे ।

इन्द्रनीलाग्र[1]सच्चीरो महानीलकचाग्रधृक्।
महामणि[2]मयूखश्रीर्बुद्धनिर्वाणभूषणः ॥८॥

इन्द्रनीलेति। सुविशुद्धसाहजिकनीलमणिस्फुरणाद् बोधिचित्त**मिन्द्रनीलम्**, तस्याग्रं महासुखं तस्य **सत्** प्रशस्तं चीरमिव **चीरं** ज्योतिरस्य स तथा। निरावरणीकृतकुटिलप्रकृतिकत्वेन **महानीलकचाग्रान्** अद्वयचित्तवज्रधरान् सर्वाङ्गं परि[3]पूर्य हृदयवायूच्छलितत्वेन नीलत्वाद् उष्णीषे **धरती**ति तथा। यावदाकाशं शून्यताकरुणामहासुखमवलम्बनं करोतीत्यर्थः। पृथिवीमण्डलोच्छलितत्वेन महारागत्वेऽपि पीतत्वान्महामणिरिव प्रभयाऽऽवृत्या वा महामणेः सकाशादुत्थिता महासुख**मयूखश्री**रस्य स तथा। उक्तञ्च—

सुखं पीतं सुखं रक्तं सुखं कृष्णं सुखं सितम्।
सुखं श्यामं सुखं सर्वं सुखाकारं महज्जगत् ॥ इति।
(हे० त० २.२.३२)

तेन त्रैलोक्यं महासुखं भगवतो रूपमित्युक्तम्। **बुद्धनिर्मा(र्वा)णं** सर्वधर्मसुखमयबुद्धरूपतास्फरणं **भूषणम**लंकारो यस्य स तथा ॥ ८ ॥

लोकधातुशताकम्पी ऋद्धिपादमहाक्रमः।
महास्मृतिधरस्तत्त्वश्चतुःस्मृतिसमाधिराट् ॥९॥

लोकधात्विति। सहजमहासुखस्फरणेन **लोकधातुशतम**नन्तलोकधातुमनु**कम्पयितुं** शीलं यस्य स तथा। आर्षत्वात् नु शब्दस्याप्रयोगः। रागविरागनिरोधे कायवाक्चित्तज्ञानस्फरणेन सर्वप्रणिधानपरिपूरणाद् **ऋद्धिपादमहाक्रमः**। अनवरतसर्वाकारवरोपेत[4]शून्यतानिमज्जनं महास्मृतिस्तद्धारणान्**महास्मृतिधरः**। भावाभावैकरूपतत्त्वयोगा**त्तत्त्वः**। हसितेक्षणपाण्यवाप्तिद्वन्द्वचतुःसमाधिराजनाच्**चतुःस्मृतिसमाधिराट्** ॥ ९ ॥

बोध्यङ्गकुसुमामोदस्तथागतगुणोदधिः।
अष्टाङ्गमार्गनयवित् सम्यक्संबुद्धमार्गवित् ॥१०॥

बोध्यङ्गेति। वैरोचनादिषट्तथागतानां महासुखेन सहैकलोलीभूतत्वेन सप्तावर्तरूपत्वाद् भुक्तपीताद्यन्नपानादिषड्रसपाकतो मूर्च्छाजारणादिना रसरुधिरमांसचर्मनाडीअस्थिमज्जारूपतया वा सप्तावर्तरूपत्वात् सप्तबिन्दु**बोध्यङ्गकुसुमानामामोदो** महासुखोल्लासो यस्य स तथा। [5]सप्तावर्त्तन्तु खाद्यते[6]ऽच्युती क्रियत इत्ययमेवार्थः।

१. ग. संच्चीरो। २. 'ख' प्रति पुनः प्रारम्भो जायते। ३. ख. द. पूर्ण। ४. ख. द. शून्यतामिति मज्जनं। ५. ख. सप्तावर्तनं। ६. द. च्युति।

उक्तञ्च—

स्कन्धधात्वादिके दग्धे पञ्चमण्डलवाहके।
विषयेन्द्रियनिरुद्धे चानन्दाद्ये समुच्छ्रिते॥

स्रावति (यति) बिन्दुकानिन्दो [1]हूंकारो मूर्ध्निसंस्थितः।
ललाटे चन्द्रतः सूर्ये कण्ठाद्[2]द्रवो ततो हृदि॥

नाभौ चण्डालिकाविष्टं गुह्य[3]चक्रे ततो गतं।
सम्पातो गुह्यचक्रेऽस्मिन्कथितोऽयं महापशुः॥
[4]त्रिसृकाधस्त्रिनाडीनां [5]पत्रचन्द्रं प्रदर्शितम्।
सप्तजन्मा पशुश्चैव खेचरीसिद्धिदायकः॥

मूर्च्छितो हरते व्याधिं [6]हरति (जारितो) स्कन्धधातुकम्।
ददाति चक्रवर्त्तित्वं विषयेन्द्रियमारितः ॥

खेचरत्वं ददात्येषोऽणिमादिगुणैर्युतः।
क्षिप्रं ददाति बुद्धत्वं ज(मा)रणाद्यैरनु[7]सारितः॥

[8]बाह्यामृतो यथा बद्धस्तथाज्ञानरसोऽप्ययम्।
ददाति विपुलां सिद्धिं सर्वदुःखापहारिणीम्॥

एवं ब्रह्मा पशुर्विष्णुर्गुह्यचक्रे निपातितः।
ददाति विपुलं ह्यायुर्यावदा[9]हृदि(हुति)संप्लवम्॥

उर्ध्वैराहुः पशुः प्रोक्तश्चन्द्रसूर्यौ महापशू।
पातिता ब्रह्मरन्ध्रेण भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥

रक्तस्नायुस्तथा मज्जा पातनीयः प्रयत्नतः।
एते च पशवो ज्ञेया नान्यबाह्योऽस्तु [10]देहिनाम्॥

सप्त[11]जन्मास्तु सर्वेषां पशूनां परमेश्वरः।
सप्तजन्मा यथा देहे तथा वक्ष्यामि तच्छृणु॥

अन्नपानरसं सर्वं भुक्तं पीतञ्च षड्विधम्।
पाकतो रसतां याति प्रथमं जन्म तस्य तत्॥

पश्चाद् रुधिरतां याति द्वितीयं भवति स्फुटम्।
तृतीयं मांसतां याति चतुर्थं चर्मतां व्रजेत्॥

---

१. द. हकारो। २. क. भो. ०द्राहो, ख. ०द्रावो, ३. ख. चन्द्रे। ४. क. त्रिशृ, ग. त्रिस्रि, भो० rTse gSum (त्रिशूक)। ५. भो. ḥDab Mahi BuGa (पत्रछिद्रं) ६. क. ख. जरतिः, द. पाचित। ७. ख. सारितं। ८. भो. Phyi Rol dṄul Chus (बाह्यस्वेदतो)। ९. भो. bSreg bLugs (आहुति)। १०. ख. देशिनं। ११. ख. जन्मां तु।

[1]नाडीत्वं पञ्चमे याति [2]अस्थितां याति षष्ठमे ।
सप्तमे मज्जतां याति सप्तावर्त्तं भवेदिति ॥

तथा (**तथेति**) । तथता धर्मोदया अवधूती तद्‌गतत्वेन सर्वगुणोदयाद्दशविध-प्राणादिवायुनिरोधेन दशभूमिसमन्तप्रभापर्यन्तफलभूमिं प्राप्तः **तथागतः** । स एव **गुणोदधिः** सर्वभूम्याश्रयत्वेन तत्तत्[2]सत्त्वार्थकरणात् । अन्तर्गताकाशमण्डलत्वेन वाम-दक्षिणनासापुटयोः प्राणवाहमण्डलान्यष्टौ तेषां [3]**मार्गो** मध्यमाप्रवेशस्तन्नयं तदुपदेश-गुरूपदिष्टप्रत्याहारादिना **वेत्ती**ति तथा । **सम्यक्संबुद्धः** स्वयंभूः ज्ञानी तस्य **मार्गो** धर्मधातुज्ञानं तत्साक्षात्कारात्तथा ॥ १० ॥

सर्वसत्त्वमहासङ्गो निःसङ्गो गगनोपमः ।
सर्वसत्त्वमनो[4]जातः सर्वसत्त्वमनोजवः ॥११॥

सर्व [**सत्त्वेति**] । धर्मकायाभिन्ननिर्माणकायेन सर्वसत्त्वार्थापरित्यागात् **सर्वसत्त्वेषु** [5]**महानासङ्गः** पाचनादिना यस्य स तथा । शून्यता स्वभावेन **निस्सङ्गः** । विकल्प[6]लेपाभावेन **गगनोपमः** । प्रकृतिप्रभास्वरत्वमनसिकारेण **सर्वसत्त्वानां मनसि-जातत्वात्तथा** । सर्व[7]सत्त्वेष्वधिमुक्तिवशेन वज्रधरादिप्रतिभासरूपत्वात् **सर्वसत्त्व-मनोजवः** ॥ ११ ॥

सर्वसत्त्वेन्द्रियार्थज्ञः सर्वसत्त्वमनोहरः ।
पञ्चस्कन्धार्थतत्त्वज्ञः पञ्चस्कन्धविशुद्धधृक् ॥१२॥

सर्वसत्त्वेन्द्रियेति । **सर्वसत्त्वानां** मृदुमध्याधिमात्ररूपाणी**न्द्रियाणि तेषामर्थः** [8]सप्रपञ्चनिष्प्रपञ्चमव्याहतमहासुखसमाधिना **जानाती**ति तथा । सर्वसत्त्वानां मनांसि विकल्पचित्तानि हरति तानि निःस्वभावीकरोति (तीति) **सर्वसत्त्वमनोहरः** । **पञ्चस्कन्धार्थ**त्वं पारमार्थिकवज्रेण सर्वतथागतव्यूहस्य तथतायां प्रवेशस्त**ज्ज्ञानात्तथा** । उक्तञ्च —

रूपस्कन्धगतादर्शे भूधातुनयनेन्द्रियम् ।
रूपं च पञ्चमं याति क्रोधमैत्रेयसंयुतम् ॥ इत्यादि ।

प्रभास्वरोत्थाना[त्] प्रकृतिप्रभास्वरतां पञ्चस्कन्धार्थं विशुद्धं धरतीति **पञ्चस्कन्धविशुद्धधृक्** ॥ १२ ॥

---

१. ख. अस्थि । २. ख. द. सत्त्वापकरणात् । ३. ग. मार्गे । ४. ग. यातः । ५. क. ग. महासङ्गः । ६. ख. लया । ७. ख. सत्त्वेष्वेव स्वाधि भो. Sems Can Kun La Rañ Gi Mos Pahi (सर्वसत्त्वे स्वाधिमुक्ति) । ८. क. ग. सप्रपञ्चनिष्प्रपञ्चात्यन्त निष्प्रपञ्चम० ।

सर्वं[1] निर्याणकोटिस्थः सर्वनिर्याणकोविदः ।
सर्वनिर्याणमार्गस्थः सर्वनिर्याणदेशकः ॥१३॥

सर्वनिर्याणेति। **सर्वनिर्याणकोटौ** युगनद्धसमाधौ **स्थितत्वात्तथा**। अवाच्यनैरात्म्यं सुखवेदकत्वात् **सर्वनिर्याणकोविदः**। महासुखरत्नत्वेन निःसङ्गत्वेऽपि महाकरुणाबलेन श्रावकादिमार्गे स्थितत्वात् **सर्वनिर्याणमार्गस्थः**। महासुखकायधर्मेण धर्मधातुः **सर्वनिर्याणं** तस्य **देश**[2]**को**ऽविकल्पेन प्रकाशकः ॥ १३ ॥

द्वादशाङ्गभवोत्खातो द्वादशाकारशुद्धधृक् ।
चतुःसत्यनयाकारः अष्टज्ञानावबोधधृक् ॥१४॥

द्वादशाङ्गेति। अविद्यादिद्वादशाङ्गनिरोधेन पीठोपपीठादिस्थानमहासुखत्वेन वा **द्वादशाङ्गभवोत्खातः**। उक्तञ्च—

परपीठेति प्रज्ञोक्ता आत्मपीठमुपायकम् ।
अनयोरद्वयीभावो [3]योगपीठ इति स्मृतम् ॥
तत्त्वपीठं तदुत्पन्नं तद्रहितं च यद् भवेत् ।
सहजेति समाख्यातं वाक्पथातीतगोचरम् ॥ इति ।

अन्यत्र च—

पीठं स्त्रीगुह्यपद्मं प्रभवति समये वज्रमेवोपपीठं
क्षेत्रं छन्दोहमेलापक[4]चितिभुवनं तद्वदेवं समस्तम् ।
पीठं वामाङ्गपूर्वं ह्यपरमपि तथा दक्षिणञ्चोपपीठम्
एवं क्षेत्रादि सर्वं करचरणगतं चाङ्गुलीजानु[5]सीम्नः ॥ इति ।

(का० त० ३.१६६)

ग्राह्यग्राहकाकारविविक्तद्वादशायतनधारित्वाद् **द्वादशाकारशुद्धधृक्**। प्राकृतकल्पितसुखं दुःखम्। तुर्यलक्षणः समुदयः। ज्ञानमण्डलान्तर्गतकायवाक्चित्तप्रकृतिनिरोधो [निरोधसत्यम्]। निरालम्बस्वचित्तप्रतिभासजगद्बुद्धबिम्बदर्शनं मार्गः। एतत्सर्वाद्वयत्व**माकारो** यस्य स तथा। विचित्रादिचतुष्टय निःस्पन्दादिचतुष्टय महारतिज्ञानाष्टकधारणा**दष्टज्ञानावबोधधृक्** ॥ १४ ॥

---

१. श्लोकेऽस्मिन्, क. ख. प्रतौ निर्याण स्थाने निर्वाण इति पठ्यते। २. ख. कोऽविकल्पेन। ३. ख. योगी। ४. ख. द. चित्रि। ५. ख. सीम्ना।

द्वादशाकारसत्यार्थः षोडशाकारतत्त्ववित् ।
विंशत्याकारसंबोधिर्विबुद्धः[1] सर्ववित् परः ॥१५॥

द्वादशाकारेति। निःस्प(स्य)न्दविपाकपुरुष(षा)कारवैमल्यक्षणानां प्रत्येकं त्रैगुण्याद् द्वादशाकारा द्वादशभूमयः संवृतिपरमार्थसत्याभेदेन तद्योगाद् **द्वादशाकारसत्यार्थः**। तत्र कायवाक्चित्तविवेकनिःस्प(स्य)न्दभेदेन प्रथमं त्रिकं निर्माणकायस्य। भास-प्रतिभास-प्रकृतिनिराभासविपाकभेदेन द्वितीयं त्रिकं संभोगकायस्य। चित्तचैतसिकाविद्यापुरुष(षा)कार[वैमल्यविपाक]भेदेन तृतीयं त्रिकं धर्मकायस्य। आनन्दद्वयविरमसहजानन्दवैमल्यभेदेन चतुर्थत्रिकं ज्ञानकायस्येति। प्राणक्षयेण रजो निरोधाद्वा निरोधितमेषवृषादिद्वादशराशित्वेन वा द्वादशभूमिलाभाद् द्वादशाकारसत्यार्थः। षोडशानन्द[2]कलां शुक्रनिरोधेन **षोडशाकारतत्त्वं वेत्तीति** तथा। सांसारिकषोडशकला-[क्षयतोऽ]क्षरत्वात् षोडशाकारतत्त्ववित्। षडङ्गभावनया विशुद्धावधूतीविशुद्धत्वेन पञ्चस्कन्ध-पञ्चधातु-पञ्चेन्द्रिय-पञ्चायतनविशुद्ध्याकारावबोधाद् **विंशत्याकारसम्बोधिः**। अविद्यानिरोधाद् **विबुद्धः**। सर्वबुद्धमय[3]भावग्रामावबोधात् **सर्ववित्** ॥ १५ ॥

अमेयबुद्धनिर्माणकायकोटिविभावकः ।
सर्वक्षणाभिसमयः सर्वचित्तक्षणार्थवित् ॥१६॥

अमेयेति। सर्वनिर्वाणैकलोलीभूताप्रमेयबुद्धनिर्माणरूपभावग्रामस्य श्वाससमूहस्य महासुखत्वेनैकक्षणे विभावनात्तथा। अनेन मध्य[4]निमित्तमुक्तम्। प्रतिश्वासं सर्वश्वासानां महासुखेन बोधात् **सर्वक्षणाभिसमयः**। सर्वसत्वानां **चित्तक्षणानां** च महासुखत्वेनैव **वेत्तीति** तथा ॥ १६ ॥

नानायाननयोपायजगदर्थविभावकः ।
यानत्रितयनिर्यात एकयानफले स्थितः ॥१७॥

नानायानेति। **नानायाननयोपायेन** चतुरङ्ग-षडङ्गबिन्दुयोगादिना **जगदर्थं** महासुखत्वेन **विभावयति** स्फारयतीति तथा। ज्ञानकायत्वेन कायवाक्चित्तनिर्यातत्वाद् **यानत्रि**[5]**तयनिर्यातः**। **एकमद्वितीयं यानं फलं** हंकारास्तत्र **स्थितः** ॥ १७ ॥

क्लेशधातु[6]विशुद्धात्मा कर्मधातुक्षयङ्करः ।
ओघोदधिसमुत्तीर्णो [7]योगकान्तारनिःसृतः ॥१८॥

---

१. क. 'सर्वबुद्ध' इत्यधिकः। २. ख. कला। ३. ख. भावग्रामह्यावरोधात्। ४. भो. mTshan Ma Med Pa (अनिमित्तं)। ५. ख. तया। ६. च. विशुद्धात्म। ७. छ. योगः।

क्लेशधात्विति। अविद्याया विनाशित्वात् **क्लेशधातूनां विशुद्धात्मा** यस्य स तथा। ते च क्लेशधातवोऽष्टादश अस्थि-चर्म-मांस-रक्त-स्नायु-मज्जा-मेदः-शुक्र-श्लेष्म-विण्मूत्र-खेट-[1]सिंहा(घा)ण-यकृत-प्लीहा-पिशित-मल-रोमाख्याः। पापपुण्यविकल्पाभावात् **कर्मधातुक्षयंकरः**। सर्वप्रकृतिनिरोधेन ज्ञानपारगत्वाद् **ओघोदधिसमुत्तीर्णः**। ताश्च प्रकृतयो विरागो मध्यमविरागोऽतिविरागो यन्मनो गतागतम् शोको मध्यमशोकोऽतिशोकः [2]सौम्यं विकल्पो भीतं[3] तृष्णा मध्यमतृष्णा [4]अतितृष्णा उपादानं [5]निःशुभ्र क्षुत्तृषा वेदना समवेदना अतिवेदना विदविद् धारणा पदं प्रत्यवेक्षणं लज्जा कारुण्यं स्नेहो मध्यमस्नेहोऽतिस्नेहश्चकितं सञ्चयो मात्सर्यमिति त्रयस्त्रिंशत् क्षणाः प्रज्ञाज्ञानस्य। रागो रक्तं तुष्टं मध्यमतुष्टं अतितुष्टं हर्षणं प्रामोद्यं विस्मयो हसितमा[6]ह्लादनमालिङ्गनं चुम्बनं [7]चूषणं स्थैर्यं वीर्यं मानः करणं हरणं बलमुत्साहः साहसं मध्यमसाहसमुत्तमसाहसं रौद्रं विलासो वैरं शुभं वाक्स्फुटं सत्यम् [8]असत्यं निश्चयो निरुपादानं दाहत्वं चोदनं शौर्यं अलज्जा धूर्तत्वं दुष्टत्वं शठकौटिल्यमिति चत्वारिंशत् क्षणा उपायज्ञानस्य। मध्यरागो विस्मृतिर्भ्रान्तिस्तूष्णीं खेद आलस्यं धन्वत्वमिति सप्तक्षणा आलोकोपलब्धिज्ञानस्य। एताश्च दिवारात्रिप्रवर्त्तनाभेदेन षष्ट्युत्तरशतं सम्भवन्ति। सकलविकल्पभक्षा**द्योगकान्तारनिस्सृत**योगो ज्ञानसमापत्तिमात्रं कान्तारं दुरवबोधात् ॥ १८ ॥

> क्लेशोपक्लेशसंक्लेशसुप्रहीणसवासनः ।
> प्रज्ञोपायमहाकरुणा-अमोघजगदर्थकृत् ॥१९॥

क्लेशोपक्लेशेति। **क्लेशोपक्लेशसंक्लेशानां** अविद्यादीनां **सुप्रहीणा सुष्ठुवासना** यस्य स तथा। षडङ्गयोगेन साधिता महामुद्रा प्रज्ञा तदद्वयीभूता **महाकरुणा** तया [9]**अमोघं** अवन्ध्यमव्याहतसुखं **जगदर्थङ्करोतीति** तथा ॥ १९ ॥

> सर्वसंज्ञा[10]प्रहीणार्थो विज्ञानार्थो निरोधधृक् ।
> सर्वसत्त्वमनोविषयः [11]सर्वसत्त्वमनोगतिः ॥२०॥

सर्वसंज्ञेति। समापत्त्यादिसंज्ञया अभावात् **सर्वसंज्ञाप्रहीणार्थः**। **विगतं ज्ञानं** [12]**ग्रहणमर्थो** [13]बाह्यञ्च यस्य स तथा। अत एव निरास्रवधर्मतामात्रत्वा**न्निरोधधृक्**। सर्वसत्त्वानां मनसि अविकल्पयोगेन संभूतत्वात् **सर्वसत्त्वमनोविषय** अविषयो अगोचरो वा, अत एव **सर्वसत्त्वमनोगतिः** ॥ २० ॥

> सर्वसत्त्वमनोऽन्तस्थः तच्चित्तसमताङ्गतः ।
> सर्वसत्त्वमनोह्लादी सर्वसत्त्वमनोरतिः ॥२१॥

---

१. ख. सिहानण। २. द. सौख्य। ३. क. ख. ग. 'मध्यमभीतमतिभीतम्' इत्यधिकम्। ४. ख. 'अतितृष्णा' नास्ति। ५. भो. dGe Bral (निःशुभं)। ६. क. ग. भो. 'आह्लादनं' नास्ति। ७. ख. द. 'चूषणं' नास्ति। ८. भो. 'असत्यं' नास्ति। ९. ख. अमोघ। १०. च. छ. प्रहाणार्थो। ११. क. ख. ङ. सर्वबुद्ध। १२. क. ग्रहण। १३. क. वाचे।

सर्वसत्त्वेति । **सर्वसत्त्वानां मनोऽन्तः** धर्मधातुरूपत्वेन ज्योतिरूपत्वं तिष्ठतीति तथा । तेषां सर्वसत्त्वानां **चित्तसमता** तथतारूपेण **तां गतः** [1]प्राप्तः, सर्वेषां धर्मतारूपेणाविशेषात् । विपर्यासव्यावृत्तमहासुखज्ञानस्योदयात् **सर्वसत्त्वमनोह्लादी** । अनास्रवसुखविलसितत्वात्**सर्वसत्त्वमनोरतिः** ॥ २१ ॥

[2]सिद्धान्तो [3]विभ्रमापेतः सर्वभ्रान्तिविवर्जितः ।
निःसंदिग्धमतिस्त्र्यर्थः सर्वार्थस्त्रिगुणात्मकः ॥२२॥

सिद्धान्तेति । सदसत्पक्षविगमेन परमनिष्ठारूपत्वेन **सिद्धान्तः** । पुद्गलादिविभ्रमापेतत्वाद्**विभ्रमापगतः** । कल्पितपरतन्त्रपरिनिष्पन्नवर्जितत्वात् **सर्वभ्रान्तिविवर्जितः** । लौकिकलोकोत्तरसिद्धान्तपरिज्ञानेन सत्त्वानामविपरीततत्त्वोपदेशा**न्निःसन्दिग्धमतिः** । त्र्यर्थः प्रज्ञयार्थः साध्यः सर्वसुखस्वभावत्वात् **त्र्यर्थः** । निखिलस्थिरचरपदार्थ[4]रूपत्वात् **सर्वार्थः**, निरावरणसत्त्वरजस्तमोगुणैकस्वभावत्वं **त्रिगुणात्मकः** ॥ २२ ॥

पञ्चस्कन्धार्थ[5]स्त्रिकालः सर्वक्षणविभावकः ।
एकक्षणाभिसम्बुद्धः सर्वबुद्धस्वभावधृक् ॥२३॥

पञ्चस्कन्धेति । षडङ्गयोगेन स्वाधिष्ठानस्फुटीभावात् पञ्चस्कन्धानामर्थो बुद्धः **पञ्चस्कन्धार्थः** । नित्यत्वेन **त्रिकालः** । **सर्वविकल्पश्वासक्षणान्** महासुखेन भावयति वेधयतीति तथा । **एकस्मिन्नेव च तुर्यक्षणे** सर्वभावाभिन्नं समन्तभद्राभिधान**मभिसंबुद्धो** वेत्ता, अत एव **सर्वबुद्धस्वभावधृक्**, सहजकायधारीत्यर्थः ॥ २३ ॥

[6]अनङ्गकायः कायाग्र्यः कायकोटिविभावकः ।
अशेषरूपसन्दर्शी रत्नकेतुर्महामणिः ॥२४॥

इति समता[7]ज्ञानगाथाश्चतुर्विंशतिः ।

अनङ्गेति । चूडामणिचक्रगतत्वेना**नङ्गकायो** धर्मधातुर्वज्रानङ्गः, स एव सुखसञ्चयरूपत्वात्**कायाग्र्यं** यस्य स तथा। महासुखत्वेन कायकोटिं [8]विभावयतीति **कायकोटिविभावकः** । अत एव विनेयाभिप्रायेण **अशेषरूपसन्दर्शी** । सर्वजनरञ्जनार्थेन सुखरत्नाङ्कितः केतुः **रत्नकेतुः** । महामणिस्थितत्वान्**महामणिः** ॥ २४ ॥

इति द्वादशाङ्गनिरोधद्वादशभूमिप्रतिलम्भविशुद्धया समताज्ञानगाथाश्चतुर्विंशतिः ॥ ९ ॥

---

१. क. ग. 'प्राप्तः' नास्ति । २. ख. ग. घ. ङ. छ. सिद्धान्त । ३. ङ. विभ्रमापगतः । ४. ख. द. स्वरूपत्वात् । ५. क. ख. ग. त्रिष्काल, घ. स्त्रिष्काल ६. ग. घ. च. छ. अनङ्गकाय । ७. ख. ज्ञानस्तुतिगाथाः । ८. ख. भावयति स्फारयतीति ।

कृत्यानुष्ठानज्ञानम्

इदानीं पञ्चदशकृत्यानुष्ठानगाथामुखेनानावरणसंस्कारस्कन्धामोघसिद्धिरूपेण तदेव परमाक्षरज्ञानमाह—

सर्वसंबुद्ध[1]बोद्धव्यो बुद्धबोधिरनुत्तरः ।
अनक्षरो मन्त्रयोनिर्महामन्त्रकुलत्रयः ॥१॥

सर्वसंबुद्धेति। त्र्यध्ववर्त्तिभिः सर्वसम्बुद्धै**र्बोद्धव्यः** साक्षात् कर्तव्यः सम्यग्ज्ञानस्वभावः। स एव मञ्जुश्रीज्ञानकाय इति यावत्। उक्तञ्च—

त्वदधीनाभिसम्बोधिः पिता त्वं सर्वदेहिनाम्।
संभूताः संभविष्यन्ति त्वामासाद्य तथागताः॥

कायवाक्चित्तस्वरूपावबोधरूपत्वादद्वयश्रीरेव **बुद्धबोधिः**। चतुर्थाभिसम्बोधिरूपत्वा**दनुत्तरः**। अविद्यमानवाच्यवाचकसम्बन्धेन धर्मधातुपरमाक्षरयोगात्मा [2]**अनक्षरः**। रूपगुणादिभिर्वच[3]नातीत इत्यर्थः [4]सहजज्ञानत्वेन **मन्त्राणां** लौकिकादीनां **योनि**रुत्पत्तिहेतुत्वाद् भगवानेव। रेचकपूरक[5]कुम्भकाक्षरत्वेन स्वसंवेद्य[6]त्वा**न्महामन्त्र**नयं **कुलत्रयं** कायवाक्चित्तानन्दपरमानन्दविरमानन्दरूपं यस्य स तथा ॥ १ ॥

सर्वमन्त्रार्थजनको महाबिन्दुरनक्षरः ।
पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः[7]षडक्षरः ॥२॥

सर्वमन्त्रार्थेति। [8]शान्तिकादिपौष्टिकादिप्रत्याहारलक्षणो लौकिको मन्त्रः। परमाक्षरयोगेन बिन्दुनादा[9]त्मको लोकोत्तरो मन्त्रः। स एव साध्यत्वादर्थः **सर्वमन्त्रार्थो** महामुद्रार्थः, तस्य **जनक** उत्पादकः। अ क च ट त प य श क्ष ओं (ह्)काराकारेण सह दशवर्गदशप्राणादिवायूनां मध्यमाप्रवाहत्वेन एकलोलीभूय सर्वशरीरेषु लीनत्वा**न्महाबिन्दुर्भगवान्**। परमार्थरूपत्वा**दनक्षरः**। [10]परमार्थसुखज्ञानं वज्रसत्त्वः। उक्तञ्च **मूलतन्त्रे—**

कायवाक्चित्तधातूनां त्राणभूतो यतस्ततः।
मन्त्रार्थो मन्त्रशब्देन शून्यताज्ञानमक्षरम्।
पुण्यज्ञानमयो मन्त्रः शून्यताकरुणात्मकः॥ इति।

---

१. छ. बोधाख्यो। २. ख. अक्षरः। ३. क. नाभीत। ४. क. सहजोकार०। ५. ख. कुम्भकारत्वेन। ६. द. 'त्वात्' नास्ति। ७. क. छ. शताक्षरः। ८. ख. शान्तिकपौ०। ९. ख. त्मकोत्तरो। १०. भो. mChog Tu Mi ḥGyur Pahi (परमाक्षर)।

ज्ञानस्कन्धविज्ञानस्कन्धज्ञानधात्वाकाशधातुमनःश्रोत्रशब्दधर्मधातुदिव्येन्द्रियभग-शुक्रच्युतिरूपाणां निरावरणता प्रत्येकं स्वस्व[1]विषयग्रहणविवर्जितत्वं समरसमेकलोलीभूतत्वं पर(प्रथ)माक्षरशून्यं योगिस्वसंवेद्यम्, न सर्वाभावलक्षणम्। तदेवाह–तमाकारशून्यं रेखामात्रमनुच्चार्य कर्तृकाकारं मध्ये, संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणस्पर्शवागिन्द्रियविट्स्रावाणामेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्नात् पूर्वेण, इकारशून्यं दण्डाकारं द्वितीयाक्षरशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातुचक्षुरसपाणिगतीनां निरावर[2]णता मध्यानाहतचिह्नाद्दक्षिणेन ऌकारशून्यं बिन्दुद्वयं तृतीयाक्षरशून्यम्। संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वारूपपादे[3]न्द्रियादानानां निरावरणता मध्यानाहतचिह्नाद्वामेन, बिन्दुरूपमेकमनुच्चार्यमूकारशून्यं चतुर्थाक्षरमहाशून्यम्। रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रियगन्धपाय्वालापानां समरसत्वमेकलोलीभूतत्वं, मध्यानाहतचिह्नात् पश्चिमेन, तद्[4]हलाकृतिः एकारशून्यं पञ्चाक्षरशून्यम्। एवं वंकारः पञ्चाक्षरो महाशून्यो निरालम्बकरुणात्मकः, परमाणुधर्मतातीतः, प्रतिसेनातुल्यो योगिगम्यः, तदाधारभूत एकारो धर्मोदयरूपः सर्वाकारशून्यतास्वभावो बिन्दुशून्यः षडक्षरः। तथाहि– विज्ञानस्कन्ध आकाशधातुश्रोत्रधर्मधातुभगशुक्रच्युतीनां निरावरणशून्यता। पूर्वोक्ता मध्यानाहतचिह्नस्योर्ध्वे कवर्गात्मकं ककारव्यञ्जनमनुच्चार्यं प्रथमं बिन्दुशून्यम्। संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणेन्द्रियस्पर्शवाग्[5]विट्स्रावाणां निरावरणसर्वाकारशून्यता। पूर्वोक्तचिह्नस्य पूर्वे चवर्गात्मकं चकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं [द्वितीयं] बिन्दुशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातुचक्षुरसपाणीन्द्रियगतीनां सर्वाकारनिरावरणशून्यता। दक्षिणचिह्नस्य दक्षिणे टवर्गात्मकं टकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं तृतीयं बिन्दुशून्यम्। संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वारूपपादेन्द्रियादानानां निरावरणशून्यता। उत्तरचिह्नस्योत्तरे पवर्गात्मकं पकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं चतुर्थबिन्दुशून्यम्। रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रियगन्धपाय्वालापानां निरावरणशून्यता। पश्चिमचिह्नस्य पश्चिमे तवर्गात्मकं तकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं पञ्चमं बिन्दुशून्यम्। ज्ञानस्कन्धज्ञानधातुमनःशब्ददिव्येन्द्रियमूत्रस्रावाणां सर्वाकारनिरावरणशून्यता। मध्यानाहतचिह्नस्याधस्तात् शवर्गात्मकं शकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं षष्ठं बिन्दुशून्यमिति। एवं **बिन्दुशून्यः षडक्षरो** धर्मोदयः। कुलिशधर एकारः शून्यता सालम्बा प्रतिसेनास्वरूपिणीति। एतेन '[6]**पञ्चाक्षरो महाशून्यः**। स्वरसमूहः [शुक्र] चन्द्र इत्युच्यते। बिन्दुशून्यः षडक्षरो व्यञ्जनसमूहो रजः सूर्य इत्युच्यते। अत्र च शुक्रं चन्द्रो वंकारो वज्रं, रजः सूर्य एकारः पद्मम्, अनयोर्वज्रपद्मयोरेकत्वं वज्र[7]सत्त्व इति। वज्रं परमसुखं, ज्ञानं शुक्रं, '[8]सत्त्वः सर्वाकारप्रज्ञाबिम्बं ज्ञेयमिति। ज्ञानविज्ञानाधिष्ठितं निरावरणमेकलोली[9]भूतत्वं जगदर्थकारी वज्रसत्त्व इति। एतच्च **विमलप्रभायाम्** (भाग-१, पृ० ४७–५०) उक्तं ज्ञेयमिति ॥ २ ॥

---

१. क. विषयं ग्रहणं। २. क. णगतां, ख. द. णतां। ३. क. ०न्द्रियादीनां। ४. क. फलाकृतिः। ५. ख. चित्त। ६. ख. पञ्चाक्षर। ७. ख. सत्त्वं। ८. क. सत्त्वं। ९. द. भूतं।

सर्वाकारो निराकारः षोडशार्धार्धबिन्दुधृक् ।
अकलः　　कलनातीतश्चतुर्थध्यानकोटिधृक् ॥३॥

सर्वाकारेति । सर्वाकारनिराकारहेतुरुक्तः । प्रत्याहारेण यो दृष्टो भावो घटादिकः प्रतिसेनातुल्यप्रतिभासः **सर्वाकारः** । कल्पनापोढा[1]भ्रान्तप्रत्यक्षदर्शनात् **निराकारः** परमाणुधर्मतातीतः कल्पनारहितत्वात् पिहितापिहितनेत्रगम्यः । एवं सर्वाकारनिराकारो हेतुः प्रज्ञापारमिता शून्यता सर्वाकार[2]वरोपेता तदुत्पन्नं [3]फलं परमाक्षरसुखं **षोडशार्द्धार्द्धबिन्दुधृक्** महाप्रज्ञाज्ञानमित्युच्यते तथागतैः । उक्तञ्च—

सर्वाकारवरोपेता शून्यता हेतुनो[4]दिता ।
अनालम्बा कृपा पश्चाज्जगदर्थकरी फलम् ॥ इति ।

षोडशानां कलानामर्द्धमष्टौ तदर्द्धं चत्वारो बिन्दवः कायवाक्चित्तज्ञानलक्षणाः, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्यावस्थाजनकाः । तान् धारयतीति षोडशार्द्धार्द्धबिन्दुधृक् । समयचतुष्टयपालकः वज्रसत्त्वो महाराग इत्यर्थः । **अकलः** शुक्लपक्षपञ्चदशकलारहितः । तासामन्ते स्थितः शुक्लपूर्णिमावसाने **कलनातीत** इति । कलना कृष्णप्रतिपत् तत्राप्रतिष्ठितः कलनातीतः सहज इत्यर्थः । **चतुर्थध्यानकोटिधृ**गिति प्रथममानन्दसुखध्यानं, द्वितीयं परमानन्दसुखध्यानं, तृतीयं विरमानन्दसुखध्यानं, चतुर्थं सहजानन्दसुखध्यानम् । पञ्चमी दशमी [पञ्चदशमी] पूर्णा । पूर्णान्ते बिन्दौ परमाक्षरसुखध्यानं स्थितं तस्य कोटिरग्रभागः सुखपरिपूर्णता तां धरतीति चतुर्थध्यानकोटिधृक् ॥ ३ ॥

सर्वध्यानकलाभिज्ञः समाधिकुल[5]गोत्रवित् ।
समाधिकायः कायाग्र्यः सर्वसंभोग[6]कायराट् ॥४॥

सर्वध्यानेति ।

[7]ज्ञेयं ज्ञानोदयस्तर्को विचारस्तत्प्रयोगतः ।
तृतीयं प्रीतिसंकाशं चतुर्थं सुखसंग्रहः ।
पञ्चमं तु सदालोकं निरभ्रं गगनसन्निभम् ॥ इति ।
(गु० त० १८.१४४, १४५, १५१)

पञ्चध्यानकलाभिज्ञत्वात् **सर्व[ध्यान]कलाभिज्ञः** । सर्वधर्मसमतादिसमाधिसमूहसामर्थ्यवेतृत्वात् **समाधिकुलगोत्रवित्** । **समाधिकायो** धर्मकायोऽयमेव सम्भोगनिर्माणकाययोरग्र्यो यस्य स तथा । धर्मकायाभिन्नसंभोगकायेन सर्वपर्षन्मध्ये राजत इति **सर्वसम्भोगकायराट्** ॥ ४ ॥

---

१. क. भ्रान्ता । २. ख. वरोपिता । ३. ख. फल । ४. क. ०रुदितः, ख. रोदितः, भो. rGyu Ñid Daṅ Po Nas (हेतुनादिता) । ५. क. ख. ङ. गोत्रधृक् । ६. क. कायकोटिविभावकः । ७. गु० त० गुह्यं तर्कोदयं तर्कं विचारं ।

निर्माणकायः कायाग्र्यो बुद्धनिर्माणवंशधृक् ।
दशदिग्विश्वनिर्माणो यथावज्जगदर्थकृत् ॥५॥

निर्माणकायेति । अनाभोगवहिर्जगदर्थनानाप्रकृतिको निर्माणकाय एवान्येषां **निर्माणानां मध्येऽग्र्यो निर्माणकायकायाग्र्यः** । सर्वभावसहितत्रिकुलपञ्चकुलादिवंशस्य प्रभास्वरत्वेन धारणात्तथा। दशदिक्षु विश्वस्य निर्माणस्फरणं यस्य स तथा। यथा[वत्]स्वजगदर्थकरणाद् **यथावज्जगदर्थकृत्** ॥ ५ ॥

देवातिदेवो [1]देवेन्द्रः सुरेन्द्रो दानवाधिपः ।
अमरेन्द्रः सुरगुरुः प्रमथः प्रमथेश्वरः ॥६॥

देवातिदेवेति । महारागात्मककायत्वेन ब्रह्मात्मकत्वाद् **देवातिदेवः** । प्रभास्वरचित्तवज्रत्वेन विष्णुस्वभावत्वाद् **देवेन्द्रः**। रत्नान्तरुष्णीषगमनेन बलिरूपत्वात् **सुरेन्द्रः**। अनुपमाद्वयश्रीधर्मामृतलाभेन राहुस्वभावत्वाद् **दानवाधिपः** । [2]नैरात्म्ये ऐरावतगतित्वेन पुरन्दरस्वभावत्वा**दमरेन्द्रः** । निःस्वभावी(वि)सर्वधर्मप्रकाशनेन बृहस्पतिस्वभावत्वात् **सुरगुरुः** । महासुखशुक्रदान्तवशीकृतप्रादेशिकक्षणा(स्कन्धा)दिविघ्नगणत्वेन विघ्नाधिपत्वात्**प्रमथः** । कायवाक्चित्तमुक्तिरूपत्र्यम्बकस्वभावत्वात् **प्रमथेश्वरः** ॥ ६ ॥

उत्तीर्णभवकान्तार [3]एकः शास्ता जगद्गुरुः ।
[4]प्रख्यातदशदिग्लोको धर्मदानपतिर्महान् ॥७॥

उत्तीर्णभवेति । सर्वसत्वानां सम्यग्ज्ञानप्रवर्तकत्वेन **उत्तीर्णभवकान्तारः** । **एको**ऽद्वितीयः । **शास्ता** नानादुःखदुःखितानां महा[5]सुखोदयशासनात् । सर्वप्रपञ्चोपशमेनाविचलितसुखज्ञानविहारित्वा**ज्जगद्गुरुः** । **प्रख्याता दशदिक्षु** पुण्यसंभारादिना प्रसिद्धा[6]**लोका** बोधिसत्त्वादयस्तेषु सम्भोगकायादिप्रतिभासतया **धर्मदानपतिः** । **महान्** स्थिरचलात्मकत्वेन व्यापी ॥ ७ ॥

मैत्रीसन्नाहसन्नद्धः करुणावर्मवर्मितः ।
प्रज्ञा[7]खड्गो धनुर्बाणः क्लेशज्ञानरणञ्जहः ॥८॥

मैत्रीति । सहजानन्दसुखं[8][चित्तं] **मैत्री** सैव सर्वाङ्गव्यापनात् **सन्नाह**स्तेन **सन्नद्धो** निचितः चित्तविक्षेपापनयनात् । पूर्वोक्त**करुणावर्मणा वर्मितो** रक्षितः । वैमल्यगतमहामुद्रा **प्रज्ञा** सैव **खड्गो** यस्य स तथा । **धनु**र्नादो **बाणो** बिन्दुस्तदद्वैतरूपत्वात्तथा । महाराग[9]समाधियोगाच्च्युति[10]वासनाभक्षणात् **क्लेशज्ञानरणञ्जहः** ॥ ८ ॥

---

१. क. ख. ङ. देवेन्द्रोऽसुरेन्द्रो । २. क. नैरात्म्यं । ३. च. एकशास्ता । ४. ग. घ. च. छ. प्रख्यातो । ५. ख. सुखोदयः । ६. ख. लोको । ७. क. खड्गः । ८. संस्कृतप्रतिपु नास्ति, गृहीतस्तु भोटानुसारी ९. ख. समायोग । १०. ख. वासनाद् भक्ष० ।

मारारिर्मारजिद्वीरश्चतुर्मारभयान्तकृत् ।
सर्वमारचमूजेता सम्बुद्धो लोकनायकः ॥९॥

मारारीति । प्रभास्वररत्नाक्रान्तकायवाक्चित्तरागत्वेन **मारारिः** । वज्रसत्त्वेन प्राणापाननिरोधान्मारजिदजयः, अत एव **वीरः** । मैत्र्यादिस्वभावत्वाज्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्यक्षयाच्चतुर्मारभयान्तकृत् । प्रकृतिनिर्मलस्वाधिष्ठानतया **सर्वमारचमूजेता** । षण्मण्डलाधिपतित्वात् **सम्बुद्धः** । भवरागतृष्णामलप्रहीणत्वाल्लोकनायकः ॥ ९ ॥

वन्द्यः पूज्योऽभिवाद्यश्च माननीयश्च नित्यशः ।
[1]अर्चनीयतमो मान्यो [2]नमस्यः परमो गुरुः ॥१०॥

वन्द्य इति । शुभतीर्थज्ञानप्रवेशेनाविद्यादिमलप्रक्षालनेन सदेवकानां लोकानां वन्दनार्हत्वाद् **वन्द्यः** । सर्वसिद्धान्तपारगत्वेन **पूज्यः** । अनाहतनादाश्रितसर्व[धर्म]सद्धर्मभाषित्वेन पूजार्हत्वाद**भिवाद्यः** । पञ्चकामगुणेन धर्मोदयान्तर्गतत्वेऽपि बोधिदायकत्वात् श्रावकादीनां **माननीयः** । निर्जितक्लेशत्वेन परिपूर्णगुणत्वाद् बोधिसत्त्वानामर्चनीयतमः । सर्वतथागतानां मातृत्वेनाद्वयसुखावबोधरूपत्वान्**मान्यः** । मन्त्रमुखचर्याचारिणां सत्सुखात्मकत्वान्न**मस्यः** । सर्वसत्त्वानां महासुखाकारेण सर्वतथागतहृदयविहारित्वात् **परमो गुरुः** ॥ १० ॥

त्रैलोक्यैकक्रमगतिर्व्योमपर्यन्तविक्रमः ।
त्रैविद्यः श्रोत्रियः पूतः षडभिज्ञः षडनुस्मृतिः ॥११॥

त्रैलोक्यैकेति । **त्रैलोक्यैकक्रम**स्याद्वितीयसहजानन्दस्य **गतिरनुभवस्तेन** वा गतिर्व्याप्तिरस्य । **व्योम्नि पर्यन्तो विक्रमः** सहजरूपतया क्रीडनं यस्य स तथा । निराभासस्य स्फरणरूपतया रूप इति यावत् । तिस्रो विद्याः कामावचररूपावचरमहामुद्रासिद्धि[3]साधिका यस्य स एव **त्रैविद्यः** । श्रुतिमात्रेणापि परमसुखकारित्वेन सुविशुद्धत्वात् **श्रोत्रियः** । चतुर्थरूपेण नित्योदयात् **पूतः** [4]पवित्रः । तद्ग्राह्यग्राहकैकत्वेनाद्वयज्ञानित्वात् **षडभिज्ञः** । षट्चक्रसमाधिप्रविष्टदानादिपारमिताधारणस्मरणरूपत्वात् **षडनुस्मृतिः** ॥ ११ ॥

बोधिसत्त्वो महासत्त्वो लोकातीतो महर्द्धिकः ।
प्रज्ञापारमितानिष्ठः प्रज्ञातत्त्वत्वमागतः ॥१२॥

बोधिसत्त्वेति । सर्व[5]धर्मानासक्तमहायानार्थावबोधाद् **बोधिसत्त्वः** । [6]अपरिमितसुखेन सत्त्वतर्पणान्**महासत्त्वः** । लौकिकसंकल्परहितत्वाल्**लोकातीतः** । अचिन्त्यपञ्च-

---

१. क. अर्चनीयश्चतमो । २. क. नमस्य । ३. क. समाधिकायस्य । ४. ख. पवित्र । ५. ख. धर्माणां । ६. ख. अपरमि० ।

कामोपभोगसुखेन सत्त्वोद्धरणमहाप्रभावात्(वत्वात्) **महर्द्धिकः**। [1]सुचन्द्रत्वेन सर्वोपकल्पविगमात् **प्रज्ञापारमितानिष्ठः**। [2]**प्रज्ञातत्त्वं** महामुद्रा[3]स्वरूपमागतः प्राप्तः ॥ १२ ॥

आत्मवित्परवित्सर्वः [4]सर्वीयो ह्यग्रपुद्गलः।
सर्वोपमामतिक्रान्तो ज्ञेयो ज्ञानाधिपः परः ॥१३॥

आत्मविदिति। सर्वप्रपञ्चातिक्रान्तत्वेन गगनरूपत्वा**दात्मवित्**। स्वपरयोरद्वैतबोधात् **परवित्**। अशेषभावस्वभावसंदर्शनात् **सर्वः**। भावाभावयोरद्वैतबोधत्वात् **सर्वीयः**। महासुखात्मकज्ञानकायत्वा**दग्रपुद्गलः**। अनुपमधर्मकायरूपत्वात् सर्वलोकोपमामतिक्रान्तस्तु **सर्वोपमामतिक्रान्तः**। सहजत्वेन प्रत्यात्मवेद्यत्वा**ज्ज्ञेयः**। सुखग्राहकत्वेन ज्ञानाधिपत्वा**ज्ज्ञानाधिपः**। अत एव **परः** ॥ १३ ॥

धर्मदानपतिः श्रेष्ठश्चतुर्मुद्रार्थदेशकः।
पर्युपास्यतमो जगतां निर्याणत्रययायिनाम् ॥१४॥

धर्मदानेति यथाभव्यता(तया) अविपरीतधर्मदानाद् **धर्मदानपतिः**। मनसोऽपि त्यागाद् धर्मदानपतित्वेन **श्रेष्ठः**। कर्ममुद्रा-महामुद्रा-ज्ञानमुद्रा-समयमुद्रार्थस्य **देशकः** प्रकाशकः। **चतुर्मुद्रार्थ**प्रकाशनादेव **निर्याणत्रय**[5]**यायिनां** भूचरखेचरमहामुद्रासिद्धिगामिनां जगतां पर्युपास्यः। उक्तञ्च [6]चतुर्मुद्रोपदेशे, तद्यथा—

कर्मज्ञानमहामुद्रासमयाख्यः प्रभास्वरः।
हेतुर्भाव्या तथा प्राप्या चतुर्थोऽविनश्वरः॥

हेतुरिति प्रथमं [7]कर्ममुद्रोद्भूतं यत्सहजमच्युतसुखम्। उक्तञ्च भगवता तत्सत्यमेव, किन्तु संवृत्या लौकिकदृष्टान्तेना[8]दर्शमिव न परमार्थतः। तस्मात्तीक्ष्णेन्द्रियेण [9]न ग्राह्या कर्ममुद्रा। कर्ममुद्रा च स्तनकेशवती कामधातुसुखस्य हेतुः। कर्म चुम्बनालिङ्गनगुह्यस्पर्शवज्रस्फालनादिव्यापारात्मकं, तेनोपलक्षिता मुद्रा प्रत्ययकारिणी। प्रत्ययोऽत्र क्षरसुखलक्षणः। मुदं सुखविशेषं राति ददाति इति मुद्रा भाव्या। ज्ञानमुद्रा, सा च स्वचित्तपरिकल्पिता विश्वमात्रादिदेवीस्वभावा पूर्वानुभूता रूपधातुसुखस्य हेतुः। ज्ञानं पूर्वहसितरमितादिभावनालक्षणं, प्रत्ययोऽत्र स्पन्दसुखलक्षणः। स्कन्धधात्वायतनादिदेवताकारेण विशोध्य मण्डलचक्रस्वभावं यथा विधिना स्फुटीकृत्य मन्थमन्थानयोगेन ज्ञानवह्निं प्रज्वाल्य यावद् दग्धेऽहं स्रवते शशी ललाटकण्ठहृन्नाभिवज्रकमलकर्णि[10]काग्रतः।

---

१. ख. 'सु' नास्ति। २. ख. प्रज्ञात तत्त्वं। ३. ख. सुरूप। ४. च. छ. सार्वीयो। ५. क. यानां। ६. क. ग. 'चतुर्मुद्रोपदेशे' नास्ति। ७. ख. द. कर्मोद्भूतं। ८ क. दर्शनमिव। ९. ख. द. 'न' नास्ति। १०. ख. ग. द. कागतः।

बोधिचित्तरूपेण विषयेन्द्रियसमस्तमहासुखसागरस्य यदेकलोली[1]भूततन्मयसमाधिमा[2]पन्नो भूत्वा तिष्ठेत् यावत् श्रीमहामुद्राऽभिमुखी भवतीति प्राप्या। महामुद्रा स्वप्नेन्द्रजालमनोमयसदृशी। महती चासौ [मुद्रा] महामुद्रा चेति कृत्वा महत्त्वं पुनरस्याः सर्वाकारवरोपेतत्वं न प्रादेशिकत्वम्, [3]मुद्र्यतेऽनेनेति बोधिचित्तवज्रेण मुद्रा। प्रत्ययोऽत्र स्वचित्तपरिकल्पनाधर्मरहितो धूमादिनिमित्तपूर्वकः स्वचित्तप्रतिभासो योगिगम्यः प्रतिसेनावदिति। तामालिङ्ग्य यावत्समयमुद्रा साक्षात् क्रियते। अविनश्वरा परमाक्षरस्वरूपिणी सा च फलरूपमहामुद्रा। [4]मुद्रं परमाक्षरसुखलक्षणं राति सर्वकालमा[5]दत्ते पूर्णावस्थायामचलयोगेनेति मुद्रा। महत्त्वं चास्याः प्रहाणमहत्त्वेनाधिगममहत्त्वेन। यत्र प्रहाणमहत्त्वं [6]सवासनसर्वावरणप्रहाणलक्षण[7]स्वभावकायाख्यप्रभास्वरसाक्षात् करणलक्षणम्। अधिगममहत्त्वं तु परिशुद्धसर्वबुद्धधर्मात्मकयुगनद्धाख्य[8]कायसाक्षात् करणम्। यत्पुनः शरदमलमध्याह्नगगनसन्निभं शून्यतैकरस[9][10]प्रभास्वरसाक्षात्कार एव सकलबुद्धधर्माधिगमोऽशेषविश्वार्थसम्पादनरूपेण। तत्र सर्वबुद्धधर्माणां बिम्ब(द्य)मानत्वात्। अत एव धर्माणामाश्रयः कायो धर्मकाय इत्याचक्षते। तत्र च प्रतिभासेनाप्यधिगमव्यवस्थायां घटप्रतिभासे घटाद्यधिगमो प्रसङ्गो दुर्निवारः किञ्च सांख्यदर्शनमदूषणं स्यात्। अपि च, मायास्वप्नगन्धर्वपुरप्रतिसेना[11]वत् कल्पितमशेषस्कन्धधात्वायतनादिदर्शनं संवृतिसत्यदर्शनं स्वाधिष्ठानं चोच्यते। संवृतिसत्यमेव परमार्थसत्यं प्रभास्वरपरिशुद्धमादर्शादिरूपं वैरोचनाद्याधेयदेवतावृन्दं कूटागाराद्याधारमण्डलं च तदेव [12]च लोकोत्तरमण्डलतया सर्वतन्त्रराजेषु गीयते। समस्तबुद्धधर्मस्वभावतया च तदेव सत्यद्वयाद्वैधीभावस्वभावं युगनद्धाख्यमुच्यते, तस्माद्युगनद्धकाय एव धर्मकायः सांभोगिक स्वाभाविककायाभ्यां पृथग्भूतो योगिप्रत्यक्षवेद्यः। उक्तञ्च **नागार्जुनपादैः**—"यो नैको नाप्यनेक" इत्यादिना धर्मकायलक्षणम्। "लोकातीतामचिन्त्याम्" इत्यादिना सम्भोगकायस्य। "सत्त्वानां पाकहेतोः क्वचिदनल इव भाति यो दीप्यमानः" इत्यादिना निर्माणकायस्य। "त्रैलोक्याचारमुक्तम्" इत्यादिना महासुखकायस्य। उक्तञ्च **स्वदर्शनमतोद्देशे**—

रूपराशिरनन्तो मे निर्माणकाय उत्तमः।
रुतराशिरनन्तो मे सम्भोगकाय उत्तमः॥
धर्मराशिरनन्तो मे धर्मकायः प्रकीर्तितः।
सुखराशिरनन्तो मे सुखकायोऽक्षरः परः॥ इति।

---

१. क. कृत। २. ख. पन्न। ३. ख. द. मुद्रा ते। ४. ख. मर्द। ५. ख. दत्त।
६. ख. द. सर्वासन। ७. क. स्वभाविकाख्य। ८. ख. द. 'काय' नास्ति। ९. क. सम्बित।
१०. ख. सुप्रभा। ११. ख. वित्। १२. ख. 'च' नास्ति।

एवञ्च षोडशीकलाबोधः परचित्तज्ञानप्रतिशब्दसदृशशब्दाधिगमाशेषरूपसन्द-[illegible]ज्ञानलक्षणं चतुःकायस्वरूपमावेदितम्। उक्तञ्च **श्रीकालचक्रे**—

न प्रज्ञा नाप्युपायः सहजतनुरियं धर्मकायो बभूव
प्रज्ञोपाय[1]स्वभावः खलुविगततमो ज्ञानविज्ञानभेदात्।
सोऽयं संभोगकायः प्रतिरवक इवानेकसत्त्वार्थकर्त्ता
सत्त्वानां पाकहेतोर्भवति पुनरसौ बुद्धनिर्माणकायः॥ इति।
(का० त० ५.८९)

इति कायवाक्चित्तज्ञानविशुद्धया मुद्राचतुष्टयमुक्तम्। **श्रीआदिबुद्धे चोक्तम्**—

क्षरः क्षरः (क्षरोऽक्षरः) ततः स्पन्दो निःस्पन्द[2]विमलो परः।

अब्जे वज्रप्रवेशः शिखिनि च मरुतो बिन्दुपातस्तृतीयः
एतद्योगत्रयस्य प्रकटितनियता कायवाक्चित्तमुद्रा।
रागारागान्तका(गा)द्या परमसुखनिधिर्योगगम्या चतुर्थी
मुद्राणां सैव माता भवति सुफलदा श्रीगुरोर्वक्त्रमेषा॥ इति।
(का० त० ३.१२६)

उक्तञ्च **वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्रे**—

कर्ममुद्रां समासाद्य धर्ममुद्रां विभावयेत्।
[3]तत्र (तत) ऊर्ध्वं महामुद्रा तस्याः समयसम्भवः॥ इति।

अन्यत्र च—

तां मोक्षलक्ष्मीमविनष्टसौख्यीं(ख्यां) त्यक्त्वा शुभां भगवतीं युवतिं रमन्ते।
प्रायेण पूर्वाऽज्जितमुग्रकर्मं येनामृतं त्यज्य विषं पिबन्ति॥ इति।

श्रीआदिबुद्धे च—

एता मुद्राश्चतस्रोऽक्षरसुखफलदा योगिना भावनीयाः
सर्वस्मिन् सर्वकालं सुरतरतिगतैर्लोकमार्ग[4]प्रयुक्तैः।
ग्रामारण्यश्मशानेऽशुचिशुचिनिलये वेश्मदेवालये च
वर्णावर्णा[5]भियुक्तैस्तनुबलसुखदैरन्नपानादि[6]युक्तैः॥ इति॥ १४॥
(का० त० ५.७४)

---

१. मु. स्वरूपः। २. द. विमलोपमः। ३. द. ततरूर्द्धं। ४. भो. Rab Grol (प्रमुक्तैः)। ५. मु. भिचारै०। ६. मु. योगैः।

परमार्थविशुद्धश्रीस्त्रैलोक्यसुभगो महान् ।
सर्वसम्पत्करः श्रीमान् मञ्जुश्रीः श्रीमतां वरः ॥१५॥

इति कृत्यानुष्ठान[1]ज्ञानगाथाः पञ्चदश ।

परमार्थेति । **परमार्थ** ज्ञानेन **विशुद्धश्री**रद्वय[2]वीर्यस्य स तथा । सर्वसत्त्वार्थकरणात् **त्रैलोक्यसुभगः** । व्यापित्वं **महान्** । सर्वसुखसम्पदाधारभूतत्वात् **सर्व**[3]**सम्पत्करः** । सर्व[4]योगिनां [5]प्रियरत्नाच्युतत्वाच्छ्**रीमान्** । सर्वधर्माद्वयात्मकत्वान्**मञ्जुश्री**रद्वयश्रीः । ज्ञानकायत्वेन **श्रीमतां वर** इति ॥ १५ ॥

निरावरणपञ्चदशकलाविशुद्धया सर्वतथागत-
समाधिगतकार्यकारणलक्षणकृत्यानुष्ठान-
ज्ञानगाथाव्याख्या ॥१०॥

---

१. ख. ज्ञानस्तुतिगाथाः । २. क. वीर्यस्य । ३. ख. संपत्सुखाकरः । ४. क. योगिनीनां । ५. ख. प्रियदर्शनाच्यु० ।

पञ्चतथागतस्तुतिः

नमस्ते वरद[1]वज्राग्र्य भूतकोटे नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते शून्यतागर्भ बुद्धबोधे नमोऽस्तु ते ॥१॥

बुद्धराग नमस्तेऽस्तु [2]बुद्धकाम नमो नमः ।
बुद्धप्रीते नमस्तुभ्यं बुद्धमोद नमो नमः ॥२॥

बुद्धस्मित नमस्तुभ्यं बुद्धहास नमो नमः ।
बुद्धवाच नमस्तुभ्यं बुद्धभाव नमो नमः ॥३॥

अभवोद्भव [3]नमस्तुभ्यं नमस्ते बुद्ध[4]संभव ।
गगनोद्भव नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्ञान[5]सम्भव ॥४॥

मायाजाल नमस्तुभ्यं नमस्ते बुद्धनाटक ।
नमस्ते सर्वसर्वेभ्यो ज्ञानकाय नमोऽस्तु ते ॥५॥

इति पञ्चतथागत[6]स्तुतिज्ञानगाथाः पञ्च ।

एवं च वज्रसत्त्वादिद्वारेण सृष्टिक्रमनिर्देशः। इत्यनन्तरान्तरा व्यतिक्रमनिर्देशस्तु आम्नायगोपनार्थः। अनाहतनादोल्लासत्वेन सत्त्वाशयवशेन तथा प्रतिभासाद्वा संगीतिकारैस्तथैव लिख्यत इति ।

इदानीं 'नमस्ते' इत्यादिपञ्चगाथाभिस्तमेव भगवन्तं वज्रधातुमहामण्डलान्तर्वर्त्तिनं पञ्चज्ञानमुखेन स्तुवन्नाह—तत्रादर्शज्ञानद्वारेण **नमस्ते वरदे**त्यादि, **बुद्धरागे**त्यादि समताज्ञानमुखेन, **बुद्धस्मिते**त्यादि प्रत्यवेक्षणाज्ञानमुखेन, **अभवोद्भवे**त्यादि कृत्यानुंष्ठानज्ञानात्मना, **मायाजाले**त्यादि सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्वभावेन। वैरोचनरत्नसंभवामिताभामोघसिद्ध्यक्षोभ्यरूपतथागतस्वभावेन इत्यर्थः। तत्र प्रथमश्लोकेन कारणमुक्तं शेषैश्च कार्यमिति। तथा च हेतुज्ञानं प्रत्ययज्ञानं [7]धर्मज्ञानं भावनाज्ञानं मुक्तिज्ञानं च। हेतुरादर्शज्ञानम्, प्रत्ययः समताज्ञानम्, प्रत्यवेक्षणा धर्मज्ञानम्, कृत्यानुष्ठानं

---

१. छ. वज्राग्र । २. क. ख. ङ. बुद्धकाय । ३. ग. घ. नमस्तेऽस्तु । ४. क. सम्भवः । ५. क. सम्भवः । ६. ख. ज्ञानस्तुतिगाथाः । ७. क. मर्मज्ञानम् ।

भावनाज्ञानम्, मुक्तिज्ञानं सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्। एवं च पञ्चाकाराभिसम्बोधिभावना [1]सूचिता। तेन **मूलतन्त्रे पञ्चाकारज्ञानस्तवे** पञ्चश्लोकैः पञ्चाकारभावना भगवतोक्ता, तद्यथा—

शून्यो भावसमूहोऽयं कल्पनारूपवर्जितः।
दृश्यते प्रतिसेनैव कुमार्या दर्पणे यथा॥ इति।

लोकोत्तरसत्यं रूपस्कन्धादर्शज्ञानम्।

सर्वभावसमो भूत्वा एको भावोऽक्षरः स्थितः।
अक्षरज्ञानसंभूतो नोच्छेदो न च शाश्वतः॥ इति।

वेदनास्कन्धः समताज्ञानम्।

सर्वसंज्ञात्मका वर्णा अकारकुलसम्भवाः।
महाक्षरपदप्राप्ता न संज्ञा न च संज्ञिनः॥ इति।

संज्ञास्कन्धः प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्।

अनुत्पन्नेषु धर्मेषु संस्काररहितेषु च।
न बोधिर्नैव बुद्धत्वं न सत्त्वो नैव जीवितम्॥ इति।

संस्कारस्कन्धः कृत्यानुष्ठानज्ञानम्।

विज्ञानधर्मतातीता ज्ञानशुद्धा ह्यनाविलाः।
प्रकृतिप्रभास्वरा धर्माः धर्मधातुगतिं गताः॥ इति

विज्ञानस्कन्धः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्।

तथा लघुतन्त्रेऽप्युक्तम् एकोत्तरशतादिवृत्तत्रयेण चक्रचिह्नादितथागतस्कन्धलक्षणम्। तद्यथा—

चक्रं स्वच्छं समन्तात्त्रिभव इति सुखं रत्नमस्यैव रागः
पद्मं क्लेशक्षयोऽसिः कुलिशमपि महाज्ञानकायो ह्यभेद्यः।
छेदोऽज्ञानस्य कर्त्री वरखड्गपि कुलान्येभिरुत्पादिता ये
तेऽप्येवं वेदितव्याः खमिव समरसाः स्कन्धधात्विन्द्रियाद्याः॥

यस्मिन्वै जातिरूपं व्रजति निधनतां तन्महारूपमुक्तम्
यस्यां संसारदुःखं व्रजति निधनतां सा महावेदनोक्ता।
यस्यां संसारसंज्ञा व्रजति निधनतां सा महावज्रसंज्ञा
यस्मिन् संसारवृद्धिर्व्रजति निधनतां वज्रसंस्कार एव॥

---

१. क. सूचिका।

यस्मिन् निद्राद्यवस्था व्रजति निधनतां तच्च विज्ञानमुक्तं
यस्मिन्नज्ञानभावो व्रजति निधनतां तन्मुनेर्ज्ञानमेव ।
एते वैरोचनाद्याः परमजिनवराः षड्विधाः षट्कुलानि
अन्ये षड्धातुभेदा अवनिशिखिपयो मारुताकाशशान्ताः ॥ इति ।

(का० तं० ५.१०१-१०३)

अर्थस्तु— चतुरानन्दस्वभावत्वाद्वरदवज्राग्र्य इति सम्बोधनम् । सुखभोगालय-त्वेन **मृतकोटी**ति आर्षत्वात् । सुखशून्याद्वयत्वेन **शून्यतागर्भः** । दृष्टान्तरूपत्वेन **बुद्धबोधिः** प्रभास्वरप्रवेशो **नमस्कारः** । महारागरूपत्वाद् **बुद्धरागः** । विरमानन्दत्वेन धर्मकायत्वाद् **बुद्धकायः** । बुद्धैर्वा काम्यत इति **बुद्धकाम** [इति] पाठः । शून्यतागर्भसहजानन्द-क्षणत्वेन **बुद्धप्रीतिः** । द्वयप्रहाणेनाद्वयसुखप्रमोदलाभाद् **बुद्धमोदः** । एतेन प्रत्ययज्ञान-मुक्तम् । [1]सुखमयज्ञानप्रकाशकयोगाद् **बुद्धस्मितः** । सहजचण्डालीज्योतिषा सकलज्ञेय-मण्डलव्यापनाद् **बुद्धहासः** । कर्माङ्गनाद्वारापि अवधूतीपद[2]प्रापितप्राणादिवायुत्वेन अनाहतनादोल्लासरूपत्वाद् **बुद्धवाचः** । [3]धर्मकायाभिन्नसम्भोगत्वेन **बुद्धभावः** । शून्यता-सम्भूतचतुःकायत्वाद**भवोद्भवः** । स्वाभाविकत्वाद् **बुद्धसंभवः** । स्वयम्भूरूपत्वाद् **गगनोद्भवः** । तुर्यातीतास्तिनास्तिव्यतिक्रान्तस्वसंवेद्यत्वा**ज्ज्ञानसंभवः** । महामायासमुद्भूतपरमसुखत्वेन **मायाजालः** । सहजस्फुरत्स्थिरचलरूपत्वेन **बुद्धनाटकः** । सर्वत्र सम्बोधनम् । षोडशानन्दरूपत्वेन बहुत्वात्**सर्वसर्वेभ्यः** । समन्तभद्रमहासुखज्ञानकाय-स्याग्रत्वा**ज्ज्ञानकाय** इति ॥ १-५ ॥

इति पञ्चतथागतज्ञानस्तुतिगाथाः
पञ्च ॥ ११ ॥

---

१. द. सुखमद्वय० । २. ख. प्रापितः । ३. ख. कर्मकामाभि० ।

अनुशंसा

इयमसौ वज्रपाणे: वज्रधरभगवतो ज्ञानमूर्तेः सर्वतथागतज्ञानकायस्य मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्यावेणिकपरिशुद्धा नामसङ्गीतिस्तवानुत्तरप्रीतिप्रासादमहोद्विल्यसंजननार्थं, कायवाङ्मनो[1]गुह्यपरिशुद्धचै, अपरिपूर्णपरिशुद्धभूमिपारमितापुण्यज्ञानसंभारपरिपूरि[2]शुद्धचै, अनधिगतानुत्तरार्थस्याधिगमाय, अप्राप्तस्य प्राप्त्यै, यावत्सर्वतथागत[3]सर्वधर्मनेत्रीसंधारणार्थं च मया देशिता, संप्रकाशिता, विवृता, विभजितोत्तानीकृता, अधिष्ठिता चेयं मया वज्रपाणे वज्रधर तव सन्ताने चित्ते सर्वमन्त्रधर्मताधिष्ठानेनेति ।

इति प्रथमचक्रस्येयमनुशंसा एकादश पदानि ॥

पुनर[4]परमियं वज्रपाणे वज्रधर नामसङ्गीतिः सुपरिशुद्धा, पर्यवदाता, सर्वज्ञज्ञानकायवाङ्मनोगुह्यभूता, सर्वतथागतानां बुद्धबोधिः, सम्यक्संबुद्धानामभिसमयः, सर्वतथागतानामनुत्तरः, धर्मधातुगतिः सुगतानाम्, सर्वमारबल[5]पराजयो जिनानाम्, दशबलबलिता सर्वदशबलानाम्, सर्वज्ञता सर्वज्ञज्ञानानाम्, आगमः सर्वधर्माणाम्, समुदागमः सर्व[6]बुद्धधर्माणाम्, विमलसुपरिशुद्धपुण्यज्ञानसंभारपरि[7]पूरी सर्वमहाबोधिसत्त्वानाम्, प्रसूतिः सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धानाम्, क्षेत्रं सर्वदेवमनुष्यसम्पत्तेः, प्रतिष्ठा महायानस्य, संभवो बोधिसत्त्वचर्यायाः, निष्ठा सम्यगार्यमार्गस्य[8]निकषो विमुक्तीनाम्, उत्पत्ति[9]र्निर्वाणमार्गस्य, [10]अनुच्छेदस्तथागतवंशस्य, प्रवृद्धिर्महाबोधि[11]सत्त्वकुलगोत्रस्य, [12]निग्रहः सर्वपरप्रवादिनाम्, विध्वंसनं सर्वतीर्थिकानाम्, पराजयश्चतुर्मारबलचमू[13]सेनायाः, संग्रहः सर्वसत्त्वानाम्, आर्यमार्ग[14]परिपाकः सर्वनिर्याणयायिनाम्, समाधिश्चतुर्ब्रह्मविहार-

---

१. ग. गुह्यधर० । २. ग. परिशुद्धचा । ३. ग. सद्धर्म । ४. ग. अपरं । ५. ग. पराजयः । ६. ग. बुद्धानाम । ७. ग. पूरिः । ८. ग. परीक्षा । ९. ख. ग. निर्याण । १०. क. अनुपच्छेद । ११. ग. सत्त्वानां । १२. क. विग्रहः । १३. ग. सेनानां । १४. ख. परिप्रापकः ।

विहारिणाम्, ध्यानमेकाग्रचित्तानाम्, योगः कायवाङ्मनोऽभियुक्तानाम् विसंयोगः सर्वसंयोजनानाम्, प्रहाणं सर्वक्लेशोपक्लेशानाम्, [1]व्युपशमः सर्वावरणानाम्, विमुक्तिः सर्वबन्धनानाम्, मोक्षः [2]सर्वोपधीनाम्, शान्तिः सर्वचित्तोपप्लवानाम्, आकरः सर्वसम्पत्तीनाम्, [3]परिहाणिः सर्वविपत्तीनाम्, [4]पिधानं सर्वापायद्वाराणाम्, सत्पथो [5]विमुक्तिपुरस्य, अप्रवृत्तिः संसारचक्रस्य, प्रवर्तनं धर्मचक्रस्य, उच्छ्रितच्छत्रध्वज[6]पताका तथागतशासनस्य, अधिष्ठानं सर्वधर्म[7]देशनायाः, क्षिप्रसिद्धिमन्त्रमुखचर्याचारिणां बोधिसत्त्वानाम्, भावनाधिगमः प्रज्ञापारमिताभियुक्तानां, बोधिसत्त्वानाम्, शून्यताप्रति[8]वेधोऽद्वयप्रति[9]वेदभावनाभियुक्तानाम्, निष्पत्तिः सर्वपारमितासंभारस्य, परिशुद्धिः सर्वभूमिपारमिता[10]परिपूर्णानाम्, प्रतिवेधः सम्यक्चतुरार्यसत्यानाम्, सर्वधर्मैकचित्तप्रतिवेधश्चतुःस्मृत्युपस्थानानाम्, [11]यावच्छन्दपरिसमाप्तिः सर्वबुद्धगुणानामियं नामसङ्गीतिः ।

इति द्वितीयचक्रस्येयमनुशंसा[12]पदानि द्वापञ्चाशत् ॥

पुनरपरं वज्रपाणे वज्रधर इयं नामसङ्गीतिः सर्वसत्त्वानामशेषकायवाङ्मनः[13]समुदाचारपापप्रशमनी, सर्वसत्त्वानां सर्वापायविशोधनी, सर्वदुर्गतिनिवारणी, सर्वकर्मावरणसमु[14]च्छेदनकरी, सर्वाष्टक्षणसमुत्पादस्यानुत्पादनकरी, अष्टमहाभयव्युपशमनकरी, सर्वदुःस्वप्नविनाशनकरी, सर्वदुर्निमित्तव्यपोहनकरी, दुःशकुनविघ्नव्युपशमनकरी, सर्वमारारिकर्मदूरीकरणी, सर्वकुशलमूलपुण्योपचयकरी, सर्वायोनिसो(शो)[15]मनसिकारस्यानुत्पादनकरी, सर्वमदमानदर्पाह-

---

१. ग. उपशमः । २. ग. सर्वपदीनाम् । ३. ग. परिहानि । ४. क. विध्वंसनं, ख. पिथनं, ग. पिधन । ५ ग. विमुक्तिमार्गस्य । ६. ग. पताकाभिः । ७. क. देशनायां । ८. क. बोधो । ९. क. ०वेध, ख. वेधाभियुक्तानां । १०. क. ख. परिपूर्यै । ११. क. ख. यावत परिसमाप्तिः । १२. क. तत्पदानि । १३. क. ख. समुदाचारः । १४. ख. च्छेदनी । १५. क. ख. मनस्कारानुत्पा० ।

ङ्कारनिर्घातनकरी, सर्वदुःखदौर्मनस्यानुत्पादनकरी, सर्वतथागतानां हृदयभूता, सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां गुह्यभूता, सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धानां रहस्यभूता, सर्वमुद्रामन्त्रभूता, सर्वधर्मानभिलाप्यवादिनां स्मृतिसंप्रजन्यसंजननी, अनुत्तरप्रज्ञामेधाकरी, आरोग्यबलैश्वर्यसम्पत्करी, श्रीशुभशान्तिकल्याणप्रवर्धनकरी, यशःकीर्तिश्लोकस्तुति[1]प्रकाशनकरी, सर्वव्याधिमहाभयव्युपशमनकरी, पूततरा पूततराणाम्, पवित्रतरा पवित्रतराणाम्, धन्यतमा धन्यतमानाम्, [2]सर्वमाङ्गल्यतमा सर्वमाङ्गल्यतमानाम्, शरणं शरणार्थिनाम्, लयनं लयनार्थिनाम्, त्राणं त्राणार्थिनाम्, परायणं परायणानाम्, द्वीपभूता द्वीपार्थिनाम्, अगतिकानामनुत्तरगतिभूता, यानपात्रभूता भवसागरपारगामिनाम्, महाभैषज्यराजभूता सर्वव्याधिनिर्घातनतया, प्रज्ञाभूता हेयोपादेयभाव[3]विभावनतया, ज्ञानालोकभूता सर्वतमोन्धकारकुदृष्टयपनयनाय, चिन्ता[4]मणिराजभूता सर्वसत्त्वाशयाभिप्रायपरिपूरणाय, सर्वज्ञज्ञानभूता मञ्जुश्रीज्ञानकायप्रतिलम्भाय, परिशुद्धज्ञाना[5]दर्शभूता पञ्चचक्षुप्रतिलम्भाय, षट्पारमितापरिपूरीभूता आमिषाभयधर्मदानोत्सृजनतया, दशभूमिप्रतिलम्बभूता पुण्यज्ञानसंभारसमाधिपरिपूरणतया, अद्वयधर्मता द्वयधर्मविगतत्वादतथतारूपता, अनन्यधर्मताध्यारोपविगतत्वात्, भूतकोटिरूपता परिशुद्धसर्वतथागतज्ञानकायस्वभावतया, सर्वाकारमहाशून्यतारूपता अशेषकुदृष्टि[6]गतिगहननिर्घातनतया, सर्वधर्मानभिलाप्य[7]रूपेयं नामसंगीतिः यदुताद्वय[8]धर्मतावतरणार्थं नामसंधारणप्रकाशनतया ।

इति तृतीयचक्रस्येयमनुशंसा[9]पदानि द्वापञ्चाशत् ।

पुनरपरं वज्रपाणे वज्रधर कश्चित् कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा मन्त्रमुखचर्याचारी [10]इमां भगवतो मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य सर्वतथागतज्ञानकायस्य भगवतो ज्ञानमूर्तेरद्वयपरमार्थां नामसङ्गीतिं नामचूडामणिं

---

१. क. ख. संप्रकाश० । २. क. ख. सर्वमङ्गल० । ३. क. ख. विभावनया । ४. ख. मणिभूता । ५. क. ख. दर्शन । ६. क. ख. गहनगति । ७. क. ख. भूतेयं । ८. क. ख. धर्मतार्थं । ९. क. तत्पदानि । १०. ग. बोधिसत्त्वानामिमां ।

[illegible]रिसमाप्तामन्यूनामखण्डामेभिरेव गाथापदव्यञ्जनैः प्रत्यहं त्रिकालं धारयिष्यति, वाचयिष्यति, पर्यवाप्स्यति, योनिशश्च मनसि करिष्यति, परेभ्यश्च विस्तरेण [1]यथासमयं [2]यथावत्संप्रकाशयिष्यति, प्रत्येकं चान्यतमान्यतमं [3]नामार्थं मञ्जुश्रीज्ञानकायमालम्बनीकृत्य एकाग्रमनसा भावयिष्यति, अधिमुक्तितत्त्वमनस्काराभ्यां समन्त[4]मुखविहारविहारी [5]सर्वधर्मप्रतिवेधिकया परमया अनाविलया [6]प्रज्ञाविद्धया श्रद्धया समन्वागतः सन् तस्य त्र्यध्वाबद्धसंगिनः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाः संगम्य समागम्य [7]सर्वधर्ममुखान्युपदर्शयिष्यन्ति, आत्मभावं चोपदर्शयिष्यन्ति, सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाधिष्ठानं च सर्वकायवाङ्मनोभिस्तस्य सन्ताने [8]चित्ते सम्यगधिष्ठास्यन्ति, सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानुग्रहेण चानुग्रहीष्यन्ति, सर्वधर्मवैशारद्यप्रतिभानश्चोपसंहरिष्यन्ति, सर्वार्हच्छ्रावकप्रत्येकबुद्धाश्चार्यधर्म[9]प्रमाणतयात्मभावं चोपदर्शयिष्यन्ति दुर्दान्तदमकाश्च [10]महाक्रोधराजानो महावज्रधरादयो जग[11]त्परित्राणभूता नानानिर्माणकायैरोजोबलं तेजोऽप्रधृष्यतां सर्वमन्त्रमुद्राभिसमयमण्डलान्यु[12]पसंहरिष्यन्ति, अशेषाश्च मन्त्रमहाविद्याराज्यः सर्वविघ्नविनायकमारारिप्रत्यङ्गिरा [13]महापराजिताः सरात्रिन्दिवं प्रतिक्षणं सर्वेर्यापथेषु रक्षावरणगुप्तिं करिष्यन्ति, ये च ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्ररुद्रनारायणसनत्कुमारमहेश्वरकार्तिकेयमहाकालनन्दिकेश्वरयमवरुण-कुवेरहारतीदशदिग्लोकपालाश्च [14]ते सर्वे सततसंमितं रात्रिन्दिवं गच्छतस्तिष्ठतः शयानस्य निषण्णस्य स्वपतो जाग्रतः समाहितस्यासमाहितस्य च एकाकिना बहुजनमध्यगतस्य यावद् ग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीगतस्य इन्द्रकीलरथ्याप्रतोलीवीथीनगरद्वारराजमार्ग[15]चत्वरशृङ्गाटकनगरान्तरापणपण्यशालामध्यगतस्य यावच्छून्यागारगिरिकन्दर-

---

१. ग. यथाशयं। २. ग. यावत्। ३. ग. नामार्थ। ४. क. ख. सुख। ५. ग. 'सर्व' नास्ति। ६. क. ख. ग. प्रज्ञानुविद्धया। ७. ग. बुद्धधर्मं। ८. क. ख. 'चित्ते' नास्ति। ९. ग. 'प्रमाणतयात्म' नास्ति। १०. ग. महावज्रक्रोध। ११. ग. परिपाल०। १२. क. उपदेक्षयिष्यन्ति देशयिष्यन्ति। १३. ख. 'महा' नास्ति। १४. क. 'ते सर्वे' नास्ति। १५. क. चतु।

नदीवनगहनोपगतस्य उच्छिष्टस्यानुच्छिष्टस्य मत्तस्य प्रमत्तस्य [1]सदा सर्वथा रक्षावरणगुप्तिं करिष्यन्ति, रात्रिन्दिवं च परं स्वस्त्ययनं करिष्यन्ति, ये चान्ये देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या ये चान्ये ग्रहनक्षत्रगणपतयो याश्च सप्तमातरो याश्च यक्षिणीराक्षसीपिशाच्यस्ताः सर्वाः सहिताः समग्राः ससैन्याः सपरिवाराः सर्वेर्यापथेषु [2]परां रक्षावरणगुप्तिं करिष्यन्ति, परं च तस्य काये ओजोबलं प्रक्षेप्स्यन्ति आरोग्यमायुर्वृद्धिं चोपसंहरिष्यन्ति ।

इति चतुर्थचक्रस्येयमनुशंसा [3]पदान्येकोनविंशतिः ।

पुनरपरं वज्रपाणे वज्रधर य इमां नामसङ्गीतिं नामचूडामणिं प्रत्यहमखण्डसमाधानतस्त्रिकृत्वा कण्ठगतामावर्तयिष्यति, पुस्तकगतां वा पठमानः प्रवर्तयिष्यति, भगवतो मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य रूपमालम्बयन्, तद्रूपमनुचिन्तयन् तद्रूपमनुध्यायन् तमेव रूपं निर्माणकायेनाचिरादेव विनयवशमुपादाय रक्षति, गगनतलगताश्च बुद्धबोधिसत्त्वाः नानानिर्माणरूपकायैः सहगता रक्षन्ति, न च तस्य [4]सत्त्वस्य जातु कथमपि दुर्गत्यपायपतनं भविष्यति, न नीचकुलोपपत्तिर्भविष्यति, न प्रत्यन्तजनपदोपपत्तिर्भविष्यति, न हीनेन्द्रियो भविष्यति, न मिथ्यादृष्टिकुलोपपत्तिर्भविष्यति, नाबुद्धकेषु बुद्धक्षेत्रेषूत्पत्स्यते, न च बुद्धोत्पादवि मुखता तद्देशितधर्मविमुखपरोक्षता भविष्यति, न च दीर्घायुष्केषु देवेषूत्पस्यते, न च दुर्भिक्षरोगशस्त्रान्तःकल्पेषूत्पत्स्यते, न च पञ्चकषायकालेषूत्पत्स्यते, न च राजशत्रुचोरभयं भविष्यति, न सर्वोपकरणवैकल्यदारिद्र्यभयं भविष्यति, नाश्लोकाभ्याख्याननिन्दायशोऽकीर्तिभयं भविष्यति, सुजातिकुलगोत्रसम्पन्नश्च भविष्यति, समन्तप्रासादिकरूपवर्णसमन्वागतश्च भविष्यति, प्रियो मन आपः, परमसुखसंवासः, प्रियदर्शनश्च लोकानां भविष्यति, शुभसौभाग्यादेयवाक्यश्च लोकानां भविष्यति, यत्र यत्रो-

---

१. क. ख. सर्वदा, सर्वथा सर्वप्रकारं । २. क. ख. 'परां' नास्ति । ३. क. ख तत्पदानि । ४. क. ख. महासत्त्वस्य ।

पत्स्यते, तत्र तत्र जातिस्मरो भविष्यति, महाभोगः महापरीवारोऽक्षय-परीवारश्च भविष्यति, अग्रणीः सर्वसत्त्वानामग्रगुणसमन्वागतो भविष्यति, प्रकृत्या च षट्पारमितागुणसमन्वागतो भविष्यति, चतुर्ब्रह्मविहारविहारी भविष्यति, स्मृतिसंप्रजन्योपायबलप्रणिधि[3]ज्ञानसमन्वागतश्च भविष्यति, सर्वशास्त्रविशारदो वाग्मी च भविष्यति, स्पष्टवागजडः पटुश्च भविष्यति, दक्षोऽनलसः संतुष्टो महार्थो वितृष्णश्च भविष्यति, परम-विश्वासी च सर्वसत्त्वानामाचार्य[4]गुरुसंमतश्च भविष्यति, अश्रुतपूर्वाणि च तस्य सर्वशिल्पकलाभिज्ञाज्ञानशास्त्राणि चार्थतो ग्रन्थतश्च प्रतिभा-समागमिष्यन्ति, सुपरिशुद्धशीलाजीवसमुदाचारचारी च भविष्यति, सुप्रव्रजितः रूपसंपन्नश्च भविष्यति, अप्रमुषितसर्वज्ञता[5]बोधिचित्तश्च भविष्यति, न जातु श्रावकार्हत्प्रत्येकबुद्धनियमाव[6]क्रान्तिगतश्च भविष्यति।

इति पञ्चमचक्रस्येयमनुशंसा[7]पादान्येकपञ्चाशत्।

एवं वज्रपाणे वज्रधर अप्रमेयगुणसमन्वागतोऽसौ मन्त्रमुखचर्या-चारी भविष्यति, अन्यैश्चाप्रमेयैरेवं प्रकारैर्गुणगणैः समन्वागतो भविष्यति, अचिरादेव वज्रपाणे वज्रधर परमार्थनामसङ्गीतिसंधारकः पुरुषपुद्गलः सुसंभृतपुण्यज्ञानसंभारः क्षिप्रतरं बुद्धगुणान्समुदानीयानुत्तरां सम्यक्संबो-धिमभिसंभोत्स्यते अनल्पकल्पापरिनिर्वाणधर्माणां सर्वसत्त्वानामनुत्तर-धर्मदेशकोऽधिष्ठाता दशदिक्सद्धर्मदुन्दुभिर्धर्मगजः।

इति षष्ठचक्रस्येयमनुशंसा[8]प्रमेया।

इदानीमनुशंसा पदानामपि कियदपि विभज्यते। इयमसाविति साक्षादनुभूयमान-सुखाधिगतित्वेन प्रकृतिप्रभास्वरत्वाज्ज्ञानमूर्त्तिः नामसंगीतिः सहजानुभूतिः नित्यं सहजशुद्धस्वभावत्वेन पञ्चकामोपभोगेऽपि क्लेशामिश्रत्वादावेणिकपरिशुद्धा अनुत्तर-

---

१. क. ख. पद्यते। २. क. च पटु भविष्यति। ३. ख. 'ज्ञान' नास्ति। ४. ख. 'गुरु' नास्ति। ५. क. ख. महाबोधि०। ६. क. क्रान्त। ७. क. तत्पदानि। ८. ख. तत् पदानि अप्रमेयानि।

मार्गत्वाद**नुत्तरप्रीतिः**। अनुभूयमाननिमित्तत्वेन **प्रसादसंदर्शनात्** (संजननात्) **महोद्विली** बोधिचित्तवज्रस्वभावत्वेन **कायवाङ्मनोगुह्य**भूता [1]**सद्धर्मनेत्री** प्रज्ञापारमिता तस्याः सन्धारणमद्वयज्ञानरूपतापादनं षडङ्गयोगेन संवृत्तिपरमार्थस्वरूपबोधिचित्तवज्रस्य प्रकाशनाद् **देशितेत्यादि** पद-षट्कं **अधिष्ठानं** स्थिरीकरणं षट्चक्रवर्त्तित्वात्प्रथम-चक्रस्यानुशंसाभावात्।

प्रकृतिप्रभास्वरत्वेन **सर्वज्ञज्ञानम्**। **बुद्धबोधि**श्चतुर्थज्ञानानुभूतिः। [2]**अभिसमयः** प्रभास्वरनिराभासज्ञानसाक्षात्कारः। सर्वाकारशून्यतास्वभावत्वाद् **धर्मधातु**[3]**गतिः**। दश-विधधूमादिनिमित्तबलयोगाद् **दशबलबलिता**। महासुखत्वेनागमनादा**गमः**। अनाभोगे-नाधिगमरूपत्वात् [4]**समुदागमः**। सर्वप्रपञ्चरहितत्वेन **विमलत्वम्**। शून्यत्वेन निर्माणकायबुद्धबिम्बदर्शनात् **प्रसूतिः**। परिशुद्धनाडीचक्रात्मकत्वात् **क्षेत्रम्**। फलरूपेण स्थित[5]त्वात् **प्रतिष्ठा,** संवृतिर्महायानं परमार्थं वज्रयानम्। चर्याविरोधबोधरूपत्वाद् **बोधिसत्त्वचर्या**। पर्यवसानप्राप्तिहेतुत्वान्नि**ष्ठा**। तत्त्वपरीक्षास्थानत्वा**न्निकषः**। विशिष्टनिर्याणोपायत्वा**द्वुत्पत्तिः**। अनाभोगेन तथागतकृत्यकरणा**दनुच्छेदः**। प्रभास्वरा-धिष्ठानात्**प्रवृद्धिः**। व्यापकत्वात् **संग्रहः**। अचिन्त्यरूपत्वात् **समाधिः**। प्रज्ञादिपञ्च-विधध्यानरूपत्वाद् **ध्यानम्**। ज्ञानमात्रालयत्वा**द्योगः**। विकल्पानां निराभासनात् **प्रहाणम्**। रागादिबन्धना[6]पगमहेतुत्वात्[वि]**मुक्तिः**। सम्यग्ज्ञानस्वभावत्वान्**मोक्षः**। सहजसुखविहारित्वा[7]**च्छान्तः**। प्रभास्वरत्वेना**करः**। सर्वविपत्तीनां सर्वदोषाणां तक्षण-रूपत्वा**[त्परिहाणिः]**। [8]**पिधानम्** अपायद्वाराणां, नरकप्रेततिर्यगात्मापायद्वाराणाम्। सम्यग् बोधिमार्गत्वात् **[सत्]पथः**। प्रतीत्यसमुत्पादविच्छेदाद् **अप्रवृत्तिः**। यथा-भव्यतया धर्मचक्रप्रवर्तनहेतुत्वात् **प्रवर्त्तनम्**। वज्रयानत्वेन श्रावकादिविजयरूपत्वा-**दुच्छ्रितच्छत्रध्वजपताका**। योगस्थिरीकरणहेतुत्वा**दधिष्ठानम्**। मन्त्रमुखचर्या-चारिणां बोधिसत्त्वानां मन्त्रपदपाठादिना प्राप्तेः **क्षिप्रसिद्धिः**। साक्षात्काररूपत्वाद् **भावनाऽधिगमः**। शून्यताविशेषसिद्धान्तरूपत्वात् **शून्यताप्रतिवेधः**। फलहेत्वात्मकतयाऽ-**द्वयप्रतिवेधाभियुक्तानां** निर्विकल्पप्रतिवेधरूपत्वात्**परिशुद्धः**। अद्वयज्ञानत्वात् **सर्वधर्मैक-चित्तप्रतिवेधः**।

दुर्निमित्तं मृत्युचिह्नादि देवपुत्रादेः शुक्रा(सूकरा)दि कुक्ष्युत्पत्त्यर्थ(पादि)-मलिनवासनादि[9] दुःशकुनम्। वज्रधातुमहामण्डलादिभावनया **सर्वमारारिकर्मदूरी-करणी**। सर्वसमाधिलाभात् सर्वायोनिशोमनस्कारा**नुत्पादनकरी**। उत्कर्षचेतसः पर्यादानं **मदः**। चित्तसमुन्नति**र्मानः**। अतिमानो **दर्प्पः**। अहंकृतिः **अहङ्कारः** कायिकं दुःखं मानसिकं दौर्मनस्यम्। तथागतनिजातित्वाद् **हृदयभूता**। परमगोप्यत्वाद्

---

१. ख. सर्वधर्मनेत्री। २. भो. mNon Pa rTog Pa (अभिगमः)। ३. क. गति। ४. भो. Yan Dag Pa Grub Paḥo (संसिद्धः)। ५. ख. द. 'त्वात्' नास्ति। ६. क. पगतम। ७. ख. शान्ति। ८. क. पिधनं। ९. क. दुष्कुलम्, द. कुषलम्।

गुह्यभूता। मन्त्रनयक्रमेण एवं प्रकाश्यत्वात् **रहस्यभूता**। अविकल्पकर्ममुद्रादिसेवा-साध्यहेतुत्वात् **सर्वमुद्रामन्त्रभूता**। **आरोग्यं** नीरोगता, **बलं** कायिकं सामर्थ्यमैश्वर्यं हस्त्यादिसम्पत् धनधान्यादि। **श्रीरद्वयत्वात्**। **शुभं** दशकुशलप्रधानत्वात्। **शान्तिर्यो**-गाभ्यासात्। **कल्याणमादिमध्यान्तमङ्गलत्वात्**। **यशो** बोधिचित्तप्रपूरणात्। **कीर्तिर**-भिषेकादिप्रकाशनात्। **श्लोको** बुद्धत्वदायकत्वात्। **स्तुतिर्मार्गदानेन**। अष्टानवति-क्लेशाः **सर्वव्याधयः**। **पूततरा** पुण्यज्ञानसम्भारपूरणेन। सर्वप्रपञ्चमलप्रक्षालनात् **पवित्रतरा** ज्ञानसंभारोपचितत्वेन हृदयदौष्ठुल्यापनयनात् तीर्थिकादिज्ञानिषु बुद्धधर्म-स्थापकत्वाद् **मङ्गल्यतमा**। अनाथानां शरण्यत्वात् **शरण्यम्**। रतिहेतुत्वाल्ल**यनम्**। स्वस्वधर्मेण **त्राणार्थिनां** पालनात् **त्राणम्**। परित्राणविरहिणां **परायणम्**। निर्वाणपुर-प्रापणात् **द्वीपभूता**। सर्वाकारनिराकारशून्यताप्रकाशनेन **ज्ञानालोकभूता**। **पञ्च चक्षूंषि** मांसादीनि। ग्राह्यग्राहकाभावाद**द्वयधर्मता** अवधूतीगतत्वेन सर्वारोपविगमात् **तथता-रूपता**। निःस्वभावत्वात् **सर्वधर्मानभिलापरूपा**।

मन्त्रमुखेन श्रुति(त)चिन्ताभावनाचर्या चरतीति, तथा नाम्ना चूडामणिः सर्वतथागतकुलोद्भवानामिति **नामचूडामणिः**। अविकलबुद्धगुणयोगात् **सकलपरि-समाप्ता**। सर्वधर्मार्थसम्पूर्णामन्यूनामखण्डामनभिभवानां(वनी)यां धारयिष्यति ग्रन्थार्थतः। **वाचयिष्यति** मण्डलानां पुरःसरं वचनात्। **पर्यवाप्स्यति** चिन्तातः। **योनिशश्च मनसि करिष्यति** भावनातः। ओजसो बलं सामान्यमोजोबलं **तेजसोऽ-प्रधृष्यति** तेजो अन्तः स्फुरितम्। तेजोमाहात्म्यप्रत्यङ्गिराप्रतिपक्षभूता। **पञ्चक-षायाः** सत्त्वदृष्टिकल्पायुःपरिस्फारलक्षणाः। **अश्लोकाभ्याख्यानिन्दावादपूर्वकप्रत्या-ख्यानम्**। **प्रियो मन आपो** मनोग्राही। **अधिष्ठितोऽन** (नु)वर्त्तिनो **दशसु दिक्षु धर्मदुन्दुभिर्यस्य** स तादृशो **धर्मराज** इति धर्मराजाधिपतिर्भविष्यतीति सम्बन्धः॥१२॥

मन्त्रविन्यासः

ॐ सर्वधर्माभावस्वभावविशुद्धवज्र अ आ अं अः प्रकृतिपरिशुद्धाः सर्व[1]धर्माः यदुत सर्वतथागतज्ञानकायस्य मञ्जुश्रीपरिशुद्धितामुपादायेति । [2]अ आः सर्वतथागतहृदय हर हर ॐ हूं ह्रीं भगवन् ज्ञानमूर्तिवागीश्वरमहावाच सर्वधर्मगगनामल सुपरिशुद्धधर्मधातुज्ञानगर्भ आः ।

इति मन्त्रविन्यासः ।

ॐ सर्वधर्माभावस्वभावविशुद्धवज्र अ आ अं अः प्रकृतिपरिशुद्धाः सर्वधर्माः, यदुत सर्वतथागतज्ञानकायस्य मञ्जुश्रीपरिशुद्धितामुपादायेति । अ आः सर्वतथागतहृदय हर हर ॐ हूँ ह्रीं भगवन् ज्ञानमूर्ति(र्ते) वागीश्वरमहावाच सर्वधर्मगगनामल सुपरिशुद्धधर्मधातुज्ञानगर्भ आः ।

आदिमध्यान्ताधिष्ठानोऽयं मन्त्रः । तथाहि–बोधिचित्तमकारः, भूमिपारमिताचर्यास्वभावाकारः । बुद्धत्वसूचकः अंकारः । महानिर्मा(र्वा)णद्योतको अःकारः । ज्ञानकायाधिष्ठानक आःकारः । कायवाक्चित्तरागाधिष्ठानका ॐ हूँ ह्रींकाराः धर्मधातुवागीश्वरात्मकं(क) स्थिरचलरूपावस्थितपरिधर्मकायाः मुद्रार्थः आःकारोऽन्ते विहित इति ॥ ३१ ॥

●

---

१. क. धर्मा । २. क. अः आः ।

उपसंहारः

अथ वज्रधरः श्रीमान् हृष्टतुष्टः कृताञ्जलिः ।
प्रणम्य नाथं संबुद्धं भगवन्तं तथागतम् ॥ १ ॥

अन्यैश्च बहुभिर्नाथैर्गुह्येन्द्रैर्वज्रपाणिभिः ।
स सार्द्धं क्रोधराजानैः प्रोवाचोच्चैरिदं वचः ॥ २ ॥

अनुमोदामहे नाथ साधु साधु सुभाषितम् ।
कृतोऽस्माकं महानर्थः सम्यक्संबोधिप्रापकः ॥ ३ ॥

जगतश्[1]चाप्यनाथस्य विमुक्तिफलकाङ्क्षिणः ।
श्रेयोमार्ग्रो विशुद्धोऽयं मायाजालनयोदितः ॥ ४ ॥

गम्भीरोदारवैपुल्यो महार्थो जगदर्थकृत् ।
बुद्धानां विषयो ह्येष सम्यक्संबुद्धभाषितः ॥ ५ ॥

इति [2]उपसंहारगाथाः पञ्च ।

आर्यमायाजालषोडशसाहस्रिकान्महायोगतन्त्रान्तःपातिसमाधि-जालपटलाद् भगवता श्रीशाक्यमुनिना भाषिता भगवतो मञ्जुश्रीज्ञान-सत्त्वस्याद्वयपरमार्थानामसङ्गीतिः परिसमाप्ता ।

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ॥

अथेत्यनन्तरं यः प्रथममध्येषितवीरवज्रधरः संप्रोवाचोच्चैरिदं वच इति सम्बन्धः। तदात्मसुखनिष्पत्त्या **हृष्टः**, आयतिसुखनिष्पत्त्या **तुष्टः**[3]। सम्यक्संबोधिप्रापकः, श्रेयोमार्गः, मायाजालमन्त्रनीत्योदितः। **महा**निति स्वपरोदयनिबन्धनार्थः। **कृत** इति अयं च मार्गो बुद्धानामेव गोचरो नान्येषामिति स्थितम् ॥ १४ ॥

अमृतकणिकानाम श्रीनामसङ्गीतिटिप्पणी समाप्ता।

कृतिराचार्यरविश्रीभिक्षुणेति(भिक्षोरिति)।

---

१. क. ख. चास्य। २. क. उपसंहारश्लोकोऽयम्। ३. इतः परं 'ख' प्रति नोपलभ्यते।

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ॥

[1]अब्दे व्योमवियत् षडाननयुते कृष्णे सचैत्रे (सिते) फाल्गुणे,
षष्ठम्या अनुराधके गुरुदिने शुद्धिश्च योगे इमे ।
बुद्धैर्भाषितधर्मसारनिचयं श्रीनामसङ्गीतिकं
सत्त्वानां हितहेतवे विलिखितं श्रीरूपराजेन च ॥

यस्मिन् श्रीमणिसंघनाम्नि च महाबैहारसंतिष्ठसे(ते)
श्रीमद्वज्रविलासिनी भगवतीं पादारबिन्दार्चितं(ता) ।
वज्राचार्यकुलोद्भूत(भवः) सुगुणवान्धर्मज्ञशास्त्रागमं(मः)
शास्ता(ज्ञाता)श्रीरविचन्द्रपादप्रभ(भा)वात् ख्यातो महीमण्डले ॥

यथा दृष्टं तथा लिखितं लेखिको (लेखकस्य) नास्ति दोषः । शुभमस्तु सर्वदा ।

●

१. श्लोकद्वयं प्रतिलिपिकर्तुरस्ति न तु टीकाकारस्य ।

སྟབས་ལེགས་པ་ཞིག་ལ་འཛམ་གླིང་གི་དཔེ་མཛོད་ཁག་ཏུ་ལེགས……
སྤྱིར་ཐོག་གཞུང་འདིའི་འགྲེལ་པ་གསུམ་ཙམ་རྙེད་ཀྱི་ཡོད། ཇོ་ཀྲ་ཏེར་བཎ་ར་སི
ཡུལ་ནས་འདས་པའི་ལོ་འགའ་ཤས་ནས་འདི་དང་འབྲེལ་བའི་ཆ་རྐྱེན་རྣམས་
མཁོ་བསྒྲུགས་ཀྱིས་ཉམས་ཞིབ་མཛད་དེ་འབད་རྩོལ་ཆེན་པོས་པར་ཐེངས་འདི་
གོ་སྒྲིག་གནང་བར་ཐུགས་རྗེ་ཆེ་ཞུ་དང་། གསུང་རབ་འདི་སྤྱུས་ལེགས་
དཔར་སྐྲུན་གནང་བར་ཤིབྲཾ་པར་ཁང་གི་ལས་བྱེད་ཆེ་ཕྲ་རྣམས་ལའང་ལེགས…
སོ་བཅས། ཡུ་ཀྲཱ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ངེས་སྟོན་
པ་ཟམ་གདོང་སྤྲུལ་སྐུས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༨ ཟླ་ ༡༡ ཚེས་ ༡༨ སྨིན་དྲུག་
ཟླ་བའི་བོད་ཚེས་ ༡༥ ལ་བྲིས།

प्राक्कथन

बौद्ध तन्त्रों में आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति का स्थान अन्यतम है। प्रायः सभी महायानी देशों में इसका व्यापक प्रचार एवं प्रसिद्धि देखी जा सकती है। इसकी इन विशिष्टताओं को देखकर ही हमारे परम श्रद्धेय गुरु स्व० पं० जगन्नाथ उपाध्याय जी ने मुझे इसके विषय पर शोध करने का सुझाव दिया था। उनकी अजस्र प्रेरणा के कारण ही मैं इससे सम्बद्ध सामग्रियों को संकलित करने में समर्थ हुआ और इसी के फलस्वरूप आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति को आचार्य रविश्रीज्ञान रचित टिप्पणी अमृतकणिका और अमृतकणिका पर विभूतिचन्द्र के अमृतकणिकोद्योत निबन्ध के साथ बौद्ध तन्त्र के अनुरागी विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो रहा हूँ।

नामसंगीति एवं उसकी टीकाओं पर कार्य करते हुए मुझे नामसंगीति की शताधिक पाण्डुलिपियों की सूचनायें मिलीं और उन्हें अवलोकन करने का भी अवसर मिला। किसी एक संस्करण में उन सभी पाण्डुलिपियों का प्रयोग करना दुष्कर था साथ ही साथ अनावश्यक भी प्रतीत होता है क्योंकि नामसंगीति जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की एक नहीं सैकड़ों प्रतियाँ हैं जिन्हें भक्तजनों ने व्यक्तिगत पाठ एवं संग्रह के लिए तैयार किया है। इस प्रकार की पाण्डुलिपियों में प्रतिलिपिकार द्वारा की गयी अशुद्धियां ही मुख्य रहती हैं और इसके चार-पाँच सम्पादित संस्करण भी उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से नामसंगीति के इस संस्करण में मुख्य रूप से दो ताड़पत्रीय प्रति 'क' एवं 'ख' का आधार लिया गया है। अनेक पाण्डुलिपियों के मध्य ये दो प्रतियाँ ही प्राचीनतम प्रतीत हुई जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है। इसके अतिरिक्त एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की दोनों प्रतियाँ भी प्रयुक्त हैं। कुछ पाठ डा० रघुवीर द्वारा सम्पादित संस्करण से भी लिये हैं। मूल पाठ के संशोधन में यथा सम्भव अमृतकणिका तथा विलासवज्र की नाममन्त्रार्थावलोकिनी से भी सहायता ली गई है।

अमृतकणिका के सम्पादन में चार पाण्डुलिपियों से सहयोग लिया है। जिनका विवरण यथास्थान दिया गया है। भोट पाठ पीकिंग संस्करण (भाग, ४८, सं० २१११) से लिये गये हैं। भोट पाठ से मिलान शोध प्रबन्ध को शीघ्र पूर्ण करने की दृष्टि से सम्पन्न किया था। इस संस्करण के अन्तिम चरण में पुनरीक्षण सम्भव नहीं हो पाया अतः सम्भव है सूक्ष्म अन्वीक्षण में कुछ पाठान्तर मिलें। टिप्पणी के सम्पादन में उद्योत से भी यत्र तत्र सहायता ली गई है। पहले केवल नामसंगीति एवं अमृतकणिका ही प्रकाशित करने का विचार था परन्तु जब प्रूफ संशोधन के प्रसंग में अनेक बार उद्योत

को देखना पड़ा और इसी बीच इसकी प्रतिलिपि भी तैयार हो गयी तो दो अन्य पाण्डुलिपियों से मिलान के पश्चात् इसे भी प्रस्तुत संस्करण में इस विचार से जोड़ दिया गया है ताकि अध्येताओं को इसका लाभ मिल सके। इसमें तोक्यो विश्वविद्यालय की ताडपत्रीय प्रति ही सबसे प्राचीन जान पड़ती है। शेष दो प्रतियाँ सम्भवतः इसी से प्रतिलिपि की गई हैं ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि इस प्रति में जहाँ जहाँ त्रुटित एवं छूटे हुए खाली स्थान हैं वहाँ पर शेष दो प्रतियों में भी उसी का अनुसरण किया है।

इसमें अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ कोई अर्थ संगत पाठ बन नहीं पाता उन स्थलों में (?) चिह्न दे दिया गया है और जहाँ अस्पष्ट एवं खाली स्थान है उन स्थलों को (¨)देकर इङ्गित किया गया है।

उद्योत का भोटानुवाद मुझे हस्तगत नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका भोटानुवाद नहीं हुआ, यद्यपि प्रयास अवश्य किया गया होगा। क्योंकि तोक्यो विश्वविद्यालय की पाण्डुलिपि के हाशिये में अनेक पत्रों में एक-एक दो-दो वाक्य अनूदित कर तिब्बती उमेद् अक्षरों में उट्टंकित हैं।

अमृतकणिका और उद्योत दोनों में अपभ्रंश वचनों को बहुलता से उद्धृत किया है और अनेक वचनों की संस्कृत में व्याख्या भी की है। इन अपभ्रंश वचनों के सम्पादन के प्रसंग में जिन वचनों के उद्धरण दोहाकोश आदि पूर्व सम्पादित ग्रन्थों में प्राप्त हुए हैं वहाँ उक्त वचनों का परिमार्जन सन्दर्भित ग्रन्थों के आधार पर किया गया है तथा शेष वचनों का यथा सम्भव सुसंगत पाठ देने का प्रयास किया गया है।

इस कार्य को पूर्ण करते हुए अनेक विध कारणों से प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं। सर्व प्रथम स्व० पं० जगन्नाथ उपाध्याय जी का स्मरण हो आता है, जिनकी यह प्रबल इच्छा थी कि शीघ्रातिशीघ्र यह साहित्य सम्पादित होकर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत हो जाना चाहिए। उनकी बौद्ध तन्त्रों के प्रति विशेष रुचि थी। इसी प्रसंग में उन्होंने कालचक्रतन्त्र की बृहत्-टीका विमलप्रभा के सम्पादन का निर्णय लिया था और हम बहुत से छात्रों को भी बौद्ध तन्त्रों से सम्बद्ध साहित्य में अनुसंधान के लिए प्रवृत्त किया था। इसी प्रसंग में मुझे मञ्जुश्रीनामसंगीति और संस्कृत में प्राप्त उसकी टीकाओं पर अनुसन्धान करने के लिए दिया। उन दिनों मैं आचार्य अन्तिम वर्ष का छात्र था। बौद्धतन्त्रों से हम लोगों का अधिक परिचय नहीं था। अल्पज्ञात विषय होने के कारण इसकी अध्ययन की दिशाएँ भी निश्चित नहीं थीं। प्रारम्भ में विषय, भाषा, लिपि आदि अनेक विषम समस्याएँ थीं। प्रो० उपाध्यायजी तब कहा करते थे कि सम्प्रति बौद्ध तन्त्र के विषय हमारे समक्ष बीहड़ जंगल के समान हैं, हमें इसके भीतर

प्रवेश कर, इसे घेर कर, इसके चप्पे चप्पे को छान कर विवरण तैयार करना होगा क्योंकि हमारे सामने परम्परा की भी समस्या है, तभी हम इसका वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन प्रस्तुत कर सकेंगे। उनकी इस प्रेरणा से प्रेरित होकर ही मैं इसके अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुआ और यथामति सम्पादित कर इस कार्य को विद्वानों के समक्ष आलोचना के लिए प्रस्तुत कर उनकी इच्छाओं को पूर्ण कर रहा हूं। हमें दुःख है कि काल के क्रूर हाथों ने इसे फलीभूत देखने के लिए उन्हें हम से पृथक् कर दिया। फिर भी उनकी अन्तःप्रेरणा रूपी सन्तति, जो हम सभी शिष्यों में विद्यमान है, के कारण आनन्दानुभव कर रहा हूँ।

इस ग्रन्थ के पूर्ण होने में अनेक महानुभावों का आशीर्वाद, मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है। उसी के फलस्वरूप यह पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत कर पा रहा हूं। सर्व प्रथम मैं संस्थान के निदेशक आदरणीय प्रो० एस० रिन्पोछे जी का आभार कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करता हूं, जिन्होंने मेरे कार्य को संस्थान से प्रकाशित कराने की स्वीकृति प्रदान कर मुझ पर अनुकम्पा की है। दुर्लभ-बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना के दोनों गुरु पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी एवं पं० जनार्दन पाण्डेय जी का मैं सदैव आभारी हूं जिन्होंने इस कार्य को शीघ्र पूर्ण करने के लिए सतत प्रेरणा ही नहीं दी अपितु पद-पद पर अपने अमूल्य सुझावों और सहयोग द्वारा उपकृत किया। विशेष रूप से पाण्डेय जी का कृतज्ञ हूं जिन्होंने मेरे शोध प्रबन्ध से लेकर इस ग्रन्थ के पूर्ण होने तक समय-समय पर अपना श्रमसाध्य सहयोग प्रदान किया और इस ग्रन्थ के सम्पादन कार्य से लेकर अन्तिम प्रूफ तक देख कर मुझ पर महती अनुकम्पा की है। आपके सहयोग के बिना सम्भवतः मैं इस ग्रन्थ को इस रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ न होता। संस्थान के ही ही रिसर्च प्रोफेसर और हमारे गुरु प्रो० रामशंकर त्रिपाठी जी का भी अत्यन्त आभारी हूं। जिन्होंने हमें छात्र जीवन से लेकर आज तक सतत बौद्ध अध्ययन के लिए प्रेरित किया और इस ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन के लिए हमें उत्साहित किया। मैं विश्वभारती शान्तिनिकेतन के प्रो० सुनीति कुमार पाठक का भी आभारी हूं जिन्होंने मेरे कार्य को देखकर शीघ्र प्रकाशित करने के लिए हमें प्रेरित किया। काठमाण्डू में गुरुवर पं० दिव्यवज्रवज्राचार्य जी की भी मुझपर असीम कृपा रही है, काठमाण्डू प्रवास के दौरान आपने अमूल्य निर्देश एवं सुझावों द्वारा मेरी सहायता की और अपने व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध सामग्री के उपयोग करने के लिए अनुमति प्रदान की। मैं परम स्नेही मित्र श्री ठिनलेराम शाशनी को भी धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बराबर रुचि प्रदर्शित की और सहयोग प्रदान किया। अपने जापानी मित्र फुरुओसाका का भी स्मरण करना चाहता हूं, जिन्होंने मेरे अनुरोध पर तोक्यो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध अमृतकणिकोद्योत की ज़ेराक्स प्रति उपलब्ध कराई।

मैं अपने सहयोगी मित्रों डॉ० वङ्छुग दोर्जे नेगी, डॉ० ठाकुरसेन नेगी, डॉ० टशी सम्फेल एवं श्रीविजयराज वज्राचार्य का भी आभारी हूँ जिनके सहयोग के फलस्वरूप यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

संस्कृत विश्वविद्यालय के सम्बद्ध अधिकारियों का भी मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे अपने शोध प्रबन्ध से इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की। अन्त में मैं उन सभी संस्थाओं और पुस्तकालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को भी धन्यवाद देना चाहूंगा जहाँ से मुझे उक्त सामग्रियाँ प्राप्त हुईं।

विद्वानों के समक्ष प्रथम बार यह ग्रन्थ सम्पादित होकर प्रस्तुत हो रहा है। मेरी अल्पज्ञता के कारण और विषय की दुर्बोधता के कारण यह सम्पादन कितना उपादेय हो पाया है विद्वज्जन निर्णय करेंगे। आशा है कृपालु विद्वान् त्रुटियों की ओर इंगित कर हमारा मार्ग दर्शन करेंगे।

कार्तिक पूर्णिमा
१८ नवम्बर, १९९४

बनारसी लाल
शोध अधिकारी
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

भूमिका

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति का बौद्ध देशों में विशेषकर महायानानुयायी प्रदेशों में व्यापक प्रचार और प्रसार तथा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इसके महत्व का इस बात से भी पता चलता है कि इस ग्रन्थ का अनुवाद प्रायः सभी भाषाओं में जैसे चीनी, मंगोलियायी, तिब्बती आदि में हुआ है। नेपाल में यह अपने मूलरूप संस्कृत में ही प्रचलित है। मञ्जुश्रीनामसंगीति के महत्व एवं विशिष्टता का ज्ञान उस प्राचीन घटना से भी होता है जब आचार्य चन्द्रगोमिन् की आचार्य चन्द्रकीर्ति से भेंट होती है। चन्द्रकीर्ति के यह पूछने पर कि किन-किन ग्रन्थों के जानकार हो ? चन्द्रगोमिन कहते हैं कि वह व्याकरण और नामसंगीति को ही जानते हैं। इससे चन्द्रकीर्ति समझ जाते हैं कि चन्द्रगोमिन् समस्त शास्त्र एवं तन्त्र के ज्ञाता हैं क्योंकि व्याकरण एवं नामसंगीति को जानने का तात्पर्य ही यही था। अतः नामसंगीति सभी तन्त्रों का निकष या सार रूप है। इसकी विशिष्टता का भान इस तथ्य से भी होता है कि प्राचीन भारतीय आचार्यों ने छठी-सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक २६ से अधिक टीकाएँ इस पर लिखीं। सम्भवतः शायद ही कोई दूसरा ग्रन्थ हो जिस पर इतनी अधिक टीका-टिप्पणियां रची गयीं हों। इसके अतिरिक्त पचासों ग्रन्थ नामसंगीति के साधन, मण्डल, अभिषेक, विधि, होम इत्यादि विषयों पर रचे गये। इन सभी टीका टिप्पणियों एवं अन्य ग्रन्थों की सूचना हमें भोटानुवाद में सुरक्षित कन्ग्युर एवं तन्ग्युर संग्रह से मिलती है।

नामसंगीति की मूल विषयवस्तु पर विचार करने से पूर्व तन्त्र की पृष्ठभूमि तथा इनके तथागत द्वारा प्रवचन होने के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। मञ्जुश्रीनामसंगीति बौद्ध तन्त्रों में सर्वाधिक ग्राह्य एवं मान्य ग्रन्थ है। परम्परागत मान्यता के अनुसार इसे बुद्धवचन ही माना जाता है। इसीलिये भोटानुवाद में इसका संकलन कन्ग्युर संग्रह में हुआ है। इसके आधुनिक वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से भी इसका काल स्थिर किया जा सकता है। फिर भी इसके काल के सम्बन्ध में इदमित्थं रूप से निर्धारण करना कठिन है। इसके काल निर्णय के प्रसंग में इससे सम्बन्धित प्राचीन साहित्य एवं इस शैली के स्तोत्रात्मक ग्रन्थों के रचना काल आदि महत्त्वपूर्ण तथ्य हो सकते हैं।

महायानी परम्परा के अनुसार इसका प्रवर्तन भगवान बुद्ध ने ही किया है। नामसंगीति के सम्बन्ध में इसी का एक प्रसिद्ध वचन है—

यातीतैर्भाषिता बुद्धैर्भाषिष्यन्ते ह्यनागताः।
प्रत्युत्पन्नाश्च सम्बुद्धा यां भाषन्ते पुनः पुनः ॥

बौद्ध तन्त्रों के काल के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों की दृष्टि सर्वथा वैज्ञानिक तथा तकनीकी है। वे तन्त्रों का प्रारम्भ ही सातवीं शताब्दी से स्वीकार करते हैं। कुछ ही विद्वान् हैं जिन्होंने बौद्ध तन्त्रों के काल को कुछ और आगे बढ़ा कर तीसरी चौथी शताब्दी मे स्थापित किया है। परम्परागत मान्यता के सन्दर्भ में भोट आचार्यों की स्थापनायें भी महत्त्वपूर्ण हैं। अतः इस प्रसंग में भोट ग्रन्थों का अवलोकन करना अवश्यंभावी हो जाता है। भोट ग्रन्थों में बौद्ध तन्त्रों के चारों प्रमुख तन्त्रों— क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तरयोगतन्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रवचन भगवान् बुद्ध ने किस परिषद् के समक्ष, किसकी अध्येषणा से और किस स्थान पर किया इन सबका सम्पूर्ण विवरण मिलता है। इस प्रकार के मुख्य ग्रन्थों में आचार्य खस् ड्रु ब जे एवं बुस्तोन रिन्पोछे कृत 'सामान्य तन्त्र व्यवस्था' नामक ग्रन्थ तथा आचार्य चोंखापा कृत 'महामन्त्रमार्गक्रम' हैं।

नामसंगीति के काल के सन्दर्भ में उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करें तो इसका काल पांचवीं-छठी शताब्दी के आस-पास आंका जा सकता है। नामसंगीति की शैली में नामसंकीर्तन से युक्त ग्रन्थों का प्रणयन बौद्धेतर शाखाओं में भी हुआ है इस प्रकार के ग्रन्थों में मुख्य विष्णुसहस्रनाम और ललितासहस्रनाम हैं। विष्णुसहस्रनाम को महाभारत के अनुशासनपर्व का भाग माना जाता है। इस दृष्टि से इस शैली के स्तोत्रों की रचना का काल बहुत आगे तक जा सकता है। क्योंकि महाभारत का काल ३००० साल ईसा पूर्व या उससे भी पूर्व माना जाता है। ऐसी स्थिति में भगवान् बुद्ध के काल में भी इस प्रकार के स्तोत्रात्मक ग्रन्थ उपदिष्ट हुए हों, इसका अपलाप नहीं किया जा सकता। फिर भी हमें इस सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाणों पर आधारित हो कर निष्कर्ष निकालना युक्ति-युक्त जान पड़ता है।

नामसंगीति के काल निर्धारण में दूसरा प्रमुख तथ्य है—नामसंगीति के प्राचीन टीकाकार आचार्यों का समय। इसके प्रारम्भिक टीकाकार आचार्यों में चन्द्रगोमिन्, विमलमित्र, विलासवज्र और डोम्बी हेरुक आदि हैं। इन में भी "आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिमहाटीका" के रचयिता आचार्य चन्द्रगोमिन् सबसे प्रथम जान पड़ते हैं। आचार्य चन्द्रगोमिन् आचार्य चन्द्रकीर्ति के समकालीन हैं, इनका काल छठी-सातवीं शताब्दी है। अतः नामसङ्गीति का काल इससे पूर्व ही स्वीकार किया जा सकता है। नामसंगीति साधन से सम्बन्धित एक ग्रन्थ आचार्य नागार्जुन-प्रणीत भी मिलता है, परन्तु एकाधिक नागार्जुन होने से हम इन्हें माध्यमिक दर्शन के प्रवर्तक नागार्जुन

ही हैं, निश्चय पूर्वक कह नहीं सकते। यदि यह माध्यमिक दर्शन के संस्थापक आचार्य की ही रचना हो तो हम नामसंगीति के काल को कम से कम द्वितीय शताब्दी तक ले जा सकेंगे। इसके अन्य टीकाकार आचार्यों का काल विद्वानों ने सातवीं-आठवीं या इसके बाद ही स्वीकार किया है।

इस सम्बन्ध में एक अन्य तथ्य पर ध्यान देना भी आवश्यक जान पड़ता है वह है प्रज्ञापारमिता शास्त्रों का काल और प्रज्ञापारमिता सूत्रों की शैली। नामसंगीति मूलतः स्तोत्र ग्रन्थ है परन्तु जब हम इसके परिच्छेदों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें स्वतः प्रज्ञापारमिता सूत्रों की शैली परिलक्षित दीखती है। जैसे भगवान् के समक्ष सूत्र की देशना के लिये अध्येषणा करना, भगवान् द्वारा सत्त्व के कुल, गोत्र एवं अध्याशय को जानकर, तदनुरूप गम्भीरशास्त्र का प्रवचन करना और जो भी कुल-दुहिता और कुलपुत्र इस सूत्र का वाचन करेंगे, श्रवण करेंगे, पाठ करेंगे, इसकी पुनः पुनः आवृत्ति करेंगे, इसे धारण करेंगे, इससे वह अपरिमित पुण्यों तथा गङ्गानदी के बालु कणों के समान पुण्यों के भागी बनेंगे। इस दृष्टि से हम नामसंगीति का काल प्रज्ञापारमिता शास्त्रों के समकाल में करीब-करीब दूसरी-तीसरी शताब्दी का स्वीकार कर सकते हैं।

वस्तुतः तन्त्रों के बुद्ध द्वारा देशित होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं होना चाहिये। भगवान् बुद्ध ने तीन बार धर्मचक्र प्रवर्तन किया — प्रथम बार मृगदाववन ऋषिपत्तन सारनाथ, वाराणसी में, द्वितीय गृध्रकूट पर्वत पर महायान का और तृतीय श्रीधान्यकटक में मन्त्रनय का। भोट परम्परा के अनुसार ऐसी मान्यता है कि बोधि प्राप्त करने के प्रथम वर्ष में सारनाथ में स्थविरवादी मत का, तेहरवें वर्ष में गृध्रकूट पर्वत पर महायान का और सोलहवें वर्ष में धान्यकटक में मन्त्रनय का प्रवर्तन किया। कालचक्रतन्त्र के सम्बन्ध में विमलप्रभा टीकाकार पुण्डरीक ने स्पष्ट ही उद्धृत किया है कि इसकी देशना तथागत ने बोधि के बारहवें मास में चैत्र पूर्णिमा के दिन धान्य-कटक में दी। नामसंगीति के टीकाकार रविश्री ने इसके प्रवर्तन के सम्बन्ध में लिखा है कि श्रीधान्यकटक महाचैत्य स्थान में नाना तन्त्रों के श्रवण के इच्छुक विनेय जनों के द्वारा अध्येषणा करने पर श्रीशाक्यसिंह भगवान् बुद्ध ने चैत्र पूर्णिमा के दिन धर्मधातुवागीश्वर मण्डल के ऊपर आदिबुद्ध को विस्फारित कर उसी दिन अभिषेक देकर बृहत् और लघुतन्त्र के भेद से देशना दी[1]। बृहदादिबुद्ध में भी प्रज्ञापारमिता

---

१. श्रीधान्यकटके महाचैत्यस्थाने नानातन्त्रश्रवणार्थिभिरध्येषितः श्रीशाक्यसिंहो नाम बुद्धो भगवान् चैत्रपूर्णिमायां श्रीधर्मधातुवागीश्वरमण्डलं तदुपरि श्रीमान्नक्षत्रमण्डलमादिबुद्धं विस्फार्य तत्र तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवादिभ्यः सर्वमन्त्रनीतिं बृहल्लघुतन्त्र-भेदेन देशितवान् (पृ० १)

एवं मन्त्रनय की देशना के सम्बन्ध में कहा है कि जिस प्रकार प्रज्ञापारमिता की देशना गृध्रकूट में शास्ता ने की उसी प्रकार मन्त्रनय की देशना भगवान् ने श्रीधान्य में की—

गृध्रकूटे यथा शास्त्रा प्रज्ञापारमितानये।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना[1]॥

नामसंगीति का शाब्दिक अर्थ

नामसंगीति में दो शब्द हैं नाम और संगीति। यह मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्व के नामों की संगीति है, अतः मञ्जुश्रीनामसंगीति कहलाता है। आचार्य विलासवज्र अपनी टीका नाममन्त्रार्थावलोकिनी में 'नाम' और 'संगीति' को स्पष्ट करते हुये बतलाते हैं कि—गान ही गीति है, सम्यक् गीति संगीति है, नामों की सम्यक् गीति ही नामसंगीति है—"गानं गीतिः सम्यग्गीतिः सङ्गीतिः, नाम्नां संगीतिर्नामसंगीतिरिति"। यहाँ नाम को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि क्रिया, चर्या, योगतन्त्र, सूत्र, अभिधर्म, विनय, समस्त लौकिक-लोकोत्तर, स्थावर-जङ्गम जगत् नाम है। उनकी संगीति ही नाम संगीति है—"नामानि योगक्रियाचर्यातन्त्रप्रवचनसूत्राभिधर्मविनयलौकिकलोकोत्तराणि स्थावरजङ्गमानि च, तेषां नाम्नां संगीतिरिति"। आचार्य रविश्री ने अपनी नामसंगीति टिप्पणी अमृतकणिका में नामसंगीति के अर्थ को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि यह नाना तन्त्रों से उपलक्षित है, जो महासुखाकार और सहजानन्द स्वरूप है। उसी महासुखाकार सहजानन्द का सम्यक् ज्ञान ही नामसंगीति है—"नानातन्त्रोपलक्षित-महासुखाकार-सहजानन्दसुखस्य नाम्नां सम्यग् ज्ञानं नामसंगीतिः" (पृ० ९)। यहाँ आचार्य का नाना तन्त्रों से उपलक्षित कहने का तात्पर्य यह है कि नामसंगीति अपने पूर्ववर्ती अनेकानेक तन्त्रों से स्तोत्र के रूप में प्रस्तुत हुई है। अर्थात् मूलरूप से सभी महत्त्वपूर्ण तन्त्र नामसंगीति में प्रतिनिधित्व पा सके हैं। अतः स्थापित किया जा सकता है कि यह सभी प्राचीनतम मुख्य तन्त्रों की प्रतिनिधि है। इसी कारण इस ग्रन्थ ने विशेषकर महायानी और मन्त्रयानी सम्प्रदायों एवं अनुयायियों में सर्वाधिक ग्राह्य एवं मान्य होकर व्यापक महत्त्व प्राप्त किया।

ऊपर नामसंगीति के जिन नामों की चर्चा की गई है वे विशेषण के रूप में आठ सौ बारह नाम इसमें संग्रहीत हैं। इसमें प्रत्येक नाम की विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा है। क्योंकि इनमें प्रत्येक नाम की दार्शनिक एवं साधनात्मक व्याख्या की जा सकती है। साधनमाला में संग्रहीत वागीश्वरसाधन में इसे आठ सौ नाम वाली नाम-

---

१. सेकोद्देशटीका-पृ० १, ना० सं० पृ० १

संगीति कहा है—"अष्टशतनामधेयां नामसंगीतिम्"। आचार्य मञ्जुश्रीमित्र नामसंगीति के विलक्षण एवं विशिष्ट ज्ञाता थे। इन्होंने नामसंगीति पर "आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति-टीका" के अतिरिक्त इसके साधन, मण्डल, होम, अभिषेक इत्यादि विषयों पर लगभग तीस से अधिक ग्रन्थों की रचना की है। इनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने नामसङ्गीति के एक-एक नाम पर साधना की और सिद्धि प्राप्त की।

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति की अन्तिम पुष्पिका में यह उद्धृत है कि यह मायाजालषोडशसाहस्रिका के समाधिजाल पटल से उद्धृत की गयी है। षोडशसाहस्रिका मायाजाल महायोगतन्त्र उपलब्ध नहीं होता है। सम्भवतः नामसंगीति उस बृहत् तन्त्र के समाधिजाल पटल में हो। यह तन्त्र तिब्बती अनुवाद में भी उपलब्ध नहीं होता है। अतः हम निश्चित रूप से कहने में असमर्थ हैं कि क्या नामसंगीति इसका एक अंग है या इसके समाधिजालपटल का लघु अथवा संक्षेपीकृत रूप है? क्योंकि हमें अनेक बौद्ध तन्त्रों का संक्षिप्त रूप और बृहत् रूप देखने में मिलता है। जैसे लक्षाभिधान का लघु रूप ५१ परिच्छेदों में निबद्ध लघुतन्त्र (चक्रसंवरतन्त्र), बृहदादिबुद्ध का द्वादशसाहस्रिका कालचक्रतन्त्र तथा गुह्यसमाज और हेवज्रतन्त्र भी इसी प्रकार संक्षिप्त रूप हैं। नामसंगीति के सम्बन्ध में इसकी अध्येषणा और उपसंहार में आये अंश भी इसका स्पष्टीकरण करते हैं। यथा—

मायाजाले महातन्त्रे या चास्मिन् संप्रगीयते।
महावज्रधरैर्हृष्टैरमेयैर्मन्त्रधारिभिः ॥

(पृ० ९)

श्रेयोमार्गो विशुद्धोऽयं मायाजालनयोदितः।

(पृ० १०९)

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति १४ परिवर्तों में विभाजित है। इसमें कुल १६७ श्लोक तथा अनुशंसा के गद्य अंश भी सम्मिलित हैं। अनुशंसा मूल नामसंगीति का अंश है या नहीं, यह अभी निर्धारण करना शेष है। क्योंकि अनेक टीकाकारों ने इसकी भी व्याख्या की है, परन्तु कुछ टीकाकारों ने इसे प्रकारान्तर से व्याख्यायित मान कर छोड़ दिया है। इसके परिवर्तों में अध्येषणा से लेकर उपसंहार तक है। वस्तुतः नामसङ्गीति की मूल विषयवस्तु छः परिच्छेदों में ही समाहित मानी जाती है। यह है—वज्रधातुमण्डलज्ञान गाथा के "तद्यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकारसम्भवः" से लेकर कृत्यानुष्ठानज्ञानगाथा के अन्तिम श्लोक "सर्वसम्पत्करः श्रीमान् मञ्जुश्री श्रीमताम्बरः" तक।

प्रारम्भिक अध्येषणा गाथा में वज्रधर भगवान् को प्रणाम कर कृताञ्जलि की अवस्था में भगवान् के सामने स्थित हो कर मायाजालमहातन्त्र में संगीतित, मन्त्रधर और महावज्रधरों द्वारा धारित, अतीत, अनागत और प्रत्युत्पन्न बुद्धों द्वारा देशित, गम्भीर, उदार, और महान् अर्थों से युक्त, अप्रतिम शान्तिकारक, जो आदि मध्य और अन्त में कल्याणकारी है इत्यादि अनेकानेक गुण विशेषणों से युक्त नामसंगीति का उपदेश वज्रधर अपने हित के लिये, अज्ञानपङ्क में निमग्न सत्त्वों के उद्धार के लिये राग-द्वेष-मोह आदि क्लेशों द्वारा जिन का चित्त व्याकुल हो गया है, उन सभी सत्त्वों के हित के लिये तथा अनुत्तर फल को प्राप्त करने के लिये अध्येषणा करता है।

तब भगवान् बुद्ध जो मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, स्मित हास्य से युक्त होकर, वज्रधर की ओर मुखातिब होकर कहते हैं कि तुम जगत् के हित के लिये करुणा से युक्त हुये हो और महान् अर्थों से युक्त पवित्र मञ्जुश्री के ज्ञानकाय (नामसंगीति) को सुनने के लिये उद्यत हुये हो। हे गुह्याधिपति ! मैं तुम्हें इसकी देशना करता हूं, तुम एकाग्रमन होकर इसका श्रवण करना। यह गुह्याधिपति के अध्येषणा करने पर भगवान् का प्रतिवचन है। अतः इस परिच्छेद का नाम ही प्रतिवचन है। तीसरा परिच्छेद षट्कुलावलोकन का है। इस में पञ्चस्कन्धात्मक सत्त्वों के कुलों का निरीक्षण भगवान् करते हैं, तथा छठा कुल यहाँ वज्रधर का अभिप्रेत है। कुलानुवीक्षण की यही परम्परा बौद्ध तन्त्रों के अभिषेक के प्रसंग में भी प्रचलित है। अभिषेक के समय भी सर्वप्रथम सत्त्व के कुल का निर्धारण होता है। तब तत्कुलानुरूप नामकरण कर उसे तन्त्र का अभिषेक दिया जाता है। जगत् में सत्त्व अनेक हैं तदनुसार कुल भी अनेक हैं। इन सभी कुलों को क्रमशः पाँच तथागत कुलों में अन्तर्भुक्त कर लिया जाता है। बौद्ध दर्शन में भी यह मान्यता है कि सभी जगत् के पदार्थ अथवा धर्म पाँच स्कन्धों के भीतर समाहित हो जाते हैं। तदनुसार यहाँ पाँच तथागत कुल तथा छठे वज्रधर कुल का अवलोकन किया गया है। चौथा परिच्छेद मायाजालाभिसम्बोधि का है। बौद्ध तन्त्र का मुख्य तथ्य यह है कि सत्त्व को महाकरुणा से युक्त होने के साथ-साथ शून्यता अर्थात् वस्तुओं की निःस्वभावता का भी साक्षात्कार करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सत्त्व महाकरुणा और शून्यता से युक्त हो। यही तथ्य अभिषेक के प्रसंग में भी परिलक्षित होता है क्योंकि अभिषेक प्रदान करने से पूर्व सत्त्व के चित्त में महाकरुणा उत्पन्न करने के लिये बोधिचित्तोत्पाद का अभ्यास किया जाता है। इसके बाद ही अभिषिक्त होकर उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम की साधना का अधिकारी होता है। मायाजालाभिसम्बोधि का विषय अत्यन्त गम्भीर एवं दुरूह है। एक प्रकार से इसी में तन्त्र के दार्शनिक पक्ष का प्रस्फुरण होता है। इस के पश्चात् मूल नामसंगीति के छः परिच्छेद आते हैं। जिनका निर्देश पहले किया जा चुका है। इस में

कुल ८१२ नाम संग्रहीत हैं, वागीश्वरसाधन के अनुसार इसमें ८०० नाम ही होने चाहिये। इन में वज्रधातुज्ञानमण्डल गाथा को छोड़कर शेष पाँच परिच्छेद पाँच तथागतों के ज्ञान से सम्बद्ध हैं। यथा आदर्शज्ञान, सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान, प्रत्यवेक्षणाज्ञान, समताज्ञान तथा कृत्यानुष्ठानज्ञान। समस्त चराचर जगत जो पाँच स्कन्धों में विभाजित किया जाता है और पाँच स्कन्ध पाँच तथागत के प्रतीक हैं। इस प्रकार समस्त जगत् में जो भी धर्म (वस्तु) है सभी का संगायन इन परिच्छेदों में हो जाता है इन से अवशिष्ट कुछ नहीं रह जाता। जैसे कहा है—"पञ्चबुद्धात्मकु सर्वजगोऽयम्"।

इस प्रकार विलासवज्र का यह कथन—"इसमें समस्त स्थावर-जंगम जगत के नामों का संगायन हुआ है" समीचीन जान पड़ता है। इसके पश्चात् पञ्च तथागत ज्ञान-स्तुति गाथा में उपरोक्त पाँच तथागत ज्ञानों की स्तुति को गई है। अनुशंसा में नामसंगीति के धारण, वाचन, द्वारा होने वाले पुण्यों एवं लाभ का निर्देश किया गया है। मन्त्रविन्यास इसका महत्त्वपूर्ण परिच्छेद है, जिस प्रकार प्रज्ञापारमिता सूत्र संक्षेपीकरण होते होते अन्त में मन्त्र एवं धारणी के रूप में प्रस्तुत होते हैं उसी तर्ज में यहाँ भी मन्त्र विन्यास का परिच्छेद समाविष्ट है और अन्त में उपसंहार गाथा के साथ नामसंगीति पूर्ण होती है। इतना परिचय नामसंगीति के मात्र बाह्य कलेवर का ही है। इस का विषय अत्यन्त गूढ़ एवं गम्भीर है। इसके एक एक नाम की विशद व्याख्या मिलती है।

नामसंगीति का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद

भारत वर्ष से विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रवेश के साथ ही अनुवाद कार्य भी प्रारम्भ हुआ। बौद्ध शास्त्रों का विशाल वाङ्मय जो आज अपने मूल संस्कृत में अप्राप्त है, वह चीनी एवं भोट अनुवादों में सुरक्षित है। उसी परम्परा में आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति का भी विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया। यहाँ संक्षेप में उन अनुवादों का विवरण देना समीचीन होगा।

१. चीनी अनुवाद—नामसंगीति के चीनी भाषा में कई अनुवाद हुए जो दानपाल (९८० ई०) के चीन पहुंचने के बाद प्रारम्भ हुए। नान्जियो[1] ने अपने सूची पत्र में इसके अनुवादक का नाम K' hwui दिया है, जो Yuen dynasty १२८०-१३६८ ई० में वर्तमान थे। इसके दूसरे अनुवादक Kin-stun kh हैं, जो

1. Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripiṭaka, B. Nanjio, p. 227, 306.

१११३ ई० के लगभग वर्तमान थे। चीनी भाषा में नामसंगीति के मुख्य चार अनुवाद हैं[1]।

2. मंगोल अनुवाद--मंगोल भाषा में इसका अनुवाद Choi gi odser (१२१४-१२९४ ई०) ने किया[2]।

3. भोटानुवाद—भोटानुवाद में इसे "आर्यमञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य परमार्था नामसङ्गीतिः" (ḥPhags Pa ḥJam dPal Ye Śes Sems Kyi Don Dam Paḥi mTshan brJod) कहा है। भोट भाषा में भी इसके विभिन्न अनुवाद किये गये एवं उन अनुवादों में समय-समय पर संशोधन भी हुए। पीकिंग संस्करण कन्ग्युर के अनुसार इसके अनुवादक bLo Gros brTan Pa हैं। बाद में पुनः bLo Gros brTan Pa द्वितीय ने इसे संशोधित किया। देगे संस्करण के अनुवादक कमलगुप्त एवं महान् अनुवादक रिन्छेन जङ्पो (Rin Chen bZaṅ Po ९५८-१०५५ ई०) हैं[3]। इसे भी बाद में bLo Gros brTan Pa ने संशोधित किया। यह १४ वीं शताब्दी में वर्तमान थे[4]।

4. अंग्रेजी अनुवाद—मञ्जुश्रीनामसङ्गीति के दो अंग्रेजी अनुवाद भी इस समय प्राप्त हैं[5]।

नामसंगीति की प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्रियां

नामसंगीति के संस्कृत में प्रकाशित कई संस्करण एवं पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं। इसकी चार टीकाएँ भी संस्कृत में उपलब्ध होती हैं और परिवार ग्रन्थों की भी कुछ पाण्डुलिपियां प्राप्त हैं। जिनका संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है—

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति के संस्कृत पाठ के आज तक पांच भिन्न भिन्न संस्करण सम्पादित हो चुके हैं। पहली बार इसका सम्पादन रूसी विद्वान्

---

1. Indian Buddhism—H. Nakamura, p. 326.
2. Buddhism in Mangolia, p. 9-10.
3. A Complete Catalogue of the Tibetan Buddhist Canon, Sendai, Japan, 1934.
4. The Blue Annals, p. 310, 329.
5. I. The Litany of Names of Mañjuśrī—R. Davidson, (Tantric and Taoist Studies. MCB. Vol. XX Bruxells, 1981).
   II. Chanting the Names of Mañjuśrī-By Prof. Alex Wayman.

I.P. Mineof ने १८८५ में किया[१]। परन्तु यह संस्करण अब दुर्लभ हो गया है। दूसरा संस्करण प्रो० रघुवीर ने विभिन्न पाण्डुलिपियों के पाठ भेद, भोट और मंगोल पाठ के साथ शतपिटक सीरीज में प्रकाशित किया है[२]। तीसरा संस्करण कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् १९६३ में दुर्गादास मुखर्जी ने एशियाटिक सोसायटी, बंगाल में उपलब्ध दो पाण्डुलिपियों और भोट पाठ की सहायता से पाठ भेद पूर्वक सम्पादित किया[3]। इस संस्करण में अनुशंसा को परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित किया है। चौथा संस्करण रोनाल्ड एम० डेविडसन्[४] का है। उपर्युक्त तीनों संस्करणों के माध्यम से और तन्ग्युर में उपलब्ध कुछ टीकाओं के भोट पाठ की सहायता से यह संस्करण सम्पादित है। साथ में इसमें नामसंगीति का आङ्गलभाषा अनुवाद भी दिया गया है। पांचवां संस्करण प्रो० एलेक्स वेमेन ने सम्पादित किया है[५]।

उपर्युक्त संस्करणों के अतिरिक्त भी नेपाल में नित्य पाठ के लिये भक्तों ने अनेक संस्करण प्रकाशित किये हैं।

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति की पाण्डुलिपियाँ

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति की शताधिक पाण्डुलिपियाँ ताडपत्र एवं अन्य पत्रों में विश्व के विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। नेपाल में व्यक्तिगत संग्रहों में भी काफी मात्रा में उक्त ग्रन्थ की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त स्तोत्रसंग्रह के ग्रन्थों में भी इसका पाठ उपलब्ध हो जाता है। यद्यपि इन सभी मातृकाओं की सूचना देना यहाँ सम्भव नहीं है। इसका किञ्चित् विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है[६]। उन सभी पाण्डुलिपियों का काल निर्णय भी एक कठिन समस्या है, क्योंकि अधिकतर मातृकाएँ व्यक्तिगत संग्रहों में संरक्षित हैं। तथापि पुस्तकालयों में उपलब्ध पाण्डुलिपियों, जिनका किंचित् निर्देश सूची पत्रों में उपलब्ध हो जाता है, के अनुसार

1. St. Petersburg University, Histirio Philogical Faculty. Vol. 16, 1885, p. 137.
2. Shata Pitaka Series, Vol. 18, International Academy of Indian culture, New Delhi.
3. Āryamañjuśrīnāmasaṃgīti, Ed. Durga Dass Mukherjee, University of Calcutta, 1963.
4. The Litany of Names of Mañjuśrī, by R. Davidson, Tantric and Taoist Studies, Melanges Chinois et Buddhiques, Vol. XX, Bruxelles, 1981.
5. Chanting the Names of Mañjuśrī—By Alex Wayman.

६. नामसंगीति की अध्ययन सामग्रियाँ (२)-धीः ३, पृ० १२७–१४०

अधिकतर प्रतियाँ नेपाली संवत् ८०० से १००० के मध्य की हैं। फिर भी कुछ मातृकाएँ निश्चय ही काफी प्राचीन प्रतीत होती हैं, इनमें से एक केसर पुस्तकालय में संरक्षित ताडपत्रीय प्रति (सं० ११८), जिसका समय नेपाली संवत् २४२ है, अतः यह १०वीं ११वीं शताब्दी की जान पड़ती है। एक अन्य ताडपत्रीय प्रति राष्ट्रीय अभिलेखालय में उपलब्ध है (सं० ४.२२८५)। इसके अन्त में प्रतिलिपिकार ने जो समय दिया है, तदनुसार यह नेपाली संवत् ३५१ के अश्विनी शुक्ल प्रतिपदा के दिन लिपिबद्ध की गई है। इस प्रकार यह प्रति भी १३वीं शताब्दी के लगभग की विदित होती है।

नामसंगीति की टीका-उपटीका एवं परिवार ग्रन्थ

आर्यमञ्जुश्री नामसंगीति के व्यापक प्रचार का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सातवीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक विभिन्न भारतीय आचार्यों ने इस पर २६ टीका, उपटीका, पञ्जिका एवं वृत्तियाँ लिखकर इसके साहित्य को समृद्ध किया। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न भारतीय आचार्यों ने इसके विभिन्न पक्षों—साधना, मण्डल, जप, होम, अभिषेक आदि विषयों पर पचासों परिवार ग्रन्थों की रचना की, जिनका भोटानुवाद तन्ग्युर संग्रह में संगृहीत है।

१. टीकाग्रन्थ

इस विशाल साहित्य का ज्ञान हमें भोटानुवाद के माध्यम से विशेष रूप से मिलता है। तन्ग्युर संग्रह में जो आर्यमञ्जुश्री नामसंगीति की टीकाओं का विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है—

१. अमृतकणिकानाम आर्यनामसंगीतिटिप्पणी- (रविश्री)
(ḥPhags Pa mTshan Yaṅ Dag Par brJod Pa [mDor-bŚad] bDud rTsiḥi Thigs Pa Śes Bya Ba. Tibetan Tripiṭaka, Peking ed. (TTP.) Vol. 48, Sr. No. 2111)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति अमृतबिन्दुप्रत्यालोकवृत्तिनाम- (अनुपमरक्षित)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa bDud rTsiḥi Thigs Pa sGron Ma gSal Ba Śes Bya Ba. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2112)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिव्याख्यान- (मञ्जुश्री निर्माणनरेन्द्रकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rNam Par bŚad Pa. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2113)

४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिटीका विमलप्रभा- (राजा पुण्डरीक)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa Dri Ma Med Paḥi Ḥod S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2114)

५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिस्वानुशंसावृत्ति- (कीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Phan Yon Gyi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2115)

६. आर्यनामसंगीत्यभिसमय- (अवलोकित)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi mṄon Par rTogs Pa. TTP. Vol. 48, Sr. No. 2116)

७. नामसंगीतिवृत्तिनामार्थप्रकाशकरणदीपनाम- (विमलमित्र)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa mTshan Don gSal Bar Byed Paḥi sGron Ma S̄es Bya ba. TTP. Vol. 67, Sr. No. 2941)

८. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति-अर्थालोककरनाम -(सुरतिवज्र)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Don gSal Bar Byed Par S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, No. 2942)

९. नामसंगीत्युपसंहारवितर्कनाम- (अद्वयवज्र)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi N̄e Bar bsDus Paḥi rNam Par rTog Ge S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, Sr. No. 2943)

१०. उपसंहारवितर्कसहिता संक्षिप्तनामार्थप्रदीपनाम- (प्रज्ञागुरु)
(N̄e Bar bsDus Paḥi rNam Par rTog Ge Daṅ sByor Baḥi bsDus Don mTshan Gyi sGron Ma S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, No. 2944)

११. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिटीकानाम सारोपायिका- (अद्वयवज्र)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa N̄iṅ Po mṄon Par rTags Pa S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 67, Sr. No. 2945)

१२. नामसंगीतिवृत्ति- (मञ्जुश्रीमित्र)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 74, Sr. No. 3355)

१३. आर्यनामसंगीतिटीकानाम नाममन्त्रार्थावलोकिनी- (विलासवज्र)
(ḥPhags Pa mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rGya Cher ḥGrel Pa mTshan gSaṅ sṄags Kyi Don Du rNam Par lTa Ba S̄es Bya Ba. TTP. Vol. 74, Sr. No. 3356)

१४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिटीका- (मञ्जुश्रीकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rGya Cher bŚad Pa. TTP. Vol. 74, Sr. No. 3357)

१५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति- (चन्द्रभद्रकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Pa Śes Bya Baḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol.75, Sr. No.3358)

१६. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति- (अवधूतीपा)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3359)

१७. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति नामार्थप्रकाशकरणनाम- (अद्वयगुप्त)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa mTshan Don gSal Bar Byed Pa Śes Bya Ba, TTP. Vol. 75, Sr. No. 3360)

१८. मञ्जुश्रीनामसंगीतिलक्षभाष्य- (स्मृतिज्ञानकीर्ति)
(ḥJam dPal mTshan brJod Kyi bŚad ḥBum. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3361)

१९. आर्यनामसंगीत्युपदेशवृत्तिनाम- (कुमारकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Man Ṅag Gi ḥGrel Pa Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3362)

२०. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमहाटीकानाम- (चन्द्रगोमिन्)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi rGya Cher ḥGrel Pa. (Śes Bya Ba). TTP. Vol. 75, Sr. No. 3363)

२१. नामसंगीतिवृत्ति- (डोम्बी हेरुक)
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3365)

२२. नामसंगीतिवृत्तित्रिनयप्रकाशकरणदीपनाम
(mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa Tshul gSum gSal Bar Byed Paḥi sGron Ma Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3364)

२३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिपञ्जिकासंग्रहनाम- (रत्नाकरगुप्त)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi dkaḥ ḥGrel bsDus Pa Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3366)

२४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिगुह्यापनोपायिकावृत्ति ज्ञानदीपनाम- (स्मृतिज्ञानकीर्ति)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi gSaṅ Ba Daṅ lDan Paḥi sGrub Paḥi Thabs Kyi ḥGrel Pa Ye Śes gSal Ba Śes Bya Ba. TTP. Vol. 75, Sr. No. 3411)

२५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिपञ्जिका- (माध्यमिकानन्द)
(ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi dKaḥ ḥGrel. TTP. Vol. 86, Sr. No. 4831)

साधनमाला की भूमिका में दो टीकाओं—लीलावज्र कृत आर्यनामसंगीतिटीका और इन्द्रभूति कृत आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिवृत्ति[1] का उल्लेख है, जो ऊपर वर्णित टीकाओं से भिन्न हैं।

२. उपटीका ग्रन्थ

आचार्य रविश्री की अमृतकणिका टीका पर विभूतिचन्द्र ने उद्योत नामक टीका लिखी। यद्यपि यह तन्ग्युर संग्रह में उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसकी संस्कृत पाण्डुलिपियां प्राप्त हैं।

३. परिवार ग्रन्थ

नामसंगीति के मण्डल, साधन आदि विषयों पर अनेक लघु ग्रन्थ भी हैं, जो तन्ग्युर संग्रह में उपलब्ध हैं। उन्हें निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(क) साधन सम्बन्धी

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन
(TTP. Vol. 67, Sr. No. 2959)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3368)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन- (महाअवधूतपाद)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3427)

४. नामसंगीतिसाधन- (सिंहाचल)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3441)

५. नामसंगीतिसाधननाम- (प्रभाकर)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3442)

1. Sādhanamālā. G. O. S. No. 41, Introduction pp. 56, 98

६. नामसंगीतिनामसाधन- (धर्मकीर्ति)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3443)

७. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधननाम- (सोमश्री)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3446)

८. आर्यनामसंगीतिसाधन
(TTP. Vol. 80, Sr. No. 4297)

९. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधनोपायिका- (श्रीमद् वरबोधि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3406)

१०. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन गुह्यप्रदीपनाम- (प्रज्ञागुरु)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3423)

११. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधनोपायिका- (वज्रकर्मसिद्धि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3425)

१२. नामसंगीत्याम्नायेन सिद्धपूजाचक्रवरलब्धसाधन
(TTP. Vol. 80, Sr. No. 4295)

(ख) भावना एवं उपदेश

१. नामसंगीति-अनित्यभावना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3384)

२. नामसंगीत्यनुसारेण मध्यमेन्द्रियद्वादशप्रतीत्यसमुत्पादभावना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3393)

३. नामसंगीत्यनुसारेण श्रेष्ठेन्द्रियतत्त्वभावना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3394)

४. नामसंगीति-अध्ययनानन्तरभावना- (श्रीमद् वरबोधि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3407)

५. नामसंगीतिकुशलमूलपरिणामना- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3383)

६. मञ्जुश्रीनामसंगीतिपठनोपदेश- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3382)

७. नामसंगीति-अनित्यतासंसारोद्वेगोपदेश- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3385)

८. नामसंगीतिविषत्रयनिवारणोपदेश- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75. Sr. No. 3386)

९. नामसंगीतिवचनोपदेश- (शाक्यश्रीभद्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3344)

(ग) मण्डलविधि

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3369)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3370)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3371)

४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3372)

५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3373)

६. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3374)

७. नामसंगीतिमण्डलविधि-आकाशविमलनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3367)

८. नामसंगीतिमण्डलविधिकर्म- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3379)

९. नामसंगीतिविधिसूत्रपिण्डित- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3419)

१०. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसर्वापायविशोधनमण्डलविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3402)

११. मञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधिनाम- (शान्तिगर्भ)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3422)

१२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलोपायिका- (सोमश्री)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3447)

१३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसर्वमण्डलस्तोत्र- (सोमश्री)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3348)

१४. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिचक्षुर्विधिनाम- (स्मृतिज्ञानकीर्ति)
(TTP. Vol. 86, Sr. No. 4835)

१५. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिचक्षुर्विधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3400)

१६. मञ्जुश्रीनामसंगीतिमहाबोधिशरीरविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3395)

(घ) होम

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिहोमविधिसंग्रहनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3396)

२. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसर्वापायविशोधनहोमविधिनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3403)

३. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिहोमकर्म- (श्रीमद् वरबोधि)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3408)

(ङ) अभिषेक तर्पण आदि अन्य विषय

१. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति-अभिषेकविधि- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3375)

२. नामसंगीति-तर्पण- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3376)

३. नामसंगीति-आसनयोग- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3377)

४. नामसंगीति-भूतबलि- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3378)

५. नामसंगीति-प्रदक्षिणाक्रियायोग- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3380)

६. मञ्जुश्रीनामसंगीति-सप्ताङ्गसम्भारोपाय- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3381)

७. मञ्जुश्रीनामसंगीति-प्रणिधानकर्मनाम- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3397)

८. मञ्जुश्रीनामसंगीति-मारमन्त्रचक्र- (मञ्जुश्रीमित्र)
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3401)

९. मञ्जुश्रीनामसंगीति-चक्रक्रम
(TTP. Vol. 75, Sr. No. 3424)

उपर्युक्त २५ टीकाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य टीकाओं की भी सूचना मिलती है, जैसे विभूतिचन्द्र की अमृतकणिकोद्योत निबन्ध, जो रविश्री द्वारा रचित अमृत-कणिका नामसंगीति टिप्पणी पर है। दूसरी टीका गूढपदा आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति टीका है[1]। तीसरी टीका योगसारावली क्रियासमुच्चयकार जगद्दर्पण की होनी चाहिए क्योंकि क्रियासमुच्चय में वह लिखते हैं कि "अस्मत्कृतनामसंगीतिटीकायां योगसारावल्याम्"[2]। इससे विदित होता है कि उनकी भी नामसंगीति पर एक टीका अवश्य रही होगी जो आज उपलब्ध नहीं है और न ही इसका भोटानुवाद उपलब्ध है। इस प्रकार अन्य भी टीकाएँ हो सकती हैं जिनकी आज हमें किसी प्रकार की सूचना नहीं है। यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि इस पर प्राचीनतम टीका चन्द्रगोमिन् विरचित महाटीका ही प्रतीत होती है और सबसे परवर्ती विभूतिचन्द्र का अमृतकणिकोद्योत निबन्ध। विभूतिचन्द्र का समय १३वीं शताब्दी का है, यह भारत में बौद्ध धर्म के संरक्षक अन्तिम आचार्यों में से एक थे। तुर्कों के आक्रमण के बाद ये नेपाल की ओर चले गये थे और कुछ समय बाद वहाँ से तिब्बत चले गये।

यद्यपि यहाँ हम टीकाओं की ऐतिहासिकता एवं विशेषताओं का विश्लेषण नहीं करेंगे क्योंकि यह अपने में एक विस्तृत अध्ययन का विषय है, तथापि इसकी ओर कुछ संकेत अवश्य करना चाहेंगे। आचार्य विलासवज्र अपनी टीका की विशेषता बतलाते हुये कहते हैं कि सूत्र, अभिधर्म, मध्यमक, विज्ञानवाद, इतिवृत्तक, क्रिया-चर्या-योगतन्त्रों के अध्ययन के पश्चात् यह ग्रन्थ लिखा गया है तथा यह टीका मन्त्र-चर्यानुयायी परम्परा से रची गई है। रविश्री अमृतकणिका टिप्पणी को अधिकतर दार्शनिक एवं योगपरक, विशेषकर षडङ्ग योग की दृष्टि से प्रतिपादन करते हैं। नेपाल के प्रसिद्ध परम्परागत विद्वान् पण्डित दिव्यवज्र वज्राचार्य का मानना है कि विलासवज्र की नाममन्त्रार्थावलोकिनी की व्याख्या अद्वयवादी परम्परा की है तथा अमृतकणिका की व्याख्या द्वयवादी है। यह अभी परीक्षणीय है। यहाँ यह बतला देना समीचीन होगा कि मञ्जुश्रीनामसंगीति की टीकाओं में से केवल चार टीकाओं की संस्कृत पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। ये हैं आचार्य विलासवज्र की "नाममन्त्रार्थावलोकिनी-नाम नामसंगीतिटीका", आचार्य रविश्री की "अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी", आचार्य विभूतिचन्द्र की इस टिप्पणी पर रचित "अमृतकणिकोद्योत निबन्ध" तथा रायल

---

1. The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, New Series Vol. VIII. p. 25, Ms. No. 34.

2. क्रियासमुच्चय–शतपिटक सीरीज सं० २३७, पृ० २२२

एशियाटिक सोसायटी के संग्रह में उपलब्ध "गूढपदा" नामक टीका। अन्य सभी टीकायें मूल संस्कृत में उपलब्ध नहीं है मात्र इनका भोट अनुवाद सुरक्षित है।

आचार्य रविश्रीज्ञान एवं उनकी टिप्पणी अमृतकणिका

आचार्य रविश्रीज्ञान की नामसंगीति पर अमृतकणिका टिप्पणी अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। इसके अतिरिक्त उनकी दो अन्य टीकाएँ षडङ्ग योग पर हैं जो कालचक्र-तन्त्र और नामसंगीति में प्रतिपादित षडङ्ग योग पर प्रकाश डालती हैं। इन रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि वे कालचक्रतन्त्र परम्परा के एक प्रसिद्ध आचार्य थे। यद्यपि आचार्य रविश्रीज्ञान के जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना उपलब्ध नहीं होती, तथापि यथालब्ध सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि वह बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वर्तमान थे। वे शुभाकरगुप्त, शाक्यश्रीभद्र (११२७–१२२५ ई०) एवं धर्माकरशान्ति के समकालीन थे। ये सभी आचार्य अभयाकर गुप्त के अनुयायी थे। अभयाकर गुप्त को बौद्ध शासन का संरक्षण करने वाले प्रसिद्ध आचार्यों में अन्तिम माना जाता है[1]। आचार्य अभयाकर गुप्त (१०८४-११०३ ई०) का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। ये विक्रमशील महाविहार के एक महान् आचार्य थे[2]।

अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी में आचार्य अपने को शबरपाद की परम्परा से जोड़ते हुए मंगलाचरण में कहते हैं—

विषयविषयिव्योमाश्लेषप्रवृत्तिनिमित्तकं
रविशशितमोवर्त्मावृत्याशरारिचलक्रियम्।
स्फुरदुरुतरज्ञानज्योतिः श्रुतिशबराधिपं
मणिमयशिलारूढं गूढं नमामि निरास्पदम् ॥ (पृ० १)

शबरपाद या शबरीपा (६५७ ई०) प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में एक थे। सिद्ध शबरीपा की परम्परा में लुईपा (६६९ ई०), दारिकपा (७५३ ई०), सहजयोगिनी चिन्ता (७६५ ई०) एवं डोम्बो हेरुकपाद (७७७ ई०) आदि प्रमुख हैं।

आचार्य अनुपमरक्षित ने, जो नडपाद (९९० ई०) के समकालीन थे, कालचक्र-तन्त्रानुसारी षडङ्गयोग पर ग्रन्थ लिखा है। इस पर आचार्य रविश्री ने भी षडङ्गयोग टीका एवं गुणपूर्णी नामक टिप्पणी लिखी है। यद्यपि षडङ्ग योग की परम्परा काफी

---

१. भारत में बौद्धधर्म का इतिहास–लामा तारनाथ, पृ० १३२

२. निष्पन्नयोगावली, गा. ओ. सी. १०९, भूमिका पृ० १०–११

पुरानी है, तन्ग्युर संग्रह में षडङ्गयोग पर बहुत से ग्रन्थ उपलब्ध हैं। द ब्ल्यू एनाल्स के रचयिता जोन नु पल के अनुसार षडङ्गयोग परम्परा में निम्नलिखित प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं अवलोकितेश्वर, अनुपमरक्षित, श्रीधरानन्द, भास्करदेव, रविश्रीज्ञान, धर्माकरशान्ति, रत्नरक्षित, नरेन्द्रबोधि, मुक्ति-पक्ष, शाक्यरक्षित, सुजात, बुद्धघोष एवं धर्मस्वामी[1]।

कुछ लोग रविश्रीज्ञान को धर्माकरशान्ति का शिष्य मानते हैं, परन्तु शुभाकर गुप्त के अनुसार रविश्रीज्ञान के शिष्य श्रीधर्माकरशान्ति थे[2]। विभूतिचन्द्र भी अपने अमृतकणिकोद्योत में अमृतकणिका के पदों की व्याख्या करते हुए कहते हैं—"परमाक्षरज्ञानसिद्धिसुधानिधिमपेक्ष्यामृतस्य स्वल्पतरा कणिका सैवाचरति यज्ज्ञानं या लक्षतिलकगौडगोपालभूपतिगुरोः पण्डितचक्रचूडामणेर्धर्माकरशान्तिचरणादधिगतं ज्ञानं तत् टिप्यते लिख्यते" (पृ० ११३)। अतः यह ज्ञात होता है कि धर्माकरशान्ति ही रविश्रीज्ञान के गुरु थे।

आचार्य रविश्रीज्ञान की तीन निम्नलिखित रचनाओं की सूचना तन्ग्युर संग्रह में उपलब्ध होती है—

१. षडङ्गयोगटीका (तो० १३६८)
२. गुणपूर्णीनाम षडङ्गयोगटिप्पणी (तो० १३८८)
३. अमृतकणिका आर्यनामसङ्गीतिटिप्पणी (तो० १३९५)

आचार्य रविश्रीज्ञान कालचक्रतन्त्र के एक महान् आचार्य थे। नामसंगीति पर आचार्य की इस टिप्पणी में भी कालचक्रतन्त्र एवं उसकी टीका विमलप्रभा को प्रचुर मात्रा में उद्धृत किया है। कालचक्रतन्त्र और नामसंगीति दोनों प्रमुख तन्त्र हैं। विमलप्रभा टीकाकार भी स्थान-स्थान पर नामसंगीति को उद्धृत करते हैं और नामसंगीति को साक्षी मानकर कालचक्र तन्त्र के पदों की व्याख्या करते हैं। सेकोद्देशटीका में भी नरोपा ने पुनः पुनः नामसंगीति के श्लोकों को उद्धृत किया है। रविश्रीज्ञान के समक्ष सेकोद्देश टीका और विमलप्रभा अवश्य थी, क्योंकि उन्होंने बिना नाम उद्धृत किए ही नामसंगीति के पदों की व्याख्या के प्रसंग में इन दोनों ग्रन्थों के प्रसंगों का भरपूर उपयोग किया है, विशेषकर षडङ्गयोग के प्रसंग में। नामसंगीति के पदों की व्याख्या के प्रसंग में आचार्य ने कालचक्रतन्त्र ही नहीं, अपितु हेवज्रतन्त्र, सेकोद्देश, गुह्यसमाज, मूलतन्त्र, सर्वरहस्यतन्त्र आदि अनेक मूल ग्रन्थों एवं नागार्जुन, आर्यदेव, सरहपाद, कृष्णपाद आदि अनेक आचार्यों को भी उद्धृत किया है।

---

1. The Blue Annals, p. 800.
2. The Blue Annals, p. 764.

टीका के प्रारम्भ में ही आचार्य अपने आदिगुरु शबराधिपति को स्मरण करते हैं। विभूतिचन्द्र अपने उद्योत में अमृतकणिका के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह कालचक्र एवं हेवज्र आदि तन्त्रों के रहस्यों और श्रीसरह, शबर, कृष्णपाद आदि आचार्यों के उपदेश के आधार पर आचार्य रविश्रीज्ञान ने रची—"श्रीनारोपाद-पञ्जिकामधीत्य श्रीकालचक्रहेवज्रादितन्त्ररहस्यान्विता श्रीशबरसरहकृष्णपादाद्युपदेशाश्रिता रविश्रियः" (पृ० २१६)।

अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी की पाण्डुलिपियाँ

आचार्य रविश्रीज्ञान द्वारा रचित इस टीका की कई संस्कृत पाण्डुलिपियाँ विभिन्न पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों में उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल में इसकी दो प्रतियाँ संगृहीत हैं[1]। काठमाण्डू के ही केसर पुस्तकालय में भी एक प्रति उपलब्ध है, जिसका माईक्रोफिल्म नेपाल जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन प्रोजेक्ट ने किया है[2]। इसकी एक प्रति कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भी संगृहीत है[3]। माईक्रोफिश प्लेट के रूप में इसकी एक प्रति द इन्स्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज ऑफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्युयार्क में भी प्राप्त है[4], जो किसी व्यक्तिगत संग्रह की प्रति प्रतीत होती है।

विभूतिचन्द्र एवं उनका अमृतकणिकोद्योत निबन्ध

आचार्य विभूतिचन्द्र की यद्यपि पाँच छह ही मौलिक कृतियों की सूचना है तथापि आचार्य ने सैकड़ों संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भोट भाषा में किया, जिसकी सूचना तन्ग्युर संग्रह में मिलती है। आचार्य बिभूतिचन्द्र १३वीं शताब्दी में विद्यमान थे और जगद्दल विहार (जगत्तला, बंगाल) के आचार्य थे[5]। आचार्य की एक संक्षिप्त

---

१. (क) राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, लगत संख्या–४.२०, पत्र संख्या–१००, आधार-ताडपत्र, लिपि नेवारी

(ख) राष्ट्रीय अभिलेखालय, लगत संख्या–५.१६९, पत्र सं०–४८, आधार नेपाली कागज, लिपि देवनागरी

२. रील सं० सी० १४.१०, पत्र संख्या–७०

३. Catalogue of Buddhist Sanskrit Mss, C. Bendall p. 29, Add, 1108, Folios–53.

४. MBB-I-152, Folios–40.

५. भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म-नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० ११

जीवनी भोट साहित्य में उपलब्ध होती है[1]। तदनुसार वे शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०) के साथ तिब्बत गये हुए नौ पण्डितों में से एक थे। यह व्याकरण और अभिधर्म के विद्वान् थे, उन्होंने शबरीपा की परम्परा से षडङ्गयोग प्राप्त किया था। वहाँ पर ड्री-खुङ् जिगतेन गोन्पो से उनका शास्त्रार्थ हुआ था। जब शास्त्रार्थ में वह पराजित हो रहे थे तो उन्होंने महामुद्रावादी ड्रि-खुङ् के मत की निन्दा की। इस पर ड्रि-खुङ् के शिष्य अत्यन्त क्रोधित हुए और आचार्य के चीवर नोच डाले। इससे खिन्न होकर आचार्य ने सात दिनों तक तारा की साधना की। सात दिनों तक लगातार पूजा करने के बाद भी देवी के सन्तुष्ट न होने पर इसका कारण जानना चाहा। तब देवी ने प्रायश्चित्त करने एवं प्रायश्चित्त स्वरूप किसी देवता का मन्दिर बनवाने का आदेश दिया। इसके अनन्तर आचार्य ने ड्रि-खुङ् के पास जाकर प्रायश्चित्त किया। बाद में स्त्रिङ्-मो नामक पर्वत पर चक्रसंवर का एक मन्दिर बनवाया और वहाँ महापण्डित ड्रि-खुङ् के काय के बराबर चक्रसंवर की मूर्ति स्थापित की, जिसके बारे में यह प्रसिद्धि है कि यह आकाश के मध्य स्थापित है। ये तिब्बत में अनेक वर्ष रहे और त्रिसंवरमाला ग्रन्थ की रचना की तथा अनेक संस्कृत ग्रन्थों का भोटानुवाद किया।

यद्यपि इस संक्षिप्त जीवन परिचय में आचार्य के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं है तथापि अन्य सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य जगद्दल महाविहार के प्रसिद्ध आचार्यों में से एक थे। इस महाविहार की स्थापना पालवंश के अन्तिम राजा रामपाल ने की थी। राजा ने इसमें अवलोकितेश्वर एवं तारा की मूर्तियों की स्थापना की। आचार्य विभूतिचन्द्र और दानशील इस विहार के प्रसिद्ध आचार्य थे और मोक्षाकर गुप्त यहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक हुए[2]।

विक्रमशील विहार के आचार्य अभयाकर गुप्त के एक शताब्दी पश्चात् भारतवर्ष में बौद्ध धर्म समाप्त हो रहा था। विक्रमशील विश्वविद्यालय को तुर्कों ने विनष्ट कर डाला था। इस समय शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०) के साथ १२०३ ई० में दानशील एवं संघश्री आदि बौद्ध पण्डितों के साथ विभूतिचन्द्र भी नेपाल होते हुए तिब्बत पहुँचे[3] और वहाँ बौद्ध परम्परा की सुरक्षा की। जोन नु पल के अनुसार ड्ग सोद्नम् ग्यलछन् (११८२-१२६२ ई०) ने आचार्य को नेपाल से तिब्बत के डिङ्री नामक स्थान में बुलाया और आचार्य से षडङ्गयोग का अध्ययन किया। जिसे आचार्य ने

---

1. Bibliographical Dictionary of Tibetan Buddhism, p. 867.
2. Obscure Religious Cult–S. Dasgupta, p. 13.
3. पुरातत्त्वनिबन्धावली–पृ० २१८

शबरीपा की परम्परा से प्राप्त किया था[1]। तिब्बत में वे बुस्तोन रिन्पोछे (१२९०-१३६४ ई०) से भी मिले। बुस्तोन रिन्पोछे ने उनसे सद्धर्म के उपदेश की प्रार्थना की[2]। इस प्रकार आचार्य विभूतिचन्द्र का काल हम १२०० से १३०० ई० के मध्य स्थिर कर सकते हैं।

विभूतिचन्द्र कालचक्र तन्त्र परम्परा के आचार्य थे, इस परम्परा में इनकी मुख्य कृति "अन्तर्मञ्जरी" है। ये अपने उद्योत में भी इस परम्परा का किञ्चित् संकेत देते हैं—"श्रीनारोपादपञ्जिकामधीत्य, श्रीकालचक्रहेवज्रादितन्त्ररहस्यान्विता श्रीशबरसरहकृष्णपादाद्युपदेशाश्रिता रविश्रियः" (पृ० २१६)। भोटानुवाद तन्ग्युर संग्रह में इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

१. अन्तर्मञ्जरी (तो० १३७७)
२. पिण्डीकृतसाधनपञ्जिका (तो० १८३२)
३. त्रिसंवरप्रभामालानाम (तो० ३७३७)
४. बोधिचर्यावतारतात्पर्यपञ्जिका विशेषद्योतनीनाम (तो० ३८८०)

यद्यपि तन्ग्युर संग्रह में उक्त चार ही ग्रन्थ आचार्य के नाम से उद्धृत मिलते हैं, तथापि अन्य कृतियाँ भी आचार्य के नाम से उपलब्ध होती हैं—

१. अमृतकणिकोद्योतनिबन्ध
२. श्रीवज्रविलासिनीस्तोत्र[3]
३. ज्योतिषवैद्यकक्रोडपत्र[4]

आचार्य रविश्रीज्ञान द्वारा रचित अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी पर विभूतिचन्द्र की यह उपटीका है। भोट अनुवाद तन्ग्युर संग्रह में यह प्राप्त नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका भोटानुवाद नहीं हुआ परन्तु टोक्यो यूनिवर्सिटी की पाण्डुलिपि को देखने से यह आभास होता है कि इसका अनुवाद करने का प्रयास अवश्य किया गया क्योंकि इस पाण्डुलिपि के हाशिये पर यत्र तत्र भोट लिपि में वाक्य उद्धृत मिल जाते हैं। इसकी चार संस्कृत पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। एक प्रति

---

1. The Blue Annals–p. 727.
2. Mystic Tales of Lama Taranath–B. N. Datt, p. 38.
३. धीः अंक १, पृ० ४
4. The Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXIII, Part–I, 5–310, पत्र-12, लिपि-मागधी

राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू में संगृहीत है[१]। एक अन्य प्रति नेपाल में किसी व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध है, जिसकी सूचना एच० तकाओका ने अपने सूची पत्र में दी है[२]। सम्भवतः इसी प्रति की माईक्रोफिश के रूप में एक प्रति द इन्स्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज ऑफ वर्ल्ड रिलिजन्स, न्यूयार्क में भी प्राप्त है[३]। टोक्यो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी इसकी एक ताडपत्रीय प्रति सुरक्षित है[४]।

भोट आचार्यों द्वारा रचित नामसंगीति की स्वतन्त्र टीकायें

भारत से बौद्ध धर्म के साथ बौद्ध तन्त्र भी भोट देश पहुँचा और वहाँ के आचार्यों ने इसे साधना के रूप में अपनाकर बौद्ध तन्त्र परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा। भोट देश में आचार्यों ने अपनी परम्परा के अनुसार नामसंगीति पर भी कई स्वतन्त्र टीकाएँ रचीं, उनमें जिन टीकाओं की सूचना अब तक मिली है, उनका विवरण देना यहाँ उपयोगी होगा—

1. mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa rNam gSum bŚad Pa[5]—Roṅ Zom Chos bZaṅ.
2. ḥPhags Pa ḥJam dPal rGyud bŚad[6]—Bo Doṅ Pan Chen Phyog Las rNam rGyal.
3. mTshan brJod Kyi ḥGrel Pa rNal ḥByor rGyud Lugs[7]—Bo Doṅ Pan Chen Phyog Las rNam rGyal.
4. ḥJam dPal Gyi mTshan brJod Yaṅ Dag Par brJod Paḥi ḥGrel Pa rJe bTsun ḥJam Paḥi dByaṅs Gyi Byin rLabs Gyi Char Myur Du ḥBebs Byed bsTod sPhrin Gyi sGra dByaṅ[8]—Yoṅ ḥDzin Ye Śes rGyal mTshan.
5. ḥPhags Pa ḥJam dPal Gyi mTshan Yaṅ Dag Par brJod Paḥi Don rNam Par bŚad Pa rGyud Don gSal Byed sGron Me gSal Ba[9]—mThu sTobs Ñi Ma.

---

१. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू-लगत सं० ३.६५५, पत्र-९५

2. Microfilm Catalogue of Buddhist Sanskrit Manuscripts in Nepal. 1981, Vol. I, ed. by H. Takaoka, Page 112, Reel No. 112, Dh.366, Folios-56.

3. MBB. I-22, Folios-55.

4. A Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Tokyo University Library, by S. Matsunami, 1965, No. 18, p. 352.

5. 6. 7. 8. 9. देखें-The Litany of Names of Mañjuśrī. by, R, Davidson-P.14.

में हुआ। नामसंगीति में इन्हीं के आधार पर समस्त तन्त्रों को विभाजित कर उनका संगायन हुआ है। ये ज्ञान हैं—सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान, आदर्शज्ञान, प्रत्यवेक्षणाज्ञान, समताज्ञान और कृत्यानुष्ठानज्ञान।

बौद्ध तत्त्वचिन्तकों ने समस्त जगत को पञ्चस्कन्ध, द्वादश आयतन और अष्टादश धातु के अन्तर्गत माना है। इसी प्रकार तन्त्रों में भी यावत् चराचर जगत् को पाँच तथागतों तथा उनके ज्ञान के आधार पर संगृहीत किया गया है। ये पाँच तथागत एवं उनके ज्ञान ही पञ्च स्कन्धों के प्रतीक हैं—"पञ्चस्कन्धाः समासेन पञ्च बुद्धाः प्रकीर्तिताः, (गु० त० १७.५०)। क्योंकि पञ्चबुद्ध-स्वभाव होने के कारण ही पञ्चस्कन्ध पञ्च जिन-स्वरूप हैं—"पञ्चबुद्धस्वभावत्वात् पञ्चस्कन्धा जिनाः स्मृताः" (ज्ञा० सि० २.१), इसलिए तन्त्रशास्त्र में समस्त जगत् को पञ्चबुद्धात्मक कहा गया है—"पञ्चबुद्धात्मकु सर्वजगोऽयम्"।

१. सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान—

सत्त्व दो प्रकार के आवरणों से आवृत रहता है उनके नाम हैं क्लेशावरण और ज्ञेयावरण। जब वह इन दोनों आवरणों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है, तो इस प्रकार के इन आवरणों से मुक्त सत्त्व को वज्रसत्त्व कहा जाता है और उसके ज्ञान को सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान। वह इन दो आवरणों से आवृत सभी प्राणियों की मुक्ति के लिए भावना करता है। इस ज्ञान का स्वभाव भी शुद्ध, अनाविल, विज्ञानधर्मतातीत तथा प्रकृतिप्रभास्वर है। यह आकाश की भाँति सभी लक्षणों से रहित आदि मध्यान्त शुद्ध एवं निर्मल है।

२. आदर्शज्ञान

आकाश के समान निराधार, व्यापक और लक्षण रहित धर्मकाय को आदर्श-ज्ञान कहा गया है। जिस प्रकार मनुष्य अपना प्रतिबिम्ब दर्पण में देख सकता है, उसी प्रकार योगी आदर्शज्ञान के उत्पन्न होने पर उसमें धर्मकाय के स्वरूप का साक्षात्कार करता है। आचार्य पद्मवज्र आदर्शज्ञान को बुद्धों के लिए भी अविज्ञेय मानते हैं—

> बुद्धानामप्यविज्ञेयमपर्यन्तगुणोद्भवम् ।
> ज्ञानं तदुच्यते ह्यत्र श्रीमदादर्शसंज्ञितम् ॥
>
> (गु० सि० ४.१७)

आदर्शज्ञान सभी ज्ञानों का निमित्त होने के कारण महाज्ञानाकर के सदृश है। अपरिच्छिन्नता, सदानुगम तथा सभी प्रकार के ज्ञेयों में असंमूढता इसका स्वरूप है।

३. प्रत्यवेक्षणाज्ञान

प्रत्यवेक्षणाज्ञान का स्वरूप आदिशुद्ध, अनुत्पन्न तथा अनाविल है। सभी संज्ञात्मक वर्ण अकार-कुलोद्भव हैं और अकार सभी वर्णों में अग्र है। इससे उत्पन्न सभी देव-मण्डल प्रभास्वर स्वभाव हैं। इन सभी में एकाकार प्रभास्वरता का दर्शन करना ही प्रत्यवेक्षणा कहलाती है।

४. समताज्ञान

आदर्शज्ञान के उत्पन्न होने के बाद योगी में समताज्ञान का उदय होता है। इसमें समस्त जगत् को स्वप्नवत् कल्पनाप्रसूत और प्रतिबिम्बवत् स्वीकार किया जाता है। इसमें सभी धर्मों के प्रति अहंकार ममकार से रहित शून्यता-भावना अर्थात् सर्वधर्मनैरात्म्य की भावना उत्पन्न होती है। उस समय योगी सभी प्राणियों तथा तथागतों के चित्त में कोई अन्तर नहीं देखता, सभी में एकाकार, एक स्वभाव सम्बोधि का दर्शन करता है।

५. कृत्यानुष्ठानज्ञान

सभी लोकों में, सदा बुद्धकृत्यों और नानाविध चर्याओं द्वारा लोकहित सम्पादन करने वाला ज्ञान कृत्यानुष्ठानज्ञान कहलाता है। इसकी विशेषता बताते हुए आचार्य पद्मवज्र कहते हैं कि यह ज्ञान परमनिर्मल है, जिसमें अक्षोभ्य, वैरोचन आदि तथागत तथा लोचना आदि उनकी मुद्राएँ भी स्थित होती हैं और उनकी भावना की जाती है।

आनन्द, क्षण एवं मुद्रा

आनन्द, क्षण एवं मुद्राओं का उल्लेख तथा उनकी साधना विधि का निरूपण बौद्धतन्त्रों में साथ-साथ किया गया है, क्योंकि ये परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। चार प्रकार के आनन्द, चार क्षण एवं चार प्रकार की मुद्राएँ हैं। आनन्द, परमानन्द विरमानन्द तथा सहजानन्द—ये चार आनन्द हैं। विचित्र, विपाक, विमर्द तथा विलक्षण—ये चार क्षण हैं। कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा और समयमुद्रा—ये चार मुद्राएँ हैं। इनमें से प्रत्येक की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता मानी गयी है। यथा—

> आनन्देन सुखं किञ्चित् परमानन्दं ततोऽधिकम्।
> विरमेण विरागः स्यात् सहजानन्दं तु शेषतः॥
>
> (हे० त० १.८.३२)

प्रत्येक आनन्द काय-वाक्-चित्त तथा ज्ञान के भेद से सोलह प्रकार का हो जाता है। इसे नामसंगीति (५.५-८) में बताया गया है। आनन्द आदि चित्त अर्थात् बोधिचित्त या बिन्दु की स्थिति पर निर्भर करता है। जब बोधिचित्त निर्माणकाय में हो तो तब वह आनन्द, धर्मकाय में हो तो परमानन्द, संभोगकाय में हो तो विरमानन्द तथा महासुखकाय में हो तो सहजानन्द को उत्पन्न करता है। मुद्रा का स्पर्श आनन्द है, सुख की इच्छा परमानन्द तथा विराग विरमानन्द है। इन तीनों से अतीत अवस्था सहजानन्द है। परमानन्द को भव भी कहा गया है, भव इस अर्थ में कि यह जन्म-मरण के आवागमन का मूल है। "परमानन्दः सांक्लेशिकसुखभोगलक्षणत्वाद् भवः संसारः' (पृ० ६१)। विरमानन्द विरागस्वरूप होने के कारण निर्वाण है अर्थात् यह सांक्लेशिक रागों को नाश करने वाला है और सहजानन्द न भव है और न ही निर्वाण, यह भव और निर्वाण से अतीत है—

परमानन्दं भवं प्रोक्तं निर्वाणं च विरागतः।
मध्यमानन्दमात्रं तु सहजमेभिर्विवर्जितम् ॥
(हे० त० १.८.३४)

क्षणों के भेद के आधार पर ये आनन्द आदि उत्पन्न होते हैं। एवंकार की स्थिति में क्षणों के ज्ञान से ही सुख का बोध होता है। विचित्र क्षण में आनन्द, विपाक में परमानन्द, विमर्द में विरमानन्द और विलक्षण में सहजानन्द उत्पन्न होता है। विचित्र क्षण आलिंगन, स्पर्श आदि विविध प्रकार के हैं। उस सुख ज्ञान का भोग विपाक है। मैंने सुख का भोग किया, इस प्रकार का आलोचनात्मक ज्ञान विमर्दक्षण है। और विलक्षण इन तीनों से भिन्न राग और अराग से विवर्जित क्षण है। इसी को कृष्णपाद योगपरक दृष्टि से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—स्पर्श का प्रारम्भिक क्षण विचित्र है, कमल-कुलिश योग विपाक क्षण है, इसके पश्चात् मन्थान से उत्पन्न रागानल से दलित जगद्राशि विमर्दक्षण है। इस प्रकार का योग, जिसमें कमल में रागवह्नि और पवन सहचर हैं, यही सम्बोधि का मार्ग है, यही विलक्षण क्षण कहलाता है, जो केवल योगियों के लिए गम्य है—

स्पर्शस्यादौ विचित्रः कमलकुलिशयोर्योगतोऽसौ विपाकः
पश्चान्मन्थोत्थरागानलदलितजगत्सङ्गराशिर्विमर्दः ।
तस्मिन्निध्यायमाने पवनसहचरे रागवह्नौ सरोजे
सोऽयं संबोधिमार्गः सकलजिनतनुर्योगिगम्यो विलक्षणः ॥
(उद्धृत-क्रियासंग्रह, पृ० ३५७)

इस योगावस्था को प्राप्त करने के लिए मुद्रा आवश्यक है। चार प्रकार की मुद्राएँ प्रतिपादित हैं—कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा और समयमुद्रा। इन चार मुद्राओं से क्षण का ज्ञान और क्षण के ज्ञान से सुख, अर्थात् आनन्द आदि का प्रादुर्भाव होता है। मुद्रा का अर्थ ही है जो सुख प्रदान करती है—"मुदं सुखविशेषं राति ददातीति मुद्रा" (से० टी०, पृ० ५६)। तन्त्रशास्त्र में साधना के लिये अभिषेक के समय मुद्रा-समर्पण भी किया जाता है। कर्ममुद्रा स्तनकेश से युक्त कामधातु के सुख का हेतु है। इसमें कर्म आलिंगन, चुम्बनादि व्यापार हैं। इससे उपलक्षित जो सुख है, उसे प्रदान करने वाली कर्ममुद्रा है[1]। कर्ममुद्रा के साथ एवंकार योग में प्रतिष्ठित होकर क्षण तथा क्षणों के ज्ञान से आनन्द उत्पन्न होते हैं[2]। यहाँ चंचल बिन्दु ही संवृति बोधिचित्त है। बिन्दु के स्थिर हो जाने पर उसकी ऊर्ध्व गति होती है और अन्त में उष्णीष कमल में पहुँचने पर आनन्द का आविर्भाव होता है। इसे निष्यन्द फल भी कहा जाता है। धर्ममुद्रा धर्मधातु स्वरूप है। यह निर्विकल्प, निष्प्रपञ्च, अकृत्रिम, उत्पाद रहित करुणास्वभाव है। यह परमानन्द का उपायभूत है। सहजस्वभाव प्रज्ञा से उत्पन्न होने के कारण सहज है। धर्मधातु के अन्य अनेक लक्षण प्रतिपादित हैं, यथा यह अन्धकार को हटाने वाली किरण सदृश है। यह गुरूपदेश के समान है, जो शिष्य को समस्त प्रकार की भ्रान्तियों से निवृत्त करता है। यह ललना और रसना के मध्य स्थित अवधूती के समान है। महामुद्रा निःस्वभाव है, क्लेश-ज्ञेयादि आवरणों से निर्मुक्त है और शरत्कालीन मध्याह्न गगन के सदृश स्वच्छ और निर्मल है। यह भव और निर्वाण स्वरूप अनालम्बन करुणा तथा महासुख स्वरूप है। इसका फल समय-मुद्रा है। समयमुद्रा में वज्रधर स्वयं सत्वार्थ के लिये हेरुक रूप में निर्माणकाय में विस्फुरित होते हैं। इसी समयमुद्रा को गृहीत कर आचार्य पाँच प्रकार के ज्ञान – आदर्श, समता, प्रत्यवेक्षणा, कृत्यानुष्ठान और सुविशुद्धधर्मधातु का प्रकाश करते हैं तथा आदियोग, मण्डलराजाग्री, कर्मराजाग्री, बिन्दुयोग और सूक्ष्मयोग की भावना करते हैं[3]।

अभिसम्बोधि एवं काय

सम्बोधि, अर्थात् सम्यक् ज्ञान ही अभिसम्बोधि है। यह चार प्रकार की है, एकक्षणाभिसम्बोधि, पंचाकाराभिसम्बोधि, विंशत्याकाराभिसम्बोधि और मायाजाला-भिसम्बोधि। ये चार अभिसम्बोधियां चार प्रकार के कायों से संश्लिष्ट हैं। यथा

---

१. से० टी०, पृ० ५६

२. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० ३२

३. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० ३३-३५

एकक्षणाभिसम्बोधि स्वभावकाय से, पंचाकाराभिसम्बोधि धर्मकाय से, विंशत्याकाराभिसम्बोधि सम्भोगकाय से और मायाजालाभिसम्बोधि निर्माणकाय से। इन चार अभिसम्बोधियों की प्राप्ति के लिये चार प्रकार का वज्रयोग प्रतिपादित है। यथा ज्ञानवज्रयोग द्वारा एकक्षणाभिसम्बोधि, चित्तवज्रयोग द्वारा पंचाकाराभिसम्बोधि, वाग्वज्रयोग द्वारा विंशत्याकाराभिसम्बोधि तथा कायवज्रयोग द्वारा मायाजालाभिसम्बोधि का लाभ होता है।

उत्पत्तिक्रम की अवस्था में सबसे पहले एकक्षणाभिसम्बोधि का लाभ होता है। जन्मोन्मुख प्रतिसन्धि के लिये आलय विज्ञान जिस समय मातृगर्भगृह में माता-पिता के समरसी भूत बिन्दुद्वय के साथ एकत्व लाभ करता है, इस एकत्व लाभ का प्रथम क्षण एक महा क्षण है। इस क्षण में जो सुख की संवित्ति, अर्थात् बोध होता है, उस क्षण को एकक्षणाभिसम्बोधि कहा गया है। इस अवस्था में काय रोहित मत्स्य के सदृश एकाकार रहता है। मातृगर्भ में जब रूपादि वासनात्मक पाँच संवित्तियां होती हैं, तब यह क्षण पंचाकाराभिसम्बोधिक्षण कहलाता है। इस अवस्था में गर्भस्थकाय कूर्मसदृश पंचस्फोटाकार होता है। जब यह पंचाकारज्ञान पृथिवी आदि चार धातुओं और वासनाओं के भेद से बीस[1] प्रकार का हो जाता है, तब वह क्षण विंशत्याकाराभिसम्बोधि कहलाता है। इस अवस्था में गर्भस्थ काय भी बीस अंगुलियों से परिपूर्ण हो जाता है। काय का इस अवस्था तक विकास मातृगर्भ में ही होता है। इसके पश्चात् मायाजालाभिसम्बोधि क्षण आता है, इस क्षण के लाभ के लिये गर्भस्थ काय को गर्भ से निष्क्रमण करना पड़ता है। गर्भ से निष्क्रमण के बाद मायाजाल के सदृश अनन्त भावों की संवित्ति के क्षण को ही मायाजालाभिसम्बोधिक्षण कहा जाता है।

इस उत्पत्तिक्रम की अवस्था में उपर्युक्त चार वज्रयोगों द्वारा इन क्षणों की अभिसम्बोधि का तथा काय का निरूपण होता है। विशुद्ध ज्ञानविज्ञानात्मक अच्युत बिन्दु ही एकक्षणाभिसम्बोधि की अवस्था में सर्वार्थदर्शी वज्रसत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। इस अवस्था में, स्वाभाविककाय के २१६०० श्वास-प्रश्वास चक्र का क्षय हो जाता है। यह अवस्था ज्ञानवज्रयोग है। यही वज्रसत्त्व पंचाकाराभिसम्बोधि में परमाक्षरसुख क्षण में महासत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। यह चित्तवज्रयोग है। परमाक्षर सुखात्मक क्षण को अवस्था धर्मकाय की है। महासत्त्व वाग्वज्रयोग द्वारा विंशत्याकाराभिसम्बोधि के क्षण में बोधिसत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। यह अवस्था सम्भोगकाय की है। बोधिसत्त्व ही कायवज्रयोग द्वारा मायाजालाभिसम्बोधि

---

१. पांच इन्द्रिय, पांच इन्द्रियविषय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रियक्रिया।

क्षण में समयसत्त्व के रूप में निष्पन्न होता है। यह निर्माणकाय की अवस्था है। इसमें अनन्त मायाजालों से काय का स्फुरण होता है। इस स्फुरित काय में षोडश आनन्द आदि सुखों का निरोध हो जाता है[1]। इस प्रकार अच्युत बिन्दु से निष्पन्न ज्ञानवज्र, चित्तवज्र, वाक्वज्र तथा कायवज्र निराभास, निरंजन, अज्ञात, अकृत और भावाभाव से विवर्जित होता है—

यत्कायं सर्वबुद्धानां निराभासं निरञ्जनम्।
अज्ञातमकृतं शुद्धमभावादिविवर्जितम्॥
(पृ० १९)

वज्रयोग

संवृति एवं परमार्थ के संयोग को वज्रयोग कहा गया है। इसे अद्वय, युगनद्ध और अक्षर भी कहा है[2]। यह योग अस्ति और नास्ति से अतिक्रान्त शून्यता और करुणा से अभिन्न है[3]। वज्रयोग चार प्रकार का है—विशुद्धयोग, धर्मयोग, मन्त्रयोग और संस्थानयोग। इनकी प्राप्ति के लिये चार विमोक्ष आवश्यक हैं। ये हैं—शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित और अनभिसंस्कार। विशुद्धयोग के लिये शून्यता विमोक्ष प्राप्त करना पड़ता है। शून्यता का अर्थ है निःस्वभावता। जिस ज्ञान में शून्यता का भाव ग्रहण होता है, वही शून्यताविमोक्ष है। इसके प्राप्त होने पर तुरीय अवस्था का ध्वंस होता है और अक्षर सुख उत्पन्न होता है। धर्मयोग के लिये अनिमित्त विमोक्ष लाभ करना पड़ता है। विकल्प चित्त ही निमित्त हैं। जिस ज्ञान की अवस्था में चित्त निर्विकल्प होता है, उसे ही अनिमित्त विमोक्ष कहा जाता है। इसके प्राप्त होने पर सुषुप्ति अवस्था का क्षय होता है। जब निर्विकल्प चित्त में मैत्री का उदय होता है यही चित्तवज्र धर्मयोग कहलाता है। मन्त्रयोग के लिये अप्रणिहित विमोक्ष लाभ करना पड़ता है। निर्विकल्प चित्त में प्रणिधान का अभाव होता है। इसे ही अप्रणिहित विमोक्ष कहा गया है। इसके लाभ से स्वप्न अवस्था का क्षय होता है। इससे जो मुदिता संचरित होती है, वही मन्त्रयोग कहलाता है। संस्थान योग के लिये अनभिसंस्कार विमोक्ष आवश्यक है। प्रणिधान के अभाव में अभिसंस्कार नहीं रहता, इस विमोक्ष के लाभ से जाग्रत् अवस्था का क्षय होता है[4]।

---

१. से० टी०, पृ० ६-७
२. से० टी०, पृ० ७०
३. वि० प्र०, भाग—१, पृ० ४४
४. से० टी०, पृ० ५-६

षडंग योग

नामसंगीति की टीकाओं में षडंग योग की विशद व्याख्या उपलब्ध होती है। षडंग योग की साधना द्वारा तन्त्र में निष्पन्नक्रम की साधना की जाती है। षडंग योग का प्राप्य पद काय-वाक्-चित्तवज्र है। ये छः योगांग हैं—प्रत्याहार, धारणा, अनुस्मृति, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। प्रत्याहार तथा धारणा द्वारा कायवज्र तथा उसके लक्षणों तथा अनुव्यञ्जनों की सिद्धि होती है। प्राणायाम और धारणा द्वारा वाग्वज्र तथा मूलवायु में अधिकार प्राप्त होता है और सर्वज्ञ वाक् की सिद्धि होती है। अनुस्मृति और समाधि द्वारा चित्तवज्र की प्राप्ति होती है। अनुस्मृति के समय चण्डाली को बोधिचित्त द्वारा द्रवित कर उष्णीष से मणिचक्र तक पहुंचाने से चार आनन्दों को उत्पत्ति होती है। इसमें सहजानन्द ही समाधि है। सहजानन्द की अवस्था में नाभि में चण्डाली के प्रज्वलित होने पर योगी देव बिम्ब का साक्षात्कार करता है। इस अवस्था में अनुरागपूर्ण सुख की उत्पत्ति होती है। यही अनुस्मृति कहलाती है। इसकी उत्पत्ति के लिये धारणा द्वारा मध्यमा नाडी में वायु को स्थिर कर चण्डाली को प्रज्वलित करना पड़ता है। इस प्रकार वायु को मध्यमा नाडी में स्थिर करना ही धारणा कहलाती है। धारणा की अवस्था प्राप्त करने के लिये प्राणायाम द्वारा ललना और रसना नाडियों में बहने वाली वायु को मध्यमा में प्रवेश कराना पड़ता है। यही प्राणायाम योग कहलाता है। ललना और रसना में बहने वाली वायु तभी मध्यमा में प्रवेश करेगी, जब प्रत्याहार और ध्यान द्वारा मध्यमा नाड़ी की पहचान हो। यह प्रत्याहार योग द्वारा दिन और रात्रि में उदय होने वाले लक्षणों के बाद सम्भव होती है। प्रत्याहार द्वारा लक्षणों को पहचान लेने के बाद ध्यान द्वारा वे स्थिर होते हैं। नामसंगीति के विभिन्न विशेषण पदों की व्याख्या में षडंग योग की विस्तृत व्याख्या की है।

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीति के सम्पादन में प्रयुक्त मातृकाएँ

क. राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या-४.२२८५, ताडपत्र

ख. राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या-५.१६४, ताडपत्र

ग. एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, संख्या-५७

घ. एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, संख्या-५६

ङ. डॉ० रघुवीर के संस्करण का 'न' पाठ

च. डॉ० रघुवीर के संस्करण का 'प' पाठ

छ. डॉ० रघुवीर के संस्करण का 'च' पाठ

ना.अ. नाममन्त्रार्थावलोकिनी

अ. क. अमृतकणिका नामसङ्गीतिटिप्पणी

भो. देगे संस्करण, तो. ३६०

अमृतकणिका नामसङ्गीतिटिप्पणी के सम्पादन में प्रयुक्त मातृकाएँ

क. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या-४.२०, पत्र संख्या-१००, ताडपत्र

ख. केसर पुस्तकालय, काठमाण्डू, नेपाल सं० १४, पत्र संख्या—७०
(माईक्रोफिलम राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू संख्या सी० १४.१०)

ग. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू, नेपाल
लगत संख्या—५.१६९, नेपाली कागज, पत्र संख्या-४८

द. व्यक्तिगत संग्रह, पण्डित दिव्यवज्र वज्राचार्य, मासं गली काठमाण्डू, नेपाल

भो. भोटानुवाद—तन्ग्युर, पीकिंग संस्करण भाग-४८, संख्या-२१११

अमृतकणिकोद्योतनिबन्ध के सम्पादन में प्रयुक्त मातृकाएँ

क. टोक्यो विश्वविद्यालय पुस्तकालय, सं० १८, पत्र संख्या-९०, ताडपत्र

ख. आशा स्फु कुटि, काठमाण्डू, DH. 366, पत्र संख्या-५६

ग. राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू, नेपाल, लगत संख्या-३.६५५,
पत्र संख्या-९५

ग्रन्थस्थ-संकेत सूची

अ. व. सं.	अद्वयवज्रसंग्रह	प्र. पि.(प्रज्ञा. पि.)	प्रज्ञापारमिता पिण्डार्थ
अ. श.	अध्यर्धशतक	प्र. वा.	प्रमाणवार्तिक
अ. सा.	अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता	प्र. श.	प्रतिपत्तिसारशतक
अचि. स्त.	अचिन्त्यस्तव	बो. च.	बोधिचर्यावतार
अनु. सं	अनुत्तरसन्धि	बो. वि.	बोधिचित्तविवरण
अभि. अ.	अभिसमयालंकार	म.भा (शा.प.)	महाभारत (शान्तिपर्व)
अभि. को.	अभिधर्मकोश	म. वि.	मध्यान्तविभाग
आ. मा.	आलोकमाला	म. शा.	मध्यमकशास्त्र
का. त.	कालचक्रतन्त्र	मध्य.	मध्यमकावतार
गी.	गीता	महा.सू.(म.सू.)	महायानसूत्रालंकार
गु. त.	गुह्यसमाजतन्त्र	रत्ना.	रत्नावली
च. गी. को.	चर्यागीतिकोश	लो. स्त.	लोकातीतस्तव
च. श.	चतुःशतक	वि.	विंशिका
चतु. स्त.	चतुस्तव	वि. प्र.	विमलप्रभा
दो. को.	दोहाकोश	वि. व्या.	विग्रहव्यावर्तनी
ना. सं.	नामसंगीति	स्वा. प्र.	स्वाधिष्ठानप्रभेद
पं. क्र.	पञ्चक्रम	हे. त.	हेवज्रतन्त्र

●

विषय-सूची

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिः

भिक्षुरविश्रीज्ञानविरचितया

अमृतकणिकाख्यटिप्पण्या

आचार्यविभूतिचन्द्रविरचितेन

अमृतकणिकोद्योतनिबन्धेन च

सहिता

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिः

अध्येषणा

ॐ नमो मञ्जुश्रीकुमारभूताय[1]

अथ वज्रधरः श्रीमान् दुर्दान्तदमकः परः ।
त्रिलोक[2]विजयी वीरो गुह्यराट् कुलिशेश्वरः ॥ १ ॥

नामसङ्गीतिटिप्पणी-अमृतकणिका

ॐ नमो मञ्जुनाथाय[3]

विषयविषयिव्योमाश्लेषप्रवृत्त(त्ति)निमित्तकः(कम्)
रविशशितमोवत्मवृत्या[4]शरादि(रि)[5]चलक्रियम् ।
स्फुरदुरु[6]तरज्ञानज्योति(:)श्रुतिशबराधिपं
मणिमयशिलारूढं गूढं नमामि निराप(स्प)दम् ॥

अमृत[7]कणिकायमानं सद्गुरुपादप्रसादतोऽधिगतम् ।
[8]तद्दीप्यते ममासीत(समासात्) स्वस्मृतये नामसङ्गीतौ ॥

इह खलु श्रीधान्यकटके महाचैत्यस्थाने[9] नानातन्त्रश्रवणार्थिभिरध्येषितः श्रीशाक्यसिंहो नाम बुद्धो भगवान् चैत्रपूर्णिमायां श्रीधर्मधातुवागीश्वर[10]मण्डलं तदुपरि श्रीमा(म)न्नक्षत्रमण्डलमादिबुद्धं विस्फार्य तत्र तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवादिभ्यः सर्वमन्त्रनीतिं बृहल्लघुतन्त्रभेदेन देशितवान् । उक्तञ्च **श्रीबृहदादिबुद्धे—**

गृध्रकूटे यथा [11]शास्त्रा प्रज्ञापारमिता[12]नये ।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना ॥ इति ।

तत्र चेयमेव नामसङ्गीतिः परमदुरवगाहपरमार्थनिर्यासाधिकरण[13]त्वेन सर्वमन्त्रनय[14]प्रधानभूता । अत्र च वज्रधरस्य भगवतः परमाक्षरज्ञानं सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां

---

१. ग. ॐ नमो मञ्जुनाथाय । २. ग. ङ. त्रैलोक्य० । ३ ख. द. नमो बुद्धाय, भो. ḥJam dPal gSon Nur Gyur Pa (मञ्जुश्रीकुमारभूताय) । ४. द. भैरारि, भो. rTsibs Can (अरा) । ५. ग. बल । ६. ग. तरङ्गज्ञानज्योतिः । ७. द. कणिकानाम् । ८. द. भो. तद्दीप्यते समासात् स्वस्मृतये नामसङ्गीतेः । ९. ग द. 'स्थाने' नास्ति । १०. वागीश्वरमण्डल-निष्पन्नयोगावली पृ० ५४ । ११. ग. शास्त्रे, क. शास्तः । १२. द. नयं । १३. भो. sÑiṅ Poḥi dBaṅ Du Byas Pa Ñid (रसाधिकरणत्वेन । १४. ख. प्रबोध ।

हृदयभूतं तथागतेन [१]संप्रकाशितम्, षट्कुलनाडीसमन्वितषट्चक्रव्यवस्थितद्वाषष्ट्यधिक-शतनाडी[२]निरोधा विशुद्धया द्वाषष्ट्यधिकशतश्लोकैः, शेषैश्चानुशंसादिकमिति।

तत्र तावत्, अथ वज्रधरः श्रीमानित्यादिषोडशश्लोकैरध्येषणाव्याजेन तदेव परमाक्षरमाह—

अथेति। अकारेणात्र नैरात्म्यप्रतिपादकत्वेन सर्वाकारवरोपेता [३]शून्यता प्रोक्ता। [४]**थ**कारेणाप्यक्षोभ्य[५]स्वभावप्रतिपादनेन निरालम्बकरुणा। एतच्च [६]सुविशदं संपुटं[७] (सुविशदस्फुटं) **हेवज्रटीकायां** व्याख्यातम्। तयोरद्वैधात्[८] मणिवरटकान्तःस्थित-सहजानन्द[९]शुक्रमेव शब्दाभिधेयम्, अथेत्युच्यते। उक्तञ्च—

एकारे मध्यवंकारः सर्वबुद्धसुखालयः।
[१०]खधातौ वज्रसत्त्वोऽयं कायवाक्चित्तयोगतः॥

कायो बिन्द्विन्दुः शुक्रं च वाग् विसर्गो[११] रजो रविः।
चित्ताकारास्त्वमी प्रोक्ता[१२] एवंधातौ व्यवस्थिताः॥ इति।

(वि० प्र०, भाग १, पृ० ३५)

अत एव शून्यताकरुणाभिन्नं महासुखज्ञानवज्रं तादात्म्येन धरतीति **वज्रधरः**। वज्रमभेद्यज्ञानमस[१३]त्संकल्पास्थित(तं) स्कन्धक्लेशमृत्युविघ्नमारैरभेद्यत्वात्। अत एवोक्तम्—

मारः स्वचित्तं न परोऽस्ति मारस्तथागतं न(तत्वेन) तथागतानाम्।
मारस्य भंगो विजयो मुनिश्च(नेश्च) चित्तेन चित्तप्रतिबोध एव॥

तत् सूचकं पञ्च[१४]शू(सू)चिकवज्रं बहिः तदीयस्तत्त्व[१५] (तदन्तस्तत्त्व)सूचनार्थं धरतीति वा वज्रधरः। मत्वर्थः[१६] श्रीरद्वयं ज्ञानं तदनुभवरूपत्वेन तादात्म्येन नित्ययोगात् **श्रीमान्**, श्रुतमिति मयार्थः[१७]। तदुक्तम्—

एवं [१८]वज्राब्जमध्यान्तवज्री तिष्ठति बिन्दुधृक्।
स एवा[१९]व्यतिभिन्नात्मा मयेति[२०] प्रकटीकृतम्[२१]॥

सुखमिति (श्रुतमिति) श्रुतं ज्ञातं मया चात्मेव चात्मनेति[२२]।
श्रीमदा[२३]दिबुद्धे चोक्तम्—

---

१ ग. प्रकाशितम्। २. क. निरोध्य। ३. ख. द. शून्यतोक्ता। ४. द. थकारेणाक्षो०। ५. ख. स्वरूप। ६. क. स्व। ७. द. विषदस्पुट। ८. द. तत्त्वात्, क. ख. ०द्वैतात्। ९. ग. सहजानन्त। १०. क. ख. ग. द. आकाशे। ११. क. ख. ग. द. भो. वह्नि। १२. क. ख. एष। १३. ग. संकल्पो। १४. द. शूक। १५. क. ग. तदायतत्त्व। १६. क. ख. मयेत्यर्थः। १७. क. ख. ग. योऽर्थः। १८ क. वज्रान्तमध्यन्तु। १९. क. ख. एव व्यति०। २०. द. मतेति। २१. ख. कृतः। २२. द. चात्मानिति। २३. ख. श्रीआदिबुद्धे।

तन्त्रेऽप्येवं[1] मया यत् श्रुतमिति वचनं तन्मया ज्ञातमेव
वज्री चन्द्रद्रवाद्यः शिरसि गल[2]हृदब्जे च नाभौ च गुह्ये।
वज्रस्त्रीणां भगे तत्परकमलगते [3]बिन्दुमोक्षत्रयेण
बुद्धक्षेत्रे[4] प्रविष्टः[5] तदिह स भगवान् योगिभिर्वेदितव्यः॥ इति।

(का० त० ५.९५.)

अत्र च वज्रधरो नान्योऽपि तु महावज्रधर एव। चतुरशीतिधर्मस्कन्धसहस्राणामन्य[तम]स्य सकृदुद्[6]ग्रहणार्थसामर्थ्यात्त[7]दुक्तम्—

व्याख्याताहमहं धर्मः श्रोताहं स्वगणैर्युतः।
साध्योऽहं जगतः शास्ता[8]लोकोऽहं लौकिकोऽप्यहम्॥
सहजानन्दस्वभावोऽहं परमान्तं विरमादिकम्।
भावोऽहं नैव भावोऽहं बुद्धोऽहं वस्तुबोधनात्॥

(हे० त० २.२.३९-४०)

मां न जानन्ति ये मूढाः कौसीद्योपहताश्च ये।
[9]विहरेऽहं सुखावत्यां सद्वज्रयोषितो[10] भगे॥

(हे० त० २.२.३७-३८)

आदिकर्मिकसत्त्वावतरणाय तु बुद्धनाटकमध्येषकसङ्गीतिकारादिक[11]मिति। हरिहरहिरण्यगर्भादिभिर्दमयितुमशक्यत्वात् दुर्दान्ताः, षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासप्रश्वासः, तेषां परमाक्षरज्ञानमहारसाबिद्धतया[12] तद्रूपोपघाताद् **दुर्दान्तदमकः, पर** उत्कृष्टः। अयमेव 'प्राणिनश्च त्वया घात्या' (हे० त० ३.३.२९, गु० स० १६.५९) इत्यस्यार्थः। अत एवोक्तम्—

वीरक्रमो न बाह्ये देहे प्राणक्षयो ह्यसावुक्त(:)। इति।

(वि० प्र०, भाग-१ पृ० ७)

उक्तञ्च **विमलप्रभायाम्। पुनरुक्तञ्चादिबुद्धेः—**

योगी प्राणातिपातं दिननिशिकुरुते प्राणनाशः स उक्तः।

(का० त० ४.१४५)

सर्वज्ञपदलाभाय न बाह्ये प्राणातिपातः। बाह्ये यः[13] प्राणातिपात [14]उक्तो दुर्दान्तदमनाय स तेषां योगबलेनाकृष्टः। पुनस्तस्मिन्नेव काये प्रवेशनीयो योगिनेति

---

१. क. ख. ग. तन्त्रेष्वेवं। २. द. गतदलहृदब्जे, क. ख. हृदगलब्जे। ३. मु. बीज। ४. क. ख. ग. द. क्षेत्रं। ५. द. प्रतिष्ठः। ६. द. गृहणाद्य। ७. क. ख. द. सामर्थ्यादुक्तं। ८. क. लोकोलौकि०। ९. क. ख. ग. द. विहरेयं। १०. क. ख. ०द्भगेषु च। ११. क. कारि। १२. ख. रसबिद्धतया। १३. क. ख. बाह्यादयः। १४. क. उक्ता, द. तदुक्त।

दुर्दान्तदमको भवति, न तु दुर्दान्तान्तक इति । त्रयो लोकास्त्रिलोकम्, कायवाक्-चित्तम्, तद्विजेतुं वशयितुं ज्ञानेन सहैकलोलीकर्तुं शीलं यस्य स तथा । उक्तञ्च—

चतुर्बुद्धासनासीनं वज्रपदमसुसंस्थितम् ।
अनुभूतं क्रमेणैव चतुरानन्दलक्षणम् ॥

एवं व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन कायवाक्चित्तज्ञानभेदेन चतुर्विधं परमाक्षरसुखम् । उक्तञ्च—

भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य बोधिचित्तं न चोत्सृजेत् ।
भावयेद् बुद्धबिम्बं तु त्रैधातुकमशेषतः ॥ इति ।

विगत[1]स्वश्चलद्रूपश्वासवातो यस्य स तथा । गुह्यं [2]श्रावक-प्रत्येकबुद्धयानयो-रुत्तरं वज्रयानं कायवाक्चित्तज्ञानैकलोलीभावो वा तत्र महासुखरूपतया [3]राजत इति **गुह्यराट्** । पञ्चगु[4]ह्यराजत्वाद् वा गुह्यराट् । उक्तञ्चादिबुद्धेन[5]—

योगी प्राणातिपातं दिननिशि कुरुते प्राणनाशः स उक्तः
यः शब्दो वक्त्रहीनः प्रभवति हृदयेऽसौ मृषावाद एव ।
सर्वज्ञज्ञानभूमेर्ग्रहणमपि च यद् योगिनः स्तेयमुक्तं
सौख्यं [6]बिन्दु(द्व)प्रपाते भवति च परदारस्य सेवाऽविरागात् ॥

प्राणायामानलेन द्रवमपि शशिनः पानकं मद्यपानम्
उष्णीषेऽङ्गुष्ठ[7]पर्वाद् व्रजति तिथिवशात् पूर्णिमान्तं[8] स्वचित्तम् ।
उष्णीषादङ्गुलीषु व्रजति पुनरिदं कृष्णपक्षावसाने
सा चर्या योगिनो वै प्रतिदिनसमये त्विष्टसिद्धिप्रदा या ॥

(का० त० ४.१२४-१२५)

वि(द्वि)कल्पराजे —

प्राणिनश्च त्वया घात्या वक्तव्यञ्च मृषावचः ।
अदत्तञ्च त्वया ग्राह्यं सेवनं परयोषितः ॥
एकचित्तं प्राणिवधं[9] प्राणश्चित्तं यतो मतम्[10] ।
[11]सत्त्वानुत्तारयिष्यामि मृषावादं च शब्दितम्[12] ॥
योषिच्छुक्रमदत्तञ्च परदाराः स्वाभसुन्दरीति ॥

(हे० त० २.३.२९-३०)

---

१. क. ग. द. इव । २. क. श्रावकश्च, ख. ग. श्रावकं च । ३. ग. यौगत । ४. द. राजनाद् वा । ५. क. ग. द. बुद्धे । ६. क. विद्वत्प्रसान्ते, ग. चित्तप्रशान्ते, भो. Thig Le Ma Lhuṅ (बिन्द्वपात) । ७. ख. द. प्रभावात् । ८. मु. द. पूर्णिमान्ते । ९. क. ख. प्राणिबद्धं । १०. क. ग्रहम् । ११. मु. लोका । १२. भो० Rab Tu bsGrags (प्रसिद्धं) ।

कुलिशे वज्रशिखरपुरे स्थिरत्वेन ईश्वरत्वात् **कुलिशेश्वरः**। यथारुतोऽर्थस्त्वन्यत्रापि सुलभत्वान्नोक्तः ॥ १ ॥

विबुद्ध[1]पुण्डरीकाक्षः [2]प्रोत्फुल्लकमलाननः ।
प्रोल्लालयन्[3] वज्रवरं स्वकरेण मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥

विबुद्ध इति। **विबुद्ध[4]पुण्डरीकं** स्फुटी[5]भूतमाकाशधातुस्तेनाक्षि सहजज्ञान[6]मस्य स तथा। विबुद्धं विकसितं पुण्डरीकं शुक्रपूर्णत्वात् श्वेतगुणयुक्तं पद्म[7]वज्रशिखरे तत्राक्षं[8] पञ्चचक्षुरुद्भवं ज्ञानं यस्य वा स तथा। विबुद्धपुण्डरीकं योगिसत्त्वानां हृदयं तत्र अक्षरसुखज्ञानं तादात्म्येन यस्य[9] वा स तथा। वज्रातिशयघर्षणेन **प्रोत्फुल्लं** विकसितं **कमलं** [10]रजःशुक्र[11]योगेन सितरक्तगुणयुतं स्त्रीपद्मं तत्राननं ज्ञानं यस्य स तथा। एवं व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन कायवाक्चित्तज्ञान[12]स्वरूपचतुर्बिन्दु[13]परमाक्षरसुखज्ञानता प्रतिपादिता। एवं विधं निर्विकल्प(पं) परमाक्षरसुखज्ञानं **वज्रवरं** स्वकरेणात्मीयाद्वैतज्ञानरश्मिस्फुरणेन जगदर्थहेतुतया **प्रोल्लालयन्**[14] अथवा षडङ्गयोगेनात्मनिमित्तेन विवृत्या [15]प्रतिचक्रमुल्लासयन् उत्तोलयन् **स्वकरेण** निर्विकल्पात्मवेद्यकरुणा[16]शून्यताऽद्वैतबोधेन उष्णीषचक्रमासादयन्नित्यर्थः। **मुहुर्मुहुः** मिथ्यासंकल्पस्य क्षणमप्यसम्भवात् ॥ २ ॥

भृकुटीतरङ्ग[17]प्रमुखैरनन्तैर्वज्रपाणिभिः ।
दुर्दान्तदमकैर्वीरैर्वीरबीभत्सरूपिभिः ॥ ३ ॥

भृकुटीति। **भृकुटी** ललाटसंकोचः, तेन ऊर्णाचक्रे बोधिचित्तागमनं सूचितम्, तस्य शुक्रस्य [18]**तरङ्गो** लहरी सहजाभिलाषतरलत्वात्। तत्र विषये **प्रकृष्टं** [19]**मुखमु**पायः षडङ्गयोगलक्षणो येषां ते यथा। अत एवा**नन्तैर**न्तद्वयरहितैः अविकल्पसुखैरित्यर्थः। वज्राणि आदर्शादिपञ्चज्ञानानि [20]पाणी(णा)विवायतत्वात्तादात्म्येन येषां तैस्त[21]थागतै**र्वज्रपाणिभिः**। धर्मधात्वात्मकत्वेन सर्वविकल्पानां महासुख[22]रूपतापादनात् **दुर्दान्तदमकै**रत एव **वीरै**र्महासुखसमाधिस्थैः। वीरमच्युतबोधिचित्तत्वात्। बीभत्समाकाशाक्षयत्वेन रूपं महा[23]रागस्वरूपं तादात्म्येन तद् योगाद् **वीरबीभत्सरूपिभिः** ॥ ३ ॥

---

१. छ. विबुद्धः। २. ङ. प्रफुल्ल। ३. ग. प्रोल्लालयवज्रवर, ङ. प्रोल्लालयद्वज्रवरः। ४. द. विबुद्धं। ५. द. भूताकाश, ग. भूत्वाकाश। ६. भो. Ye Śes Chen Mo (महाज्ञानं)। ७. ग. पद्मं। ८. ग. तत्रोक्तं। ९. ग. अस्य। १०. ग. वज्रः। ११. ख. योगिनं। १२. ख. द. 'ज्ञान' नास्ति। १३. ग. परमाक्षरं सुखं। १४. द. उल्लासयन्, ग. प्रोल्लासयन्। १५. ख. प्रीति। १६. भो. 'शून्यता' नास्ति। १७. ग. टरङ्ग०। १८. ग. तरङ्गा। १९. क. ग. सुख। २०. द. पाणिरिवा। २१. भो. ख. 'तथागतैः' नास्ति। २२. ग. भूयता। २३. ख. विराग।

उल्लालयद्भिः स्वकरैः [१]प्रस्फुरद्वज्रकोटिभिः ।
प्रज्ञोपायमहाकरुणाजगदर्थकरैः परैः ॥ ४ ॥

उल्लालयेति। **उल्लालयद्भि**राकाशे, भव्यसत्त्वानां महासुखं पूर्वोक्तं वज्रवर-मुल्लासयद्भिः। स्वमनन्यवेद्यं कं सुखं रान्ति अनुभवन्तीति **स्वकरैः**। महासुखशुक्रस्य वज्रकमलकर्णिकागतत्वेन **प्रस्फुरन्ती** विकसन्ती **वज्र**स्य महासुखस्थानस्य **कोटि**रग्र[२]भागो येषां तैः। प्रज्ञा सर्व[३]धर्मविकल्परूपा शून्यता। उक्तञ्च**ादिबुद्धे**—

त्यक्त्वेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां
सम्यक्संबोधिहेतोर्जिनवरजननीं भावयेद् दिव्यमुद्राम्।
निर्लेपां निर्विकारां खसमहततमां व्यापिनीं योगगम्यां
कूटस्थां ज्ञानतेजां भवकलुषहरामा[४]दिबुद्धानुविद्धाम् ॥ इति।

(का० त० ४.१९९)

सैव उपायस्तेन साधिता महाकरुणा महासुखरूपि[णी][५] बोधिचित्ततया स्फरणलक्षणं जगदर्थं कुर्वतीति। तैः **प्रज्ञोपायमहाकरुणाजगदर्थकरैः** लोकाति-क्रान्तत्वात् **परैः** ॥ ४ ॥

हृष्टतुष्टा[६]शयैर्मुदितैः क्रोधविग्रहरूपिभिः ।
बुद्धकृत्यकरैर्नाथैः सार्द्धं [७]प्रणतविग्रहैः ॥ ५ ॥

हृष्टेति। हृष्टस्तादात्मिकसुखेन, तुष्ट आनुबन्धिकसुखेन, आशयः कायवाक्चित्त-लोलीभूतः सहजकायो येषां तै**र्हृष्टतुष्टाशयैः**, अत एव सत्त्वार्थकरणाय **मुदितैः**। **क्रोधेन** सर्वधर्मशून्यतास्फुटीभावेन, क्रोधे विरमपर्यन्ते वा 'क्रोधो विरमपर्यन्तः' इति पीठ[८]-विवृतिः। **विगतो ग्रह** अशक्ति (आसक्ति)स्तद्**रूपिभि**स्तत्स्वरूपिभिः। अत एव **बुद्ध-कृत्यकरैः**। निर्विकल्पसुख[९]स्फरणाद् एव सत्त्वार्थकरणसामर्थ्यात् **नाथै**र्योगीश्वरैः सेव्यैः **सार्द्ध**मेकीभूतैः **प्रणतविग्रहैः** महासुखनिमग्नकायवाक्चित्तैः ॥ ५ ॥

प्रणम्य [१०]नाथं [११]संबुद्धं भगवन्तं [१२]तथागतम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदमाह स्थितोऽग्रतः ॥ ६ ॥

---

१. घ. प्रस्फुल्ल। २. क. भावो। ३. क. ख. ग. धर्मविकल्प। ४. मु. कालचक्रानु०। ५. ख. द. 'रूपी' नास्ति। ६. ग. ०सयि०। ७. ग. प्रणन्त०। ८. भो. gDan bŜir (चतुः पीठे)। ९. क. स्फरति, ख. स्फरणत्। १०. ग. नाथ। ११. ग. सम्बुद्धो। १२. ग. तथागतः।

प्रणम्येति । **प्रणम्या**मुखीकृत्य, **नाथम**च्युतबोधिचित्तम्, **सम्बुद्धं** प्रबुद्धसुखम्, भगोऽत्र ललाटचक्र[1]मध्याद् गुह्यवरटकगतौ ज्ञानबिन्दुस्तदुदितप्रभास्वरज्ञानं **भगवन्तं** तथा सहजसुखाकारेणोष्णीषकर्णिकातो वज्रमणिवरटके आगतं विवृत्या मणिवरटकात् पुनरुष्णीषचक्रगतं **तथागतम्** । उक्तञ्च—

आगतश्च गतश्चैव व्याप्य विश्वव्यवस्थितः ।
[2]गत्यागतिनिरोधाश्च(च्च) तथागत इति स्मृतः ॥ इति ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वाऽबहिर्गतो भूत्वा, प्राणायामबलेन संघट्टं कृत्वा वा, **इदं** स्वसंवेद्यं सुख**माहा**नुभूतवान् । **अग्रतः स्थितः** समाध्यानुगमात् मणिवरटकान्तःस्थितः ॥ ६ ॥

मद्धिताय ममार्थाय अनुकम्पाय मे विभो ।
मायाजालाभिसंबोधे[3]र्यथालाभी भवाम्यहम् ॥ ७ ॥

मद्धितेति । **मद्धिताय** वज्रमणिवरटकानुभूतसुखानुबन्धाय । अत एव **ममार्थाय** सर्वसत्त्वानां तत्सुखोत्पादाय । तथतारूपेणाभिन्नत्वेन तत्सुखोत्पादनमेव मत्प्रयोजनम् । **अनुकम्पाय** स्वपरेषामसत्संकल्पप्रक्षालनाय । महासुखस्वभावेन त्रैलोक्यव्यापकत्वेन **विभो** इति सम्बोधनम् । षोडशकायानन्दादिबिन्दुनिरोधेन प्रादेशिकस्कन्धधात्वायतनानां निरोधाद् **मायाजाल**वन्निःसंगं सुखत्वेन त्रैलोक्यस्या[4]**भिसम्बोधिः** साक्षात्कारस्तस्याः **लाभी** सन् तादात्म्येन । अत एवाह-अकार-हंकारसंपुटत्वेन युगनद्धरूपो **भवामि यथा**, तथा नामसङ्गीतिं प्रकाशयतु सम्बुद्ध इति सम्बन्धः ॥ ७ ॥

अज्ञानपङ्कमग्नानां क्लेशव्याकुलचेतसाम्[5] ।
हिताय सर्वसत्त्वानामनुत्तरफलाप्तये ॥ ८ ॥

अज्ञानेति । **अज्ञानम**विद्यावासना तदेव **पङ्कः** दुस्तरत्वेन तन्**मग्नानां हिताय** महासुखोल्लासाय । **क्लेश**[:] च्युतिदुःखम्, तेन **व्याकुलचेतसां** षड्गतिभ्रमणशीलाना**मनुत्तर**मवाच्यं प्रकृतिप्रभास्वरं महासुखं **फलं** तत्प्राप्तये प्रकाशयत्विति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः ॥ ८ ॥

प्रकाशयतु संबुद्धो[6] भगवान् शास्ता जगद्गुरुः ।
महासमयतत्त्वज्ञ[7] इन्द्रियाशयवित्परः[8] ॥ ९ ॥

प्रकाशयत्विति । सहजसुखोल्लासेन [9]सर्वधर्मावबोधात् **सम्बुद्धः** । भगः सर्वाकारनिराकारशून्यता, तद्योगाद् **भगवान्** । षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासानां महासुखा-

१. क. मध्याङ्गु, ग. मध्याङ्गत्य । २. क. गत्यागत्योगति । ३. च. ०सम्बोधिर् । ४. क.सम्बोधेः । ५. ख. ०चेतसो, ग. ०चेतसाः । ६. ग. प्रकाशयितु संबोधौ । ७. ग. ०तत्त्वज्ञा । ८. ग. ०पर । ९. द. सर्वबुद्धाव० ।

भिन्नत्वेन शासनात् **शास्ता**। अत एव **जगतां** श्वासवातानां कायवाक्चित्तानां वा **गुरुस्त**त्त्वोपदेष्टा। **महासमय**चतुर्थबिन्दुस्तस्य तदेव वा **तत्त्वं** [1]सुखज्ञानं तत्तादात्म्येन जानातीति तथा। इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां ग्राह्यग्राहकभावापन्नानामाशयं [2]सुखं प्रकृतिमभेदेन वेत्तीती**न्द्रियाशयवित्**, अतएव **परो** लोकातिक्रान्तः॥ ९ ॥

भगवन् ज्ञानकायस्य महोष्णीषस्य गीष्पतेः[3] ।
मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य ज्ञानमूर्तेः[4] स्वयम्भुवः ॥ १० ॥

भगवन्निति। **भगवन्निति** सम्बोधनं **ज्ञानकाय**श्चतुर्थकायः षोडशार्द्धार्द्धबिन्दुधृक्। तस्यापतितबोधिचित्तबिन्दुत्वेन विवृत्योर्ध्वगमनेनोष्णीषस्थानगतत्वात् **महोष्णीषस्य**, **गी**र्ध्वनिः षडक्षरात्मक एकार आधारात्मकः तस्य **पतिः** षष्ठो वंकारो वज्रधरः आधेयस्वभावः। तथा च वक्ष्यति—

पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः षडक्षरः॥ इति।
(ना० सं० १०.२)

एकार-वंकाररूप इत्यर्थः। **मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्ये**ति धर्मतासंकेतेन मञ्जुशब्देन वज्रशिखरे प्रोत्फुल्ल[5]वरकमलं तदेवाद्वयज्ञानाश्रयत्वात् श्रीस्तदुत्पन्नमद्वयज्ञानं मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य। सर्वसत्त्वानां हृदयविहारित्वात् [6]ज्ञानमूर्तेः। स्वयमात्मना हेतुनिरपेक्षत्वाद् भवति, साक्षाद् भवतीति **स्वयम्भुवः**। तद्विज्ञानं न केनचित्क्रियते न केनापि दीयते सर्वाकारान्तर्गतं सर्वरूपमकृत्रिमतया स्वसंवेद्यम्। तदुक्तम्—

न सहजं केनचिद्दत्तं न कस्माच्चागतं यतः।
आत्मना ज्ञायते पुण्याद् गुरु[7]पर्वोपसेवया॥
(हे० त० १.८.३६)॥१०॥

गम्भीरार्थामुदारार्थां महार्थामसमां शिवाम्।
आदिमध्यान्तकल्याणीं नामसङ्गीतिमुत्तमाम्॥ ११ ॥

गम्भीरेति। अलब्धोपदेशैर्दुरवगाहत्वाद् **गम्भीरो** मन्त्रमहायानसाध्यत्वा**दर्थो** वज्रधरत्वं यस्यां ताम्। सहजरूपेण सर्वभावस्वभावत्वात् **उदारार्थाम्**। महामुद्राभिषेकसाध्यत्वान्**महार्थाम्**। श्रावकादिज्ञान(ा)साधारण्या**दसमाम्**। त्र्यध्वसमत्वेन निर्विकारत्वात् **शिवाम्**। **आदिमध्यान्तकल्याणीमि**ति आदिरानन्दज्ञानम्, मध्ये परमानन्दज्ञानम्, अन्ते च[8] विरमानन्दज्ञानं तेषां कल्याणीं सहजज्ञानरूपादिकामत एव **उत्तम**मानन्दत्रयानुपलम्भस्वरूपत्वात्। तथा चोक्तम्—

---

१. क. ख. ग. सुखं ज्ञानं। २. क. ग. अथ। ३. ग. गीपते। ४. ग. ०मूर्ति। ५. क. वरट०। ६. ख द. ज्ञानमूर्तिः। ७. क. पर्वीय सेवयति, ख. द. पर्वोपसेवयेत्। ८. क. स्व।

आनन्दत्रयभेदेन चतुर्थं तेन लक्षयेत्।
त्रयाणां नोप[१]लम्भत्वात् सहजं तेन गद्यते॥
सर्वकल्याणतां याति रविणाब्जप्रकाशनात्।

इत्यादिविस्तरः। नानातन्त्रोपलक्षितमहासुखाकारसहजानन्दसुखस्य नाम्ना सम्यक्ज्ञानं (गानं) **नामसङ्गीतिः**। सहजरूपेण तां धारयिष्यामि अद्वयभावं करिष्यामीति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः॥ ११॥

याऽतीतैर्भाषिता बुद्धैर्भाषिष्यन्ते ह्यनागताः।
प्रत्युत्पन्नाश्च [२]संबुद्धा यां [३]भाषन्ते पुनः पुनः॥ १२॥

याऽतीतैरिति। **या** नामसङ्गीतिर**तीतैः** श्रुतचिन्तायुक्तै**र्भाषिता** [४]प्रतिश्रुतकरूपेणा[५]धिगता। **अनागता** भावनाप्रकर्षपर्यन्तगता **भाषिष्यन्ते** तथैवाधिगमिष्यन्ति। [६]**प्रत्युत्पन्नाश्च** वार्तमानिका(क)भावनायोगयुक्ता **भाषन्ते** [७]तथैवाधिगच्छन्ति। एतेन सर्वतथागतैः मन्त्रमहायानं देशितमित्यपि सूचितं भवति, भव्यसत्त्वापेक्षया सर्वैरेव [८]देशितत्वात्॥ १२॥

[९]मायाजाले महातन्त्रे या चास्मिन् सम्प्रगीयते।
महावज्रधरैर्हृष्टैर[१०]मेयेर्मन्त्रधारिभिः॥ १३॥

मायाजाल इति। **मायाजाले** मायाजालाभिसम्बोधिलक्षणे, [११]तन्यते व्युत्पाद्यत इति तन्त्रम्, महच्च तत्तन्त्रञ्चेति **महातन्त्रं** महासुखज्ञानमित्यर्थः। उक्तञ्च—

तन्त्रं प्रबन्धमाख्यातं संसारं तन्त्रमिष्यते।
तन्त्रं गुह्यं रहस्याख्यमुत्तरं तन्त्रमुच्यते॥ इति।

या[१२] नामसङ्गीतिः **संप्रगीयते** स्वयमेव बुद्ध्यते। **महावज्रधरै**र्ज्ञानकायात्मकैर्**महामन्त्रधारिभिः** पञ्चज्ञानात्मकसुखधारिभिर**मेयै**र्विकल्पागोचरै**र्हृष्टैः** सहजस्वभावैः॥१३॥

अहं चैनां धारयिष्याम्या[१३]निर्याणाद् दृढाशयः।
यथा भवाम्यहं नाथ सर्वसंबुद्धगुह्यधृक्॥ १४॥

---

१. ख. ग. द. ०लब्धत्वात्। २. ग. सम्बुद्धैः या। ३. ख. भाषन्ते च। ४. द. प्रतिश्रुत्को। ५. ख. द. विगता। ६. क. प्रत्युत्पन्नश्च। ७. ख. द. तथैवागच्छन्ति। ८. द. देशितमिति। ९. ग. मायाजालमहातन्त्रे। १०. ग. ०रमय। ११. क. ग. द. तन्त्र्यते, ख. तन्त्र ते। १२. ख. द. 'या' नास्ति। १३. ङ. ०निर्याणं च, ग. ०निर्याणां।

अहम् (मिति)। **तामहं चैनां धारयिष्यामि** अद्वयीभावं करिष्यामीत्यर्थः। कियत्कालम् ? **आ निर्याणं** यावत् द्वयच्युतषोडशशतश्वासाक्षरत्वप्रापणेन द्वादशभूमीश्वरो न भवामि तावत्कालमित्यर्थः। **दृढः** [1]सारोऽच्युत **आशयः** सुखप्रकृतिर्यस्य स तथा। **अहमुक्तार्थः**। [2]सर्वबुद्धानां यद्गुह्यं परमाक्षरचतुर्थबिन्दु[3]स्तद्धरतीति यथा ॥ १४ ॥

प्रकाशयिष्ये[4] सत्त्वानां यथाशयविशेषतः।
[5]अशेषक्लेशनाशाय अशेषाज्ञानहानये[6] ॥ १५ ॥

प्रकाशयिष्य इति। एवं बिन्दुधृग् भूत्वा **सत्त्वानां** भव्यानाम**शयविशेषतः** सहजप्रकृतितः। **यथा प्रकाशयिष्ये** तथा प्रकाशयत्विति पूर्वेण सम्बन्धः। **अशेषक्लेशनाशाय** सर्वच्युतिदुःखखण्डनाय। **अशेषाज्ञानहानये** विकल्पवासनाहतये ॥ १५ ॥

एवमध्येष्य गुह्येन्द्रो वज्रपाणिस्तथागतम्[7]।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वकायः स्थितोऽग्रतः॥ १६ ॥

इति अध्येषणागाथाः षोडश।

एवमिति। एवं एवंकारस्वरूपं **तथागतं** व्याख्यातार[8]**मध्येष्या**मुखीकृत्य, **गुह्येन्द्रः** कायवाक्चित्तैश्वर्यलाभी, **प्रह्वकायः** सहजनिमग्नकायवाक्चित्तः। अन्यद् व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

अवधूत्याश्रितषोडशान्दविशुद्ध्या षोडशगाथाभिरध्येषितत्वादध्येषणागाथाः षोडश ॥ १ ॥

१. ख. साधो। २. ख. संबुद्धानां। ३. द. बिन्दुं। ४. ग. प्रकासयष्य। ५. ग. अशेषो०। ६. ग. ०हानय। ७. ख. तथागतः। ८. क. ग. व्याख्यातानम०।

प्रतिवचनम्

अथ शाक्यमुनिर्भगवान् संबुद्धो द्विपदोत्तमः।
[1]निर्णमय्यायतां स्फीतां स्वजिह्वां स्वमुखाच्छुभाम् ॥१॥

अध्येषणानन्तरं षट्श्लोकैः प्रतिवचनमाह—**अथेति**। सत्त्वार्थं प्रतिबुद्धानां बालजनैरतर्क्यत्वाद् देशनादिकमविरुद्धम्। **शाक्यमुनिः** सम्यक्सम्बुद्धो महावैरोचनो वज्रधरो यथोक्तं [2]**श्रीरिगिअरल्लिमहातन्त्रे**—

शुद्धोदनो महाराजा [3]अरल्लिः [सं]प्रकाशितः।
[4]रिगिस्तत्र महामाया प्रज्ञोपायात्मकं जगत्।
वज्रसत्त्वस्तु सिद्धार्थः परमानन्दो महासुखः॥ इति।

भगो महामुद्रा महाप्रज्ञा, तद्योगाद् **भगवान्**। उक्तञ्च **श्रीहेवज्रे**—

भञ्जनं भगमाख्यातं क्लेश[5]मारादिभञ्जनात्।
प्रज्ञाबध्याश्च ते क्लेशास्तस्मात्प्रज्ञा भगोच्यते॥ इति।

उष्णीषादिषट्चक्रेषु ज्ञानकायावबोधात् **संबुद्धः**। संवृतिपरमार्थज्ञानद्वयेन द्विपदेनोत्तमः श्रेष्ठो **द्विपदोत्तमः**। अथवा [6]द्विपदेन वज्रमणिशिखरोष्णीषाप्रतिष्ठ-प्रतिष्ठा-द्वयेन उत्तमो द्वादशभूमीश्वरः। यथोक्तं **विमलप्रभायाम्**—

एकं पदं वज्रमणौ रजोऽर्के उष्णीषशुक्रे शशिनि द्वितीयम्।
न्यस्तं सदाऽच्छेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस्त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य॥ इति।
(वि० प्र० १, पृ० ३)

निर्णमय्य स्थिरीकृत्य स्वजिह्वामनाहतस्वभावां ज्ञानावधूती**मायताम**नन्तानन्त-लोकधातुव्यापिकां कृष्णरेखाकारामन्तरालाप्रमाणास्फुरदनेकसंभोगकायाम्। अत एव **स्फीतां स्वमुखाद्** विश्वबिम्बात्। तथा चोक्तं **बृहदादिबुद्धे**—

धूमो मरीचिः खद्योतः दीप[7]ज्वाले तु(न्दु) भास्कराः।
[8]तमः कलामहाबिन्दुर्विश्वबिम्बं प्रभास्वरम्॥ इति।

अत एव **शुभां** सहजानन्ददायिनीम्॥ १॥

---

१. ग. निर्णमयायता स्फीता, च. छ. निर्नं०। २. क. ग. सेग्यवल्लि, ख. श्रीमत्समा-वर्णिं, द. मेघवर्णि। ३. क. ग. अवल्लि, ख. अवण्णि, द. अरण्णि। ४. क. ख. संगिः। ५. ख. मारारि। ६. क. ख. द्विपादेन। ७. क. ख. द. ज्ञानेन्दु। ८. क. ख. द. तमो।

स्मितं सन्दर्श्य लोकानामपायत्रयशोधनम् ।
[1]त्रिलोकाभास[2]करणं चतुर्माराारिशासनम् ।।२।।

स्मित[मिति]। **स्मितं** सहजचण्डालीज्योतिः प्रकाशं, **सन्दर्श्य** संस्फार्य, **अपाय**[3]**त्रयशोधनं** संसारहेत्वानन्द-परमान्द-विरमानन्दानां कायवाक्चित्तबिन्दूनां सहजानन्दरूपता[4]पादनेन विशोधकम् । **त्रैलोक्याभासकरणमा**लोका[5]लोकस्य भासा-लोकोपलब्धिनिराभासतया निराभासलक्षणम् । **चतुर्माराारिशासनं** मणिवरटकान्तः-स्थैर्यं [6]प्राप्य निर्विकल्परूपम् । अत एवोक्तम्—

वज्जकवडो भितरे चोर महा पावि लेवे ।
सब्ब मारनिद्दलिआ महासूहे [7]भावि लेवं ॥ इति । २ ॥

[8]त्रिलोकमापूरयन्त्या ब्राह्मया मधुरया[9]गिरा ।
प्रत्यभाषत[10]गुह्येन्द्रं[11]वज्रपाणिं[12]महाबलम् ।।३।।

त्रिलोकमिति। **त्रिलोकं** कायवाक्चित्तलक्षणम्, **आपूरयन्त्या** व्याप्नुवन्त्या, [13]**ब्र[ा]ह्मया** स्वयंभुवा अनाहतात्मिकया, **मधुरया** महासुखात्मिकया, **गिरा प्रत्यभाषत** प्रत्यनुभूतवान् । **गुह्येन्द्रं** सहजानन्दज्ञान**महाबलं** सकलविकल्पवायूनां निराभासीकरण-सामर्थ्ययुक्तम् ॥ ३ ॥

साधु[14]वज्रधर[15]श्रीमन् साधु ते वज्रपाणये ।
[16]यस्त्वं जगद्धितार्थाय महाकरुणयान्वितः ।।४।।

साधु वज्रधरेति। **साध्विति** जगदर्थकरणात्, **वज्रधरः** पूर्वोक्तः। **श्रीमाना**-काशधातुपर्यन्तसहजानन्दरूपत्वात् । **साधु** [17]भद्रं ते (**वज्रपाणये ते**), तुभ्यं **यस्त्वं** **महाकरुणया**नाभोग**जगदर्थ**वाहिन्या**न्वितः**। जगद्धितार्थाय पूर्वोक्तविकल्पवायुमहा-सुखतापादनाय ॥ ४ ॥

---

१. ख. ना० अ० त्रैलोक्या, ग. त्रैलोक्य० । २. ग. करञ्च । ३. क. ख. ग. 'त्रय' नास्ति । ४. क. पादने । ५. द ग. लोकभा० । ६. ग. प्राप्तो । ७. भो. gNos Po Len (भाव लेवे) । ८. ख. त्रिलोक्य, ङ. त्रैलोक्य । ९. क. गिरां, ग. ब्रह्ममधुरयां गिरां । १०. ङ. गुह्येन्द्रो । ११. क. वज्रपाणि, ङ. वज्रपाणिः । १२. ग. ङ. महाबलः । १३. क. ख. ब्रह्मा । १४. ख. च. छ. वज्रधरः । १५. च. छ. ङ. श्रीमान् । १६. ख. यस्त्व । १७. भो. Lag Na rDo rJe Khyod (वज्रपाणये ते) ।

महार्थां नाम[1] सङ्गीतिं पवित्रामघ[2]नाशिनीम् ।
मञ्जुश्रीज्ञानकायस्य [3]मत्तः श्रोतुं समुद्यतः ॥५॥

महार्थेति। निर्विकल्पसुखमहासुखत्वेन **महार्थां** सत्यार्थाम्, **नामसङ्गीतिं** सहजसुखानुभवात्मिकाम्। सकलप्रपञ्चरहितत्वेन **पवित्राम्**, [4]लौकिकाविद्याविगमाद- **घनाशिनी**[5]मच्युतलोकोत्तरविकल्पदृष्टान्तसहजनिरावरणरूपत्वाद् वा पवित्राम्। **मत्तो** ज्ञानकायात् **श्रोतुमधिगन्तुमुद्यतः** प्रवृत्तः ॥ ५ ॥

तत्साधु देशया[6]म्येषः अहं ते गुह्यका[7]धिप ।
शृणु त्वमेकाग्र[8]मनास्तत्साधु भगवन्निति ॥६॥

इति प्रतिवचनगाथाः षट् ।

तत्साध्विति। [9]ते तुभ्यं [10]सहजानन्दादिविगीतम्। **देशयामि** प्रकाशयामि। **एकाग्रमना** निर्विकल्पधीः सन् **शृणु** अनुभव ॥ ६ ॥

उष्णीषादिषट्चक्रनाडीमध्यवरटकाकाशसुखानुभव-
प्रकाशका(क) षड्गाथाभिः प्रतिवचनमिति
प्रतिवचनगाथाः षट् ॥ २ ॥

---

१. ग. सङ्गीति । २. च. छ. नाशनीं । ३. ग. मन्त्रः । ४. ख. लौकिकविद्यां । ५. ख. द. 'अच्युत' नास्ति । ६. क. ख. येष, च. छ. ङ. एष । ७. क च. धिपः । ८. ख. मना । ९. द. ग. तुभ्यं तां । १०. क. ग. सहजानन्दाधिगतम् ।

षट्कुलावलोकनम्

अथ शाक्यमुनिर्भगवान् सकलं मन्त्रकुलं महत् ।
मन्त्रविद्याधरकुलं व्यवलोक्य कुलत्रयम् ॥१॥

प्रतिवचनानन्तरं षट्कुलावलोकनमाह—**अथेति । अथ शाक्यमुनिर्भगवान्** "गाथां भाषते स्म" (४.१) इति परेण सम्बन्धः । **सकलं मन्त्रकुलं** मन्त्रमहायानं [1]तच्च षट्चक्रेषु वज्रसत्त्वादितथागतात्मकम् । मन[2] स]स्त्राणभूतत्वात् मन्त्रं सुखमुदाहृतमिति । कुलमद्वयत्वात् । **महच्छ**ब्देन च षटचक्रकर्णिकागतं व्यापकं सर्वभावसमरसीभूतं बोधिचित्तं स्वसंवेद्यं प्रकृतिरूपम् । [3]अस्यैव षट्चक्रक्रमेण व्यवस्थामाह—**मन्त्रविद्याधरकुलं** निःस्पन्दानन्दशुक्ररूपवज्रधारणादक्षोभ्यो वज्रविज्ञानस्वभावः । मणिवरटकान्तर्वर्त्ती वज्रकमलकर्णिकागूढगोचर इत्यर्थः । [4]मन्त्रदीपनं [5]सहजालोककारकम् । मन्त्रि-गुप्तभाषण इत्यपि पाठः । [6]अत एव सकलमण्डलचक्रवर्त्तिरूपां विद्यां [7]स्फरणेन धारयतीति मन्त्रविद्याधरः । **व्यवलोक्या**नुभूय स्वयमित्यर्थः । **कुलत्रयमि**ति कायवाक्चित्तचक्रम्, तेन [8]नाभिचक्रे स्थितो [9]वज्ररूपस्वभावो वैरोचनः । कर्णिकानाडीगतः पिता कायस्य बीजबिन्दुः ॥ १ ॥

[10]लोकलोकोत्तरकुलं लोकालोककुलं महत् ।
महामुद्राकुलं [11]चाग्र्यं महोष्णीषकुलं महत् ॥२॥

इति षट्कुलावलोकनगाथे द्वे ।

लोकलोकोत्तरकुलमिति । [12]**लोक**शब्देन कायवाक्चित्तमुच्यते । **तदुत्तरं** धर्म-(हृदय)चक्रम्, तत्र तन्महासुखलक्षणोऽमिताभः सहजसंज्ञास्वभावः । **लोकालोककुलं महदि**ति । लोको लोकादयः । तेषामालोकः प्रभास्वरम्, तस्य कुलं स्थान(नं) कण्ठचक्रे व्यवस्थितो रत्नस्वभावः, महासुख[13]वेदकत्वाद् वज्र[14]वेदनास्वभावः । महत्वञ्च पञ्चचक्रकर्णिकायां बोधिचित्त[15]प्रवाहादद्वयत्वम् । **महामुद्राकुलं चाग्र्यमि**ति महामुद्राकुलममोघसिद्धिर्ललाटचक्रे स्थितः स्वसंवेद्यस्वभावो वज्रसंस्कारस्वभावः । **महोष्णीषकुलं**

---

१. क. ग. तच्च तद्वय । २. द. संत्राण । ३. ख. अस्य । ४. ग. मन्त्रं । ५. ख. द. सहजानन्द । ६. क. अत्र । ७. द. परेण । ८. द. ख. नाडिचक्रं । ९. ख. द. 'वज्र' नास्ति । १०. ङ. लोकालोकोत्तर । ११. ग. चाग्रं । १२. द. लोकलोक० । १३. द. वेधवात् । १४. ख. वेदनास्कन्धात् । १५. ग. प्रभावात् ।

महदिति उष्णीषचक्रे व्यवस्थितो वज्रसत्त्वः, स तु ज्ञानात्मकत्वात् सहजप्रकृतिस्वभावः। उक्तञ्च **श्रीकालचक्रे—**

निस्पन्दानन्दशुक्रं कुलिशमपि च तद् धारणाद् वज्रधृग्वै
बीजं कायस्य शुक्रं जिनजिगिति पिता नाभिचक्रे सुखं यत्।
तल्लक्ष्यो लक्ष्यमानो(णो) हृदि परमसुखं नाथ आरोलिगेव
तद् वेद्यं येन कण्ठे धृतमचलसुखं वेदको रत्नधृक् सः॥
प्रज्ञाधृग् येन तन्त्रे शिरसि धृतमिदं शुक्रवैमल्यसौख्यं
उष्णीषे ब्रह्मरन्ध्रेऽक्षरपरमसुखं षोडशानन्दपूर्णम्।
या प्रज्ञा निःस्वभावा परमशशिकला षोडशी पूर्णिमान्ते
सानन्ता यस्य विद्याशिरसि स कुलिशे षष्ठमो वज्रसत्त्वः॥२॥

[1]षट्कुलानि संवृतिपरमार्थसत्यविशुद्धया गाथाद्वयेन
षट्चक्रेषु अद्वयज्ञानत्वेन प्रतिपादितानीति
षट्कुलावलोकनगाथाद्वयम्॥३॥

१. क. ख. द. षट्शतानि।

मायाजालाभिसम्बोधिः

इमां षण्मन्त्र[1]राजानं संयुक्तामद्वयो[2]दयाम् ।
अनुत्पाद[3]धर्मिणीं गाथां[4]भाषते स्म गिरांपतेः ॥१॥

इदानीं त्रिश्लोक्या मायाजालाभिसम्बोधिक्रममाह—**इमामि**ति । गाथाद्वये सत्यपि **गाथामि**त्येकवचनम् । बोधिचित्त[5]कलारूपायाः आलेः साध्यत्वेन प्रधान[त्व]प्रतिपादनार्थं **षण्मन्त्रराजानं संयुक्तामि**ति । ॐ वज्रतीक्ष्णेत्यादि मन्त्रषट्कान्विताम् । **अद्वयं** शून्यताकरुणाभिन्नप्रज्ञोपायाद्वयं समाधिसम्भूतं महासुखस्वरूपं मन्त्रनीतौ । पारमितानये तु आत्मात्मीयग्राह्यग्राहकादिसकलमनोविस्पन्दरहितं सर्वधर्मनैरात्म्यस्वरूपस्वाभाविककायात्मकचित्तम्, तदुदेति अर्थद्वारेणाविर्भवतीत्यद्वयो**दयाम्** । तामनुत्पादधर्मा अभिधेयत्वेन [6]विद्यन्तेऽस्यामित्य**नुत्पादधर्मिणीम्** । तामनुत्पादरूपतां च [7]युक्तितो निश्चयतः, तथाहि—[8]तदद्वयज्ञानस्य फलभूतस्य तत्त्वज्ञानमेव हेतुरन्यस्य विपर्यासस्वभावेन संसारहेतुत्वात् । [9]तच्च तत्त्वज्ञानमनुत्पादरूपं पारमितायाने मन्त्रमहायानात्मके हेतुफलभावेन निर्दिष्टम् । गुरूपदेशक्रमायात[मिद]मुच्यते—

न सत्या नासत्या न च तदुभयी नाप्यनुभयी
निरुल्लेखा सर्वाकृतिवरमयी मध्यमकधीः ।
जिनः शास्ता सैव स्थिरचलजगत्तत्त्वमपि सा
स्वसंवित्तिर्देवी जयति सुखवज्रप्रणयिनी ॥ इति ।

मध्यमकधीः मध्यमाप्रतिपदेव बोधिमार्ग इति [10]सिद्धम् । सर्वमहायानिकानां भावाभावादिरूपयोरन्तयोरप्रतिष्ठिता धीर्मध्यमकधीः । सा धीर्न च सत्या न चासत्या न च तदुभयी नाप्यनुभयी । चतुष्कोटिविनिर्मुक्तस्वभावविषयाकारेण चतुष्कोटिविनिर्मुक्तस्वभावत्वात् । यत् खलु यद्विषयीकरोति तत्तदाकारं यथा नीलज्ञानं नीलाकारम् । अत एव निरुल्लेखा सर्वस्यैवोल्लेखस्य चतुष्कोटिसमाश्रयत्वात् । ननु यदि [11]तावद् भावाभावादिरूपयोरन्तयोरप्रतिष्ठिता धीर्मध्यमकधीः, तत्कथं बोधिसत्त्वः सर्वाकारेण दानशीलादीन् बोधिसंभारान् परिपूरयति, [12]अथ तान् बोधिसत्त्वः [13]स्वभावेनाधिगच्छति बोधिश्च मध्यमकधीस्वभावा, सा च न भावरूपा भवनधर्मकतया च भावरूपा

---

१. च. राजानः । २. ख. दयम् । ३. ख. धर्मिणी । ४. ङ. च. भाषन्ते । ५. द. कल्परूपायाः । ६ ख. विद्यते । ७. द. मुक्तितो । ८. क. ख. भो. तत्त्वज्ञान० । ९. ग. ततश्च । १० ख. द. सिद्धः । ११. ख. द. 'तावद्' नास्ति । १२. क. ग. अथवा । १३. क. सत्त्वभावेन, भो. sDug bsÑal rTogs (दुःखाधिगम) ।

दानादयः ? इत्याशङ्क्याह—सर्वाकृतिवरमयीति सर्वाकृतिवरा दानादयस्तन्मयी तत्स्वभावा। अयमर्थः—दानादयोऽपि भावाभावादिरूपेणाप्रतिष्ठिताः मध्यमकधी-स्वभावा एव। तथाहि—दानादयो भावाभावरूपाः सदसदादिरूपेण उत्पाद(दा)-योगात्। [1]कारणाधीनत्वात् च भवनधर्माणाम्। न च कारणाभिमतं बीजादि निरुद्ध(द्धं) [2]सत्कारणीभवति, नाप्यनिरुद्धम्, न चाहेतुतो भावा भवनधर्माणः, तथा-त्वेक (च) देशकालनियमायोगेन सर्वदा सर्वसम्भवप्रसङ्गात्। एवं दानादयो न भावा नाप्यभावाः। तथाहि—न ये कदाचिदपि स्वरूपेण भावीभवन्ति, ते कथमभावीभवन्ति ? भावोच्छेदरूपत्वादभावस्य। तस्मादुपादेयधर्मा वा दानादयः, प्रहेयधर्मा वा रागादय-स्तत्फल[3]भूता विशिष्टाविशिष्टदेहभोगप्रतिष्ठादयः, सर्व एव भावाभावयोरप्रतिष्ठिताः। भावादिपरिकल्पस्तु तेषामभूतपरिकल्पः। तस्मात् स्थितमेवैतत् सर्वाकृतिवरमयी मध्य[म]कधीरनुत्पाद इति। इदानीमेष्वेव दानादिषु शिक्षमाण इमामेव धर्मतामधि-मुञ्चन् सत्त्वार्थयुक्तः शीघ्रं यथा देवतायोगेन बाह्याध्यात्मपरिशुद्धिं निष्पादयेत्, तथोच्यते—भवनिर्वाणस्वभावयोरधरू(ऊ)र्ध्वदेव्योर्मके(र्मध्ये) [4]स्थाने आदिस्वरस्वभावा धीर्भगवती नैरात्म्या मध्यमकधीः, सा न सत्या नासत्या न च तदुभयी नाप्यनुभयी सुविशुद्धरूपाऽधिधर्मधातुः ज्ञानस्वभावेन चतुष्कोटिमुक्तसर्वधर्मस्वभावत्वात्। सा सर्वाकृतिवरमयी सर्वाकृतिवरा विशुद्धरूपादिस्कन्धस्वभावाश्चतुर्देव्यः। सुविशुद्ध-पृथिव्यादिस्वभावाश्चतुर्देव्यः सुविशुद्धरूपादिविषयस्वभावाश्चतुर्देव्यः, तन्मयी तत्स्वभावा, सर्वासामेव चतुष्कोटिविनिर्मुक्तमध्यमकधीस्वभावत्वात्। सा भगवती निरुल्लेखा सर्वसत्त्वानां भावाभावाद्यभूतपरिकल्पस्वभावा सर्वोल्लेखच्छेदनादेव। देवतारूपेण परिशुद्धस्कन्धधात्वायतनाहङ्कारमुत्पाद्य प्राकृतस्कन्धधात्वायतनाहङ्कारमपनीयाविकल्पिते देवतायोगे यथा तिष्ठेत्तथोच्यते—भवनिर्वाणयोर[5]प्रतिष्ठितं चित्तं मध्यमकधीः, तदेव भगवती शाश्वतोच्छेदवर्जिता आभासमात्रा ग्राह्यग्राहकवर्जिता या अवधूतीत्युच्यते। आदिस्वरस्वरूपा सैव धीः, अनुत्पादस्वभावस्य त्रैधातुकस्य समरसीभावेनाधिगमात्। सा भगवती चतुष्कोटिमुक्ता पूर्ववद्भावाभावयोरन्तयोरप्रतिष्ठानात्। सा सर्वाकृतिवरमयी सर्वेषामाकृतिवराणां चतुष्कोटिमुक्तस्कन्धधात्वायतनस्वभावचतुर्देव्यादीनां स्फरणात्। तथा च सिद्धाः —

[6]सवे परिवारे वेटिल नाचअ चीआ राअरें॥ इति।

एतेनैतदुक्तं भवति—यथावस्थितमेव योगिनीचक्रमज्ञानमात्रमागन्तुकमपनेय-मिति। जिनः शास्ता सैव इति पारमितानयस्य फलमुक्तम्। सुखवज्रप्रणयिनीति मन्त्रनयस्य स्थिरचलजगत्तत्त्वमपि, सेति द्वयोरपि। स्वसंवित्तिरिति स्वेन संवित्तिरनुभवो

---

१. क. करणधीन०। २. क ख. सात्करणी। ३. क. ख. भूता विशिष्टदेह। ४. ख. ग. स्थानमादिस्वभावा। ५. ख. प्रतिस्थितं। ६. ग. सर्वे।

यस्याः सा तथा। अयमाशयः सा मध्यमकधीः न गुरुणा कथ्यते न च क्रियते। किं तु आत्मनैवानुभूयते। स्वयम्भूज्ञानमचिन्त्यज्ञानमिति॥ १॥

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः स्थितो हृदि।
ज्ञानमूर्तिरहं बुद्धो बुद्धानां त्र्यध्ववर्तिनाम्॥२॥

ॐ वज्रतीक्ष्णदुःखच्छेदप्रज्ञाज्ञानमूर्तये।
ज्ञानकायवागीश्वर [1]अरपचनाय ते नमः॥३॥

इति मायाजालाभिसं[2]बोधिक्रमगाथास्तिस्रः।

अ आ इति। अकारादयो द्वादशैवात्र स्वरा देशिताः। [3]ऋकारादिचतुर्णां नपुंसकत्वेन वर्जनात्। पीठोपपीठादिद्वादशस्थानशरीरव्यापिनी बोधिचित्तकलासूचकाकारादिद्वादशाक्षरद्वादशकलामहासुखाकारत्वात्। उक्तञ्च—

अकारे पीठसंज्ञा च आकारे चोपपीठकम्।
इकारे क्षेत्रनामं च [4]ईकारे चोपक्षेत्रकम्॥
छन्दोहं चोकारेण ऊकारेणोपच्छन्दकम्।
मेलापकमेकारे ऐकारे च उपमेलापकम्॥
श्मशानञ्चैव ओकारे औकारे चोपश्मशानकम्।
पीलवं चैव अंकारे अःकारे चोपपीलकं(वं) च॥ इति।

गुह्यादिषट्चक्रेषु प्रतिचक्रे षट्शताधिकसहस्रत्रयश्वासनिरोधेन भूमियुग्मोपलम्भसूचकमहासुखोल्लासरूपाकारादिषट्सम्पुटत्वेन द्वादशभूमीश्वरत्वात्। ताश्च [5]भूमयः समन्तप्रभा-अमितप्रभा-गगनप्रभा-वज्रप्रभा-रत्नप्रभा-पद्मप्रभा-कर्मप्रभा-अनुपमा-निरुपमा-प्रज्ञाप्रभा-सर्वज्ञता-प्रत्यात्मवेद्याख्याः। अथवा अ इ उ इति त्रयं कायवाक्चित्ताद्वयत्वेन आनन्दः। आ ई ऊ इति द्विरूपतया परमानन्दः। ए ओ अं इति त्रयं उभयस्वरात्मकं त्रिवज्रं विरमानन्दः। ऐ औ अः इति [6]त्रयं वज्राभिन्नं चतुर्थः सहजानन्दः। एतेन चतुरानन्दस्वभावो भगवाननुत्पादरूपो व्याख्यातः। ॐ वज्रकायवाक्चित्त-एकलोलीभावात् ॐ, तदेव [7]**वज्रं** सहजज्ञानम्, तेन **तीक्ष्णः** सकलविकल्पवायूपसंहारकः। स च मणिवरटकावस्थितो निस्पन्दावस्थितोऽक्षोभ्यः, [8]सकलतथागतवज्रकायत्वेन च्यवनदुःखाभावात्। **दुःखच्छेदो** नाभिस्थो वैरोचनः। [9]प्रज्ञाज्ञानमेव मूर्तिः

---

१. ग. अरपंचनाय। २. क. बोधिः। ३. क. ख. ग. भो. अकार। ४. द. ईकारेणोपक्षे०। ५. द. द्वादशभूमयः। ६. द. त्रिवज्रा०। ७. द. चक्रवज्रज्ञानम्। ८. द. सर्वं। ९. द. स प्रज्ञाज्ञानं।

शरीरं यस्य स **प्रज्ञाज्ञानमूर्तिः हृदि स्थितो**ऽमिताभः। **ज्ञानमेव** महासुखचित्तमेव **काय** उपचयात्मकत्वात्, यस्य स च रत्नसम्भवः [१]कण्ठचक्रवर्ती। **वाचा**(चां) स्वरव्यञ्जनात्मिकाना**मीश्वरो**ऽनाहतस्वभावोऽमोघसिद्धिरूर्णाचक्रवर्ती। [२]**अराभ्यां** प्रज्ञोपायाभ्यां [३]**पचनं** स्फुटीभावो यस्य स उष्णीषचक्रवर्ती वज्रसत्त्वः। इत्थं षट्चक्रवर्ती(र्ति)-स्वरूपाय सहजानन्दज्ञानाय स्वयं साक्षाद्दर्शना**त्ते तुभ्यं नमः** इति परिण(रेण) परामर्षः। इत्थं बाह्याभ्यन्तररूपेण व्याप्य विश्वं व्यवस्थितः सहजानन्दो ज्ञानवज्रश्चतुर्थः। स एव संभोगनिर्माणकायात्मको नाभ्यादिचक्रमध्यवर्ती हृदि स्थित उच्यते। उक्तञ्च—

[४]यत्कायं सर्वबुद्धानां निराभासं निरञ्जनम्।
[५]अज्ञातमकृतं शुद्धमभावादिविवर्जितम् ॥

आदर्शबिम्बं सकलाङ्गयुक्तं रूपं यथा स्वच्छतरं विभाति।
अशीत्यनुव्यञ्जनलक्षणाढ्यो देहस्तथा वज्रधरस्य दै(चै)व ॥
इन्द्रायुधं वियति दृष्टमनेकवर्णं लोकस्य [६]दर्शयति कर्म शुभानि यद्वत्।
एवं च वज्रधृग्व्याप्यसितादिवर्णं सम्पादयत्यविकलं खलु कर्म तद्वत् ॥२-३॥
(स्वाधिष्ठानप्रभेद-५४-५५)

कायवाक्चित्तस्वरूपमहायोगसंग्राहकगाथात्रयेण
पूर्वोक्तमायाजालाभिसम्बोधिक्रम-
सूचनात्तथोक्तम् ॥ ४ ॥

---

१. क. कश्च। २. क. ख. ग. आराद्यां। ३. क. पवनं। ४. क. यत्कायँ, ड. यदि इयं। ५. क. तज्ज्ञात०, ग. नाज्ञातं, ख. द. भो. आज्ञातं। ६. भो. hDe Ba La Sogs Pa (सुखादि)।

वज्रधातुमहामण्डलम्

तद्यथा भगवान् बुद्धः [1]संबुद्धोऽकारसम्भवः ।
[2]अकारः सर्ववर्णाग्र्यो [3]महार्थः परमाक्षरः ॥१॥

इदानीं निरावरणस्कन्धधात्वायतनचक्रवज्रधातुमण्डलद्वारेण सर्वाकारेण सर्वाकारसर्वेन्द्रियाक्षरबिन्दुरूपमायाधरबोधिचित्त[4]वज्रस्य स्फरणमाह—**तद्यथा**। महामुद्राऽद्वैधरूपत्वात् **भगवान्**, सहजज्ञानं बुद्धिस्तद्योगाद् **बुद्धः**। मणिवरटकस्थितशुक्रत्वेन नित्यप्रबुद्धवज्रत्वेन **सम्बुद्धः**। अकारेणात्र प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी प्रज्ञापारमिता उच्यते। सा च परमाणुधर्मताऽतीता आदर्शप्रतिसेनातुल्या ततः सम्भवतीति **अकारसंभवः** सम्यक्सम्बुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुंसकपदं सहजकाय इत्युच्यते। [5]स **चाकारः सर्व**[6]**वर्णानामग्र्यो**ऽनाहतत्वात्, निरावरणत्वेन स्कन्धधात्वायतनविषयैकलोलीभावात्। उक्तञ्च—

ज्वलन्तं दीपसदृशं हृदि मध्यमनाहतम्।
अक्षरं परमं सूक्ष्मं महार्थं परमं प्रभुम्॥
महामुद्रा [7]स्थिता नाभौ ज्वलद्दीपशिखाकरा।
आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तिता॥ इति।

सकलबुद्धगुणदायकत्वाद् **महार्थः**। अत एव **परमाक्षर** उत्पादनिरोधरहितः॥१॥

महाप्राणो ह्यनुत्पादो [8]वागुदाहारवर्जितः।
सर्वाभिलाप[9]हेत्वग्र्यः सर्ववाक्[10]सुप्रभास्वरः॥२॥

महाप्राणेति। [11]प्रभास्वरस्फरणेन प्रकृतिधर्मेण वामदक्षिणनासारन्ध्रयोर्दशमण्डलसञ्चाराभावेन अवधूतीगतप्राणत्वात् **महाप्राणः**। वज्रधरप्रतिबिम्बकायो मायोपमदेह[12] इत्यर्थः। अत एवा**नुत्पादो** निर्विकल्पनिरालम्बज्ञानात्मकः। **हि**र्यस्मादर्थेऽवधारणे वा। वागुदाहारः, [13]प्रव्याहार [इत्यपि] पाठः। तद्रहितत्वाद् **वागुदाहार-**

---

१. ग. सम्बुद्धोकाल० । २. ग. अकालः । ३. च. मोहार्थः । ४. द. वज्रधरस्य । ५ क ख. सहजाकारः, ग. सह चाकारः । ६. ग. वर्णानां मध्ये । ७. ख. स्थितो । ८. क. वागुदहार० । ९. ख. हेत्वग्रः । १०. च. सुभास्वरः । ११. क. ख. महाप्रभास्वर, द. प्रश्वास । १२. क. ग. महामह, ख. मायामय । १३. भो. Ṅag Gi Phreṅ Ba ḥDon Pa (वाग् प्रव्याहार) ।

वर्जितो नपुंसकजापरूपतया सर्वव्यापनात् प्रविशत्संस्थानवायुरूपः। सर्वेषामभिलापानां स्वरव्यञ्जनात्मकानां अग्रहेतुत्वात् **सर्वाभिलापहेत्वग्र्यः** पारमार्थिकशून्यताकरुणाऽभिन्नबोधिचित्तमन्त्रप्रभवत्वात्तेषाम्[1] । स च भगवान् एव उपलम्भज्ञाना[2]ना[मा]-श्रयत्वाद् मध्यमासुखसंवेदनस्वभाव इत्यर्थः। सर्वासां वाचां प्रभास्वरत्वेनावबोधनात् **सर्ववाक्सुप्रभास्वरः** परमाक्षरः[3] अकारस्वभावः ॥ २ ॥

महामहमहारागः सर्वसत्त्व[4] रतिङ्करः ।
महामहमहाद्वेषः[5] सर्वक्लेशमहारिपुः ॥३॥

महामहेति। **महेति** प्रज्ञा महामुद्रा [6]सा महती यस्य स तथा। महान् रागोऽनालम्बकरुणात्मको यस्य स तथा। [7]पश्चात्कर्मधारयः। अथवा महान् लोकातिक्रान्तो **मह** उत्सवः सहजोल्लासो यस्य स तथा। तथाविधो **महारागः** [8]परमाक्षरसुख[9]पूर्णत्वाद्-[10]भूमिपूरित्वाच्च [11]वज्रानङ्गो वज्रसत्त्व इत्यर्थः। अत एव **सर्वसत्त्वरतिङ्करः**। **महामहेति** पूर्ववत्। **महाद्वेषो**ऽक्षोभ्यः। **सर्वक्लेशानां** षट्शताधिकैकविंशतिसहस्र-श्वासप्रश्वासानां **महारिपु**[12] र्हन्ता महासुखवेदकत्वेनाचल इत्यर्थ. ॥ ३ ॥

महामहमहामोहो [13]मूढधीर्मोहसूदनः ।
महामहमहाक्रोधो [14]महाक्रोधरिपुर्महान् ।४॥

महामहमहामोहेति। **महामहेति** व्याख्यातम्। मोहातिक्रान्तत्वान्**महामोहः**। अत एव **मूढा** निर्विकल्पा **धीः** सहजज्ञानं यस्य स तथा। [15]मोहः शुक्रच्युतिस्तस्य सूदनाद्भक्षणान्**मोहसूदनः**। **महाक्रोधः** सर्वविकल्पक्लेशशातनात्। क्रोधाति-क्रान्तत्वान्महाक्रोधो विरमानन्दनिरोधः सहजानन्दः। **महाक्रोधरिपुर्महान्** कायवाक्-चित्तवज्राणामेकलोलीकरणात् ॥ ४ ॥

महामहमहालोभः सर्वलोभ[16]निषूदनः ।
महाकामो महासौख्यो महामोदो महारतिः ॥५॥

महामहमहालोभेति। च्यवनलोभातिक्रमान्**महामहमहालोभः**। परमाक्षर-सुखोपायेन सत्त्वार्थापरित्यागात्। **सर्वलोभनिषूदनः** क्षर[17]सुखाङ्गसूदन इत्यर्थः।

---

१. क. ग. द. उपमन्त्र। २. सर्वत्र—नानाश्रय। ३. भो Haḥi rNam Paḥi (ह्कार)। ४. ङ. रतिकरः। ५. ग. महामाह०। ६. क. ग. 'सा' नास्ति। ७. भो. Phyis Nas ḥdZin Paḥo (पश्चात्धारयः)। ८. क. ग. द. परमाक्ष। ९. ख. द. पूर्णभूमि०। १०. ख. ०रित्वाद्। ११. ग. वज्रनखो। १२. क. ग. हन्ति। १३. च. मूढ़धी। १४. ख. सर्वक्रोध०। १५. क. ग. मोह। १६. च. छ. निसूदनः। १७. क. ०स्वासङ्ग ख. सुखागं।

[1]महा[कामेति]। सहजकायाभिलाषप्रकर्षपर्यन्त[2]तया ऊर्णाब्जे केषाञ्चिन्मते मणिमूले महाकामः कायानन्द इत्यर्थः। तत्रैव तथैव सहजवागाभिलाषतया **महासौख्यः** वागानन्द[3]स्वभाव इत्यर्थः। तथैव तत्रैव सहजचित्ताभिलाषतया **महामोदश्**चित्तानन्द इत्यर्थः। महती रतिरस्यासौ **महारतिः**, तथैव तत्रैव सहजज्ञानाभिलाषतया ज्ञानानन्द इत्यर्थः। जाग्रदवस्थाविध्वं[4]सेन निर्माणकायस्यानन्दस्य चत्वारो भेदा दर्शितः। उक्तञ्च—

> निर्विकल्पमहासौख्य आकांक्षा[5]लक्षणार्थकः।
> आनन्दोऽसौ सुखागारद्वारदेहलिकोपमः॥
> अहो सौख्यं महासौख्यं अहो भुञ्जे कथं कथम्।
> इत्याकांक्षा परं चित्तं स आनन्दो[6]ऽग्रणीरिव॥ इति॥ ५॥

महारूपो महाकायो महावर्णो महा[7]वपुः।
महानामा महोदारो महाविपुलमण्डलः॥६॥

महारूपेति। इदानीं परमानन्दप्रभेदा दर्श्यन्ते। तत्(तत्र) **महारूप** इति हृदये केषांचिन्मतेन मणिमध्ये महद्रूपं सुखसंकल्पप्रपञ्चो यस्य स तथा। महासुख-प्रकृतित्वेन [8]त्रैधातुकव्यापकधर्मराज्याभिषेकरूपत्वात्। अत एव **महाकायः** प्रभास्वरत्वेन संभोगकायत्वात्। अनेन पदद्वयेन कायपरमानन्दः कथितः। सम्भोगालोककरणान्**महावर्णो** लोकोत्तर[9]वर्ण इत्यर्थः। प्रकृतिप्रभास्वरतया **महा**[10]**वपुर्**विभुरित्यर्थः। अनेन पदद्वयेन वाक्परमानन्द उक्तः। परमरहस्यतया नाममात्रस्यातिक्रमात् **महानामा** सुखस्यौदार्या-**न्महोदारः**। आभ्यां च पदाभ्यां चित्तपरमानन्द उदीरितः। महाविपुलमिति। विस्तीर्णं [11]मण्डं सुखं सारं [12]लातीति **महाविपुलमण्डलः**। मायोपमप्रभास्वरसुखत्वेन जगद्व्यापनादनेन ज्ञानपरमानन्दः। इति स्वप्नावस्था विध्वंसेन संभोगकायस्य चत्वारः परमानन्दाः। उक्तञ्च—

> भावेषु भावनारोपशून्यत्वेन विमर्दनात्।
> निःस्वभावत्वयोगात्मा परमानन्दरूपकम्॥ इति॥ ६॥

महाप्रज्ञायुधधरो महाक्लेशाङ्कुशोऽग्रणीः।
महायशा महाकीर्तिर्महाज्योतिर्महाद्युतिः॥७॥

---

१. ख. 'महाकामेति' नास्ति। २. द. ०गततया। ३. भो. 'स्वभाव' नास्ति। ४. द. ०सन्। ५. द. लक्षणात्मकः। ६. क. ०ग्रताविवेति, ख. गणारिवेति। ७. च. ०वसुः। ८. ख. त्रिधातु। ९. क. ग. ०वर्त्त। १०. द. वपुश्चित्त। ११. क. मण्ड, ग. मण्डल। १२. क. ख. ग. लाभीति।

सुषुप्तावस्थाक्षयेण धर्मकायस्वरूपात् इदानीं मायोपमस्वाधिष्ठानतया विरमानन्दस्य चतुरो भेदानाह—**महाप्रज्ञायुधेति**। महाप्रज्ञा शून्यता धर्मधातुलक्षणा तस्या आयुधं कायविरमानन्दं मणिशिखरान्ते नाभ्यब्जे वा धारयतीति **महाप्रज्ञायुधधरः**, अनेन कायविरमानन्द उक्तः। महाक्लेशाः प्राकृतरागादयः। तेषामङ्कुशभूतत्वाद् **महाक्लेशाङ्कुशः**, स च वाग्विरमानन्दः। अत ए**वाग्रणीः** सहजानन्दहेतुप्राप्तत्वात्। **महायशा** अनाहतसहजोल्लासध्वनिना जगत्प्रबोधा(धना)त्। **महाकीर्तिः** महासुखेन सर्वेषां प्रमोदोत्पादनात्। अनेन पदद्वयेन चित्त[1]विरमानन्दः कथितः। सर्वधर्माणां निरोधोत्पन्ननिर्मलप्रकृतिज्योतीरूपत्वाद् **महाज्योतिः**। ग्राह्यग्राहकप्रपञ्चरहितसुखानुभवद्योतनाद् **महाद्युतिः**। आभ्यां च पदाभ्यां ज्ञानविरमानन्दः सन्दर्शितः। एतेनैतदुक्तं भवति—वज्रगुरोर्वक्त्रादविद्याप्रतिपक्षक्षणे यदुपलब्धं सुखम्, तेनैव किञ्चिच्छायानुकारिसुखदृष्टान्तेन द्वात्रिंशल्लक्षणधरो व्यञ्जनाशीतिभूषितः। [2]यथा चित्रपटो दर्पणमध्ये उपलक्षितः, तथैव शाताकारः सम्भोगदेहो ज्ञातव्यः। उक्तञ्च—

> द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ता अशीत्यनुव्यञ्जनी प्रभुः।
> योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः॥ इति।
> (हे० त० २.२.४१)

उक्तञ्च—

> अहो ज्ञातमहो ज्ञातं [3]अहो ज्ञातमिदं स्फुटम्।
> इत्याभोगपरं चित्तं विरमानन्दमात्रकम्॥ इति॥७॥

महामायाधरो विद्वान् महामायार्थसाधकः।
महामायारतिरतो महामायेन्द्रजालिकः॥८॥

इदानीं तुर्यावस्थाविध्वंसेन महासुखकायस्वरूपसहजानन्दस्य चतुरो भेदानाह—**महामायेति**। रागविरागाभावेन महारागरूपा महामाया [4]दिव्यमुद्रा तामवाच्यां तादात्म्येन धरतीति **महामायाधरः**। अत एव **विद्वान्** मणिवरटकान्तरच्युतसुखवेदनात्। अनेन कायसहजानन्दो द्योतितः। महामाया महामुद्रा तस्याः स्फरणेन जगदर्थसम्पादनाद् **महामायार्थसाधकः**। अनेन वाक्सहजानन्दः प्रदर्शितः। **महामाया** दर्शितार्था तस्यां **रतिः** सहजसुखानुभवः, तत्र **रतो** निमग्नो महासुखैकलोलीभूत इत्यर्थः। अनेन चित्तसहजानन्दः सूचितः। महामायया बुद्धनिर्माणमायया ऐन्द्रजालिकः [5]परममायावी षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासानां परमाक्षरत्वप्रापणेन प्रतिचक्रं भूमिद्वयं प्रतिलम्भक्रमेण वज्रमणिशिखरात् प्रत्यावृत्या उष्णीषचक्रवरटकस्थायी **महामायेन्द्र-**

---

१. क. ग. परमानन्दः। २. क. ख. चित्रमये। ३. ख. अहो तत्त्वमिदं। ४. भो. Ye Śes Phyag rGya (ज्ञानमुद्रा)। ५. ग. परममाया।

जालिकः, मणिवरटकान्तरुष्णीषस्थानाद्वयस्थितत्वात्। एतेन षोडशानन्दरूपो भगवान् प्रतिपादितः। तथा च **विमलप्रभायाम्—**

निर्माणकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्।
सम्भोगकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्॥
श्रीधर्मकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्।
सहजकायवाक्चित्तज्ञानैकं योगसंवरम्॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तं न तुर्यं द्वीन्द्रियजं सुखम्।
न[1] ज्ञानचित्तवाक्कायचतुःस्थानेषु संस्थितम्॥
[2]कर्ममुद्रापरित्यक्तं ज्ञानमुद्राविवर्जितम्।
महामुद्रासमुत्पन्नं सहजं नान्यया सह॥ इति।

(वि० प्र० १, पृ० २)

उक्तञ्च—

भावाभावविवेकताविरहितो यत्र स्वयं राजते
सान्द्रानन्दमया(यः) प्रबोधमहिमा व्योमान्तरव्यापकः।
नानाकारविशालनिर्मलतयादर्शस्फुरन्मण्डलः
प्रायः सर्वसुखालयः [स] सहजानन्दश्चतुर्था[3]ख्यया॥

ऊर्णाब्जे सहजाभिलाषतरलं हृत्पद्मसद्मोदरे
[4]क्लृप्तानल्पविकल्प[5]तल्प[6]वलित[7]चित्रं विचित्रोत्तमम्।
[8]नाभ्यब्जग्रहणैकनिष्ठमखिलव्यासङ्ग[9]भङ्गोज्ज्वलम्
जीयाद् वज्रसरोजसङ्ग[10]सुभगं निर्द्वैत[11]शान्तात्मकम्॥

प्रसरति मणिमूले चित्तमानन्दमात्रं
पुनरपि मणिमध्येऽशेषसंकल्पलोलम्।
तदुपरि शिखरान्त(न्ते) [12]शान्तमभ्रान्तकल्पं
किमपि सहजजातं पङ्कजस्थं तनोति॥

पक्षान्तरम्॥८॥

महादानपतिः श्रेष्ठो महाशीलधरोऽग्रणीः।
महाक्षान्तिधरो धीरो महावीर्यपराक्रमः॥९॥

---

१. सर्वत्र 'न' नास्ति। २. क. ख. ग. द. धर्म। ३. क. ख. ग. क्षया। ४. क. ख. क्लृप्ता, द. तृप्ता। ५. क ख. ग. तस्य। ६. क. ख. ग. वसितं। ७. क. ख. चित्तं। ८ क. ख. नाभ्यक्ष। ९. क. भगो। १०. क. ख. ग. स्व। ११. क. ख. शता, ग. शाता। १२. क. ख. ग. श्रान्त।

महादानपतीति। **महादानं** सकलबाह्याध्यात्मिकवस्तुपरित्यागः विकल्पप्रपञ्च-मनोवर्जनञ्च, तस्य **पतिः** स्वामी, तस्य सहजानन्दभगवदायत्तत्वात्। अत एव **श्रेष्ठः** लौकिकदानपत्य[1]तुल्यत्वात्। [2]बाह्याङ्गनासम्पर्के बोधिचित्त(त्ता)च्यवनं शीलं तत्ता-दात्म्येन धरतीति **महाशीलधरोऽग्रणी**र्मणिवरटका[3]न्तस्थः। बाह्यशब्दाद्यनभिनिवेशो महाक्षान्तिः, तां धारयतीति **महाक्षान्तिधरः**। अत एव **धीरः** परमधैर्यरूपत्वादस्य। वामदक्षिणनासापुटदशमण्डलभङ्गेन श्वासवातस्यावधूतीप्रवेशो **महावीर्यम्**। तत्र **पराक्रमो** महोद्यमो यस्य स तथा ॥ ९॥

महाध्यानसमाधिस्थो महाप्रज्ञाशरीरधृक्।
महाबलो महोपायः प्रणिधिर्ज्ञानसागरः ॥१०॥

महाध्यानेति। सहजसुखगतं चित्तं **महाध्यानं** तदेव **समाधि**र्बहिर्विक्षेपाभावात्। **तत्रास्थान**योगेन तिष्ठतीति तथोक्तः। **महाप्रज्ञा** अनाहतसर्वत्रगा सर्व[4]भावा सैव **शरीरं** प्रतिश्रुत्कोपमं महासम्भोगदेहप्रतिलम्भात्, तत्तादात्म्येन धरतीति तथा। अयं चार्थः **श्रीआदिबुद्धेनोक्तः**—

दानं त्यागो धनस्याच्युतिरपि मनसः स्त्रीप्रसङ्गाच्च शीलं
क्षान्तिः शब्दाद्यवेशो ह्युभयगतिविनाशोऽनिलस्यैव वीर्यम्।
ध्यानं प्रज्ञा च चित्तं सहजसुखगतं [5]सर्वगा सर्वभाषा ॥ इति।

(का० त० ४.१२८)

षट्पारमिताविशुद्धयेति। 'षड्भुजो हेवज्र' इति **बृहत्काश्मीरपञ्जिकायाम्**। शून्यताकरुणाभिन्नं [6]भवनिधनज्ञानबलमद्वयं **महत्** यस्य स तथा। **महोपायः** करुणा शुक्रगुणेन जगदर्थयोगाद् महोपायः। निःस्वभावभावग्रामसाक्षात्कारेऽपि महासुखैकनिष्ठतयाऽऽसंसारं जगदर्थस्फरणात्। अजत्वप्राप्त्या मायास्वप्नगन्धर्वनगर-स्वरूपं सर्वधर्मप्रतिपत्त्या प्रतिरववद् बुद्धधर्मदेशनया च प्रणिधीनां ज्ञानानां निरहङ्काराणां **सागरम्** आकरः। एतेन उपाय-बल-प्रणिधि-ज्ञानपारमिताश्चतस्रः। उक्तञ्च—

तस्याः सत्त्वार्थमृद्धिर्भवनिधनमजप्राप्तिरन्याश्चतस्रः ॥ इति।

(का० त० ४.१२८)

[7]अत्र सत्त्वार्थमित्युपायः। ऋद्धिरिति प्रणिधिः। भवनिधनमिति बलम्। अज-प्राप्तिरिति ज्ञानम्। एताश्चतस्रः पारमितास्तस्याः पारमिताया एवान्य इति विशिष्टा-कारत्या इत्यर्थः। अन्यथा गाथाबन्धस्तु आर्षत्वात् ॥ १० ॥

---

१. ग. तुल्यवान्। २. ग. बाह्यात्मना। ३. क. ०तस्तः। ४. ग. भाषा, द. भासा। ५. ग. सर्वदा। ६. ख. पूर्व। ७. क. ख. अत एव।

महामैत्रीमयोऽमेयो महाकारुणिकोऽग्रधीः ।
[1]महाप्राज्ञो महाधीमान् महोपायो महाकृतिः ॥११॥

महामैत्रीमयेति। सकलज्ञेयमण्डलमहासुखाकारतया लोकोत्तरसुखसंयुक्तजगत्स्फरणात् **महामैत्रीमयः**, अत एवा**मेयः**। नित्यानवरत[2]स्वायत्तमहासुखत्वेन जगद्दुःखवियोगसम्पादनाद् **महाकारुणिकः**। अत एवा**ग्रधीः** मणिवरटकशिखरे [3]महासुखानुभवात्।

मारक्लेशसमापत्तिः ज्ञेयावरणमेव च।
निर्दग्धं हि महाक्रोधैर्बलमात्रं हि रक्षितम्॥

इति चोक्तं मैत्र्यादिवशात्। प्रज्ञा महामुद्रा स(सा) तादात्म्येन विद्यते यस्य स प्राज्ञः, महांश्चासौ प्राज्ञश्चेति **महाप्राज्ञः**, युगनद्धहृदिस्थ इत्यर्थः। **महाधीमान्** सहजानन्दरूपेणैव सत्त्वार्थापरित्यागात्। **महोपाय**श्चतुर्विंशतिस्थानगत्यागतिसुखेन सर्वाङ्गव्यापनात्। अत एव **महाकृतिः** [4]दशकामावस्थाज्ञानी। दश[5]कामावस्थाश्च दशधूमादिनिमित्तानि प्रत्याहाराङ्गरूपाणि। तथा चोक्तं **श्रीकालचक्रे**—

चिन्ताकांक्षाज्वरोऽङ्गे [6]वरसुखकमले शुक्तिरन्याप्रवृत्तिः
कम्पोन्मादश्च घूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा।
धूमाद्या वज्रिणस्ताः प्रकटदशविधाः प्राणिनोऽङ्गेष्ववस्थाः
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियत(ताः) को जिनः कश्च कामः॥ ११॥
(का० त० ४.१२६)

[7]महाऋद्धिबलोपेतो महावेगो [8]महाजवः।
महर्द्धिको महेशाख्यो महाबलपराक्रमः ॥१२॥

महाऋद्धिरिति। समाध्यङ्गस्फुटीभावेन सहजानन्दबोधिचित्तरसेन षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासव्यापनाद् **महाऋद्धिबलोपेतः**। **महावेगो**ऽच्युतबोधिचित्तत्वेन सर्वनाडीषु [9]संक्रमात्। [10]संवृतिविवृतिक्रमेण सर्वाङ्गव्यापनाद् **महाजवः**। महासुखेन लौकिकलोकोत्तरपुण्यज्ञानसंभारपूरणाद् **महर्द्धिकः**। अत एव **महेशाख्य** इति। ईष्टे प्रभवति सर्ववस्तुयथाभूताव[11]बोधायेतीशः, महेश इत्याख्या आख्यानं यस्य स महेशाख्यः

---

१. ग. महाप्राज्ञा। २. क. स्वायत्त। ३. ख. महानुभावात्। ४. ख. 'दशकामावस्थाज्ञानी' नास्ति। ५. ख. ज्ञानश्च। ६. का० त० वरमुखकमले शुष्कोऽन्ना। ७. ग. माहाऋद्धि०। ८. क. मनोद्यवः। ९. ख. द. संक्रमणात्। १०. ग. संभृतिनिवृति। ११. द. बोधीतीशः महान् ईशः।

शून्यताकरुणाभिन्नसर्वज्ञज्ञान इत्यर्थः । पञ्चानन्तर्यादिपापकर्मणामपि महासुखैक-[1]निष्ठीकरणात् **महाबलपराक्रमः** । उक्तञ्च —

[2]चण्डालवेणुकाराद्याः पञ्चानन्तर्यकारिणः ।
जन्मनीहैव बुद्धाः स्युर्मन्त्र[3]यानानुचारिणः ॥ इति ॥ १२ ॥

महाभवाद्रिसंभेत्ता महावज्रधरो घनः ।
महाक्रूरो महारौद्रो महाभयभयङ्करः ॥१३॥

महाभवाद्रीति । **महान्** दुरुच्छेदत्वात्, **भवो** रागादिक्लेशः, स एवा**द्रिः** विंशति-शिखराज्ञानत्वात् तस्य **सम्भेत्ता** महारागानुरागेण सम्यगविपरीतज्ञानलाभात् महा-सुखस्थानप्राप्त इत्यर्थः । आलोक-आलोकाभास-आलोकोपलब्धिकलक्षणं निराभास-लक्षणं **महावज्रं** धरतीति स तथा । अत एव **घनो** निविडसुखत्वात् । क्रूरो(रा) दुर्दमत्वात् प्राणापानवायवः, तद[4]तिक्रमाद् **महाक्रूरः** । परमाक्षरमहारसविद्धसर्व-श्वासत्वाद् विषयेन्द्रियादीनां संसारदुःखदायकत्वरूपसंहारेण महासुखैकलयान्**महारौद्रः** । महाभयः शाश्वतोच्छेदयोरन्यतरा(र)पातस्य भयं [6]महाभयं तं करोतीति स तथोक्तः **महाभयभयङ्करः**, अप्रतिष्ठितनिर्वाण इत्यर्थः ॥ १३ ॥

महाविद्योत्तमो नाथो महामन्त्रोत्तमो गुरुः ।
महायाननयारूढो महायाननयोत्तमः ॥१४॥

इति वज्रधातुमहामण्डलगाथाश्चतुर्दश ।

महाविद्योत्तमेति । **महाविद्या** महामुद्रा [7]तया **उत्तमो** नित्यानुगतत्वात् । **नाथः** स्वामी । **महा**[8]**मन्त्रं** महासुख[9]ज्ञानं तेनो**त्तमो** निरवद्यः, तद्रूप इत्यर्थः । अत एव **गुरुरन्येषा**[10]मिति सुखमयज्ञानोपदेशात् । **महायानं** महासुखज्ञानं नीयते प्राप्यते अनेनेति महायानम्, **नयो** वज्रपद्मवरटकशिखरस्त**मारूढः** प्राप्तः सहजानन्दरूप इत्यर्थः । **महायाननये** पूर्वोक्त **उत्तमश्चतुर्थ**ध्यान[11]कोटिरित्यर्थः ॥ १४ ॥

इति श्रीवज्रसत्त्वद्वारेण उष्णीषललाटकण्ठहृन्नाभि-
गुह्यमणिशिखरगत्यागतिसूचकचतुर्दशगाथाभि-
र्बोधिचित्तवज्रस्य प्रतिपादनं [12]कृतम् ॥५॥

---

१. ख. निष्ठा । २. क. चण्डाला । ३. क. ख. ग. यानार्थं । ४. ख.महारागेण । ५. द. तिक्रमात् । ६. भो. dṄos Po Med Par (अभावं)। ७. ख. द. तद्रूत्तमो । ८. क. ग. न्त्रं । ९. क. ग. स्थानं । १०. द. मपि । ११. भो. rTse Mo ḥdZin (कोटिधृक्) । १२. ख. कृता ।

सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्

महावैरोचनो बुद्धो महामौनी महामुनिः ।
महामन्त्रनयोद्भूतो महामन्त्रनयात्मकः ॥१॥

महावैरोचनेति । **महावैरोचन**शब्देन प्रकृतिप्रभास्वरं ज्ञानं [1]तन्महच्चास्य स तथोक्तः, ज्ञानमयकाय इत्यर्थः । महासुखप्रबोधाद् **बुद्धः** । अवाच्यसुखात्मकत्वेन कायवाक्चित्तमौनयोगात् **महामौनी** । अत एव [2]महासुखस्वरूपस्य यथावद् मननान्**महामुनिः** । [3]'मनसस्त्राणभूतत्वात् मन्त्रं सुखमुदाहृतम्', इति महामन्त्रं महासुखज्ञानमेव । नीयते [4]प्राप्यते इति नयस्तस्मादुद्भूतो **महामन्त्रनयोद्भूतः** । महासुखोद्भूतत्वेऽपि महासुखस्वभाव इति प्रतिपादनार्थं **महामन्त्रनयात्मक** इत्युक्तम् । अत एवोक्तम्—

मन्त्रतत्त्वमिदं व्यक्तं वाग्वज्रस्य तु [5]साधनम् ।
ज्ञानत्रय[प्र]भेदेन चित्तमात्रे नियोजयेत् ॥ इति ।
(पं० क्र० २.६६)

पुनश्चोक्तम्—

[6]बाह्यजापं त्यजेद्योगी [7]भावनायान्तरायिकम् ।
मन्त्रार्थो भगवान् वज्री वज्रात्मा तु कथं जपेत् ॥ इति ।
(पं०क्र० २.४८)

उक्तञ्च **श्रीआदिबुद्धे**—

महासुखस्वभावोऽस्य पूर्णशब्देन गीयते ।
अन्यभावान्तरं सर्वं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ इति ॥ १ ॥

दशपारमिताप्राप्तो दशपारमिताश्रयः ।
दशपारमिताशुद्धिर्दशपारमितानयः ॥२॥

दशपारमितेति । उदकादिपूर्वकलोकोत्तराचार्याभिषेकदानाद्दानम् । कमलकुलिशसंयोगे बोधिचित्तरक्षणात् शीलम् । "न क्वचित् स्थिताः सर्वधर्माः" इति सर्वधर्मनिर्वि-

---

१. ख. तन्महत्तस्य, द. तन्महत्त्वं यस्य । २. ख. द. महानुभावरूपस्य । ३. द. मनसंत्राण । ४. क. ख. प्राप्यते नये । ५. ख. साधकः । ६. द. वाक्य । ७. क. ग. भावनारन्तरायिकम् ।

कल्पावगमक्षमणात् क्षान्तिः। महामुद्रास्फुटीभावोद्योगाद् वीर्यम्। चतुर्थध्याननिमज्जनाद् ध्यानम्। प्रज्ञा दिव्यमुद्रा गुरुमुखैक[1]लभ्या। उपायो हठयोगोऽपि समाध्यङ्गस्फुटीभावार्थम्। एवं च हठयोगः – यदा प्रत्याहारादिभिर्दृष्टे बिम्बे सति अक्षरक्षणेनोत्पद्यते। अयंत्रितप्राणतया नादनिदानाभ्यासात् सहजानन्दाभ्यासात्, हठेन हूंकार-[2]नादेन प्राणं मध्यमायां वाहयेत्। एवं सुशिक्षितायास्तन्त्रोक्तगुणयुक्ताया अनुरागिताया [3]वरकामिन्याः कक्कोले बोलं विधिवत्प्रक्षिप्य निष्कम्पतया [4]विश्रम्य तस्याः किञ्जल्कमुखे वज्रमणिं निष्पीड्य निर्भर प्रीतिरसेन क्षणं न चालयेत्ततस्तयोः क्षरद्दशोदये हूँकारोच्चारणपुरःसरं सद्गुरुप्रसादीकृतमामुखयतश्चतुर्थसहजानन्दानुभवेन बोधिचित्तबिन्दुनिरोधस्ततोऽक्षरक्षणलाभः। एवं च समाध्यङ्गस्फुटीभाव इत्यर्थः। समाध्यङ्गस्फुटीभावेन एकक्षणाभिसम्बोधिक्षणोदये सर्वं स्वपरार्थनिष्पत्तिः प्रणिधिः। [5]बलं महासुखसामर्थ्यम्। ज्ञानं मणिवरटकान्तः[6]प्रवृत्तिविवृतया उष्णीषचक्रपर्यन्तं महासुखज्ञानम्। एता दशपारमिताः प्राप्तः साक्षात्कृतवान् **दशपारमिताप्राप्तः**। दशपारमिता एवाश्रयो यस्य स तथा सुखैकनिष्ठबोधिचित्तस्वभाव इत्यर्थः। [7]दशपारमितानाम् आश्रयः **दशपारमिताश्रयः**। आधाराधेयभावेन तादात्म्या**द्दशपारमिताशुद्धिः**। उक्तञ्च—

> आधाराधेयसम्बन्धो [8]यावदक्षरतां व्रजेत्।
> चित्तमक्षरतां [9]प्राप्तं नाधाराधेयलक्षणम्॥

अत एव **दशपारमिता नयो** मार्गभेदेन यस्य स तथा॥ २॥

> **दशभूमीश्वरो नाथो दशभूमिप्रतिष्ठितः।**
> **दशज्ञानविशुद्धात्मा दशज्ञानविशुद्धधृक्॥३॥**

दशभूमीति। दशानां भूमीनां प्रमुदितादीनां चतुर्विंशतिपीठोपपीठादिलक्षणा**नामीश्वरः** प्रधानं सहजज्ञानाकारेण व्यापकत्वात्। अस्यायमर्थः —

> दानात्प्रमुदितो योगी शीलवान् विमलो भवेत्।
> क्षान्त्या प्रभाकरी वीर्यादर्चिष्मान् पुण्यवानसौ॥
> ध्यानादभिमुखा[10]कृष्टः प्रज्ञया तु सुदुर्जयः।
> दूरङ्गमो महोपायो बलवानचलो भवेत्॥
> साधुः [श्च] प्रणिधानेन धर्ममेघस्तु ज्ञानवान्।
> जिनस्तथागतः प्रत्यात्मवेद्य एकादशो भवेत्॥ इति।

---

१. द. लब्धा। २. क. ग. नादित। ३. क. ख. ग. वरटकामिन्याः। ४. द. विश्रमतयो। ५. क. ख. ग. एवं। ६. ख. प्रभृति। ७. क. ख. ग. दशपारमिताया। ८. द. यावन्नाक्षरतां। ९. द. इष्टं। १०. क. ग. हृष्टः, ख. कृष्णः।

उक्तञ्च **श्रीसर्वरहस्यतन्त्रे**—

[1]सर्वस्वं सर्वबुद्धानां स्वचित्तं धर्मसंग्रहः।
धर्मनैरात्म्ययोगेन मारयेन्म्रियते स्वयम्॥
स्वचित्तमेव मर्तव्यं मारयेच्चित्तमेव च।
स्वचित्तमेव [2]संबुद्धो बोद्धव्यं चित्तमेव च॥ इति।

उक्तञ्च—

दशभूमिमतिक्रम्य स्तब्धलिङ्गं भवेत्ततः।

अन्यत्र च—

स्तब्धलिङ्गः स्वयं भूत्वा निषद्य [3]जघनोपरि।
लिङ्गवज्रमधिष्ठाय वज्रसत्त्वोऽयमादिजः॥ इति।

नाथः समाध्यनुगमात्। सकलसत्त्वानामनाभोगेनाधिष्ठानात्, **दशभूमिप्रतिष्ठित** इति। दशभूमयो दशधातूनाम् उपसंहारः। ते च वायुश्चित्तं बोधिचित्तं रक्तमज्जाऽस्थोनि स्नायुः मांसम् इन्द्रियाणि चर्म चेति। तेषामुपसंहारः समरसीभावः। तत्र प्रतिष्ठितो यावदा[4]काशम् अप्रतिष्ठितनिर्वाणरूपेण। अत्र गुरूपदेश(शो) हेतुः, तमाह- **दशज्ञानविशुद्धात्मे**ति। धूमादिदश निमित्तज्ञानानि। उक्तञ्च **श्रीआदिबुद्धे**—

आकाशासक्तचित्तैरनिमिषनयनैर्वज्रमार्गप्रविष्टैः
शून्याद्धूमो मरीचि[ः] प्रकटविमलखद्योत एव प्रदीपः।
ज्वालाचन्द्रार्कवज्राण्यपि परमकला दृश्यते बिन्दुकश्च
तन्मध्ये बुद्धबिम्बं विषयविरहितानेकसंभोगकायम्॥ इति।
(का० त० ५.११५)

तत्र चादौ निच्छिद्रगृहे गुहायां षडङ्गयोगमभ्यसेदिति। षडङ्गश्चात्र—

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामश्च(मोऽथ) धारणम्।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गयोग [5]इष्यते॥ इति।
(गु० त० १८.१४०)

तत्र दश धूमादीनि प्रत्याहाराङ्गमुक्तम्।

उक्तञ्च—

प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे॥ इति।
(का० त० ४.११६)

---

१. द. सर्वत्वं। २. ख. द. सर्वबुद्धो। ३. भो. Padmaḥi rTen Du (पद्मोपरि)।
४. द. आकाशे। ५. गु० त० उच्यते।

तैर्विशुद्ध [1]आत्मा स्वरूपं यस्य स तथा विश्वबिम्बसन्दर्शनात्। चक्षुरादीन्द्रियै रूपादिविषयग्रहणं संसारिणामाहारस्तत्परित्यागः प्रत्याहारः। शून्यतालम्बनैः मांसादिपञ्चचक्षुभिरन्यरूपादिग्रहणं धूमादिबिन्दुपर्यन्तं दर्शनभेदेनाकल्पितो ज्ञानस्कन्ध इति यावत्। दशानां [2]ज्ञानानां विषयविषयिणां विशुद्धं विशुद्धेरेकत्वं विश्वबिम्बे तद्धरतीति **दशज्ञानविशुद्धधृक्**। प्रत्याहारेण बिम्बे दृष्टे ध्यानाङ्गेन त्रैकालिकत्रैधातुकप्रतिभासात्मकस्य प्रत्यात्मवेद्ययोगिनः स्वचेतसः प्रबन्धेन प्रवर्त्तनं भवतीत्यर्थः। तथा **आर्यदेवपादः—**

आत्मन्येव लयं गते भगवति प्राणाधिपे स्वामिनि
श्वासोच्छ्वासगणे गते प्रशमिते जीवानिले यन्त्रिते।
यो ज्योतिःप्रसरः प्रभास्वरतरो योगीश्वराणामसौ
स्वाङ्गादेव विनिर्गतो हततमास्त्रैलोक्यमाक्रामति॥

सरहपादाश्च—

अपुव्व बसन्त दूकेला सबरी।
अम्बर फुल्लई हलेई॥
तोलेई ण हत्थे न चुब्बई।
विरहे केलिकरें हि॥
अणिमिस लोअण चिअ णिरोहें।
पवण णिरुहइ सिरिगुरुवोहें॥
(च० गी० को० पृ १९२)

कल्पविनाशान्नाशं बुद्धेरनुकल्पयन्ति किल कुधियः।
अस्मादेव तु सुधियामुदयति गगनाधिकं किमपि॥ इति।

अनेन ध्यानाङ्गमुक्तम्। उक्तञ्च—
प्रज्ञातर्कौ विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम्॥ इति।
(का० त० ४.११६)

ध्यानमक्षोभ्यो विज्ञानस्कन्धः॥ ३॥

[3]दशाकारो दशार्थार्थो मुनीन्द्रो दशबलो विभुः।
अशेषविश्वार्थकरो दशाकार[4]वशी महान्॥४॥

---

१. द. आभास्वरं। २. द. 'ज्ञानानां' नास्ति। ३. छ. दशाकरो। ४. च. वशीर्।

दशाकारेति। दशानां वामदक्षिणदशमण्डलानामाकाशादीनां निरोधाद् **दशाकारा** यस्य स तथा। स च खड्गी संस्कारस्कन्धः। अनेन प्राणायामाङ्गमुक्तम्। उक्तञ्च—

प्राणायामो द्विमार्गः स्खलनमपि भवेद् मध्यमे प्राणवेश ॥ इति।
(का० त० ४.११६)

इदानीं धारणाङ्गमाह— **दशार्था**: प्राणापानसमानोदानव्याननागकूर्मकृकर-देवदत्तधनञ्जयाख्या वायवस्ते। **अर्थ्यन्ते** [1]अभिलष्यन्ते नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीष-कमलकर्णिका[2]गतभेदेन येन स तथा। अनेन धारणाङ्गमुक्तम्। तथा चोक्तम्—

बिन्दौ प्राणप्रवेशो ह्युभयगतिहतो धारणा चैकचित्तम् ॥ इति।
(का० त० ४.११६)

स च वेदनास्कन्धो रत्नपाणिः। स एव **मुनीन्द्रः**। सहजचण्डालीद्योतनं प्रति सामर्थ्यलाभात्। दशबलानि परमाक्षरसाधनसामर्थ्यात्। पूर्वोक्तकामावस्थालक्षणानि यस्य स **दशबलः**। सहजचण्डाल्यालोकेन त्रिलोकव्यापनाद्विभुः। अत एवाशेषाणां विश्वेषां स्कन्धधात्वायतनादीनामर्थं सहजसुखप्रकाशनलक्षणं करोतीति **अशेषविश्वार्थकरः**। अनेनानुस्मृत्यङ्गमुक्तम्। उक्तञ्च—

डोम्ब्याश्चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधरः ॥ इति। (का० त० ४.११५)

संज्ञास्कन्धो दशविध इति। सा चानुस्मृतिः डोम्ब्यां मध्यनाड्यां दशकामावस्था-भेदत इति। अत एवोक्तम्—

चण्डाल्यालोकनं यद्भवति खलु तनौ चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात् ॥ इति।
(का० त० ४.११७)

दशपूर्वोक्तवायुनिरोधलक्षणा आकारा यस्य स तथा। अनेन समाध्यङ्गमुक्तम्। तथा चोक्तम्—

श्रीसमाधिश्च चक्री। (का० त० ४.११५)

वैरोचनो दशविधः। समाधिर्दशवायूनां निरोध इति। एवं भगवानप्रतिष्ठित-निर्वाणोऽवाहिवायुना(वायूनां) जात इति। पुनश्चोक्तम्—

प्रज्ञोपायात्मकेनाक्षरसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिः ॥ इति।
(का० त० ४.११७)

अत एव **वशी** सकलविकल्पवायूनां [3]परमाक्षरसुखनिर्वेधवशीभावात्। महान् सहजरूपेण त्रैलोक्यस्फरणात्। एवं च लोकोत्तराभिषेकं [4]शिक्षातत्त्वं प्रकाशयेदिति।

---

१. द अभिलव्यन्ते। २. भो. ḥGro Ba Daṅ Ḥoṅ Baḥi (गतागत)। ३. ख. परमाक्षरण। ४. क. ख. ग. शिक्ष्यात् त्वं।

लौकिकाभिषेकपूर्वकोऽपि षडङ्गयोगहेतुक एव। स च षडङ्गयोगो धूमादिक्रमेण भाव्यः। उक्तञ्च—

> अस्यैव साधनं कुर्यात् प्रतिभासैर[1]चिन्तितैः।
> धूमादिभिर्निमित्तैस्तैः प्रज्ञाबिम्बैर्नभःसमैः॥
>
> अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तैः प्रत्ययार्थैः स्वचेतसः।
> परमाणुरजःसन्दोहैः समन्तात्परिवर्जितैः॥
>
> धूमो मरीचिखद्योतदीपज्वालेन्दुभास्कराः।
> तमीकलामहाबिन्दुर्विश्वबिम्बं प्रभास्वरम्॥
>
> पिहितापिहितनेत्राभ्यां शून्ये [2]यन्नानुकल्पितम्।
> दृश्यते स्वप्नवद्बिम्बं तद्बिम्बं भावयेत् सदा॥ इति।

व्याख्यातञ्चास्यैव निरवशेषक्लेशज्ञेयावरणेन सर्वज्ञज्ञाना[3]ग्नेः साधनं स्फुटीभावं धूमादिभिः कुर्याद् योगी। किम्भूतैस्तैः? सर्वस्मिन् **मूलतन्त्रे लघुतन्त्रे आर्यप्रज्ञापारमितादिनीतार्थ[4]सूत्रे** प्रसिद्धैः। अकस्मात् शून्ये प्रतिभासनात्। प्रतिभासैः सर्वविकल्पो[5]परमादचिन्तितैः तत्त्वफलस्य पूर्वरूपत्वान्निमित्तैर्ग्राह्यग्राहकरहिता स्वभावशून्यधीः प्रज्ञा, तद्बिम्बैर्योगिप्रत्यक्षाभासैः बाह्याध्यात्मिकमलाननुलिप्तत्वात् नभःसमैः सदसदादिविकल्पकलङ्कानङ्कितत्वादस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तैः, योगिस्वसंवेद्यत्वात् प्रत्ययार्थैः स्वचेतसः। सर्वथाऽकृत्रिमोद्भूतनिःस्वभावरूपत्वात् सर्वतः परमाणुरजःसन्दोहर्वजितैः सकलबाह्याध्यात्मव्यापक[6]शुक्लधूमाकारः शून्याभासः। अयं च मेघाभासानन्तरमुत्पद्यते। यथोक्तम्—

> प्रथमं मेघवद् भाति द्वितीयं धूमसन्निभम्॥इति।

एवं चलज्जलाकारा मरीचिः। खद्योतदीपा[7]कारौ प्रसिद्धौ। एतानि चत्वारि निमित्तानि नीरन्ध्र[8]गृहेऽन्धकारभावत्वा[9]द्रात्रियोगः आकाश[10]योगश्च यथोक्तं **श्रीसमाजादौ** प्रथमद्वितीयविलोमेन—

> निरोधवज्रगते चित्ते निमित्तोद्ग्रहो जायते।
> प्रथमं मरीचिकाकारं द्वितीयं धूमसन्निभम्॥
>
> तृतीयं खद्योताकारं चतुर्थं दीपमुज्ज्वलम्।
> पञ्चमं तु सदालोके निरभ्रं गगनसन्निभम्॥इति।

(गु० त० १८. १४९-१५१)

---

१. ग. अचितैः। २. ग. यमनुकल्पितम्। ३. क. ग. ०ग्रे। ४. क. ख. ग. सूत्रेष्वप्रसिद्धैः, द. सूत्रेष्वप्रसिद्धेषु। ५. द. परमानन्दचित्तैः। ६. क. ग. गुह्य। ७. क. ग. ०कारैः। ८. क. ग. गृहेश्चाऽश्व। ९. ख. रात्रे। १०. ख. 'योग' नास्ति।

ततो निरभ्रगगनसमाभासपूर्वको वह्न्याकारः शून्य[1]भासोज्ज्वलः। इन्दु-भास्कराभासौ प्रसिद्धौ। तमीति राह्वालोकः। कृष्णरत्नवदाभासः। कलेति विद्युदाभासः। महाबिन्दुरिति सचराचरद्योतकनीलवर्णचन्द्रमण्डलाकाराभासः। एतानि षड् निमित्तानि निरभ्रगगनालोकभवत्वात्। दिवायोगोऽभ्यवकाशयोगश्च। ततस्तन्मध्यगामि सम्भोगकायात्मकबुद्धबिम्बदर्शनसहितमेकक्षणे करस्थनीरोपमस्वच्छ-सर्वाकारघटपटादिदर्शनं विश्वबिम्बं प्रभास्वरमिति। पिहितापिहितनेत्राभ्यामित्यन्तरा-लाव[2]लम्बितया[3]ऽर्धोन्मीलितलोचनाभ्यां शून्ये आकाशे ग्राह्यग्राहकरहिते यन्नानुकल्पितं स्वप्नव[4]द्बिम्बं योगिप्रत्यक्षं तद्बिम्बं विश्वबिम्बं भावयेत्, ध्यानाङ्गेन स्थिरीकुर्यात्। उक्तञ्च **मध्यमायां जिनजनन्याम्**—"रत्नालोकरत्नप्रदीपचन्द्रा[5]लोकचन्द्रप्रदीप-सूर्यालोकसूर्यप्रदीपसर्वाकारदर्शीत्यादिकाः समाधय" इति। वक्ष्यते च—

प्रत्यक्षः सर्वबुद्धानां ज्ञानार्चिः सुप्रभास्वरः॥ इति। (ना० सं० ८.४२)

आर्यनागार्जुनपादैश्च—

अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्ता बुद्धिर्येषां निराश्रया।
गम्भीरैस्तैर्निरालम्बः प्रत्ययार्थो विभाव्यते॥

कम्बलाम्बरपादैरुक्तम्—

ज्ञेयान्यत्र तु लिङ्गानि लब्धालोकेन योगिना।
सिद्धैरव्यभिचारीणि धूमवत्कृष्णवर्त्मनः॥
(आ० मा० २३५)

करोति स्तब्धतामक्ष्णोः शिरसश्चावनम्रताम्।
स्तैमित्यं चित्तचैत्तानां शून्यतां शून्यतेक्षिणाम्॥
(आ० मा० २५२)

अन्यैरपि—

विमलनभसि यस्मिन्निर्मिते लोचनार्धे
स्फुरदुरुकरुणार्द्रादाशयागाढमार्गात्।
सदसदुभयभावाभावनिर्भेद्या(द्य)कस्मात्
उदयदखिलधूमाद्यन्वयः शून्यतायाः॥

तथा—

आदावाद्यन्तनिर्मुक्तो मध्यमात्रं समाश्रितः।
तत्रस्थो वर्जयेद्यस्तज्ज्योतिरस्य दशात्मकम्॥

---

१. क. ख. ग. भासोज्ञान। २. ख. लम्ब०। ३. क. ग. ऽर्धो। ४. क. ख. ग. विश्वं। ५. द. लोके।

इहान्तरालावगमो महागुरुप्रसादतः पुण्यवतामुदाहृतः। अयं हि **योगीश्वरवज्र-गीतितः** प्रवर्त्तते (प्रचक्षते) [1]संवृतिप्रदः। **श्रीसरहवीरैरुक्तम्—**

मूढो अन्तरालपरिमाणह।
तुट्टै मोहजाल गुरु पुच्छिअ जाणह॥
पढमे यै आआस विसुद्धो।
चाहंते चाहंते दिट्ठि णिरुद्धो॥
(दो० को०, पृ० २२)

तथा—

अच्चउ किं बहुबोल्लिऐ धम्मह एह पम्माण।
आघउग्घाडे लोअणे दिट्ठिविसामे जाण॥

उइ दूरे गअण मज्जो ... अद्धआ।
पेक्खु रे भुसुकु सुण्ण अरुआ॥

भुसुकु फुलिङ्गौ अनुपमफुल्ला।
लेहु रे कुसुम अनग्घ विमुल्ला॥

एहुसो फुल्ला नानवण्णे।
सो फुल्ला फुलिङ्गौ सूणारण्णे॥

तथा—

स(अ)म्बरफुलि लामाकाए अपतिठाणगुरुआ।
भावाभावविमुक्कारसअलइ सुद्ध सरूआ॥

चिन्तचिन्तते पोहाइ गेलिरती।
दीवा जाली वाट चाहन्ति सान्ती॥

तथा—

उइअउ रे भुसुकु तारा।
शान्ति भणइ पोहान्त पाहारा॥

पुनः—

पुण्णिमचन्दा उइअउ जब्बें।
चिअराअ निमिलिअ तब्बें॥

आकढकरुणा डमरुलि बाजअ।
आज्जदेव निरालें राजअ॥

---

१. क. संवृतिनिर्वृतिप्रदः।

वामे दाहिणे गुमघाट ।
भणइ काहू(ण्ह) अन्तरालें बाट ॥
अनुभाव वोहरअण सुट्ठु गूढो ।
मुच्चउ नाअर बज्झाई मूढो ॥
फुलिआ पञ्चफुल्ल अवलीना ।
आकट चीअ निरालें दीना ॥

तथा—

कीस कए लेक अब्भुआ ।
चान्दसुज्ज बान्धि जालिलि क दीवा ॥
हसइ सान्ती सअ आपणकरि सखी ।
आकासविआअल देखी ॥

पुनः—

गम्भीरधर्म(म्म) सुनिआ बढ तुट्ठो ।
णिसि अन्धारी किम्पि न दिट्ठो ॥
गअणशिहरें जइ फुल्लई फुल्ला ।
शान्ति भणइ तब्बें तुट्ठइ भुल्ल (ा) ॥

अन्यैश्चोक्तम्—

अन्तरालमणपवणा नयणा ।
एककाल जइ जो धम्म निउणा ॥
अवसउ अज्जइ जिनगुणरअणा ।
एत्तउ सअल तथागत वअणा ॥

पुनः—

विविह विअप्प विवज्जिअ चिओ ।
अन्तराल जई नअण किओ ॥
फुडपति हासइ दहविट्ठमग्ग ।
तहि योइसर सअलइ लग्ग ॥

तथा—

णिअमण सअल लक्कन रहिओ ।
अद्धउघाडें लोअनें साहिओ ॥
मज्झें पवण हालइ तब्बें ।
वज्जाणलघून्त्रा उट्ठइ तब्बें ॥

तस्माद् सन्देहतो धूमादिमार्गो बुद्धत्वार्थिना भावयितव्यः[1] ॥ ४ ॥

---

१. सेकोद्देशटीकायामपि उद्धृतोऽस्ति पृ० ४७-४८-४८।३ ।

अनादिर्निष्प्रपञ्चात्मा शुद्धात्मा [1]तथतात्मकः ।
भूतवादी यथावादी तथाकारी अनन्यवाक् ॥५॥

अनादीति। अनादिराद्यनुत्पन्नो निष्प्रपञ्चः सर्वासत्संकल्पवर्जितः आत्मा निरालम्बस्वभावमचित्तचित्तं यस्य स **अनादिनिष्प्रपञ्चात्मा**। विश्वबिम्बदर्शनमिति यावत्। एतेन आदावेव निर्विकल्पामुखीकरण इति हेतुरुक्तः। महारागानलेन सकलस्कन्धधात्वायत[2]नादीनां निरावरणीकरणात् **शुद्धात्मा**। एतेन मध्येऽपि निर्विकल्पः कथितः। महासुखशुक्रलिप्ततया **तथतात्मा(त्मकः)**। मणिशिखरा[3]च्युतः शुक्रबिन्दुस्वभावः। अनेन पर्यन्तेऽपि निर्विकल्पतोक्ता। **भूतम**विपरीतसुखं [4]**वदितुं** [5]साक्षात्कर्त्तुं तद्रूपेण प्रकाशयितुं शीलमस्य स तथा। अविपरीतधूमादिनिमित्तद्वारेण [6]महासुखमिति। यथा वदति सत्त्वानां तथैवात्मना करणात् **यथावादी तथाकारी**। पश्चानन्तर्य्यबुद्धवज्रधरादीनां महासुखरूपेणैव प्रकाशनार्थं विद्यते **अनन्यवाक्** अनुभव[7]ख्यापनात् यस्य स तथा। एतेन इदमादौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं नान्यथेत्युक्तं भवति। ननु यथा बालजनैर्विकल्पितं आदौ विकल्पभावना, मध्ये द्वीन्द्रियजसुखभावना, अन्ते निर्विकल्पभावना महासुखभावनेति ? ननु—

हेतुना [8]सदृशं [9]सर्वं फलं सर्वत्र दृश्यते।
न हि कोद्रवबीजेभ्यः शाल्यङ्कुरसमुद्भवः॥

विकल्पबीजसम्भूतं सविकल्पं फलं भवेत्।
निर्विकल्पकसंभूतं निर्विकल्पफलं भवेत्॥

तस्मात्—

आदौ कल्याणं निर्विकल्प[क]भावना मध्येऽन्ते।
यथाबीजं तथा वृक्षः यथावृक्षस्तथाफलम्।
दृश्यते सर्वलोकेऽस्मिन् प्रतीत्योत्पादमेव तद्॥ इति ॥ ५ ॥

अद्वयोऽद्वयवादी च भूतकोटिव्यवस्थितः।
नैरात्म्यसिंह[10]निर्णादी [11]कुतीर्थ्यंमृगभीकरः ॥६॥

अद्वयेति। **अद्वयः** सुखशुक्राद्वैधरूपः, तद्रूपप्रकाशनाद**द्वयवादी**। **भूतं** यथाभूतज्ञानम्, तदनुभवस्थानस्य मणिवरटकस्य **कोटिः** शिखरं [12]तत्र **व्यवस्थितः** अस्थान[13]योगेन सुस्थितः। नैरात्म्यं सर्वधर्माणां निराभासलक्षणं विश्वबिम्बरूपं तदेव सिंहो-

१. ग. च. छ. तथाता०। २. ग. नाडीनां। ३. क. ग. च्युतं। ४. क. वेदितुं ग. स्वचित्त। ५. क. ग. साक्षाद्धेतुरूपेण। ६. क. ग. महामुद्रा। ७. ख. स्थापनात्। ८. क. ख. सहसां, ग. संसर्ग। ९. ग. 'सर्वं' नास्ति। १०. ङ. निर्नादी। ११. ख. कुतीर्थ्यः। १२. क. ग. ततोऽवस्थान। १३. क. ग. योगो।

[१]ऽनुपक्रमत्वात्। तस्मान्निर्नादोऽनाहतध्वनिसमु[२]ल्लासो यस्य स **नैरात्म्यसिंहनिर्नादः**। कुत्सितं तीर्थं [३]अतत्त्वज्ञानोपायभूतं कुतीर्थमात्मादिज्ञानं तत्र भव्याः कुतीर्थ्याः। ग्राह्य-ग्राहकप्रपञ्च [४]एवान्तःस्थिरत्वात् मृगाः, तेषां तेनैवानाहतध्वनिना [५]भियं भयं [६]तदेवान्तर्धानं करोतीति **कुतीर्थ्यमृगभीकरः**।

तथा चोक्तम्—

शून्यतासिंहनादेन त्रासिताः सर्ववादिनः।
यत्र यत्र विशन्त्येते तत्र तत्रैव शून्यता ॥ इति ॥ ६ ॥
(बो० वि०, ५२)

सर्वत्रगोऽमोघगतिस्तथागतमनोजवः।
जिनो जितारिर्विजयी चक्रवर्ती महाबलः ॥७॥

सर्वत्रेति। महासुखस्वभावतया सर्वस्कन्धधात्वायतनादिव्यापनात् **सर्वत्र गच्छती**ति तथा। अत एवामोघाऽव्याहता गतिर्यस्य सो**ऽमोघगतिः**। निरन्तराव्याहत-महासुखशुक्रगत्यागतिस्वरूप इत्यर्थः। यथैवागतो वज्रमणिवरटकं तथैव उष्णीषचक्रं गतः, **तथागतः**। महासुखोल्लासेन त्रैधातुका[७]क्रमणवेगो मनोजवः, तद्योगात् **मनोजवः**। पश्चात्कर्मधारयः। रागविरागमध्यरागविजयित्वा**ज्जिनः**। अविद्यादिद्वादशाङ्गनिरोध-ना**ज्जितारिः**। वज्ररत्न[८]शिखरे सर्वविकल्पवायुविजयित्वा**द्विजयी**। महासुख[९]शुक्र-रूपतया षट्चक्रेषु र्वाततुं शीलमस्य स **चक्रवर्ती**त्यर्थः। चतुरङ्गषडङ्गबलविजयि-त्वा**न्महाबलः** ॥ ७ ॥

गणमुख्यो गणाचार्यो गणेशो गणपतिर्वशी।
महानुभावो [१०]धौरेयोऽनन्यनेयो महानयः ॥८॥

गणमुख्येति। **गणस्य** द्वासप्ततिसहस्रनाडीगणस्य व्याप्तिः (व्याप्तौ) स्वामित्वेन [११]**मुख्यः** सहजानन्दशुक्रस्वभावः। **गणाना**मानन्दपरमानन्दविरमानन्दानाम् **आचार्यः** सह-जरूपोपदर्शकः। गणानां पञ्चस्कन्धादीनां सहजरूपता[१२]ऽपादनेन परमेश्वरत्वाद् **गणेशः**। गणो मायोपमा[१३]र्थरूपः तथागत[१४]विद्याप्रभृतयो वा तेषां पतिः **गणपतिः** स्वामी बोधिचित्तस्वभावत्वात्[१५]। अत एव **वशी** तत्तत्स्वभावसंदर्शनेन सर्वरूपप्रकाशकत्वात् इति। **महानुभावः** प्रभावोऽनुभावो वाऽच्युतत्वात् यस्य स तथा। प्राणादिवायूनां महा-

---

१. ख. ०क्रमक्रमत्वात्। २. क. ग. ल्लालो, ख. ०लास्य,। ३. क. ख. ग. तत्त्व। ४. द. एवास्थिर। ५. ख. ग. नादियं, द. भीभयं। ६. क. ख. ग. तत्रैवा०। ७. द. क्रमेण। ८. क. शिखरैः। ९. द. चक्र। १०. ग. धौरेय। ११. द. सुखः। १२. ख. संपादनेन। १३. ख. द. स्वरूपाः। १४. द. विद्याग्रतया। १५. क. भो. प्रभास्वरः इत्यधिकः।

सुखनिमज्जनी[1]करणधुरन्धरत्वाद्धौरेयः। सहजानन्दस्वरूपत्वेन [2]अन्वध्यप्रकृतिभिरनेयत्वात् **अनन्यनेयः**। **महानयो** निरालम्बनिराभासधूमादिप्रतिभासो यस्य स तथा ॥ ८॥

वागीशो वाक्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरनन्तगीः।
सत्यवाक् सत्यवादी च चतुःसत्योपदेशकः ॥९॥

वागीशेति। **वाचामीशः**, प्रत्याहाराङ्गस्फुटीभावेन [3]अबन्ध्यवचनत्वेन वरदानादिसामर्थ्यात्। अनेनार्थप्रतिसंविल्लाभ उक्तः अच्युतशुक्रत्वेनानाहतध्वनिरूपाया **वाचः पति**र्बहिर्वागुदाहारवर्जनादिति। अनेन शब्दप्रतिसंविल्लाभः उक्तः। सर्वधर्मनैरात्म्यप्रकाशनाद् **वाग्मी** धर्मप्रतिसंविल्लाभश्चानेन उक्तः। वज्रजापादिना सत्सुखप्राप्ते **वाचस्पतिः**। अनेन च प्रतिभानप्रतिसंविल्लाभ उक्तः। एवं [4]चतुःप्रतिसंविल्लाभेन अनन्ता गीर्वाग् यस्यासौ **अनन्तगीः**। सर्वसत्त्वानां यथाभव्यतया प्रकृतिप्रभास्वरात्मका[5]दिधर्मचक्रस्य प्रवर्तकत्वात् संवृतिसत्यविरोधेन धर्मप्रकाशनात् **सत्यवाक्**। संवृतिसत्यं च स्वाधिष्ठानमायोपमशरीरं तस्य शुद्धिहेतुः परमार्थ[6]सत्यं प्रभास्वरमिति। **सत्यवादी** शून्यताकरुणाभिन्नस्वसंवेद्यज्ञानप्रकाशनात्। **चतुःसत्योपदेशकः** चतुःसहजा[7]नन्दाद्युपदर्शकः ॥ ९ ॥

अवैवर्तिको ह्यनागामी [8]खड्गः प्रत्येकनायकः।
नानानिर्याणनिर्यातो महाभूतैककारणः ॥१०॥

अवैवर्तिकेति। चतुश्चक्रकर्णिकागतागतत्वेन चतुःशताधिकचतुर्दशसहस्रश्वासनिरोधादवैवर्तिकोऽचलाभूमिलाभीत्यर्थः। **अनागामी** क्लेशावशादसंसारित्वात्। खड्ग इव **खड्गः** अच्युतत्वेन सकलनाडीषु स्फरणात्। प्रत्येकं सकलनाडीनां [9]महासुखताप्रापणात् **प्रत्येकनायकः**। निर्यान्ति निर्गच्छन्ति विकल्पक्लेशदुःखानि येभ्यस्तानि निर्याणानि नाना [च] तानि निर्याणानि चेति नानानिर्याणानि, षटचक्रकमलवरटकानि तेषु निश्चयेन महासुखरूपतया निर्यातो **नानानिर्याणनिर्यातः**। महाभूतानां पञ्चानां एकमद्वितीयं कारणं हेतु**र्महाभूतैककारणः**। आर्षत्वात् पुंस्त्वम्। तथा चोक्तं कृष्णपादानां(दैः)—

पञ्च महाभूआ विअ अई सामग्गीए जइअ।
पूहवि अव तेअ गंधवह गअण सज्जइअ॥
गअण समीरण सुहवासे पञ्चेहि परिपुण्णए।
सअल सुरासुर एहु उअक्ति बढिए सुणए॥ इति।

(दो० को०, पृ० ४१)

---

१. द. ०करणे। २. क. ग. धन्वतादि, ख. धन्धतादि। ३. द. अन्वध्य। ४. क. ख. ग. चतुर्वं। ५. द. ०दिना। ६. द. सत्यं च। ७. क. ख. ग. नन्दोपदर्शकः। ८. क. ख. खड्ग। ९. ख. द. महासुखरूपता।

तथा च श्रीहेवज्रतन्त्रे चोक्तम्—

बोलकक्कोलयोगेन कुन्दुरुं कुरुते व्रती।
स्पर्शात्काठिन्यधर्मेण पृथिवी तत्र जायते॥
बोधिचित्तद्रवाकारादब्धातोश्चैव सम्भवः।
तेजो जायते घर्षणाद् गमनाद्वायुः प्रकीर्तितः।
सौख्यमाकाशधातुश्च पञ्चभिः परिवेष्टितः॥ इति॥ १०॥
(हे० त० १.१०.३८–४०)

अर्हन् क्षीणा[1]स्रवो भिक्षुर्वीतरागो जितेन्द्रियः।
क्षेमप्राप्तोऽभयप्राप्तः शीतीभूतो ह्यनाविलः॥११॥

अर्हन् क्षीणेति। सम्यक्समाधिवशात् सकलविकल्पक्लेशानरीन् हतवान् इत्य**र्हन्**। बोधिचित्तप्रयोगेण तदुत्पादितदृष्टान्तदार्ष्टान्तिकावाच्यतत्त्वसुखत्वेन सकलपरिसमाप्तार्थत्वात् सद्गुरूपदेशवशेन चतुर्थाभिषेकक्षणे तुर्यक्षणातीतत्वेन शिष्यस्य तत्क्षणाद् एवातीवश्रद्धायोगेन सकलाविद्याप्रहाणात् **क्षीणा आस्रवा** यस्य यतो वा स तथा। पञ्चकामोपभोगेनापि भिन्नक्लेशत्वाद् **भिक्षुः**। प्रभास्वरप्रवेशेन विगतप्राकृतरागतया महासुखानुभवाद् **वीतरागः**। उष्णीषमणिशिखराश्रितत्वेन सर्वेन्द्रियविषयानभिभवनीयत्वात् द्वीन्द्रियसंयोगानुत्पन्नत्वाद्वा **जितेन्द्रियः**। पञ्चकामोप[2]करणतयाऽपूर्वाश्चर्यसुखप्राप्तत्वात् **क्षेमप्राप्तः**। अच्युतसुखत्वेन तत्सुख[भङ्ग]त्रासाभावाद**भयप्राप्तः**। सूक्ष्मज्ञानन्दमहारसविद्धतया सकलकायवाक्चित्तोपप्लवानलप्रशमनात् **शीतीभूतः**। **हि**रेवमर्थे। रागविरागाद्यलिप्तत्वाद्, **अनाविलो** ज्ञानकायः॥११॥

[3]विद्याचरणसम्पन्नः सुगतो लोकवित्परः।
निर्ममो निरहङ्कारः सत्यद्वयनयस्थितः॥१२॥

विद्याचरणेति। **विद्या** महाप्रज्ञा ज्ञानम्, तस्या **आचरणं** चतुर्थाभिषेकमज्जनं **तत्सम्पन्नः** तदद्वैध[4]रूप इत्यर्थः। अनासङ्गसुखतया संसारसुखात् प्रशस्तमपुनरावृत्या यावद् गन्तव्य[5]तया गतः **सुगतः**। स्कन्धधात्वायतनादिरूपं **लोकं** महासुखत्वेन **वेत्तीति** तथा। **परः** आनन्द-परमानन्द-[6]विरमानन्दोत्तमत्वात् उत्कृष्टः। आत्मात्मीयादिपरिकल्पप्रहीणत्वात् **निर्मम**स्तथतात्मक इत्यर्थः। सुखं भुक्तं मयेति चेति सुखनिश्चयादहंकारविगमा**न्निरहंकारः**। वज्रसत्त्वोऽहंकारोऽपि न कार्यः इति यावत्। संवृतिसत्यं मायोपमं स्वाधिष्ठानलक्षणं परमार्थसत्यं प्रभास्वरपरिज्ञानं तत् **सत्यद्वयम्**। तथा चोक्तम्—

स्वाधिष्ठानं शून्ये त्रैधातुकदर्शनं नामेति।

---

१. ग. आश्रवो। २. द. करेण तद्। ३. ग. विद्याश्च। ४. ख. रूपज, द. रूपकः। ५. क. ख. ग. तयावगतः। ६. क. ख 'विरमानन्द' नास्ति।

तदेव **नयो** मार्गस्तत्रस्थः तत्साक्षात्कर्त्ता सकल[1]श्वासहर्तेत्यर्थः ॥ १२ ॥

संसारपारकोटिस्थः कृतकृत्यः स्थलस्थितः ।
कैवल्यज्ञान[2]निष्ठ्यूतः प्रज्ञाशस्त्रो विदारणः ॥१३॥

संसारपारेति । सम्यक् सारः संसारः आनन्दं परमानन्दसुखम्, तस्य पारं विरमानन्दज्ञानं, तस्य कोटिः सहजानन्द[3]सुखज्ञानं, तत्र तिष्ठतीति **संसारपारकोटिस्थ**श्चतुर्थध्यानकोटिधृगित्यर्थः । **कृतं कृत्यं** चतुर्थाभिषेकज्ञानदानं येन स तथा । पञ्चकामोपभोगेन साधितं निर्वाणसुख**स्थलं** परमक्षेमस्थानीयत्वात्, तत्र **स्थितो**ऽच्युतो ज्ञानकाय इत्यर्थः । **कैवल्यज्ञानं** शुद्धाद्वयधर्मतालक्षणं धर्मकायात्मकम् । ततो **निष्ठ्यूतो** निर्यातः परमाक्षरसुखस्वभाव इत्यर्थः । **प्रज्ञा** [4]विश्वबिम्बदर्शनलक्षणा सैव **शस्त्रं** सकलक्लेशनिषूदनात् यस्य स तथा । अत एव हेयोपादेयविकल्पजालं विदारयतीति **विदारणः** ॥ १३ ॥

सद्धर्मो धर्मराड् भास्वान् लोकालोककरः परः ।
धर्मेश्वरो [5]धर्मराजः श्रेयोमार्गोपदेशकः ॥१४॥

सद्धर्मेति । [6]संश्चासौ सद्गुरूपदेश[7]लभ्यत्वात् [8]धर्मश्च एवंकाररूपः सुखस्वलक्षणधारणात् **सद्धर्मः** । उक्तञ्च—

धर्मस्कन्धसहस्राणां चतुरशीति[9]संख्यया ।
सर्वाश्रयं पिता माता द्व्यक्षरं कथितं मया ॥

एकारस्तु भवेन्माता वकारस्तु पिता स्मृतः ।
बिन्दुस्तत्र भवेद्योगः स योगः परमाद्भुतः ॥

एकारः पद्ममित्युक्तं वकारो वज्रमेव च ।
बिन्दुस्तत्र भवेद् बीजं तत्प्रसूतं जगत्त्रयम् ॥

एकारस्तु भवेत्प्रज्ञा वकारः सुरताधिपः ।
बिन्दुश्चानाहतं तत्त्वं तज्जा[10]तान्यक्षराणि च ॥

यो विजानाति तत्त्वज्ञो धर्ममुद्राक्षरद्वयम् ।
स भवेत् सर्वसत्त्वानां धर्मचक्रप्रवर्तकः ॥

[11]अन्यत्र च—

एकारो गगना[12]लोके धर्मधातुः प्रकीर्तितः ।
वंकारः सुगतव्यूह एकारे संव्यवस्थितः ॥

---

१. ख. द. श्वासप्रश्वाससंहर्ते । २. ग. निष्ठूत । ३. ख. ग. द. 'सुख' नास्ति । ४. क. ग. 'विश्व' नास्ति । ५. च. धर्मराजा । ६. द. सच्चासौ । ७. ख. लम्ब । ८. द. धर्मश्च । ९. क. ग. संज्ञया । १०. द. तान्यपराणि । ११. ख. नास्ति । १२. द. लोको ।

ए रहस्यं खधातौ वा भगे धर्मोदयेऽम्बुजे।
सिंहासने स्थितो वज्री उक्तं तन्त्रान्तरे मया॥

वं वज्री वज्रसत्त्वश्च वज्रभैरव ईश्वरः।
हेरुकः कालचक्रश्च आदिबुद्धादिनामभिः॥

अन्यत्र च—

एवंकार जे बुज्झिअ ते बुज्झिअ सअल असेस।
धम्मकरण्डहो सोहु रे णिअ पहुधरवेस॥ इति।

धर्मो धर्मधातुः स्वाधिष्ठानं तत्र तेन वा राजत इति **धर्मराट्**, सहजज्ञानालोकरूपत्वात्। **भास्वान्** भासनशीलः। निरन्तरनिराभासभावनया धूमादिदर्शनिमित्तबुद्धबिम्बेना[1] ज्ञानतमोवृतानां लोकानामालोकं करोतीति **लोकालोककरः। परः** उत्कृष्टः प्रकृतिप्रभास्वरमण्यन्तर्गतपरममहासुखरश्मिरूपः सूर्याद्यालोकोत्कृष्टत्वात्। **धर्मेण** सहजानन्दचतुष्टयेन **ईश्वर**स्त्रिलोकस्वामी नित्यं बोधिचित्तरसास्वादनैश्वर्यात्। धर्मेण महा[2]सुखवर्षेण लोकान् रञ्जयतीति **धर्मराजः। श्रेयोमार्गस्य** स्वाधिष्ठानलक्षणस्यो**पदेशकः** प्रकाशकः॥ १४॥

सिद्धार्थः सिद्ध[3]सङ्कल्पः सर्वसङ्कल्पवर्जितः।
निर्विकल्पोऽक्षयो धातुर्धर्म[4]धातुः परोऽव्ययः॥१५॥

सिद्धार्थेति। सर्वधर्माणां ज्ञानाकारेण प्रतिभासकत्वात् **सिद्धो** निष्पन्नो**ऽर्थः** परमार्थो यतो यस्य वा स तथा। बुद्धवज्रधरसम्पादितभावनाभ्यासात् **सिद्धो** नित्यं [5]स्वमुखीकृत्य, **संकल्पो** ग्राह्यग्राहकविकल्पो यस्य स तथा। अत एव **सर्वसंकल्पै**रात्मात्मीयग्रहाभिनिवेशै**र्वर्जितस्त्यक्तः**। अभिषेकसमयाचारादिकाले निर्विकल्पेन चित्तेन सर्वकरणा**न्निर्विकल्पः**। प्रभास्वरनिष्ठतया क्षयाभावा**दक्षयः**। सर्वधर्मप्रकृतिकत्वा**द्धातुः**। कायत्रयात्मक[6]महासुखैकरूपत्वा**द्धर्मधातुः**। अच्युतत्वा**दव्ययः**। स्वयम्भूसहजाख्यत्वात् **परः**। एतेन निर्विकल्पकभावनैव महामुद्रासिद्धिहेतुरित्युक्तं भवति॥ **१५**॥

पुण्यवान् पुण्यसंभारो ज्ञानं [7]ज्ञानाकरं महत्।
ज्ञानवान् सदसज्ज्ञानी संभारद्वयसम्भृतः॥१६॥

---

१. ख. ज्ञानतमो इत्यारभ्य करोतीति पर्यन्तं नास्ति। २. द. भो. सुखरत्नवर्षेण! ३. क. संकल्प। ४. च. घ. धातुपरो। ५. क. स्वस्वीकृत्य, द. सुखीकृतः। ६. द. महाकरुणैक। ७. क. ख. ङ. ज्ञानान्तरं, छ. ज्ञानाकरो महान्।

पुण्यवानिति। पुण्यं महाकरुणारागरञ्जिताचित्तचित्तेन समाध्यङ्गाभिमुखीकरणं सुखं (पुण्यं) तादात्म्येन तद्योगात् **पुण्यवान्**। उक्तञ्च—

न विरागात्परं [1]पापं न पुण्यं सुखतः परम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन च्युतिसौख्यं विवर्जयेत्॥ इति।

महामुद्रासिद्ध्युपायसुखज्ञानत्वात् **पुण्यसंभारः**। उक्तञ्च—

गिरीन्द्रमूर्ध्नः प्रपतेत् तु कश्चित्
नेच्छेच्च्युतिं स च्यवते तथापि।
गुरुप्रसादाद्विहितोपदेशा-
न्नेच्छेद्विमुक्तिं स तथा विमुक्तः॥ इति।
(पं. क्र. २.६९)

ज्ञानसंभारपूरणाद् **ज्ञानम्**। मण्यन्तर्गतानुपलम्भसुखज्ञानरूपत्वात् नाना-[2]सुखाकरत्वात् **ज्ञानाकरः**। तदुक्तम्—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमा[3]ल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
(गीता १३.१३)

महत् इति षोडशकलारूपत्वात् महत्। चण्डालीयोगेन सकलविकल्पेन्धन-दहनतया निर्विकल्पज्ञानेन नित्ययोगात् **ज्ञानवान्**, मायोपमस्वाधिष्ठानवशीकृतस्कन्ध-धात्वायतनत्वेन प्रतिभासात्। उक्तञ्च—

श्रीमन्मण्डलमाण्डलेयनिवहं तज्ज्ञानबिम्बं परं
ज्ञाने[4]नाकलया[5]स्यनेन सकलं लोकञ्च मायादिकम्।
इन्दोर्बिन्दुपदं यदम्बरतले तद् व्यापि दृष्टं न किं
[6]स्वच्छैः ख्याति निराकरोति च तमो लोकस्य चालोकनम्॥

सर्वालीकभ्रान्तिविगमाच्च **सदसज्ज्ञानो**। [7]स्वसंवेद्यसहजानन्दरूप इत्यर्थः। अनन्तरोक्तसम्भारद्वयोपेतत्वात् **सम्भारद्वयसंभृतः**॥ १६॥

शाश्वतो विश्वराड् योगी ध्यानं ध्येयो धियां पतिः।
प्रत्यात्मवेद्यो ह्यचलः [8]परमाद्यस्त्रिकायधृक्॥१७॥

---

१. क. ग. पुण्यं। २. क. ख. ग. सुखकरणत्वात्। ३. क. क. ग. श्रुतिमान्। ४. ख. द. नालोकनया। ५. क. मणेन, ख. ग. मलेन। ६. द. स्वकैः। ७. भो. 'स्वसंवेद्य' नास्ति। ८. ग. परमाद्या०।

[**शाश्वतेति** ।] सर्वरोमकूपाग्राकाशव्यापिबुद्धादिसंस्फरणरूपत्वात् [1]**शाश्वतः**, प्रभास्वरनिष्ठतयाऽच्युतसुखत्वात् शाश्वतः। विश्वं द्वासप्ततिनाडीसहस्रं तत्र सुखरूपेण राजत इति **विश्वराट्**। कायवाक्चित्तैकीकरणाद् **योगी**। चतुरानन्दैकत्वाद् **ध्यानम्**। योगीन्द्रैर्वज्रमणौ उष्णीषे चानुभवनीयत्वात् **ध्येयः**। सर्वतथागतज्ञानकायत्वाद् **धियास्पतिः**। षष्ठो वज्रधरः कुमारीसुरतसुखवदनन्यवेद्यत्वात् **प्रत्यात्मवेद्यः**। उक्तञ्च—

वक्तुं न शक्यते सौख्यं कुमार्याः सुरतं विना।
यौवने सुरतं प्राप्य स्वतो वेत्ति महासुखम्॥

एवं न शक्यते वक्तुं समाधिरहितं सुखम्।
समाधावक्षरं प्राप्ताः स्वतो विन्दन्ति योगिनः॥ इति।

विकल्पवायूपरमा**दचलः**। वज्रसत्त्वरूपत्वात् **परमाद्यः**। [2]सहजान्तर्वर्तिकायवाक्चित्तत्वा**त्त्रिकायधृक्**॥ १७॥

पञ्चकायात्मको बुद्धः पञ्चज्ञानात्मको विभुः।
पञ्च[3]बुद्धात्ममुकुटः पञ्चचक्षुरसङ्गधृक्॥१८॥

पञ्चकायेति। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त-तुरीय-तुरीयातीतत्वेन **पञ्चकायात्मकः**। आत्मसुखावबोधरूपत्वाद् **बुद्धः**। पञ्चकुलात्मकत्वेन आदर्शादिज्ञानात्मकत्वा**त्पञ्चज्ञानात्मकः**। उक्तञ्च—

बोलकक्कोलयोगेन स्पर्शात्काठिन्यवासना।
कठिनस्य मोहधर्मत्वात् मोहो वैरोचनो मतः॥

बोधिचित्तं द्रवं यस्मात् द्रवमब्धातुकं मतम्।
अपामक्षोभ्यरूपत्वात् द्वेषोऽक्षोभ्यनायकः॥

द्वयोर्घर्षणसंयोगात्तेजः संजायते सदा।
रागोऽमितवज्रः स्याद्रागस्तेजःसमुद्भवः॥

कक्कोलहेतु यच्चित्तं तत्समीरणरूपकम्।
ईर्ष्या अमोघसिद्धिः स्यादमोघो वायुसम्भवः॥

सुखं रागं भवेद्रक्तं रक्तिराकाशलक्षणा।
आकाशं पिशुनवज्रः स्यात्पिशुनमाकाशसम्भवः॥ इति।

(हे० त० २.२.५३–५७)

---

१. भो. 'शाश्वतः' नास्ति। २. ख. द. सहजवर्ति। ३. क. बुद्धात्मको।

अथवा मातापितृसंयोगे पितुर्बोधिचित्तबीजेन चन्द्राक्षोभ्यद्रवत्वादादर्श[1]रूपता। मातुः स्वयम्भूकुसुमेन सूर्यरत्नसम्भवरागत्वात् समता। पद्मे वज्रप्रवेशेन महारागबीजेनामिताभसुखत्वात् प्रत्यवेक्षणा। चलनस्पन्दनानुभवामोघसिद्धिरूपत्वात् कृत्यानुष्ठानम्। अन्तराभवविज्ञानप्रवेशेन वर्द्धनम्, ततो वैरोचनो जननीगर्भान्निष्क्रमणं बिम्बनिष्पत्तिः सुविशुद्धधर्मधातुः। चित्तसुखरूपेण बालाद्यवस्थाव्यापनात्। पूर्वोक्तबिम्बसाक्षात्कारेण निरावरणपञ्चस्कन्धस्फरणात् **पञ्चबुद्धात्ममकुटः**। प्रत्याहारध्यानप्राणायामधारणानुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावात् **पञ्चचक्षुः**। समाध्यङ्गयोगा**दसङ्गधृक्**॥ १८॥

जनकः सर्वबुद्धानां [2]बुद्धपुत्रः परो वरः।
प्रज्ञाभवोद्भवो योनिर्धर्मयोनिर्भवान्तकृत् ॥१९॥

जनकेति। चतुरशीतिसहस्रचित्तक्षणानां [3]**बुद्धानां** महासुखरूपतया जननाज्**जनकः** सहजानन्दः। वज्ररत्नान्तर्गतसुखचित्तराशिरित्यर्थः। उक्तप्रभास्वरचित्तप्रबोधाद् **बुद्धः**, तस्य **पुत्र** आत्मजः सहजः परिदृष्टत्वेनात्यन्तप्रमाश्रयत्वात् निर्विकल्पप्रतिबेधनिर्यात इत्यर्थः। आनन्दत्रयातिक्रान्तत्वात्**परः** सहज इत्यर्थः। **वरः** स्वानुभवत्वात्। प्रज्ञा विश्वबिम्बः, सैव उत्पत्तिस्थानं तत्र उद्भवतीति **प्रज्ञाभवोद्भवः**। महासुखाकारसम्भोगकायो **योनिः**, सर्वसत्त्वानामुत्पत्तिस्थानत्वात्। ज्ञानकायत्वात् **धर्मयोनिः**। भवस्यान्तमवसानमानन्दत्रयावसानं सहजानन्दं करोतीति **भवान्तकृत्**॥ १९॥

घनैकसारो वज्रात्मा सद्योजातो जगत्पतिः।
गगनोद्भवः [4]स्वयम्भूः प्रज्ञाज्ञाना[5]नलो महान् ॥२०॥

घनैकसारेति। **घनो** निविडत्वादेकश्चाद्वितीयत्वात् **सारश्च** सहजसुखत्वेन सर्वकल्पनाक्लेशमलाभावात्। ज्ञानकायत्वेनाभेद्यत्वाद् **वज्रात्मा**। अत्यन्तश्रद्धावतां हृदि गुरूपदेश[6]क्षणमात्रेण बुद्धरूपेण जातत्वात् **सद्योजातः**। तदुक्तम्—"[7]तत्तु क्रमेण करुणादिगुणावदातश्रद्धावतां हृदि पदं स्वयमादधाति" इति। **जगत्पतिः** सर्वजनानां मातापितृस्थानीयं जगत्स्वामी वज्रसत्त्वस्वभाव इत्यर्थः।

गगनेति। इदानीं स्वाधिष्ठानमाह– तच्च संवृतेः शून्यदर्शनं प्रत्याहारचिह्नं नाम मेघधूमादिवत् प्रतिभासः, स च प्रथमं दृश्यते प्रदीपपर्यन्तं, तच्च निमित्तचतुष्टयं **समाजादावुक्तम्**। ज्वालादिबिन्दुपर्यन्तं षडन्यनिमित्तम्, अत्र गाथाद्वयेनोक्तम्। पूर्वोक्त निरभ्रगगनात् [भवति] प्रतिभासो यस्य स **गगनोद्भवः**। **स्वयंभूः** सर्वविकल्परहितचित्तत्वादिति। अतः **प्रज्ञाज्ञानानल** इति ज्वालाप्रतिभासः। वैरोचनो महादीप्ति-

---

१. द. रूपत्वात्। २. बुद्धपुत्रपरो। ३. द. 'बुद्धानां' नास्ति। ४. ख. स्वयम्भू। ५. ख. ग. अचलो। ६. द. कथन। ७. द. तन्त्र।

रिति चन्द्रप्रतिभासः, स एव ज्ञानज्योतिर्विरोचन इति। जगत्प्रदीप इति [1]सूर्य प्रतिभासः। ज्ञानोल्को राहुप्रतिभासः। महातेजाः प्रभास्वर इति विद्युत्प्रतिभासः। विद्याराजोऽग्रमन्त्रेश इति बिन्दुप्रतिभासः, स च नीलवर्णचन्द्रमण्डलाकारः। मन्त्रराजो महार्थकृदिति सर्वाकारत्रैधातुकभावप्रतिभासो मायास्वप्न[2]प्रतिसेनातुल्यो दृश्यते योगिनेति[3]। व्युत्पत्तिस्तु गगनं बुद्ध[4]बिम्बः तत्रोद्भवतीति तथोक्तः। [स्वयम्भूः] स्वयमात्मना भवतीति तथा, प्रज्ञाज्ञानं सहजचण्डालीज्ञानं, तदेवानल इवानलो यस्य स तथा। सर्वव्यापनात् **महान्**॥ २०॥

वैरोचनो महादीप्तिर्ज्ञानज्योतिर्विरोचनः।
जगत्प्रदीपो [5]ज्ञानोल्को महातेजाः प्रभास्वरः॥२१॥

[**वैरोचने**ति] प्रकृतिप्रभास्वरज्ञानं विरोचनः, स एव **वैरोचनः**। महती दीप्तिरस्येति **महादीप्तिः**। ज्ञानमेव ज्योतिर्यस्येति **ज्ञानज्योतिः**। विरोचते दीप्यत इति **विरोचनः**। प्रदीपवज्जगदालोककारकत्वात् **जगत्प्रदीपः**। ज्ञानमेवोल्का यस्य स **ज्ञानोल्कः**। महातेजोऽवभासो[6] यस्य स **महातेजाः**। अत एव **प्रभास्वरः**॥ २१॥

विद्याराजोऽग्रमन्त्रेशो मन्त्रराजो महार्थकृत्।
महोष्णीषोद्भूतोष्णीषो विश्वदर्शी वियत्पतिः॥२२॥

[**विद्याराजे**ति] विद्याया महामुद्राया राजा स्वामी **विद्याराजः**। महासुखप्रधानत्वात् **अग्रमन्त्रेशः**। पारमार्थिकमन्त्रराजत्वान्[7] महा**मन्त्रराजः**। महासुखरूपेण त्रैलोक्यस्फरणाद् **महार्थकृत्**। महश्चा(महांश्चा)सौ उष्णीषश्चेति महोष्णीषः, सर्वतथागतबिन्दुः। उष्णीषाकारेण गगने राशीभूय व्यवस्थित[8]त्वात्। उष्णीषोद्भूतोज्ञानबिन्दु**र्महोष्णीषोद्भूतोष्णीषः** [9]ऊर्णामार्गेण तेजोराशिमुखेन योऽसौ भगवान् सर्वतथागतज्ञानसत्त्वः सर्वतथागतोष्णीषेभ्यो निश्चर्य वज्राकारो मूर्ध्नि स्थितः। उक्तञ्च—

येनाकृष्य मनोभवः स्वकुलिशान्नीतो ललाटं स्वकं
प्रज्ञाज्ञानबलेन शाक्यमुनिना वज्रं महोष्णीषगम्।
सालम्बा ननु शून्यता [10]सकरुणा नालम्बनी यस्य वै
तस्मै देवनरासुराहिगुरवे विश्वैकशास्त्रे नमः॥ इति।

(वि० प्र० पञ्चमपटलस्य मङ्गलाचरणम्)

---

१. क. ग. ज्वाला। २. से० टी० प्रतिभासेन। ३. तुलनीयं—से० टी०, पृ० ४०। ४. द. बिम्ब। ५. ग. ज्ञानजोतिल्का। ६. क. ग. भाषस्य। ७. ख. 'महामन्त्रराजः' नास्ति। ८. क. ग. भूतत्वात्। ९. भो. Auḍḍhi (ओड्ड)। १०. क. स्वकरुणा, ख. सुकरुणा।

विश्वं नानाप्रकारं स्वाधिष्ठानसमाधिना एकक्षणाभिसम्बोधिं दर्शयितुं शीलं यस्य स **विश्वदर्शी**। वियतः शून्यतायाः पतिः **वियत्पतिः**, सुख(शून्य)पतिरित्यर्थः। उक्तञ्च—

निराभासस्य चित्तस्य स्थितिराकाशलक्षणा।
आकाशभावनैवैषा शून्यताभावना मता॥ इति॥ २२॥

सर्वबुद्धात्मभावा[1]ग्र्यो जगदानन्द[2]लोचनः।
[3]विश्वरूपी विधाता च पूज्यो मान्यो महाऋषिः॥२३॥

[**सर्वबुद्धेति**।] **सर्वेषां बुद्धानां** शाश्वतादीनां **आत्मभावः** स्वसंवेद्यसहजसुखज्ञानं तेन [4]**अग्र्यः** श्रेष्ठः सर्वतथागत[5]ज्ञानकाय इत्यर्थः। [6]जगति आनन्देन सहजानन्दरूपेण लोचयति पश्यत्यनुभवतीति **जगदानन्दलोचनः**। स्थिरचलानां भावानां सुखेन [7]नानारूपेण दर्शनाद् **विश्वरूपी**। यथाभव्यतया सर्वमन्त्रमुद्राभिसमयमण्डलोत्सङ्गादिकरणाद् **विधाता**। सहजात्मकतया पूज्यत्वात् **पूज्यः**। नित्यं बाह्याध्यात्मिकं मुद्रासेवनेनातिक्रमणीयत्वात् **मान्यः**। परमाक्षरज्ञानत्वात् **महाऋषिः**॥ २३॥

कुलत्रयधरो मन्त्री महासमयमन्त्रधृक्।
रत्नत्रयधरः श्रेष्ठस्त्रियानोत्तमदेशकः॥२४॥

कुलत्रयेति। कायवाक्चित्त[8]मेतत्**कुलत्रयं** महासुखं [9]कुलीनतया धरतीति स तथा। लोकोत्तरज्ञानधरत्वात् **मन्त्री**। **महासमयमन्त्रं** सत्सुखाभि[10]संबोधि[11]समाधि धरतीति तथा। **रत्नानि** धर्मसम्भोगनिर्माणाख्यानि सहजैकरूपाणि तद्धारणात्तथा। अत एव **श्रेष्ठः** अनादिनिधनत्वात्। **त्रियानोत्तमदेशकश्चतुर्थानन्दप्रकाशकः**। उक्तञ्च—

खवज्रधातुमध्यस्थं वज्रमण्डलभावना।
कायवाक्चित्ताहंकारं ध्यात्वा कल्पं स तिष्ठति॥ इति॥ २४॥

अमोघपाशो विजयी वज्रपाशो महाग्रहः।
वज्राङ्कुशो महापाशः वज्रभैरव भीकरः ॥२५॥

इति सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान[12]गाथाः पादोनपञ्चविंशतिः।

---

१. ख. ग्रो। २. ग. रोचनः। ३. ङ. विश्वरूपो। ४. क. मुख्यः। ५. क. ख. 'ज्ञान' नास्ति। ६. द. जगदानन्देन। ७. ग. द. नानारूप। ८. ग. भेदेन। ९. द. कुलानां वय। १०. द. सम्बोधिं। ११. द. 'समाधि' नास्ति। १२. ख. स्तुतिगाथाः।

अमोघपाशेति । अमोघोऽबन्ध्यः, पाश इव **पाशः** षडङ्गयोगलक्षणो यस्य स तथा । बोधिचित्तवज्रविनेयानां सत्त्वानां बिम्बदर्शनेन तथताप्रतिभासकत्वात् । वज्रोपमत्रैलोक्यसमाधिना वायुनिरोधाद् **विजयी । वज्रस्य** चित्तवज्रस्य [1]पाश इव **पाशो** यस्य स तथा अन्तःप्राणबन्धेन चित्तवज्रस्यापि बन्धनात् । **महां**श्चासौ [2]**ग्रहो** बोधिचित्तापरित्यागेऽविकल्पयोगेन यस्य स तथा । वज्रेणाङ्कुशवत् सर्वसुखसमाधीनामाकर्षणाद्**वज्राङ्कुशः** । पाशशब्देन [3]नाभ्यधः कुण्डलाकारेण स्थितो नागाकृतिर्वासुकिनामा [4]नाडीविशेषः । तेनावधूतिमार्गेण ब्रह्मस्थानं गत्वा स बोधिचित्ताकर्षणेन स्कन्धधात्वायतनानां व्यापनात् **महापाशः** ।

हृदयैकनाडीसहितशिरःशिखादक्षिणकर्णपृष्ठवंशवामकर्णचक्षुर्भ्रूमध्यस्कन्धद्वयकक्षस्तनयुग[5]नाभिनासाग्रमुखकण्ठहृदयमेद्रगुह्यगुदोरुजंघापादपृष्ठाङ्गुल्यङ्गुष्ठजानुव्याप्य(त)सहजानन्दबोधिचित्तप्रति[6]पादिकया पञ्चविंशतिस्वरूपबोधिचित्तचन्द्रपदविशुद्धचा पादोनपञ्चविंशतिश्लोकया सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्य लोकोत्तरविज्ञानस्कन्धाक्षोभ्यस्वभावेन व्याख्या दर्शिता ।। ६ ।।

---

१. ख. पाशमेव पाशः । २. क. महांग्रहो, द. महाग्रहो । ३. क. नाड्यधः । ४. ख. नाभी । ५. द. नाडी । ६. क. ग. पादकया ।

बौद्ध-भारतीय ग्रन्थमाला–३०

आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीतिः

भिक्षुरविश्रीज्ञानविरचितया

अमृतकणिकाख्यटिप्पण्या

आचार्यविभूतिचन्द्रविरचितेन

अमृतकणिकोद्योतनिबन्धेन च

सहिता

सम्पादकः

डॉ० बनारसीलालः

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्दः २५३८ खिस्ताब्दः १९९४

भेदादनाहतधर्मधातुरूपतया **विघुष्टमहाशब्दो वज्रम**भेद्यमस्य, तेन वा अभेद्यः, स तथा। सहजकायत्वात् **हृद्वज्रः। माया** मनोविवर्त्य(र्त्तं) **वज्रो**ऽभेद्यत्वाद्यस्य स तथा। धर्मधातुरूपतया सकलभावक्रोडीकरणाद् **महोदरः** ॥ २ ॥

कुलिशेशो वज्रयोनिर्वज्रमण्डो नभोपमः।
[1]अचलैकजटाटोपो गजचर्मपटार्द्रधृक् ॥३॥

कुलिशेशेति। **कुलिशे** वज्ररन्ध्रद्वयाभ्यन्तरे ओडियाने जालन्धरसंज्ञके महासुखस्वभावेन **ईश्वर**त्वात्। तथा वज्राणां सर्वतथागतकायवाक्चित्तज्ञान**वज्राणां योनि**रुत्पत्तिस्थानं सहजा[2]नन्दोत्पत्तित्वात्। तेषां दिव्यसुखास्वादरूपत्वाद्**वज्र**[3]**मण्डो**ऽभेद्यसारः। निरावरणतया सर्वाकारवरोपेतशून्यतास्वभावत्वान्**नभोपमः**। निश्चलीकृतप्राणत्वाद**चलः**, सर्वसमरसीभावा**देकजटा**या इवा**टोप** आडम्बरो यस्य स तथा। दिव्यमुद्राप्रयोगेण महासुखरूपतया [4]धर्म[धातु]पर्यन्तगतशुक्रं श्वेत**गजचर्म**[5]**पटार्द्रं** सहजत्वात्तत्तादात्म्येन **धरती**ति तथा ॥ ३ ॥

हाहाकारो महाघोरो [6]हीहीकारो भयानकः।
अट्टहासो महाहासो वज्रहासो महारवः ॥४॥

हाहाकारेति। महासुखोल्लासध्वनिर्हाहा तत्कारित्वात् **हाहाकारो** ध्वनिविशेषरूपत्वात्। घोरातिक्रान्तो **महाघोरः**। [7]पूर्ववत् सुखनादरूपत्वात् **हीहीकारः**। महा[8]सुखरन्ध्रे पराक्रमो **भयानकः**। महामुद्राप्रयोगेण प्रत्युच्चैः हकाराट्टकरूपत्वाद**ट्टहासः**। दिव्याङ्गनालिङ्गनवज्रनाट्यसुखत्वात् **महाहासः**। स्वसंवेद्यत्वेन **वज्रहासो** ज्ञानहासः। **महारव**स्त्रैलोक्यमहासुखनादः ॥ ४ ॥

वज्रसत्त्वो महासत्त्वो वज्रराजो महासुखः।
वज्रचण्डो महामोदो वज्रहूंकारहूंकृतिः ॥५॥

वज्रसत्त्वेति। अभेद्यबोधिचित्तरूपत्वाद् **वज्रसत्त्वः**। बोधिचित्तेन कायमापूर्याविच्छिन्नप्रवाहज्ञानबिन्दुरूपत्वात् [9]**महासत्त्वः**। वज्रान्तर्गतमहासुखरूपतया राजत इति **वज्रराजः**। अत एव **महासुखः**। अप्रतिष्ठितसुखनिर्वाणगतिवेगित्वाद् **वज्रचण्डो** वज्रवेगः। सदसत्पक्षाभावेनाच्युतामृतमोदनान्**महामोदः**। वज्रहूंकारस्य बोधिचित्तराजस्य

---

१. ख. छ. अचलो ह्येक। २. ख. द. नन्दोद्भूतत्वात्। ३. क. ख. मण्डलाऽभेद्य। ४. क. ग. चर्मं। ५. ख. ग. तदार्द्रं। ६. च. छ. हीहीकार। ७. ख. पूर्वादखण्डनाद०, ग. पूर्ववत् अखण्डानाहतरूप०। ८. द. वज्ररन्ध्रे। ९. ख. द. महासुखः।

चतुःहूँकाररूपचतुरानन्दचतुष्टयनिरूपेण ओडियान-जालन्धर-पुल्लीरमलय-मरुसञ्चाराद् **वज्रहूंकारहूंकृतिः** ॥ ५ ॥

वज्रबाणायुधधरो वज्रखड्गो निकृन्तनः ।
विश्ववज्रधरो वज्री एकवज्री रणञ्जहः ॥६॥

वज्रबाणेति । अवधूतीबाणवज्रेण नासारन्ध्रद्वयनिरोधाद् वज्रमवधूती, तदेव बाणायुधं तद्धारणाद् **वज्रबाणायुधधरः** । महासुखाधारतया **वज्रम**द्वयज्ञानमेव **खड्गः**[१] सर्व-क्लेशनिषूदनत्वाद्यस्य स तथा । अत एव परमवासनां निकृन्ततीति **निकृन्तनः** । [२]पञ्च-वर्णप्राणादिवायुर्विश्ववज्रम् । तदुक्तम्—

पञ्चज्ञानमयं श्वासं पञ्चभूतस्वभावकम् ।
निश्चार्य यन्नासाग्रे पिण्डरूपेण कल्पयेत् ॥

पञ्चवर्णमहारत्नं प्राणायाम इति स्थि(स्मृ)तम् ।
स्वमन्त्रहृदये ध्यात्वा चित्तं बिन्दुगतं न्यसेत् ॥
(गु० त० १८. १४६-१४८)

नासाग्रे सर्षपं नाम प्राणायामस्य कल्पना ।
प्राणायामे स्थिताः पञ्चरश्मयो बुद्धभाषिताः ॥

पञ्चवर्णमयं श्वासं प्राणायामस्य कल्पना ।
नासिकाग्रे प्रयत्नेन भावयेद्योगवित् सदा ॥ इति ।

तच्चाक्षोभ्यादिपञ्चतथागतस्वभावं लोचनादिपञ्चदेवीस्वभावं च वामदक्षिण-नासापुटे सञ्चारि धरति निश्चलीकरोति इति **विश्ववज्रधरः** धूममरीचिप्रतिभासतया । अभेद्यज्ञानधारित्वाद् **वज्री** । द्वन्द्वयोगेनाद्वयज्ञानत्वाद**ेकवज्री** । कर्ममुद्राजघनान्तरे विकल्पसुखरमणं [३]रणं जहाति(तीति) **रणञ्जहः** ॥ ६ ॥

वज्रज्वालाकरालाक्षो वज्रज्वालाशिरोरुहः ।
[४]वज्रावेशो महावेशः शताक्षो वज्र[५]लोचनः ॥७॥

वज्रज्वालेति । [६]ज्ञानचण्डालीज्वलनाद्वज्रज्वालया आदर्शप्रतिसेनातुल्यया **करालं** दन्तुरं **अक्षि**मांसादिचक्षुर्महासुखदर्शनं यस्य स तथा । वज्रज्वालावदभेद्यतया शिरसि रोहतीति **वज्रज्वालाशिरोरुहः** । महासुखतया उष्णीषक्रमणाद् वज्रस्य ज्ञान-

---

१. ख. द. संक्लेश । २. ख. पञ्चवज्र । ३. क. ग. 'रणं' नास्ति । ४. ङ. वज्रवेशो । ५. ग. रोचनः । ६. ख. द. 'ज्ञान' नास्ति ।

वज्रस्य प्राणापाननिरोधेन ध्वननकम्पनादिनाधिष्ठानं तद्योगाद् **वज्रावेशः** त्रैधातुकमहामुद्राभिषेकदायीत्यर्थः। महासुखतया सर्वभावस्वभावत्वाद् **महावेशः**। सर्वदृष्टिरहिततया दिव्यस्पर्शसुखावत्त्यानु[1]भवज्ञानत्वात् **शताक्षः**। मांसादिचक्षुरादेः विश्वदर्शनाव्याहतदर्शनाद् **वज्रलोचनः** ॥ ७ ॥

वज्ररोमाङ्कुरतनुर्वज्र[2]रोमैकविग्रहः ।
वज्र[3]कोटिनखारम्भो वज्रसारघनच्छविः ॥८॥

वज्ररोमेति। सार्द्धत्रिकोटि[4]रोमाभ्यन्तरशुक्रवहनाडिकानामङ्कुरः प्रकृत्याभासः स एव तनुराभोगेण(तनुरनाभोगेन) ज्ञानाद्यस्य **वज्ररोमाङ्कुरतनुः**। **वज्रम**भेद्यज्ञानं तदेव रोमेव **रोम** निरन्तरोद्गमनाद् **एकम**द्वितीयं शरीरं **विग्रहो** यस्य स तथा। सहजाकाशतनुरित्यर्थः। वज्रकोटौ नखा इव रक्तश्वेतगुणयोगाद् नखाः सहजानन्दबिन्दवः, तैरारभ्यत इति **वज्रकोटिनखारम्भः**, ज्ञानकाय इत्यर्थः। **वज्रसारा** निर्विकारा **घना** निरन्तरा सुखत्वेन लम्बमाना **छविः** स्पर्शसुखात्मिका वज्रजिह्वानाडी यस्य स तथा ॥ ८ ॥

वज्रमालाधरः श्रीमान् वज्राभरण[5]भूषितः ।
हाहाट्टहासो निर्घोषो वज्रघोषः षडक्षरः ॥९॥

वज्रमालाधरेति। वज्रं पीठोपपीठादिशरीरस्थानं लयभोगादिक्रमेण सहजोत्पत्तिर्वज्रमालासहजबिन्दुमाला तां धरतीति **वज्रमालाधरः**। **श्रीमान्** [अ]द्वैतज्ञानी। सर्वाङ्गव्यापिपरमाक्षरसुखशुक्ररूपतया **वज्राभरणभूषितः**। दिव्याङ्गनालिङ्गनसंभूतसुखध्वनि**र्हाहा** अस्य **अट्टहासो** विकासो यस्य स तथा। निर्गतो बहिर्घोषा**न्निर्घोषः**, अन्तः सुखस्वयम्भूः सुखनाद इत्यर्थः। उक्तञ्च—

वियद्गंगातीरे तरणिशशभृन्मध्यवसतो
गुरोराज्ञालेशादुभयपवनः स्वतनुविधौ।
ययोर्योगे चित्ताद्यनुभवसुखस्वादरसिकाः
यमन्तर्वीक्षन्ते कमपि सुखनादः स जयति ॥
सूर्येन्दुद्युतिकर्बुरीकृतमहासन्ध्यानुबन्धिश्रियो
यस्यानुत्तरकाललालितजगत्तादात्म्यमापद्यते ।
यश्चाभासनि(ति)कामिनीसमरसक्रीडासुखैकध्वनिः
ज्ञानात्मा स तनुर्जयी विजयते सम्भोगकायो जिनः ॥

---

१. ख. भवज्ञत्वात्। २. ङ. लोमैक। ३. ग. कोटिर्नखा। ४. क. ख. रोमस्यान्तर, द. रोमान्तर। ५. छ. भूषणः।

तानि व्यञ्जनकानि ताश्च रुचयस्ते षोडशापि स्वराः
विस्फूर्ज्जन्ति च संहरन्ति च यतः संलीयमाना अपि।
आपातालतलोच्छलत्कलकलः सम्भोगभूमीश्वरो
ब्रह्मस्तम्भविजृम्भितो विजयते वज्री नभो दुन्दुभिः ॥ इति।

कायोऽपि सर्वाकाशव्यापि महासुखनादत्वाद् **वज्रघोषः**। षट्चक्रेषु अक्षरसुख-वेदनात् **षडक्षरः** ॥ ९ ॥

मञ्जुघोषो महानादस्त्रैलोक्यैकरवो महान्।
आकाशधातुपर्यन्तघोषो घोषवतां वरः ॥१०॥

इति आदर्शज्ञानगाथाः [1]पादेन सार्धं दश।

मञ्जुघोषेति। सर्वचक्रेष्वागतबिन्दुप्राणसन्मिश्रज्ञानविज्ञानैकलोलीभूतनादत्वाद् **मञ्जुघोषो** मञ्जुश्रीः। वज्रकमलकर्णिकाकाशगत[2]स्तथानादरूपत्वान्**महानादः**। **त्रैलोक्य**मालोकाद्याभासत्रयं शून्यातिशून्यैकैकीकरणात्। [3]आस्फानकसमाधिना **एकम**द्वितीयं तदेव[4]**रवः** सर्वशून्यप्रभास्वरं यस्य स तथा। अत एव **महान्**। चक्षुरादीनां निःस्वभावतया सर्वधर्माणां [5]**आकाशधातुपर्यन्तं** निष्ठा यस्य स **घोषः** सुखनादो यस्य स तथा। निःस्वभावता(तया) सर्वधर्माणां **घोषवतां वरः**, मणिवरटकोष्णीषवर्ती भगवान् सुखबिन्दुरिति ॥ १० ॥

हृद्गतप्राणवाहिनाडीसप्तकविण्मूत्रशुक्रशोणितवाहिनाडिचतुष्टक-
निरावरणताप्रतिपादकसपाददशश्लोक्या आदर्शज्ञानस्य
लोकोत्तरसत्यरूपस्कन्धवैरोचनमुखेन व्याख्या ॥७॥

---

१. च. पादोन। २. ख. द. तथागतसुखनाद। ३. ख. आस्फलक, ग. आस्थानक। ४. ख. रवैः। ५. क. बोधिपर्यन्तो, ग. बोधिरपर्य०।

प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्

तथताभूतनैरात्म्यभूतकोटिरनक्षरः ।
शून्यता[1]वादिवृषभो गम्भीरोदारगर्जनः ॥१॥

तथतेत्यादिना ज्ञानार्चिः [2]सुप्रभास्वर इति पर्यन्तेन द्व्याधिकचत्वारिंशच्छ्लोक्या सुविशुद्धसंज्ञास्कन्धामिताभद्वारेण प्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तुतिमाह—तथतेति । **तथता** वामदक्षिणवाहभङ्गेनावधूतीवाहः ।

उक्तञ्च—

नाडिकादिस्वभावेन देवतातत्त्वयोगतः ।
तासामेतत्परं शुद्धं स्वरूपं निःस्वभावता ॥

यत्प्रज्ञोपाययोरैक्यं सर्वाकारैकसंवरम् ।
सावधूती विधूतात्मा मध्यमाप्रतिपन्मता ॥

आदिमध्यान्तसंकल्पसम्बन्धानवधानतः ।
[3]शुद्धः स्फटिकसंकाशः [4]प्रकाशः सोऽवधूतिकः ॥

(प्र० श० ४५-४७)

सैव **भूतानां** पृथिव्यादीनां **नैरात्म्यं** आत्मात्मीयानुपलम्भः । तदेव **भूतकोटि**र्यथाभूतनिष्ठा यस्य स तथा तन्निष्ठ[5]सुख[6]स्वभाव इत्यर्थः । अच्युतकरुणारसपूर्णत्वा**दनक्षरः** । [7]कायवाक्चित्तनिरोधेन स्वसंवेद्यसुखप्राप्तिः शून्यता, तत्प्रकाशनात् **शून्यतावादी** । सर्वमारारिविध्वंस[8]धुरन्धरत्वाद् **वृषभः** । एकपदं वा । **गम्भीरोदार**स्य शून्यताकरुणाभिन्नस्य [9]सुखस्य **गर्जन**मुल्लासो यस्य स तथा । तथा च **विमलप्रभा[या]** [10]"शून्यस्य भावः शून्यता अतीतानागतं ज्ञेयं शून्यं, तस्य दर्शनं भावः शून्यता" । गम्भीरोदाराऽतीतानागताभावाद् गम्भीरा । अतीतानागतदर्शनादुदारेति ॥ १ ॥

धर्मशङ्खो महाशब्दो धर्मगण्डी महारणः ।
अप्रतिष्ठितनिर्वाणो दशदिग्धर्मदुन्दुभिः ॥२॥

---

१. ख. वादी० । २. क. सुभास्वर । ३. ख. ग. शुद्ध । ४. ख. प्रकाश, भो. Rab Byed (प्रकरणः) । ५. ख. सुखं । ६. क. ख. स्वस्वभाव । ७. भो. 'काय' नास्ति । ८. क. ग. पुरन्धर । ९. ख. 'सुखस्य' नास्ति । १०. क. ग. शून्यता स्वभावः, द. शून्यभाव ।

धर्मशङ्खेति। धर्मोदयोद्[1]भूतत्वात् प्रतिश्रुत्कोपमधर्मदेशनाच्च **धर्मः**, शङ्खवन्निर्मलत्वाच्च **शङ्खः**। महासुखबिन्दुमयो मनोराजः। पद्मान्त[2]राळेन नासिकायां वज्रोद्भवं क्षीरसमुद्ररूपं चिन्तामणिं सर्वजगत्स्वभावं श्रीहेरुकं [3]वेद्मि महासमुद्रमित्युक्तेः। बुद्धत्वदायकनिःस्वभावसुखनादरूपत्वान्**महाशब्दः**। सकलसुखमयवाग्वज्रसमाधिविस्फारितसर्वधर्मप्रकाशकधर्मज्योति(ती)रूपत्वाद् **धर्मगण्डी**। अनुपमसुखनाद[4]धर्मरणनान्**महारणः** विरमानन्दः संसारत्वात् [5]प्रतिष्ठितः। [6]मण्यग्रात्पतनान्निर्वाणं तदभावान्न विद्यते **प्रतिष्ठितञ्च निर्वाणञ्च** यस्य स तथा। अनुत्तरानन्दधर्म[7]सुखकोषकल्याणप्रकाशनाद् **दशदिग्धर्मदुन्दुभिः** ॥ २ ॥

अरूपो रूपवानग्र्यो नानारूपो मनोमयः।
सर्वरूपावभासश्रीरशेषप्रतिबिम्बधृक् ॥३॥

अरूपेति। आकाशनिष्ठतया सर्वचित्तचैतसिकाविद्याप्रतिभासनिरोधान्न विद्यते प्रकृतिस्वरूपातिरिक्तं **रूपं** यस्य स तथा। धर्मकायरूपकायैकलोलीभावादनाविलरूपत्वाद्**रूपवान्**। हृदयसुखकरसूर्यमण्डला[8]धारत्वेन सर्वमारप्रमथनशीलत्वाद**ग्र्यः**। द्वासप्ततिनाडीसहस्रेषु प्रकृतिरूपेण सुखधर्मधातुरूपनिस्पन्दरूपत्वान्**नानारूपः**। एकक्षणाभिसंबोधिरूपत्वान्**मनोमयः**। निरासङ्गतया पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशचक्षुःश्रोतघ्राणजिह्वाकायमनसां प्रत्यात्मवेद्यतया प्रतिभासनात् **सर्वरूपाव**[10]**भासश्रीः**। विश्वबिम्बदर्शनेन कृष्णरेखायामनन्तान[11]न्तज्ञानकायाभिन्नसम्भोगकायप्रतिभासनाद् **अशेषप्रतिबिम्बधृक्**। उक्तञ्च—

[12]यद्धेमरूप्यमणिशङ्खशिलाप्रबाल-
वैडूर्यताम्ररजतादिषु संस्थितश्च।
तत्रैक एव हि शशी गगनोदरान्त-
र्व्यावर्तमान [13]वपुषा प्रति[14]भाति यद्वत् ॥

एवं स नाथः खलु चित्तवज्रो नानाविधस्तिष्ठति जन्तुवर्गे।
स चाव्ययः [15]स्वात्मनि विश्वरूपो मायामयो व्याप्तसमस्तलोकः ॥ इति ॥३॥
(स्वा०प्र० ५६-५७)

---

१. क. ख. भूतत्वा। २. ग. द. ०राले नर नासि०। ३. ग. संबोध्य। ४. भो. Śes Rab Chos Grogs Phyir (प्रज्ञाधर्मरणनात्)। ५. भो. Mi gNas Paḥo (अप्रतिष्ठितः)। ६. क. रत्नाग्रात्, ख. रत्नाग्रोपेत, द. रत्नाग्रोपेतत्वात्। ७. क. ग. सुखै। ८. ख. ग्रो। ९. ख. धारणत्वेन। १०. क. भाष०। ११. क. ख. ग. ०तानज्ञान०। १२. क. ख. यद्देव। १३. ग. वपुया। १४. ख. 'भाति' नास्ति। १५. ख. द. 'स्व' नास्ति।

अप्रधृष्यो महेशाख्यस्त्रैधातुकमहेश्वरः ।
समुच्छ्रितार्यं[1] मार्गस्थो धर्मकेतुर्महोदयः ॥४॥

अप्रधृष्येति । सर्वविकल्पासंहार्यत्वाद**प्रधृष्यः** । अद्वयपुण्यज्ञानसम्भारनिष्ठा-रूपत्वान्**महेशाख्यः** । **त्रैधातुकं** धर्मसंभोगनिर्माणाख्यं तत्र **महेश्वरो** ज्ञानकायः । समुच्छ्रितोऽत्युच्चो विकल्परहितत्वात् आर्यः । [2]मृग्यते इति मार्गः षट्चक्र[3]कमल-कर्णिका तत्र महासुखरूपतया स्थितत्वात् **समुच्छ्रितार्यमार्गस्थः** । मणि[4]वरटके सकल-क्लेशविजयित्वाद्धर्मस्य तत्त्वरत्नस्य केतुरवाच्यसुखत्वाच्च ध्वजः **धर्म[5]केतुः** । धर्मसुखा-द्वैततया आकाशधातुस्थामेयबुद्धबिम्बानन्तप्रतिभासतया **महानुदयः** [6]सुखस्य समुल्लासो यस्य स तथा ॥ ४ ॥

त्रैलोक्यैककुमाराङ्गः स्थविरो वृद्धः प्रजापतिः ।
द्वात्रिंशल्लक्षणधरः कान्तस्त्रैलोक्यसुन्दरः ॥५॥

त्रैलोक्यैककुमाराङ्गेति । त्रैलोक्यं कायत्रयम्, तदेकस्तदभिन्नो महासुखकायः, स एव कुमारो धर्मधातुरूपेण विकाराभावात्, स एवाङ्गं सर्वोत्पत्तिहेतुर्यस्य स [7]**त्रैलोक्यैककुमाराङ्गः** । दिव्यमुद्रासमुद्भूतसुखरूप इत्यर्थः । पूर्वोक्तमुद्राप्रकर्षगतत्वात् सर्वसिद्धिज्येष्ठत्वाच्च **स्थविर** इत्युच्यते, महाराजसमाधिक्रमेण । बुद्धज्ञानमयत्वाद् **वृद्धः** । ज्ञान[8]प्रबोधेन तुर्यातीतप्रभास्वरमयज्ञानबिम्बमयत्वेन सर्वजन्तूनामुत्पादनात्प्रजानां जन्तूनां पतिः **प्रजापतिः** । शुक्लप्रति[9]पदादिपञ्चदशकलातिक्रान्तषोडशकलाद्येकलक्षण-रूपत्वात् द्वात्रिंश[10]ल्लक्ष्यन्त इति लक्षणानि तानि धरतीति **द्वात्रिंशल्लक्षणधरः** । संवृति-विवृतिक्रमेण षोडशानन्दद्वयधारणाद्वा तथा । सर्वधर्मैकरसत्वेन सर्वजनाभि[11]लषणीय त्वात् **कान्तः** । स्वाधिष्ठानस्फुटीभावेन(ना)सेचनकरूपत्वात् त्रैलोक्येन काय (त्रिलोक्येव त्रैलोक्यं) **त्रैलोक्य**त्वेन **सुन्दरः** । उक्तञ्च—

द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ता अशीत्यनुव्यञ्जनी प्रभुः ।
योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः ॥
(हे० त० २. २.४१)

ततश्च महता तेन सर्वसत्त्वानुकम्पया ।
कृतं नैर्माणिकं कायं द्वात्रिंशद्वरलक्षणम् ॥

---

१. ख. मान० । २. क. ग. मार्ग्यंत । ३. भो. 'कमल' नास्ति । ४. ख. वरटका । ५. ग. हेतुः । ६. ख. द. सुखसमु० । ७. क. त्रैलोक्यकुमा० । ८. क. ग. प्रबोधे । ९. क. ग. पदानि । १०. ग. लक्षं तु, द. क्षन्तु । ११. ख. द. लाषणीय ।

बिना तेन न सौख्यं स्यात् सुखं हित्वा भवेन्न सः।
शुक्राकारो भवेद् भगवान् तत्सुखं कामिनी स्मृतम् ॥
(हे० त० १. ८. ५०)

न तत् प्रत्येकबुद्धानां श्रावकाणाञ्च गोचरम्।
गोचरं बुद्धपुत्राणां वज्रपद्मोद्भवं पदम् ॥ इति।

पुनश्चोक्तम्—

पञ्चबुद्धात्मकं सर्वजगोऽयं [1]पश्यतु कु(सु)नाटकदिव्यं।
[2]एहू (कू) सो परममहासुखनामा नृत्यति एकमनेकरसेन ॥ इति ॥ ५ ॥

लोकज्ञानगुणाचार्यो लोकाचार्यो विशारदः।
नाथस्त्राता त्रिलोकाप्तः शरणं तायी [3]निरुत्तरः ॥६॥

लोकज्ञानेति। लोकानां चक्षुरादीनां ज्ञानं निरावरणप्रतिभासस्तस्य गुणः पञ्चकामोप[4]भोगेन संसार[5]दोषाऽनुपलेपस्तस्याचार्य उपदेष्टा **लोकज्ञानगुणाचार्यः**। यथाभव्यतया चतुर्थाभिषेकपर्यन्तदानाल्**लोकाचार्यः**। नानारूपस्फरणेन जगदर्थकरणा[6]विरामाद्**विशारदो** निर्भयः, अभेद्य[7]सुखज्ञान इत्यर्थः। [8]अद्वययोगेन सुस्थितत्वान्**नाथः**। **त्राता** परमार्थत्राणीयसंवृतिसत्यैकरूपतया सदाऽच्युतरूपत्वात्त्राता। सर्वाकारशून्यताप्रकाशरूपत्वेन च्यवनसुख[9]ग्रहग्रस्तानां निर्मलज्ञानोपदेशोपस्थितोऽपि त्रैलोक्य आप्तः, पञ्चकामोपभोगेऽपि क्षीणदोषः **त्रिलोकाप्तः**। पञ्चभूतानां महासुख[10]निष्ठीकरणात् **शरणं**। [11]तायी सुखमयज्ञानसन्तानः तस्यानुपच्छेदेन [12]योगात्**तायी**, सनातनश्चतुर्लक्षण[13]रूप इत्यर्थः। त्रैलोक्यव्यापकसहजानन्दरूपत्वान्**निरुत्तरः** ॥ ६ ॥

[14]गगनाभोगसम्भोगः सर्वज्ञज्ञानसागरः।
अविद्याण्डकोश[15]संभेत्ता भवपञ्जरदारणः ॥७॥

गगनेति। गगनं कमलकुलिशसंयोगे वरटका[16]काशदेशस्तस्याभोगो विस्तारस्तत्र सम्यग्भोगोऽद्वयसुखभुञ्जनं यस्य स तथा, स **गगनाभोगसंभोगः**। कायवाक्चित्तप्रहाणात्मकमहावज्रधरज्ञानरत्नाकरत्वात् **सर्वज्ञज्ञानसागरः**। [17]**अविद्या** संसारवासना सैवा**ण्डकोषो** जगदुत्पत्तिहेतुत्वात्। तस्य **सम्भेत्ता** महासुखैकतापादकः। भवः कायवाक्-

---

१. ख. पश्यतु चित्त, ग. पश्यन्तु, द. पश्यकु। २ ख. एइसो, ग. एफूसो, द. एइसा। ३. क. ख. अनुत्तरः। ४. क. भोगेण। ५. ख. दोषणायलेप०। ६. क. ख. द. विरागा०। ७. क. ग. 'सुख' नास्ति। ८. द. अभय। ९. ख. ग्रहस्तानां। १०. ख. निष्ठा। ११. क. तायः। १२. क. योगो। १३. द. रूपलक्षग। १४. च. गगनभोग। १५. क. ख. भेत्ता। १६. क. काशस्तस्या०। १७. ख. अविद्याण्ड।

चित्त[1]स्वरूपापरिज्ञानं स एव [2]पञ्जरोऽनिर्गमहेतुत्वात् । तद्दारयतीति **भवपञ्जरदारणः** ॥ ७ ॥

शमिताशेष[3]संक्लेशः संसारार्णवपारगः ।
ज्ञानाभिषेकमुकुटः सम्यक्संबुद्धभूषणः ॥८॥

शमितेति । शमिता निरावरणतां नीता **अशेषाः** सवासनाः **संक्लेशा** अविद्यादिद्वादशाङ्गानि येन स तथा, पञ्चकामवशीकृतः । पञ्चोपादानस्कन्धाः संसारः, स एवार्णवः रागादिव्याकुलत्वात्, तस्य पारं निरावरणस्कन्धादिप्रतिलम्भस्तत्र गच्छतीति **संसारार्णवपारगः । ज्ञानं** चतुर्थानन्दरूपम्, तदेवा[4]भिषिच्यते निरावरणीक्रियते स्कन्धधात्वादिकमनेनेत्य**भिषेक**श्चतुर्थो बिन्दुस्स एव बिन्दु**र्भूषण**मस्य स तथा, **सम्यक् संबुद्धान्** वा भूषयतीति तथा । अनेन चतुर्थाभिषेकरूपो भगवान् उक्तः । उक्तञ्च—

कर्ममुद्राप्रसङ्गेऽपि [5]ज्ञानमुद्रानुरागिणे ।
रक्षणीयं महासौख्यं बोधिचित्तं दृढव्रतैः ॥
अनेन रक्षितेनैव बुद्धत्वमिह जन्मनि ।
शीलसम्भारसम्पूर्णं पुण्यज्ञानसमन्वितम् ॥
दश पारमिताः प्राप्ताः [6]सम्बुद्धास्त्र्यध्ववर्तिनः ।
अनेन सर्वसंबुद्धैर्धर्मचक्रं प्रवर्तितम् ॥

वातैः संघट्टमानैस्तडिदनलशिखा द्रावयेन्मूर्ध्नि [7]चन्द्रं
यो यो बिन्दुर्द्रुतोऽस्माद्गलहृदयगतो नाभिगुह्ये निरुद्धः ।
बिन्दोः स्पन्दद्रवं यत् कुलिशमणिगतं सन्निरुद्धं ध्वजाग्रे
प्रज्ञा[8]ज्ञानक्षणं [9]तद्यदि ददति सुखं बिन्दु[10]मालाच्युतेन ॥
(का० त० ५.७५)

जाग्रत्स्वप्नस्वरूपं पुनरपरमिदं सुप्ततूर्यस्वभावं
काय[11]स्थं श्वासलीनं विचरति विषयान् निश्चलं चित्तलीनम् ।
ज्ञानस्थं स्त्रीप्रसङ्गात् क्षणमपि च भवेद् बोधिचित्ते[12]द्रुते च
निर्माणादेः क्रमेण प्रभवति नियतं चित्तवज्रश्चतुर्द्धा ॥

---

१. ख. द. 'स्व' नास्ति । २. क. ग. द. पञ्जरो निर्गम । ३. क. संक्लेश । ४. ख. ०भिरुच्यते । ५ ग. कर्म । ६. क. ख. संबुद्धः । ७. ख. ग. द. चक्रं । ८. क. ज्ञानं, ख. ज्ञाने । ९. ख. यद्यदि । १०. क. माना । ११. ख. स्था । १२. क. ख. ग. द्रुतेन ।

एवं चित्तं चतुर्धा [1]त्रिविधभवगतं प्राणिनां बिन्दुमध्ये
योगीन्द्रैः रक्षणीयं स(श)मसुखफलदं व्यापकं मोक्षहेतोः।
बिन्दोर्मोक्षे क्व मोक्षो गतपरम[2]सुखे योगिनां जन्मबीजे
तस्मात्संसारसौख्यं क्षण इह यतिभिः सर्वदा वर्जनीयः ॥ इति।

(का० त० ५.१२५-१२६)

समाजे चोक्तम्—

पतिते बोधिचित्ते तु सर्वसिद्धिनिधानके।
मूर्च्छिते स्कन्धविज्ञाने कुतः सिद्धिरनिन्दिता ॥

विमलप्रभायां च—

क्षरति प्रज्ञासंगे यस्य सितं तस्य केन सुखवृद्धिः।
कुसुमं वसन्तसमये पतति फलं केन चूतस्य ॥ इति।

(वि० प्र० १, पृ० ५)

श्रीज्ञानवज्रसमुच्चययोगतन्त्रे च—

सर्वासा[3]मेव मायानां स्त्रीमायैव [4]प्रशस्यते।
ज्ञानत्रयप्रभेदोऽयं स्फुटमत्रैव लक्ष्यते ॥ इति।

(अनु० सं० ३६)

उक्तञ्च—

आलोकरात्रि[5]भागः स्फुटरविकिरणः स्याद्दिवालोकभासः
सन्ध्यालोकोपलब्धिः प्रकृतिभिरसकृद्युज्यते स्वाभिरेव।
नो रात्रि[6]र्नैव सन्ध्या न च भवति दिवा यः प्रकृत्या विमुक्तः
सः स्याद् बोधिक्षणोऽयं वरगुरुकथितो योगिनामेव गम्यः ॥

नैशं ध्वान्तं विनष्टं व्यपगतमखिलं [7]सान्ध्यतेजश्च यस्मिन्
भास्वान्नोदेति यावत् [8]क्षण इह विमले दर्शयेद् भूतकोटिम्।
शिष्यायाचार्यमुख्यो विनि[9]हततिमिरो[10]बाह्यसम्बोधिदृष्ट्या
प्राप्नोत्यध्यात्मसौख्यं किमपि पदवरं बुद्धबोधिक्षणेन ॥ इति।

अन्यत्र च—

योगाचाराभिसंबोधिर्मण्यन्तःसुखसाधनम् ।
मध्यमकाभि[11]संबोधिश्च्युत्यन्ते च विलक्षण ॥ इति।

---

१. ख. त्रिभयभव। २. ख. सुखि। ३. च० गी० को०, पृ० ५३ खलु। ४. च० गी० को०, पृ० ५३ विशिष्यते। ५. ख. भागो। ६. ख. न्निव। ७. ख. द. साध्य। ८. क. ख. क्षणः। ९. क. हित। १०. ग. वाक्य। ११. क. संबोधि।

एवमुभयोर्व्यति[1]भिन्नं एकलोलीभूतं परमाक्षरसुखलक्षणं चतुर्थमित्युच्यते।
उक्तञ्च—

आचार्यो गुह्यप्रज्ञा च [2]चतुर्थं फल[3]रूपता।
तदेतेषु कथं नाम महान्तो [4]विप्रतिपेदिरे॥
परमविरमयोर्मध्य[5]लक्षं(क्ष्यं) ये प्रति[6]जानते।
शब्दस्य संगतिं यत्नात्कुर्वन्ति यदि नाम [7]ते॥

न तेषामिह सेकोऽयं चतुर्थो घटते पुनः।
तृतीयं फलरूपत्वाद् निष्पन्नं [8]चेत्स्वरूपतः॥
[9]आदौ कार्यस्य निष्पत्त्या पश्चाद्धेतुनात्र किम्।
सेकोऽयं दर्शित[स्त]स्य सिद्ध्यर्थं नान्यहेतुना॥
तस्य चेदग्रतः सिद्धिः किमर्थं स पुनर्भवेत्।
फलस्य यदि निष्पत्तौ पश्चात्सेकोऽभिधीयते॥
आश्वास-प्रभेदोऽत्र बुद्धवज्र[10]धरयोः कथम्।
पूर्ववज्रधराश्वासः पश्चाद् बुद्धस्य चेद् भवेत्॥
एवं हेतोः फलस्यापि [11]व्यक्तता केन [12]वार्यते।
गाथाया अनुरोधेन द्वयोर्मध्ये भवेद्यदि॥
[13]लक्ष्यं नैवान्यथार्थत्वाद् गाथाया इव तत्त्वतः।
लक्ष्यस्यैवानुरोधेन गाथार्थो युज्यते पुनः॥

न हि गाथानुरोधेन लक्ष्यमन्यत्र नीयते।
श्रीसमाजेऽथ हेवज्रे भेदो नास्तीह तत्त्वतः॥
साधनस्य तु भेदेन भेदास्तत्रोपवर्णिताः।
तत्र सेकास्त्रिधा प्रोक्ता इति चेल्लोकत[14]स्तु सः॥
लोकोत्तराभिषेकस्तु प्रोक्तोऽपि न स्फुटीकृतः।
प्रज्ञाज्ञानाभिषेकेण ज्ञातव्यः स चतुर्थकः॥
इत्येवं निपुणं ज्ञातुं सेवितव्यो हि सद्गुरुः।
तस्मात् कदाचित्संगत्या [15]लक्ष्यं मध्ये वदन्ति ये॥

---

१. भो. dByer Med Pa (अभिन्नं)। २. क. चतुर्थपील०, ख. चतुर्थस्फल। ३. क. रूपतः। ४. ख. प्रतिष्ठेदिति। ५. क. लक्षये, ख. द. ०येत्। ६. ख. द. जयते। ७. ख. द. हे। ८. ग. च स्वरूपतः। ९. भो. hBras Bu Dan Por (आदौ फलस्य)। १०. ग. धरः। ११. क. द. व्यस्तता। १२. क. वाच्यते, द. धारयते, भो. Chol Ba (व्यक्तिक्रमत)। १३. क. लक्ष। १४. ख. त। १५. क. लक्ष्यां।

तथाप्यागम[1]युक्ति[2]भ्यामन्त एव न संशयः।
सहजस्यान्तर्भावित्वाद् गाथायाः संगतिः कथम् ॥
क्रियते चेन्न दोषोऽयं गाथार्थ[3]स्यास्ति संगतेः ॥

सहजानन्दयोर्मध्ये परमविरमौ यदाऽऽनन्दसहजानन्दापे[4]क्षया मध्ये परमविरमौ [illegible] तदा परमविरमयोरित्यादिना [5]चानादरे षष्ठीविधानात्। भावनादृत्येति वा [illegible]निति चतुर्थं वीक्ष्य दृढ़ीकुरु। **श्रीहेवज्रेऽष्टमपटले** "विरमान्तं पुनस्तथा" (१.८.२४) इति वचनात्। विरमस्यान्तःसहज इति स्फुटमवगम्यत एव, तथा सुरता[6]नन्दं समस्तं वैतत्सुखोपायः सर्वविदिति, अतिसंगतमेव। एतदानन्दत्रयं सहजहेतुभूतसुरतानन्द-[illegible] तदानन्दत्रयसुखस्वरूपमुपायो हेतुः। साक्षात् परम्परया अस्य [7]सहजात् सर्ववित् सहजानन्दस्वरूपकः। उक्तञ्च—

विरमानन्दो (मेन) विरागः स्यात् सहजा[8]नन्दं शेषत ॥ इति।

(हे० त० १.८.३२)

विशिष्टो रागो विराग आलोचनरूपो[9]ऽनुभूतसुखविकल्परूप इति यावत्। तथा तृतीयं रागनाशत्वाच्चतुर्थं तेन भाव्यते। तथा—

परमानन्दं भवं प्रोक्तं निर्वाणं च विरागतः।
मध्यमानन्दमात्रं तु सहजमेभिर्विवर्जितम् ॥ इति।

(हे० त० १.८.३४)

परमानन्दः सांक्लेशिकसुखभोगलक्षणत्वाद् भवः संसारः। विरमानन्द-स्यालोचनात्मकतया सांक्लेशिकरागनाशत्वान्निर्वाण[10]रूपत्वम्। मध्यमानन्दमात्रं मध्यमं [11]सुखसामान्यरूपत्वात्। एभिः त्रिभिरानन्दैर्विवर्जितं सहजं फलमित्यर्थः। तथा—

न रागो न विरागश्च मध्यमा(मं) [12]नोपलभ्यत ॥ इति।

(हे० त० १.८.३५)

रागः परमानन्द [13]आसक्तिलक्षणत्वात्। सुखविकल्पतया विशिष्टत्वाद्विरागो विरमानन्दः। [14]मध्यमामध्यमसुखमात्रं प्रथमानन्दः। नोपलभ्यत इति। एतत् त्रयं [15]सहजत्वेन नोपलभ्यत इत्यर्थः।

---

१. द. युक्ति वा। २. क. ख. भ्यां मन्त्र। ३. क. ख. ग. स्याति। ४. द. क्षयोर्म। ५. क. ख. ग. नानादेव। ६. ख. नन्द तु। ७. ख. द. 'सहजात्' नास्ति। ८. क. ख. नन्दं तु। ९. क. ग. ऽनुद्धृत। १०. क. रूपत्वां, ग. रूपत्वात्। ११. क. सुखं। १२. भो. dMigs Su Med Pa (नोपलम्भतः)। १३. क. आशक्ति। १४. क. मध्यममध्यम। १५. क. ग. सहत्वेन।

विरमादौ लक्षयेत् तच्च आनन्दत्रयवर्जितम् ॥ इति ।

(हे० त० १.१०.१८)

तत् सहजं विरम आदिर्यस्य तत्र सहजं लक्षयेदित्यर्थः । तथा—

परमान्तमध्य[1]विरमश्च शून्याशून्यं तु हेरुकम् ।

(हे० त० २.५.७०)

परमान्त एव मध्यश्चासौ विरमश्च सहजापेक्षया हेतुरुक्तः । शून्याशून्यं शून्यताकरुणाभिन्नं फलं सहजमित्यर्थः । ये [2]तु विरमं विरागं विरक्तिलक्षणं वर्णयित्वा परमविरमयोर्मध्ये लक्ष्यं सहजमेव समर्थयन्ति, तेषां मतेन क्रमयोजिताऽनन्दचतुष्टयानां गाथानाम्—

प्रथमानन्दमात्रन्तु परमानन्दं द्विसंख्यतः ।
तृतीयं विरमाख्यं च चतुर्थः सहजः स्मृतः ॥

(हे० त० १.१०.१३)

विचित्रे प्रथमानन्दः परमानन्दो विपाकके ।
विरमानन्दो विमर्दे च सहजानन्दो विलक्षणे ॥

आचार्यगुह्यप्रज्ञा च चतुर्थं तत्पुनस्तथा ।
[3]आनन्दाः [4]क्रमशो ज्ञेयाः चतुः सेचनसंख्यया ॥

(हे० त० २.३.९-१०)

कामानन्दं तु कम्पाक्षरमपि च चतुष्केण योगः स एकः
पूर्णः शक्त्युद्भवो वै भवति च परमानन्द एव द्वितीयः ।
ज्वालाबिन्दुश्च घूर्मा पुनरपि विरमानन्द एव तृतीयः
ओद्रानादश्च निद्रा भवति च सहजानन्द एव चतुर्थः ॥

(का० त० ३.१२४)

इत्येवमादीनां कथमर्थो व्याख्यायते ?

प्रथमानन्दमात्रं तु परमानन्दं द्विसंख्यतः ।
तृतीयं विरमाख्यं तु (च) चतुर्थः [5]सहजं स्मृतम् ॥

(हे० त० १.१०.१३)

तथा—

शून्यं चैवातिशून्यं च [6]महाशून्यं तृतीयकम् ।
चतुर्थं सर्वशून्यं च फलहेतुप्रभेदतः ॥

---

१. क. विरमस्य । २. क. सु निरमं । ३. क. ख. आनन्दाद्याः । ४. द. क्रमज्ञेयाः । ५. क. सहजा, ख. सहज । ६. ख. 'महा' नास्ति ।

[illegible]न्वयग्रन्थस्तु पृथग्जनेन [न कृत इत्या[1]स्थेयमिति ।

कुम्भो गुह्याभिषेकस्तु प्रज्ञा[2]ज्ञानाभिषेकतः ।
पुन[3]रेव [4]महामुद्रा तस्या ज्ञानाभिधानकः ॥

क्षरः(रोऽ)क्षरस्ततः [5]स्पन्दो निस्पन्दश्च ततोऽपरः ।
कायवाक्चित्तसंशुद्धया अभिषेकत्रयं क्रमात् ॥

चतुर्थो ज्ञानसंशुद्धिः कायवाक्चित्त[6]शोधकः ।
बालः प्रौढ[7]स्तथावृद्धश्चतुर्थस्तु प्रजापतिः ॥

प्रज्ञास्तनाङ्गसंस्पर्शो बोधिचित्तच्युतं सुखम् ।
पयोधराभिषिक्तः स बालः [8]प्रोक्तो यतः सुखम् ॥

गुह्यस्फालाच्चिराज्ज्ञानं(जातं) बोधिचित्तच्युतं सुखम् ।
प्रौढ़ो गुह्याभिषिक्तः स गुह्यात्प्राप्तो यतः सुखम् ॥

गुह्यास्फालचिराज्जातं वज्राग्रे स्पन्दतः सुखम् ।
प्रज्ञाज्ञानाभिषिक्तः स वृद्धः स्पन्दं गतो यतः ॥

महामुद्रानुरागाद् [9]यज्जातं निस्पन्दतः सुखम् ।
महाप्रज्ञाभिषिक्तः स यतो निःस्पन्दतां गतः ॥ इति ।

प्रजापतिः स विज्ञेयो जनकः सर्वतायिनाम् ।
वज्रसत्त्वो महासत्त्वो बोधिसत्त्वोऽद्वयोऽक्षरः ॥
असौ समयसत्त्वः स्याद्वज्रयोगश्चतुर्विधः ॥

[10]इत्यपि सहजातनियमः सहजानन्दश्चतुर्थाख्य इति । उक्तञ्च —

सहजाणन्द चउट्ठओ सो की बुच्चण जाई ॥ इति **सरहपादः** ।
(दो० को० पृ. २६)

सहजाणन्द च चतुक्खण णिअ सम्वेअण जा[ण] ॥

इति **लीलावज्रश्चेति** ॥ ८ ॥

त्रिदुःखदुःख[11]ग(श)मनस्त्र्यन्तोऽनन्तस्त्रिमुक्तिगः ।
सर्वावरण[12]निर्मुक्त आकाशसमताङ्गतः ॥९॥

---

१. क. हूयमिति, द. प्तेयमिति । २. भो. Ye Ses rJod Byed Can (ज्ञानाभिधायकः) । ३. ख. रेव च । ४. भो. Śes Rab Chen Po (महाप्रज्ञा) । ५. ख. स्पन्द । ६. ख. शोध, भो. sPyod Byed Paho (चारिकः ?) । ७ क ग. ततो । ८. क. प्राप्तो । ९. द. यज्ज्ञानं । १०. ख. द. इत्यर्थः । ११. सर्वत्र–शमनः । १२. क. ख. विनिर्मुक्त ।

त्रिदुःखेति। **त्रीणि** कायवाक्चित्तानि षष्ट्युत्तरशतप्रकृतिपरतन्त्रतया **दुःखानि**, तेषां यद्**दुःखं** स्वरूपानवबोधस्तस्य प्रज्ञोपाय[1]ज्ञानबलेन [2]**गमनः** [3]गमकः (शमनः, शमकः) अत एव [4]**त्र्यन्तश्चतुर्थः**। **अनन्तो** युगनद्धवाही सर्वविकल्पवायूनां निरोधे अप्रतिष्ठित-निर्वाणत्वात्। त्रिभ्यो रागद्वेषमोहेभ्यो मुक्तिं गच्छतीति **त्रिमुक्तिगः**, **सर्वावरणविनि-र्मुक्तश्च**, प्रकृतिप्रभास्वरतया **आकाशसमतां गतः** ॥ ९ ॥

सर्वक्लेशमलातीतस्त्र्यध्वानध्वगतिं गतः ।
सर्वसत्त्वमहानागो [5]गुणशेखरशेखरः ॥१०॥

सर्वविश्वबिम्बदर्शनेन सकलक्लेशाप[6]सरणात् **सर्वक्लेशमलातीतः**। धर्मधातु-(त्व)क्षयत्वेन अतीतानागतवर्तमानकालगतिरहितत्वात् **त्र्यध्वानध्वगतिं गतः**। सर्वाकारा[7]द्वयदर्शनात् **सर्वसत्त्वानां महानागो**ऽनन्तक्लेशसंग्रामविजयित्वेन। यावदिष्टा-धिगमधर्मलाभी(लाभिनः) **गुणशेखरा** गुणचूडामणयो बुद्धा भगवन्तस्तेषां **शेखरः** श्रीसहजबिन्दुः ॥ १० ॥

सर्वोपधिविनिर्मुक्तो व्योमवर्त्मनि सुस्थितः ।
महाचिन्तामणिधरः सर्वरत्नोत्तमो विभुः ॥११॥

सर्वोपधीति। धर्मार्थकाममोक्षविकल्पै[8]रकल्पितत्वात् प्रत्याहाराङ्गस्फुटीभावेन मांसादिचक्षुषां सर्वाकारशून्यता [विश्व] बिम्बदर्शनात् अन्येषां सत्त्वानां शून्यतादर्शनं प्रति जात्यन्धवत् [9]**सर्वोपधिविनिर्मुक्तः**। अत एव **व्योमवर्त्मनि** शून्यतायां **सुस्थितो**ऽ-विकल्पयोगेनावस्थितः। उक्तञ्च—

आकाशभावनैषा यदुत प्रज्ञापारमिता भावना ॥ इति।

महाचिन्तामणिधरः सर्वाभिलषितार्थसिद्धिदत्वात् सहज[10]बिन्दुधरः, निःस्वभाव-सहजप्रज्ञापारमितास्वभाव इत्यर्थः। **सर्वसत्त्वानां** कायवाक्चित्तबिन्दूनां **उत्तमो**-ऽनुत्तररतिदायकत्वात्। अत एव **विभु**[11]र्व्यापकः ॥ ११ ॥

महाकल्पतरुः स्फीतो महाभद्रघटोत्तमः ।
सर्वसत्त्वार्थकृत्कर्ता हितैषी सत्त्ववत्सलः ॥१२॥

[12]**महाकल्पेति**। लोकोत्तराभिलषितार्थसिद्धिदत्वान्**महाकल्पतरुः**। **स्फीतः** समृद्धः। भद्रघटातिशयत्वाद् **महाभद्रघटोत्तमः**। अत एव **सर्वसत्त्वार्थकृत्**। अनाभोगेन

---

१. द. समाधिबलेन। २. क. गगणः। ३. द. 'गमकः' नास्ति। ४. क. अन्तश्च। ५. च. गुणशेखरः शेखरः। ६. द. हरणात्। ७. क. द्वय। ८. क. ग. रकम्पितत्वात्। ९. ग. सर्वोपाधि। १०. द. वज्रधरः। ११. क. ग. व्यापिका। १२. क. ख. ग. 'महाकल्पेति' नास्ति।

सर्वसत्त्वसुखकरधर्मदानात् **कर्ता**। हितमायतिसुखमेषितुं शीलं यस्य स **हितैषी**। जगदेकानुकम्पनत्वात् **सत्त्ववत्सलः** ॥ १२ ॥

शुभाशुभज्ञः कालज्ञः समयज्ञः समयी विभुः ।
सत्त्वेन्द्रियज्ञो वेलज्ञो [1]विमुक्तित्रयकोविदः ॥१३॥

शुभेति। [2]शुभञ्चाशुभञ्च महासुखरूपेण जानातीति **शुभाशुभज्ञः**। कालं महासुखबोधिक्षणं जानातीति **कालज्ञः**। कायवाक्चित्तज्ञानात्मकं **समय**चतुष्टयं **जानातीति** तथा। तदुक्तं **वज्रपाणिपादैः**—"प्रज्ञाचुम्बनेनानन्दक्षणो भवति, स च कायसमयः। पद्मे वज्रप्रवेशेन परमानन्दक्षणो वाक्समयः। पद्मे वज्रस्फालनेन विरमानन्दक्षणः चित्तसमयः। वज्रमणौ बोधिचित्तेनागतेन सहजानन्दक्षणो ज्ञानसमयश्चतुर्थः"। अत एव **समयी**। तद्रूपत्वाल्लौकिकलोकोत्तरार्थव्याप्तिरूपत्वाद्**विभुः**। चतुरानन्दक्षणभक्षितसर्वसत्त्वेन्द्रियपरिज्ञानात् **सत्त्वेन्द्रियज्ञः**। अनाभोगेनैव [3]धर्मदानादि**वेलां जानातीति** तथा। आर्षत्वाद् ह्रस्वम्। कर्मसंकल्पदिव्यमुद्राद्वारेण भूचरखेचरमहामुद्रासिद्धीनां **विमुक्तीनां त्रयं** तत्र **कोविदः** पण्डितः ॥ १३ ॥

गुणी गुणज्ञो धर्मज्ञः प्रशस्तो मङ्गलोदयः ।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यः कीर्तिर्लक्ष्मीर्यशः शुभः ॥१४॥

गुणीति। अभेद्यसहजस्वभावसत्त्वरजस्तमोगुणयोगाद् **गुणी**। कायवाक्चित्तस्वरूपपरिज्ञानाद् **गुणज्ञः**। लोकोत्तरधर्ममहासुखास्वादनाद्**धर्मज्ञः**। सम्यग् ज्ञानोदयक्रमेण सर्वजगतः शान्तिकरणात्**प्रशस्तः** ज्ञानकाय इत्यर्थः। मङ्गलानामलौकिकानामुदयो यस्मादिति **मङ्गलोदयः**। त्रिविधानन्दानामपि **माङ्गल्यश्**चतुर्थः सहजानन्दः, प्रभास्वरत्वात्। सर्वदाऽविनश्वरसुखरूपकीर्तित्वात्**कीर्तिः**। सर्वसम्पदाधाररूपत्वाल्**लक्ष्मीः**। विकल्पपरित्यागसम्भूतनिर्मलप्रभास्वरयशस्त्वाद्**यशः**। सर्वसुखसञ्चयरूपत्वात् **शुभः**॥१४॥

महोत्सवो महाश्वासो महानन्दो महारतिः ।
सत्कारः सत्कृतिर्भूतिः प्रमोदः श्रीर्यशस्पतिः ॥१५॥

महोत्सवेति। अविच्छिन्नसुखोत्सवत्वान्**महोत्सवः**। [4]प्राणापानस्फुटीभावेनावधूतीगत[5]प्राणत्वेन लोकोत्तरश्वासत्वान्[6]**महाश्वासः**। अवाच्याद्वयधर्मसुखप्रकाशनेन जगदानन्दरूपत्वान्**महानन्दः**। सर्वसत्त्वानां महासुखेनाप्यायनान्**महारतिः**। महासुखा-

---

१. च. विमुक्तिस्त्रय। २. क. शुभञ्चातिशुभञ्च, ग. शुभाशुभञ्चातिशुभं। ३. भो. Chos sTon Pa Sogs Pahi (धर्मदेशनादि)। ४. क. प्राणायाम। ५. द. प्राणापानत्वेन। ६. क. महोश्वासः।

तमकत्वेन पूजार्हत्वात्सत्कारः बोधिचित्तद्रवेण सर्वाङ्गनाडीपरिपूरक इत्यर्थः। परमार्थाभिषेकसत्काररूपत्वात्सत्कृतिः। अविच्छिन्नसुखत्वाद् भूतिः। कायवाक्चित्त-प्रहर्षयोगात्प्रमोदश्रीः। सुखं सौमनस्यं यशःस्वामित्वाद्यशस्पतिः ज्ञानकाय इत्यर्थः॥ १५॥

[1]वरेण्यो वरदः श्रेष्ठः शरण्यः शरणोत्तमः।
महा[2]भयारिः प्रवरो निःशेषभयनाशनः॥१६॥

वरेण्येति। सर्वाकारविशुद्धज्ञानमूर्तित्वाद्वरेण्यः प्रवरः। अविकल्पेन स्वाभिप्राय-परिपूरणाद्वरदः प्रभास्वरवरदातेति यावत्। शून्यताकरुणाभिन्नाग्रत्वात् **श्रेष्ठः**। विकल्पपरतन्त्राणां दीनानां **शरण्यः**, प्रभास्वरज्ञानोपदेशेन रक्षणात्। रागादीनां महारागोदयेन महासुखरूपापादनात् **शरणोत्तमः**। संसारवासना[3]भयनाशकत्वान्**महा-भयारिः**। अत एव **प्रवरः**। सर्वाकारवरोपेतशून्यता(तया) सर्वप्रपञ्चभयविदारणान्**निः-शेषभयनाशनः**। सत्त्वाशयवशेन शुद्धकायस्य नानारूपस्फुरणमिति यावत्। उक्तञ्च—

तस्माज्जातो न नष्टस्त्रिभवमपि गतः शुद्धकायो जिनस्य
सत्त्वार्थं सर्वदा न त्यजति जिनपतिः कर्मणा बाध्यते न।
एवं लोकेश्वरोऽहं त्रिभुवननिलये कर्मभूम्यां स्थितोऽर्कः
सत्त्वानां मार्गदाता नरकभयहरो नान्यदेवः कदाचित्॥
(का० त० ५.१९४)॥ १६॥

शिखी शिखण्डी जटिलो जटी मौण्डी किरीटिमान्।
पञ्चाननः पञ्च[4]शिखः पञ्चचीरकशेखरः॥१७॥

शिखीति। अनुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावेन ज्वलितसहजचण्डाली शिखा तद्योगात् **शिखी**। चर्ममांसरक्तानि मातृसूर्यसम्बद्धानि। अस्थिस्नायुशुक्राणि पितृचन्द्रसम्बद्धानि तद्द्वययोगः शिखण्डस्तस्य निरावरणयोगेन योगाच्**छिखण्डी**। सकलकुटिलजटाबद्धवत् सर्वधर्माणामेकरसत्वेन योगाद् **जटिलः**। परमाक्षररूपेण सर्वभावैक[5]रूपी **जटी**। सकल-विकल्पक्लेशमुण्डनान्**मौण्डी**। [6]किरीटिं महोष्णीषं तद्योगात् **किरीटिमान्**। पञ्चतथा-गतात्मकधर्मकूटरूपत्वान्निरावरणीकृत[7]प्राणादिपञ्चवातत्वात् **पञ्चाननः**, पञ्चकुल-स्वभाव इत्यर्थः। आलोकालोकाभासालोकोपलब्धिप्रभास्वरधर्मधातुलक्षणः **पञ्चशिखा** यस्य स तथा। जाग्रत्स्वप्न[8]सुषुप्तितुरीयतुर्यातीतपञ्चचीरकशेखररूपत्वात्**पञ्चचीरक-शेखरः**॥ १७॥

---

१. ङ. च. छ. वरण्यो। २. ग. घ. च. छ. ०मयारि। ३. द. भवभय, भो. rJigs Chen (महाभय)। ४. ग. शिखिः। ५. ख. रूपा। ६. क. किं तुर्या, ग. द. कीरीटिं। ७. ख. प्राणाति। ८. क. स्वसुप्त, द. सुसुप्त।

महाव्रतधरो मौञ्जी ब्रह्मचारी व्रतोत्तमः ।
[1]महातपास्तपो[2] निष्ठः स्नातको गौतमोऽग्रणीः ॥१८॥

महाव्रतेति। स्कन्धधात्विन्द्रियादिनिःस्वभावीकरणं **महाव्रतं तद्धरतीति** तथोक्तः। [3]मुञ्जः, बोधिचि[4]त्तच्यवनं तद्योगान्**मौञ्जी**। अच्युतबोधिचित्तत्वादेव **ब्रह्मचारी**। अत एव **व्रतोत्तमः**। नित्यकमलकुलिशसंयोगाभ्यासेन बिन्दुमध्ये षट्श्वास-क्षीकरणेन तस्य बिन्दोः कुलिशमुखे [5]भक्षणलक्षणं **महातपो** यस्य स तथा। परमसुख-पूर्ण[6]सर्वधर्मामुखीकरणात् **तपसि निष्ठा** यस्य स तथा। षडङ्गयोगपरिपूर्याऽचिन्त्य-महासुखन[7]ध्यामनवरतस्नातत्वात् **स्नातकः**। परमा[8]क्षरसुखत्वादेव **गौतमः** शाक्यमुनिः सिद्धार्थः। सहजानन्दत्वा**दग्रणीः** ॥ १८ ॥

ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मा ब्रह्मनिर्वाणमाप्तवान् ।
मुक्तिर्मोक्षो विमोक्षाङ्गो विमुक्तिः शान्तता शिवः ॥१९॥

ब्रह्मविदिति। प्रकृतिप्रभास्वरशून्यताकरुणाभिन्नज्ञानं ब्रह्म तत्तादात्म्येन वेत्त्यनु-भवतीति **ब्रह्मवित्**। पञ्चाक्षररूपत्वाद् [9]हुंकारः पञ्चतथागतात्मको ब्राह्मणस्तन्ना-दमा[10]गम्य यावदुष्णीषलयेन सर्वविकल्पवातं वाहयतीति **ब्राह्मणः**। आकाशा[11]सक्त-चित्ततया प्रत्याहारादिषडङ्गसंक्षेपचतुरङ्गब्रह्मविहारचतुर्ध्यानचतुर्मुखस्वभावत्वाद् [12]**ब्रह्मा**। ब्रह्मणो निर्वाणं **ब्रह्मनिर्वाण**[13]मानन्दः। "आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्" इति वचनात्। **तदाप्तवान्**। शून्यताऽविनिर्भागवर्तित्वान्**मुक्तिः**। सम्य[14]गनुभवत्वेन यावदाकाशमविन-श्वरसुखगामित्वान्**मोक्ष**श्चतुर्थार्थः। सम्यग् ज्ञानाग्निभस्मीकृतसत्त्वरजस्तमस्कन्धत्वेन **विमोक्ष** एवाङ्गं [15]सुरूपं यस्य स तथा। प्राकृतरागादिबन्धनविगमेन पञ्चकामोपभोगेन [16]महारागस्य सम्यक् परिज्ञानलाभा**द्विमुक्ति**र्भगवान्। उक्तञ्च—

रागेन बध्यते लोको रागेनैव विमुच्यते।
विपरीतभावना ह्येषा न ज्ञाता बुद्धतीर्थिकैः॥

(हे० त० २.२.५१)

---

१. क. महाताप। २. ख. निष्ठ। ३. क. ग. मौञ्जः। ४. भो. Mi hdZag Paḥo (अच्युतं)। ५. ख. द. क्षण। ६. भो. Sańs rGyas Kyi Chos Tham Cad (सर्वबुद्धधर्मा)। ७. द. ०ध्यामलविरत। ८. द. क्षण। ९. क. ख. वंकारः। १०. ख. गम्यया। ११. ख. द. सक्ति। १२. ख. 'ब्रह्मा' नास्ति। १३. ख. 'आनन्द' नास्ति। १४. द. अनुगतत्वेन। १५. क. स्वरूपं। १६. क. महाराग।

येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः ।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फोटयेद्विषम् ॥
(हे० त० २.२.४६)

यथा पावकदग्धाश्च स्विद्यन्ते वह्निना पुनः ।
तथा रागाग्निद[1]ग्धाश्च स्विद्यन्ते रागवह्निना ॥
येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥
(हे० त० २.२.४९-५०)

अन्यत्र च —

तनु[2]तरौ श्चित्ताङ्कुरको विषयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धैः ।
गगनव्यापी फलदः कल्पतरुत्वं कथं लभते ॥
केचिद् विषयांस्त्यक्त्वा केचिद् विषया[3]नबाधितान् कृत्वा ।
केचिद्विषयैरेव [4]तु नरवृषभाः [5]कुर्वते बोधिम् ॥ इति ।

ग्राह्यग्राहकादिचित्तोपप्लवानां प्रशान्तत्वा**च्छान्तता** । उक्तञ्च—"शान्तनिर्वाण-धातुः स्याद्" इति कर्ममुद्रासेवनया ।

पितरि प्राप्तं यत्सौख्यं तत्सुखं भुञ्जते स्वयम् ।
मरणं येन सुखेनेह तत्सुखं ध्यानमुच्यते ॥

शून्यताज्ञानस्वभावत्वात् सर्वतथागतज्ञानसत्त्वः शिवः, सदा सुकल्याणमिति कृत्वा अखण्डं [6]**शुक्रं शिवः** ॥ १९ ॥

निर्वाणं निर्वृतिः शान्तिः श्रेयो निर्याण[7]मन्तकः ।
सुखदुःखान्तकृन्निष्ठा वैराग्यमुपधिक्षयः ॥२०॥

निर्वाणमिति । भावाभावपरामर्शशून्यत्वा**न्निर्वाणम्** । बाह्यानामभावान्निरालम्बः, तन्मात्रावलम्बना**न्निर्वृतिः** । [8]अकृत्रिमस्वसंवेद्य[9]महामुद्राप्रज्ञालोकरूपत्वा**च्छान्तिः** । अत एव **श्रेयः** । [10]निर्यान्ति सर्वसंबुद्धा अस्मिन्निति **निर्याणं** [11]महासुखम्, सर्वविकल्प-विगमेन पर्यन्तसुखत्वा**दन्तकः** । शुक्ररजश्च्यवनाभावेन प्रज्ञोपायाभ्यां सुखदुःखाद्वयी-भावात् **सुखदुःखान्तकृन्निष्ठा** । उक्तञ्च—

पापपुण्ण वेणिकण भु(तु) संगेलाथा किल किअ मण सुण्ण ।। इति ।

---

१. क. ०धापि । २. क. तर । ३. द. निबोधितान् । ४. क. तु न । ५. ख. ग. ग. कुरुते । ६. क. ख. सुखं । ७. क. ख. ङ. अन्तगः । ८. ख. अकृतिम । ९. क. ग. 'महा' नास्ति । १०. ख. द. निर्याणम् । ११. भो. 'महा' नास्ति ।

प्राकृतवैराग्यविगमेनाच्युतमहारागरूपत्वाद्वैराग्यं भगवानेव। वासनाविगमेन अनन्तप्रकाशमुखेन सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानरूपत्वादुपधिक्षयः ॥ २० ॥

अजयोऽनुपमोऽव्यक्तो निराभासो [1]निरञ्जनः ।
निष्कलः सर्वगो व्यापी सूक्ष्मो बीज[2]मनास्रवः ॥२१॥

अजयेति। प्रभास्वरत्वेन विकल्पादिभिर्न जीयत इत्य**जयः**। महारागाच्युतत्वेन सर्वसुखोपमारहितो**ऽनुपमः**। आलोकादिस्त्र्या(त्या)दिरूपाभावेनाप्रकृतिरूपो**ऽव्यक्तः**। प्रभास्वरत्वा**न्निराभासः**। आकाशवन्निर्लेपत्वा**न्निरञ्जनः**। प्रतिपदादिपञ्चदशकलातीतत्वा**न्निष्कलो** निरवयवः। ज्ञानाकाशरूपत्वात्**सर्वगः**। स्थिरचलस्वभावत्वाद्**व्यापी**। मनसाप्यगोचरत्वात्**सूक्ष्मः**। अनाभोगेन सर्वमुखजननाद् **बीजं** धर्मधातुज्ञानम्। प्रत्यात्मवेद्यत्वा**दनास्रवः** ॥ २१ ॥

अरजो विरजो विमलो वान्तदोषो निरामयः ।
सुप्रबुद्धो विबुद्धात्मा सर्वज्ञः सर्ववित् परः ॥२२॥

अरजर(इ)ति। रागविरागमध्यरागरजोऽभावाद**रजः** महा[3]रागश्चतुर्थः। तथताविशुद्धिरूपत्वाद्**विरजः**। आगन्तुकमलाभावाद्**विमलः**। सर्वप्रकृतिविगमाद् **वान्तदोषः**। बहिर्विक्षेपव्याधिशातना**न्निरामयः**। अविपरीतप्रभास्वरावबोधात् **सुप्रबुद्धः**। रूपादिस्कन्धादीनां सहजतया स्वरूपावगमाद् **विबुद्धात्मा**। ज्ञानरूपेण सर्वधर्माणां [4]संस्थापनात्**सर्वज्ञः**। अनाभोगेन सर्वसत्त्वचित्तचरितपरिज्ञानात्**सर्ववित्**। अत एव **परः** ॥ २२ ॥

विज्ञानधर्मतातीतो ज्ञानमद्वयरूपधृक् ।
निर्विकल्पो निराभोगस्त्र्यध्वसंबुद्ध[5]कार्यकृत् ॥२३॥

विज्ञानेति। चक्षुरा[6]दिस्वभावेनालयविज्ञानं **विज्ञान[7]धर्मता** **तामतीतो**ऽतिक्रान्तः करुणाप्रबोधितशून्यतात्मक इत्यर्थः। सर्वप्रपञ्चातीतप्रभास्वरात्मकत्वाद् भगवानेव **ज्ञानम्**। उदारगम्भीरात्मकत्वात्तदेवा**द्वयरूपधृक्**। परमार्थज्ञानविकल्पस्याप्यभावा**न्निर्विकल्पः**। उक्तञ्च—

परमार्थविकल्पेऽपि नावलीयेत पण्डितः।
[8]को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाऽप्यशुभेऽपि वा ॥ इति।
(आ० मा० ६)

---

१. ग. निरन्वयः। २. ग. घ. च. अनाश्रवः। ३. द. रागश्चेत्यर्थः। ४. द. स्थाप०। ५. ग. कायकृत। ६. क. द्य। ७. क. धर्मतोऽति, ग. धर्मतामतीतोऽति। ८. द. कोटि।

अनाभोगेन पञ्चकामोपभोगसुखत्वान्निर्गत **आभोगो** विकल्पप्रवृत्तिरस्य स तथा। उक्तञ्च—"पूर्वप्रणिधाना[1]हितसततानाभोगवाहि परकार्यम्" इति।

दिवारात्रिसंध्यासमाधित्रयभेदेन त्रिषु **अध्वसु** संभूताः कायवाक्चित्तनिर्माण-संभोगधर्मकायाख्या **बुद्धा**स्तेषां **कार्यं** सत्त्वार्थरूपमहासुखानुभवनं **करोती**ति तथा ॥ २३ ॥

अनादिनिधनो बुद्ध आदिबुद्धो निरन्वयः।
ज्ञानैकचक्षुरमलो ज्ञानमूर्तिस्तथागतः ॥२४॥

अनादीति। धर्मधातुज्ञानरूपत्वेन न विद्येते **आदिनिधने** उत्पादनिरोधौ विरमक्षणच्युतिक्षणौ यस्य स तथा। सर्वपदार्थानां समतया[2]वगमाद् **बुद्धः**। सांक्लेशिकवैयवदानिकधर्माणां परमार्थतोऽभावेनाकारो निषेधार्थः। [3]**तेनादिबुद्धः**। एकक्षण-पञ्चाकारविंशत्याकारमायाजालाभिसम्बोधिलक्षणं सुखमादिबुद्ध इत्यर्थः। **निरस्तो-[4]ऽन्वयः** प्रज्ञोपायात्मको ग्राह्यग्राहकलक्षणो धर्मो येन स तथा। **ज्ञानमद्वय**[5]ज्ञानं तदेवै**कम**द्वितीयं **चक्षु**स्सर्वधर्मसुखदर्शित्वाद्यस्य स तथा। सकलविकल्पप्रहीणत्वा[6]**दमलः**। **ज्ञानं** शून्यताज्ञानं तदेव **मूर्त्तिः** सहजसुखावभासो यस्य स तथा। तथा तथता कर्मादिमुद्रा तत्र गतमानन्दादिसुखज्ञानं यस्य स **तथागतः** ॥ २४ ॥

वागीश्वरो महावादी [7]वादिराड् वादिपुङ्गवः।
वदतां वरो [8]वरिष्ठो वादिसिंहोऽपराजितः ॥२५॥

वागीश्वरेति। अनाहतध्वनिसमुल्लासेन सर्वचित्तक्षणरूपबुद्धानामाप्यायना-**द्वागीश्वरः**। मन्थमन्थानयोगेन सर्वदा आकारमुल्लासित्वाद् वादिनाम्महनीयत्वा-**न्महावादी**। मन्थनीयसर्वनाडीषु मन्थानरूपप्राणवायुप्रयोगेण बोधिचित्त[10]धारया सर्वेन्द्रियधातुपुष्टिकारीति यावत्। दिव्यमुद्राप्रयोगेण श्रावकादिनिर्वाणनिराकरणा-**द्वादिराट्**। अद्वयज्ञानवादित्वाद् **वादिपुङ्गवः**। सम्यक् सर्वधर्मावबोधा**द्वदतांवरः**। सहजसुखानुभवरूपत्वा**द्वरिष्ठः**। सहजज्ञानधातुस्फरणेन विश्वार्थकरणा**द्वादिसिंहः**। सर्वकायवाक्चित्तैक्येनाच्युतबोधिचित्तत्वेन परैर्विकल्पोर्मिभिर्न जीयत इत्य**पराजितः**। अथवा पूर्वार्द्धेन हेतुत्वमुक्तमपरार्द्धेन चतुरानन्द[11]रूपं फलमुक्तम् ॥ २५ ॥

---

१. ख. हितः। २. ख. विगमाद्। ३. क. ग. तेनानादि। ४. ख. ऽद्वयः। ५. ख. ज्ञान। ६. क. ग. दचलः। ७. ग. वादिराज। ८. ग. वारिश्रेष्ठः। ९. क. वाचामीश्वरः। १०. भो. hdZin Pa Ñid Kyi (धारणया)। ११. क. ग. रूपकं।

समन्तदर्शी प्रामोद्यस्तेजोमाली सुदर्शनः ।
श्रीवत्सः सुप्रभो दीप्तिर्भा[1]भासुरकरद्युतिः ॥२६॥

समन्तेति। समन्ताद्द्रष्टुं शीलं यस्यासौ **समन्तदर्शी**। समन्तभद्ररूपेण तद्ज्ञानलाभो, रागविनयसत्त्वापेक्षया। अद्वयधर्मधातुरूपेण महारागस्तत्र स्फरणात्। महासुखधारणया परमप्रामोद्यलाभात् **प्रामोद्यः**। तेजोमाला सहजचण्डालीज्योतिः-[2]प्रबन्धस्तादात्म्येन तद्योगात्**तेजोमाली**। **शोभनं दर्शनं** सहजसुखसाक्षात्कारो यस्य स तथा। शून्यताकरुणाऽभिन्नमहासुखज्ञानामृतपूर्णत्वाद् ज्ञानसागर इत्यर्थः। सकलजगदुत्पत्ति[3]कारणानन्यसाधारणसर्वज्ञताबीजप्ररोहभूततथागतलक्षणयोगा**च्छ्रीवत्सः**। शोभना प्रभा सहजज्ञानस्फरणात्मिका यस्य स तथा। अनन्तलोकधातुस्थितबुद्धाद्यवभासकरणा**द्दीप्तिः**। **भाभि[4]र्भासुकरा** पुञ्जरूपा यमान्तकादिक्रोधास्तत्स्फरणरूपा **द्युतिस्**तत्क्रोधविनयसत्त्वार्थं यस्य स तथा ॥ २६ ॥

महाभिषग्वरः श्रेष्ठः शल्यहर्त्ता निरुत्तरः ।
अशेषभैषज्यतरुः क्लेशव्याधिर्महारिपुः ॥२७॥

महाभिषगिति। रागविरागादि सर्वव्याधिशातनान्**महाभिषग्वरो**ऽविपरीतोपदेशभैषज्यदाता। आत्मीयमहासुखस्वरूपे परेषां नियोजनाच्**छ्रेष्ठः**। [5]सर्वविकल्पवायुशल्यशातना**च्छल्यहर्त्ता**। अवाच्यसुख[6]स्वरूपत्वा**न्निरुत्तरः** कल्पवृक्षवदविकल्पेन सर्वजगदनुग्रहस्फरणा**दशेषभैषज्यतरुः**। सकलक्लेशप्रतिपक्षप्रकृतिप्रभास्वरमहासुखाकारसाक्षात्का[7]रित्वात् **क्लेशव्याधीनां** रागविरागादिलक्षणानां **महारिपुर्**हन्ता ॥ २७ ॥

त्रैलोक्यतिलकः कान्तःश्रीमान् नक्षत्रमण्डलः ।
दशदिग्व्योमपर्यन्तो धर्मध्वजमहोच्छ्रयः ॥२८॥

त्रैलोक्येति। त्रैलोक्यं कायवाक्चित्तैकत्वं तस्य महासुखालंकृतत्वेन तिलकरूपत्वात्[8]**त्रैलोक्यतिलकः**। स्वाधिष्ठानरूपत्वात्सुन्दरः[9]**कान्तः**। [10]अद्वयस्वरूपपरमार्थसिद्धिश्रीयोगात् **श्रीमान्**। स्वसंवेद्यप्रकाशकमहासुखतया गगने नक्षत्रमण्डलवत् स्फरणा**न्नक्षत्रमण्डलः**। आर्षत्वात् पुंस्त्वम्। अथवा उष्णीषे चतस्रो ललाटे षोडश एता विंशति नाड्यः श्लेष्मधातुप्रकोपिकाः। कण्ठे द्वात्रिंशद् हृदि अष्ट एता चत्वारिं-

---

१. ग. भास्कर । २. ख. द. प्राप्तस्तादा० । ३. क. ख. द. कारणान्य । ४. क. भासुकरादीप्तिः, ग. भासुरकरादीप्त । ५. ख. सविकल्प, भो. 'सर्व' नास्ति । ६. क. ग. स्वस्वरूप । ७. ग. ०कारत्वात् । ८. क. त्रैलोक्यं । ९. ख. कान्त । १०. क. ग. अद्वयरूप ।

शन्नाड्यः पित्तधातुप्रकोपिकाः। नाभौ चतुःषष्टिनाड्यः, गुह्यकमलस्य बाह्यपरिमण्डले षोडश। एता अशीतिनाड्यो वायुधातुप्रकोपिकाः। [1]अस्यैव मध्यपरिमण्डले दश, गर्भपरिमण्डले षट्, यथासंख्यं सन्निपातप्रकोपिकाः। षट्चक्रनिरोधस्वभावः। एवं षट्पञ्चाशदधिकशतनाड्यो बालानां मृत्युदायिकाः। योगिनां सुखदायिकाः। षट्कुल-नाडीभिः सार्द्धद्वाषष्ट्यधिकशतनाड्यः। एतासु च नाडीषु प्रत्येकनाड्यो दशवायुप्रचारेण स्कन्धधातुदशस्व[2]भावेन दशधा भवन्ति। एवं सर्वं दशगुणिता विंशत्यधिकषोडशशत-संख्या भवन्ति। [3]सप्तविंशतिनक्षत्रघटिकावाहिन्यः। एतन्निरोधात् श्रीमान्नक्षत्रमण्डल इति। **दशदिशा व्योम**प्रभास्वरत्वं तस्य स्फुटीभावेन **पर्यन्तः** परमार्थबिन्दुरूपः, स एव **धर्मध्वजमहोच्छ्रयो** ब्रह्मस्थान[4]गतत्वेन यस्य स तथा ॥ २८ ॥

जगच्छत्रैकविपुलो मैत्री[5]करुणमण्डलः।
पद्म[6]नृत्येश्वरः श्रीमान् रत्नच्छत्रो महाविभुः ॥२९॥

जगच्छत्रेति। सकलक्लेशतापापहारित्वेन कायवाक्चित्तैकलोलीभावरूप-**जगदेवैकमद्वितीयं च्छत्रम्**। अविच्छिन्नमहासुखाधारार्पितचण्डाली[7]कनकदण्डोद्धृतत्वेन उष्णीषगतं रोमकूपपर्यन्तगतत्वेन **विपुलं** विस्तीर्णं यस्य स तथा। ज्योतिःस्वभावेन **मैत्री**, बोधिचित्तत्वेन **करुणा** तयो**र्मण्डं** सारं [8]**लाती**ति स तथा। अवाच्यसुखबोधि-चित्तत्वात्**पद्मनर्तेश्वरः** वज्र[9]पद्मोल्लासप्रभुरित्यर्थः, अत एव **श्रीमान्**। चण्डालीज्वलन-प्रयोगेण वज्रमणिशिखरे स्थितत्वात् सकलविकल्प[10]तापोपरोधात् सर्वाङ्ग[11]शीतल-करणाच्छत्रमिव च्छत्रो **रत्नच्छत्रः**। सर्वभावरूपत्वान्**महाविभुः** ॥ २९ ॥

सर्वबुद्धमहा[12]राजः सर्वबुद्धात्म[13]भावधृक्।
सर्वबुद्धमहायोगः सर्वबुद्धैकशासनः ॥३०॥

सर्वबुद्धेति। **सर्वबुद्धानां** [14]वैरोचनादीनां **महाराजः** [15]वज्रसत्त्वो बोधिचित्त-स्वभावत्वात्। **सर्वबुद्धानामात्मा** सर्वधर्मशून्यता स एव **भावः** सद्रूपस्त**द्धरती**ति स तथा, स्कन्धधात्वादिरूपसर्वतथागतहृदयविहारित्वात्। **सर्वबुद्धानां महायोगः** परम-सुखाकारसमाधिरूपः। **सर्वबुद्धानां** स्कन्ध[धात्वा]दीनां **एकमेकत्वं** सुखेन **शास्ति** सम्पादयतीति तथा ॥ ३० ॥

---

१. क. अन्येव। २. ख. भावे। ३. ख. अष्ट। ४. ख. 'गतत्वेन' नास्ति। ५. क. ख. ग. च. छ. करुणा। ६. ग. घ. नर्त्तेश्वर। ७. द. कलंक। ८. क. ग. लाभोति। ९. द. गर्भोल्लास। १०. ख. द. तापाप०। ११. द. शीतली। १२. क. ख. च. छ. राजा। १३. च. भव। १४. ख. वैरोचनानां। १५. ख. वज्रसत्त्वो यो।

वज्ररत्नाभिषेकश्रीः सर्वरत्नाधिपेश्वरः ।
सर्वलोकेश्वरपतिः सर्ववज्रधराधिपः ॥३१॥

वज्ररत्नेति। [1]**वज्ररत्नोऽभिषेकः** सहजानन्दसौख्यं स एव **श्रीस्**तद्रूपत्वाद् भगवानपि तथा, **सर्वरत्नाधिप**स्य बुद्धस्**येश्वरः**। शिरसि धृतत्वात् **सर्वलोकानां** बुद्धबोधिसत्त्वानां ईश्वरो वज्रसत्त्वः स एव **पतिः** सर्वभावमयत्वात्। कायादिबिन्दुत्रयधारिणः **सर्व-वज्रधरा**स्तेषाम**धिपतिः** शून्यताकरुणाभिन्नचतुर्थबिन्दुः ॥ ३१ ॥

सर्वबुद्धमहाचित्तः सर्वबुद्धमनोगतिः ।
सर्वबुद्धमहाकायः सर्वबुद्ध[2]सरस्वती ॥३२॥

सर्वबुद्धेति। **सर्वबुद्धानाम**प्रतिघचित्तत्वेन **महाचित्त**रूपत्वात्तथा। **सर्वबुद्धानां मनसि** अचित्तचित्ते **गतिर्**लयस्तादात्म्यं यस्य स तथा, तथोक्तः। धर्मधातुरूपज्ञान-कायत्वेन सर्व[3]धर्मव्यापनात् **सर्वबुद्धमहाकायः**। सर्वबुद्धानां कायवाक्चित्तानां महा-सुखामृतप्रवाहनिमज्जनाधारमहासुखपूर्णाचिन्त्यनदीरूपत्वात् **सर्वबुद्धसरस्वतिः** (ती)। आर्षत्वाल्लिङ्गव्यत्ययः सर्वबुद्धमयी सरस्वती अचिन्त्य[4]सुखा नदी यस्य [5]स तथा ह्रस्वत्वम् ॥ ३२ ॥

वज्रसूर्यमहालोको वज्रेन्दुविमलप्रभः ।
विरागादिमहारागो विश्ववर्णोज्ज्वलप्रभः ॥३३॥

वज्रसूर्येति। **वज्रसूर्यस्य** ज्ञानमण्डलस्य **महानालोकः** सकलत्रैधातुकावभासो मणिवरटकान्तःस्थितचित्तक्षणलक्षणो यस्य स तथा। उक्तञ्च—

> वज्रसूर्यञ्च यच्चित्तं मण्यन्तर्गतमीक्षयेत्।
> ज्ञानमण्डलाकारेण त्रैधातुकावभासतः॥ इति।

अनाभोगेनाद्वयचित्त इति यावत्। **वज्रेन्दुर्ज्ञानेन्दुः** सुचन्द्रः तस्य **विमला** सकलविकल्पापगता **प्रभा** त्रैलोक्यावभासो यस्य स तथा। चन्द्रसूर्यराह्वग्निरजः-शुक्रचित्तज्ञानैकयोगः पदद्वयेनोक्त इत्यर्थः। **विरागस्य** विरक्तिलक्षणस्या**दिर्महारागः** सहजानन्दात्मकश्चतुर्थस्तादात्म्येन यस्य स तथा। **विश्ववर्ण**स्य नानावर्ण**स्योज्ज्वला** सकलविकल्पातंकविधमनी **प्रभा** यस्य स तथा। इदं च गुरुवक्त्रम्। उक्तञ्च—

---

१. क. वज्ररक्ष्योभि०, ख. वज्ररत्नेऽक्ष्योभि०, द. वज्ररत्नाभिषेकः। २, ख. च. छ. सरस्वतिः, ङ. ०तीः। ३. द. धर्मावबोधनात्। ४. क. ख. ग. 'सुखा' नास्ति। ५. क. ख. द. वा।

दृष्टे बिम्बे प्रकुर्यात् प्रतिदिनसमये प्राणवायोर्निरोधं
यावद्वै भ्राम्यमाणं स्वतनुपरिवृतं दृश्यते रश्मिचक्रम् ।
षण्मासैः स्पर्शहीनं व्रजति समसुखं मार्गचित्तं यतीनां
रागा[1]रागान्तगाद्यं क्षणमपि च विभो वर्द्धते श्वाससंख्यम् ॥
ओद्रा ज्वालान्तराले विरमसहजयोर्ज्ञानविज्ञानमध्ये
निद्रा घूर्माभिसन्धौ कुलिशकमलयोर्यत्सुखं द्वन्द्वयोगात् ।
वृद्धिं तस्य प्रकुर्याद् गुरुनियमवशाद् बर्द्धते नात्र चित्रं
हत्वा [2]क्लेशांश्च मारान् विशति जिनपतिं वर्षयोगात्सुयोगी ॥ इति ।
(का० त० ५.११७-११८)

उक्तञ्च **विमलप्रभायाम्** "रागो बोधिचित्तस्य शुक्लपक्षस्य पञ्चदशकलाः विरागः कृष्णपक्षस्य पञ्चदशकलाः । तन्मध्ये सहजानन्दः षोडशीकला सर्वधातूनां षोडशीकला । सर्वधातूनां समाहारः समाजः संवर" इति ॥ ३३ ॥

सम्बुद्धवज्रपर्यङ्को बुद्धसंगीतिधर्मधृक् ।
बुद्धपद्मोद्भवः श्रीमान् सर्वज्ञज्ञान[3]कोषधृक् ॥३४॥

सम्बुद्धेति । **सम्बुद्धवज्रं** प्रबुद्धकुलिशाग्रं **पर्यङ्को** वामदक्षिणपुटवाहभङ्गेनासनं यस्य स तथा । बुद्धसंगीतिस्त्रैधातुकव्यापी अनाहतध्वनिः सैव धर्मस्तद्धारणाद् **बुद्धसंगीति-धर्मधृक्** । कायवाक्चित्तज्ञानबिन्दुधृग् वा "वज्रपर्यंकतश्चित्तं (वज्रसूर्यं च यच्चित्तं) मण्यन्तर्गतमीक्षयेद्" इति वचनात् । बुद्धं निर्विकल्पज्ञानं तदेव क्लेशवासनामलाननुलिप्त-त्वान्महासुखाकारत्वाच्च पद्मं महामुद्रा तद् उद्भवतीति **बुद्धपद्मोद्भवः** । अत एव **श्रीमान्** । सर्वाकारात्मकं स्वसंवेद्यज्ञानं सर्वज्ञज्ञानं तदेव कोशः सर्वधर्माणां तदन्तर्गमात् तद्धारणात् **सर्वज्ञज्ञानकोशधृक्** ॥ ३४ ॥

विश्वमायाधरो राजा बुद्धविद्याधरो महान् ।
वज्रतीक्ष्णो महाखड्गो विशुद्धः परमाक्षरः ॥३५॥

विश्वमायेति । वकारोपरि रजो विशुद्ध [4]वशब्दरूपार्द्धचन्द्रोपरि बिन्दुस्वरूपं सुखं बोधिचित्तमनाहतरूपनादान्वितं **विश्वमायां** पञ्चकामोपभोगादिरूपां **धारयती**ति तथा । ज्ञानज्योति(ती) रूपतया राजत इति **राजा** । बुद्धविद्यां चतुर्बिन्दुलक्षणां धरतीति **बुद्धविद्याधरः** । अत एव **महान्** । ऊर्णागतवैमल्यरूपतया सहजज्ञानरूप[5]त्वाद् **वज्रतीक्ष्णः** ।

---

१. ख. रागान्त ग्राह्यं । २. ख. क्लेशाश्च । ३. क. ख. कोश । ४. क. विसद्गुरु-णार्द्ध, भो. Ba Tshig Drag Gi Ṅo Bo (वशब्दरूपा ।) ५. ख. ०त्वाद्ध रतीति ।

[illegible]त्वेन विकल्पच्छेदना[1]न्महाखड्गः । [2]पुरुषाकाररूपत्वाद्विशुद्धः । विपाकरूपेण सर्वैकरसत्वात् **परमाक्षरः** ॥ ३५ ॥

दुःखच्छेद[3]महायानो वज्रधर्ममहायुधः ।
जिनजिग् वज्र[4]गाम्भीर्यो वज्रबुद्धिर्यथार्थवित् ॥३६॥

दुःखच्छेदेति । दुःखं च्छिनत्तीति तथा तं **महायानं** मार्गसत्यं यस्य स तथा । **वज्रधर्मो** ज्ञानधर्मः । स एव **महायुधं** यस्य स तथा । जिनान् अक्षोभ्यादीन् जनयतीति [illegible] **जिनजिग्**, विमलनिराभासचित्तावबोधरूप इत्यर्थः । **वज्रस्य** सम्यग्ज्ञानस्य **गाम्भीर्य** [5]ग्राह्यादिविकल्परहिता प्रज्ञा स्वभावो यस्य स तथा । वज्रमार्गाच्युतत्वेन **वज्रबुद्धिः** । फलस्वरूपस्फुटीभावाद् **यथार्थवित्** ॥ ३६ ॥

सर्वपारमितापूरी सर्व[7]भूमिविभूषणः ।
विशुद्धधर्म[8]नैरात्म्यः सम्यग्ज्ञानेन्दुहृत्प्रभः ॥३७॥

सर्वपारेति । पूर्वं ज्ञानसम्भारा उक्ताः, इदानीं पुण्यसंभार उच्यते । पूर्वोक्ता दानादिपारमिताः पूरयतीति **सर्वपारमितापूरी** । पूर्वोक्त भूमिमण्डल[9] [विभूषण] त्वात् **सर्वभूमिविभूषणः** । **विशुद्धधर्मस्य** चित्त[10]प्रतिवेधलक्षणस्य **नैरात्म्यं** निराभासीकरण-धर्मतारूपं प्रकृतिप्रभास्व[11]रम्, तेन समुत्पन्नः **सम्यग्ज्ञानेन्दुः** सहजानन्दश्चन्द्रस्तस्य **हृत्प्रभा** महासुखाकारा यस्य स तथोक्तः ॥ ३७ ॥

मायाजालमहोद्योगः सर्वतन्त्राधिपः परः ।
अशेषवज्रपर्यङ्को [12]निःशेषज्ञानकायधृक् ॥३८॥

मायाजालेति । चन्द्रसूर्यैकत्वेन **मायाजाले** त्रैलोक्यमहासुखस्फुटीभावेन समु-**(महो)द्योगो** यस्य स तथा । सर्वतन्त्राणां योगादिमहातन्त्राणां तस्यैव प्रतिपाद्यत्वात् **सर्व[13]तन्त्राधिपः स च परः** । प्राणापानोपरोधादद्वयीभूताशेषसमाधिवज्रमयःपर्यङ्को यस्यासावशेष**वज्रपर्यङ्कः** । निःशेषाणां बुद्धानां ज्ञानकायं परमाद्वयीभूतं धारयतीति **निःशेषज्ञानकायधृक्** ॥ ३८ ॥

---

१. ख. द. महासुख । २. क. ग. पुरुषकार । ३. क. ख. घ. ङ. च. महायान । ४. ख. ग. घ. ०गाम्भीर्य । ५. क. गाम्भीर्याः । ६. द. बाह्या० । ७. क. भूमी । ८. ग. घ. ङ. च. छ. नैरात्म्य । ९. भो. rGyan Gyi Phyir (भूषणात्) पाठोऽयं भोटानुसारी । १०. क. ग. प्रकृति । ११. ख. ०रत्वेन । १२. अत्र 'ख' पत्र १३अनुपलब्धः । १३. क. मन्त्रा ।

समन्तभद्रः सुमतिः क्षितिगर्भो जगद्धृतिः ।
सर्वबुद्धमहागर्भो विश्वनिर्माणचक्रधृक् ॥३९॥

समन्तेति । धूमादिनिमित्तस्फुटीभावेन [1]**समन्ततो भद्रं** सहजानन्दं ज्ञानं यस्य स तथा । सर्वविकल्पाभावेन सम्बोधिप्राप्तत्वेन शून्यताकार**शोभना मति**र्यस्य स तथा । क्षितिशब्देन पञ्चभूतोपलक्षणात् क्षितिगर्भो हेतुः **क्षितिगर्भः** सहजानन्दबिन्दुः, अत एव **जगद्धृतिः** सकलजगदाधारः । सर्वबुद्धानां [2]त्र्यध्ववर्त्तिनां षडङ्गयोगभावकानां उत्पत्तिहेतुत्वात् **सर्वबुद्धमहागर्भः** सहजबोधिचित्तवज्रः । लौकिकलोकोत्तरदेवतास्फरणं विश्वनिर्माणं तदेव चक्रं मण्डलं तद्धारयतीति **विश्वनिर्माणचक्रधृक्** शुक्ररजोद्वयैकलोलीभूतबाह्याध्यात्मिककायवाक्चित्तधर इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

सर्वभावस्वभावाग्र्यः सर्वभावस्वभावधृक् ।
अनुत्पादधर्मा विश्वार्थः सर्वधर्मस्वभावधृक् ॥४०॥

सर्वभावेति । सर्वेषां भावानां स्वभावः शुद्धतथागतज्ञानकायः स चासौ अग्र्यश्च **सर्वभावस्वभावाग्र्यः** । धर्मसम्भोगाद्वयीभूतनिर्माणलक्षणानां सर्वभावानां स्वभावं नैरात्म्यं धारयतीति **सर्वभावस्वभावधृक्** । [3]**अनुत्पादो** निःस्वभावस्तत्त्वं **धर्मो** यस्य स तथा । **विश्वेषामर्थः** साध्योऽभिलषणीयः । सर्वधर्माणां स्कन्धधात्वायतनादीनां स्वभावं यथाभूतपरिज्ञानं धारयतीति **सर्वधर्मस्वभावधृक्** ॥ ४० ॥

एकक्षणमहाप्राज्ञः सर्वधर्माव[4]बोधधृक् ।
सर्वधर्माभिसमयो भूतान्तमुनिरग्रधीः ॥४१॥

एकक्षणेति । **एको**ऽद्वितीयः **क्षण**स्तुर्यातीतश्चतुरानन्दैकमूर्त्तिः सहजसम्बोधिलक्षणः तत्र **महाप्राज्ञः** । षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासमहासुखैकलयबुद्धिमान् इत्यर्थः । [5]अनेनापि चतुर्थानन्दश्रीर्मञ्जुश्रीः भगवान् । उक्तञ्च—

दम्भोलिबीजश्रुतधौतशुद्धं पाथोज्ञभूताङ्कुरभूतपुष्टि ।
तुरीयशस्यं परिपाकमेति स्फुटञ्चतुर्थं विदुषोऽपि गूढम् ॥ इति ।
(तत्त्वरत्नावलोक–१७)

सर्वधर्माणां सर्वश्वासा[6]नामवबोधसुखैकलयावगमं धारयतीति **सर्वधर्मावबोधधृक्** । **सर्वधर्माः** सत्त्वरजस्तमांसि [7]**अभिसमीयन्ते** साक्षात् क्रियन्ते सहजचन्द्रो-

---

१. द. समन्तभद्रं । २. ग. द. अध्ववर्त्तिनां । ३. द. भगवान्, मञ्जुश्रीः श्रीमताम्बरः' इत्यधिकम् । ४. ग. घ. रोधधृक् । ५. ख. योऽपि । ६. ख. नामावबोधि० । ७. क. अति० ।

[illegible] येन स तथा। भूतं सत्यं तथता तस्यान्तःप्रकर्षः फलावस्था तस्य यथावन्-[illegible] भूतान्तमुनिः। अग्रधीर्वज्राग्रसुखाव[1]बोधनात् ॥४१॥

स्तिमितः सुप्रसन्नात्मा सम्यक्संबुद्धबोधिधृक्।
प्रत्यक्षः सर्वबुद्धानां ज्ञानार्चिः सुप्रभास्वरः ॥४२॥

इति [2]प्रत्यवेक्षणज्ञानगाथाः द्वाचत्वारिंशत्।

स्तिमितेति। सहजानन्दसुखाप्यायमानत्वात् **स्तिमितः**, समाधिस्फुटीभावेनाचलत्वात् **सुष्ठु प्रसन्न आत्मा** स्वरूपं यस्य स तथा। वज्ररत्नान्तर्गतं चित्तं **सम्यक्संबुद्धः** तस्य **बोधि**सुखज्ञानं [3]**तद्धार**यतीति तथा। स्वसंवेद्यसहजज्ञानप्रियतया **सर्वबुद्धानां** त्र्यध्ववर्त्तिनां **प्रत्यक्षः**। **ज्ञानार्चि**षा प्रकृतिप्रभास्वरनिरालम्बज्ञानेन **सुप्रभास्वरो**ऽनन्तानन्तबुद्धक्षेत्रप्रकाशकः ॥४२॥

इति उष्णीषादिमणिशिखरान्तस्थानसप्तकेषु निरावरणीकृतषट्स्कन्ध-
धात्विन्द्रियविषयकर्मेन्द्रियक्रियाषट्कविशुद्धयाद्वाचत्वारिंश-
च्छलोक्या प्रत्यवेक्षणाज्ञानव्याख्या ॥ ८ ॥

---

१. क. बोधवान् २. क. प्रत्यवेक्षणा। ३. ख. द. तां धारयतीति।

समताज्ञानम्

इदानीमिष्टार्थसाधक इत्यादिना निरावरणवेदनास्कन्धरत्नसम्भवरूपेण समता-ज्ञानमुखेन तदेव सहजज्ञानमाह—

[1]इष्टार्थसाधकः परः सर्वापायविशोधकः ।
सर्वसत्त्वोत्तमो नाथः सर्व[2]सत्त्वप्रमोचकः ॥१॥

इष्टार्थसाधकेति। सर्वाशापरिपूरकपरमाक्षरज्ञानरूपत्वादिष्ट[3]श्चासावर्थश्चेति इष्टार्थः, तस्य साधको निष्पादकः वज्र[4]पद्मानुभूतबिन्दु[5]त्रयातीतत्वात् **परः**। **सर्वापाय**स्य संसारवासन(ना)या **विशोधको** महासुखैककर्त्ता। **सर्वसत्वानां** कायवाक्-चित्ताना**मुत्तमो** ज्ञानकायः, अत एव **नाथो** अनाथानां महामुद्रा पद्मप्रकाशकत्वेन **सर्वसत्वानां प्रमोचकः** ॥१॥

क्लेशसंग्रामशूरैकः [6]अज्ञानरिपुदर्पहा ।
धीश्शृङ्गारधरः श्रीमान् वीरबीभत्सरूपधृक् ॥२॥

क्लेशसंग्रामेति। सर्वसत्त्वचरितक्लेशानां सम्यग्ज्ञानशस्त्रेण निकृन्तनात्। **क्लेशसंग्रामे एको**ऽद्वितीयः **शूरः**। आर्षत्वादन्यथाशब्दविन्यासः। अज्ञानं अविद्या सैव रिपुश्च्युतिः दुःखदायित्वात् तस्य दर्पो वहिर्विक्षेपः, तन्निराभासीकरणा**दज्ञानरिपु-दर्पहा**। चित्तमात्रस्यापि निरसनेनापगतक्लेशोपक्लेशत्वाद् **धीः**। धर्मता सङ्केतेन **शृङ्गारः** सहजानन्दशुक्रस्त**द्धारणा**त्तथा। उष्णीषादुच्छलितबोधिचित्तधारया सर्वाङ्गा-प्यायनेन लौकिकलोकोत्तरसम्पत्तिमान् **श्रीमान्**। उपायस्य [7]करुणाङ्गत्वेन वीररसत्वं प्रज्ञायाः शून्यताङ्गत्वेन बोभत्सरसत्वं तद्द्वैधरूपं महासुख**वीरबीभत्सरूपं तद्धरती**ति तथा ॥ २ ॥

बाहुदण्डशताक्षेपपदनिक्षेपनर्त्तनः ।
श्रीमच्छतभुजाभोगगगनाभोगनर्त्तनः ॥३॥

बाहुदण्डेति। **बाहुदण्डः** प्राणापानवायुदण्डद्वयं तस्य वामदक्षिण[8]नासापुटदश-मण्डलसंक्रान्तिभेदेनानन्त्यात् **शतम्**, तस्या**क्षेप** आकृष्टिः मध्यमाप्रवेशेन कुम्भकावस्था

---

१. च. ग. घ. इष्टार्थः। २. क. सत्त्वः। ३. क. ख. द. श्वासावर्थ। ४. क. ग. पद्मार्थभूत, भो. Padmaḥi Naṅ Du Chud Paḥi (पद्मान्तर्भूत)। ५. ख. तया। ६. च. नोज्ञान। ७. ख. द. करुणांशत्वे। ८. क. नाशा।

[illegible]स्य **पदे** महासुखपदे [1]**निक्षेपो** लयीकरणं तेन तत्र वा **नर्त्तनं** सुखोल्लासो यस्य स तथा। परमाक्षरविद्धश्वासगणत्वेन श्रीमच्छतमद्वयज्ञानस्फरणानन्त्यं तद् भुक्त इति श्रीमच्छतभुजो ज्ञानकायस्तस्या**भोगो** विस्तारः परिपुष्टिरस्य स तथा। सर्वभावानां शून्यतास्वभावेनावबोधाद् **गगनस्याभोगो** व्यापित्वम्। तत्र महासुखेन **नर्त्तनं** प्रवर्त्तनं यस्य स तथोक्तः ॥ ३ ॥

एकपादतलाक्रान्तमहीमण्डतले स्थितः।
ब्रह्माण्डशिखरा[2]क्रान्तपादाङ्गुष्ठनखे स्थितः ॥४॥

एकपादेति। **एकपादतलेना**द्वितीयप्रतिष्ठारूपे**णाक्रान्तं** स्थिरीकृतमध्यसितम्। **महीमण्डलतले** [3]नाभ्यधो वज्रमणिशिखरे **स्थितं** रजो बोधिचित्तं येन स तथा। आर्षत्वात्ककारे लोपे न निर्देशः। अथवा [4]मही शून्यता शुक्रबीजधारणात्, तस्या मण्डः सार इति योज्यम्। **ब्रह्माण्डशिखरं** ब्रह्मरन्ध्रं त**दाक्रान्तो** योऽसौ **पादाङ्गुष्ठनखो** [5]विधृतिक्रमेणोष्णीषगतवज्रसंबन्धि(बोधि)चित्तं तत्र **स्थितो**ऽद्वय[6]योगेन—

एकं पदं वज्रमणौ रजोऽर्के उष्णीषशुक्रे शशिनि द्वितीयम्।
न्यस्तं सदाच्छेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस्त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य ॥
(वि० प्र० १, पृ० ३)

भर्तुर्बोधिचित्तवज्रस्य **श्रीकालचक्रा**दिरूपस्य पद्यते गम्यते येन तत्पदं ज्ञानमक्षरं न्यस्तं आबोधितम्। अविद्या[7]निरोधाय वज्रमणावप्रतिष्ठितनिर्वाणभूमौ रजोऽर्के महीमण्डलतले ज्ञानधातौ एकं पदं दक्षिणमित्येकपादतलाक्रान्तः। उष्णीषभवसुखातिक्रान्ते शुक्रे शशिनि पादाङ्गुष्ठनखे [8]प्राक्कामकलोदयात्मके विज्ञानधातौ द्वितीयम्। पद वाममिति ब्रह्माण्डशिखराक्रान्तः। सदा कालत्रये, क्लेशावरणातिक्रान्तत्वादविद्याज्ञानकर्तिकयाच्छेद्यम्। विज्ञानधर्मतातीतत्वाद् ग्राह्यग्राहककोट्याऽभेद्यम्। महासुखरूपत्वादिष्टम्। कृतकृत्यस्थले[9] मणौ स्थितं लोकाचारोज्झितत्वात्त्रिलोकमहितम्। संसारपारकोटावुष्णीषे स्थितमिति। **श्रीआदिबुद्धे** चोक्तम्—

प्राणायामानलेन द्रवमपि शशिनः पानकं मद्यपानम्
उष्णीषेऽङ्गुष्ठपर्वाद् व्रजति तिथिवशात्पूर्णिमान्तं स्वचित्तम्।
उष्णीषादङ्गुलीषु व्रजति पुनरिदं कृष्णपक्षावसाने
सा चर्या योगिनो वै प्रतिदिनसमये त्विष्टसिद्धिः प्रदा या ॥ इति ॥ ४॥
(का० त० ४.१२५)

---

१. क. निक्ष्येपो। २. च. आक्रान्तः। ३. क. नास्य। ४. ख. महा। ५. क. ग. विवृत्ति। ६. ख. योगिन। ७. ख. द. निधाय। ८. क. ख. प्राक्कमलोदया। ९. ख. स्थलो।

एकार्थोऽद्वयधमर्थिः　　परमार्थो[1]ऽविनश्वरः ।
नानाविज्ञप्तिरूपार्थश्चित्तविज्ञानसंततिः　　॥५॥

एकार्थेति । **एकार्थः** परमार्थरूपतया भेदाभावात् । चन्द्रसूर्ययोर्मध्यमाप्रवेशे द्वयधर्माभावाद**द्वयधमर्थिः** । ज्ञानचन्द्रप्रकाशार्थः सर्वासङ्गभङ्गा**त्परमार्थः** । आकाशतुल्यध्यानबिन्दुरूपत्वा**दविनश्वरः** । [2]आकाशवद् धर्मतारूपेणालयक्लिष्टमनः षट्प्रवृत्तिविज्ञानादिरूपोऽनुपमधर्मार्थो दृश्यते भगवानिति **नानाविज्ञप्तिरूपार्थः** । सर्वविकल्पतमोऽस्तमनतया चित्ताचित्तकरुणासन्ततिरूपत्वात् **चित्तविज्ञानसंततिः** ॥ ५ ॥

अशेषभावार्थरतिः　　शून्यतारतिरग्रधीः ।
भवरागाद्यतीतश्च　　भवत्रयमहारतिः ॥६॥

अशेषभावेति । **अशेषा भावा** एव स्फुटीभूतसहजतया **अर्थाः**, तेभ्यो **रति**रनुपमप्रीतिरस्य । उक्तञ्च—

एते ते विषयास्त एव मनसः पञ्च प्रवृत्तिक्षणाः
तान्येवोत्सुकवन्ति चेन्द्रियबलान्युत्क्लेशबीजानिलः ।
वन्द्यः सद्गुरुपादपङ्कजरजः स्पर्शः स्वयं यद्वशा-
देतन्मामकसारमित्यहरहः स्पन्दन्ति तत्त्वामृतम् ॥

सर्वधर्मस्वभावतथतावगमाच्छू**न्यतारतिः** । उभयान्तापाता**दग्रधीः** । रागविरागमध्यरागप्रकृतिविगमाद् **भवरागाद्यतीतः** । **भवत्रये** कायवाक्चित्तैकलोलीभावे महासुखे **महती** या प्राकृतमयी **रति**रस्य स तथा ॥ ६ ॥

[3]शुद्धः शुभ्राभ्र[4]धवलः शरच्चन्द्रांशुसुप्रभः ।
बालार्कमण्डलच्छायो　　महारागनखप्रभः ॥७॥

शुद्धशुभ्रेति । वज्रसत्त्व[5]स्वरूपत्वेनाविद्यामलविगमाच्छु**द्धः** । शरदभ्रशुभ्रत्वा-[6]द्विशुद्धसर्वधातुद्रवत्वाच्च **शुभ्राभ्रधवलः** । वासनामात्रस्याप्यभावाच्छ**रच्चन्द्रांशुव**च्छोभना **प्रभा** यस्य स तथा । महारागानुगतः प्राणापानाद्वयसंघट्टवशात्तदात्मीयं चित्तं **बालार्कमण्डल**वदाभासत इति बालार्कमण्डलस्येव**च्छाया** कान्तिर्यस्य सहजचण्डालीज्योतिषाश्लिष्टत्वाद्वा । महासुखेन पादाङ्गुष्ठे नखपर्यन्तव्यापनाद् **महारागस्य नखपर्यन्तं** तेषु **प्रभा** छाया सुखव्याप्तिरस्य बोधिचित्तराजस्य स तथा ॥ ७ ॥

---

१. च. छ. विनेश्वरः । २. क. आकाशधर्मता । ३. च. बुद्ध । ४. ग. घ. ङ. धवल । ५. क. ग. 'स्व' नास्ति । ६. ग. विशुद्धे ।

इन्द्रनीलाग्र[1]सच्चीरो महानीलकचाग्रधृक् ।
महामणि[2]मयूखश्रीर्बुद्धनिर्वाणभूषणः ॥८॥

इन्द्रनीलेति। सुविशुद्धसाहजिकनीलमणिस्फुरणाद् बोधिचित्त**मिन्द्रनीलम्**, तस्**याग्रं** महासुखं तस्य **सत्** प्रशस्तं चीरमिव **चीरं** ज्योतिरस्य स तथा। निरावरणीकृतकुटिलप्रकृतिकत्वेन **महानीलकचाग्रान्** अद्वयचित्तवज्रधरान् सर्वाङ्गं परि[3]पूर्य हृदयवायूच्छलितत्वेन नीलत्वाद् उष्णीषे **धरती**ति तथा। यावदाकाशं शून्यताकरुणामहासुखधर्मावलम्बनं करोतीत्यर्थः। पृथिवीमण्डलोच्छलितत्वेन महारागत्वेऽपि पीतत्वा**न्महामणि**रिव प्रभयाऽऽवृत्या वा महामणेः सकाशादुत्थिता महासुख**मयूखश्री**रस्य स तथा। उक्तञ्च—

सुखं पीतं सुखं रक्तं सुखं कृष्णं सुखं सितम्।
सुखं श्यामं सुखं सर्वं सुखाकारं महज्जगत्॥ इति।
(हे० त० २.२.३२)

तेन त्रैलोक्यं महासुखं भगवतो रूपमित्युक्तम्। **बुद्धनिर्मा(र्वा)णं** सर्वधर्मसुखमयबुद्धरूपतास्फरणं **भूषणम**लंकारो यस्य स तथा॥ ८॥

लोकधातुशताकम्पी ऋद्धिपादमहाक्रमः।
महास्मृतिधरस्तत्त्वश्चतुःस्मृतिसमाधिराट् ॥९॥

लोकधात्विति। सहजमहासुखस्फरणेन **लोकधातुशतम**नन्तलोकधातुमनु**कम्पयि**तुं शीलं यस्य स तथा। आर्षत्वात् तु शब्दस्याप्रयोगः। रागविरागनिरोधे कायवाक्चित्तज्ञानस्फरणेन सर्वप्रणिधानपरिपूरणाद् **ऋद्धिपादमहाक्रमः**। अनवरतसर्वाकारवरोपेत[4]शून्यतानिमज्जनं महास्मृतिस्तद्धारणा**न्महास्मृतिधरः**। भावाभावैकरूपतत्त्वयोगा**त्तत्त्वः**। हसितेक्षणपाण्यवाप्तिद्वन्द्वचतुःसमाधिराजनाच्**चतुःस्मृतिसमाधिराट्**॥ ९॥

बोध्यङ्गकुसुमामोदस्तथागतगुणोदधिः ।
अष्टाङ्गमार्गनयवित् सम्यक्संबुद्धमार्गवित् ॥१०॥

बोध्यङ्गेति। वैरोचनादिषट्तथागतानां महासुखेन सहैकलोलीभूतत्वेन सप्तावर्तरूपत्वाद् भुक्तपीताद्यन्नपानादिषड्रसपाकतो मूर्च्छाजारणादिना रसरुधिरमांसचर्मनाडीअस्थिमज्जारूपतया वा सप्तावर्तरूपत्वात् सप्तबिन्दु**बोध्यङ्गकुसुमानामामोदो** महासुखोल्लासो यस्य स तथा। [5]सप्तावर्त्तन्तु खाद्यते[6]ऽच्युती क्रियत इत्ययमेवार्थः।

---

१. ग. संच्चीरो। २. 'ख' प्रति पुनः प्रारम्भो जायते। ३. ख. द. पूर्ण। ४. ख. द. शून्यतामिति मज्जनं। ५. ख. सप्तावर्तनं। ६. द. च्युति।

उक्तञ्च—

स्कन्धधात्वादिके दग्धे पञ्चमण्डलवाहके ।
विषयेन्द्रियनिरुद्धे चानन्दाद्ये समुच्छ्रिते ॥

स्रावति (यति) बिन्दुकानिन्दो[1]हूंकारो मूर्ध्निसंस्थितः ।
ललाटे चन्द्रतः सूर्ये कण्ठाद्[2]द्रवो ततो हृदि ॥

नाभौ चण्डालिकाविष्टं गुह्य[3]चक्रे ततो गतं ।
सम्पातो गुह्यचक्रेऽस्मिन्कथितोऽयं महापशुः ॥

[4]त्रिसृकाधस्त्रिनाडीनां [5]पत्रचन्द्रं प्रदर्शितम् ।
सप्तजन्मा पशुश्चैव खेचरीसिद्धिदायकः ॥

मूर्च्छितो हरते व्याधिं [6]हरति (जारितो) स्कन्धधातुकम् ।
ददाति चक्रवर्त्तित्वं विषयेन्द्रियमारितः ॥

खेचरत्वं ददात्येषोऽणिमादिगुणैर्युतः ।
क्षिप्रं ददाति बुद्धत्वं ज(मा)रणाद्यैरनु[7]सारितः ॥

[8]बाह्यामृतो यथा बद्धस्तथाज्ञानरसोऽप्ययम् ।
ददाति विपुलां सिद्धिं सर्वदुःखापहारिणीम् ॥

एवं ब्रह्मा पशुर्विष्णुर्गुह्यचक्रे निपातितः ।
ददाति विपुलं ह्यायुर्यावदा हृदि(हुति)संप्लवम् ॥

उर्ध्वेराहुः पशुः प्रोक्तश्चन्द्रसूर्यौ महापशूः ।
पातिता ब्रह्मरन्ध्रेण भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥

रक्तस्नायुस्तथा मज्जा पातनीयः प्रयत्नतः ।
एते च पशवो ज्ञेया नान्यबाह्योऽस्तु [10]देहिनाम् ॥

सप्त[11]जन्मास्तु सर्वेषां पशूनां परमेश्वरः ।
सप्तजन्मा यथा देहे तथा वक्ष्यामि तच्छृणु ॥

अन्नपानरसं सर्वं भुक्तं पीतञ्च षड्विधम् ।
पाकतो रसतां याति प्रथमं जन्म तस्य तत् ॥

पश्चाद् रुधिरतां याति द्वितीयं भवति स्फुटम् ।
तृतीयं मांसतां याति चतुर्थं चर्मतां व्रजेत् ॥

---

१. द. हकारो । २. क. भो. ०द्राहो, ख. ०द्रावो, ३. ख. चन्द्रे । ४. क. त्रिशृ, ग. त्रिस्रि, भो० rTse gSum (त्रिशूक) । ५. भो. ḥDab Mahi BuGa (पत्रछिद्रं) ६. क. ख. जरतिः, द. पाचित । ७. ख. सारितं । ८. भो. Phyi Rol dṄul Chus (बाह्यस्वेदतो) । ९. भो. bSreg bLugs (आहुति)। १०. ख. देशिनं । ११. ख. जन्मां तु ।

नाडीत्वं पञ्चमे याति [1]अस्थितां याति षष्ठमे ।
सप्तमे मज्जतां याति सप्तावर्त्तं भवेदिति ॥

तथा (**तथेति**) । तथता धर्मोदया अवधूती तद्गतत्वेन सर्वगुणोदयाद्दशविध-प्राणादिवायुनिरोधेन दशभूमिसमन्तप्रभापर्यन्तफलभूमिं प्राप्तः **तथागतः** । स एव **गुणोदधिः** सर्वभूम्याश्रयत्वेन तत्तत्[2]सत्त्वार्थकरणात् । अन्तर्गताकाशमण्डलत्वेन वाम-दक्षिणनासापुटयोः प्राणवाहमण्डलान्यष्टौ तेषां [3]**मार्गो** मध्यमाप्रवेशस्तन्नयं तदुपदेश-गुरूपदिष्टप्रत्याहारादिना **वेत्ती**ति तथा । **सम्यक्संबुद्धः** स्वयंभूः ज्ञानी तस्य **मार्गो** धर्मधातुज्ञानं तत्साक्षात्कारात्तथा ॥ १० ॥

सर्वसत्त्वमहासङ्गो निःसङ्गो गगनोपमः ।
सर्वसत्त्वमनो[4]जातः सर्वसत्त्वमनोजवः ॥११॥

सर्वं [**सत्त्वेति**] । धर्मकायाभिन्ननिर्माणकायेन सर्वसत्त्वार्थापरित्यागात् **सर्वसत्त्वेषु** [5]**महानासङ्गः** पाचनादिना यस्य स तथा । शून्यता स्वभावेन **निस्सङ्गः** । विकल्प[6]लेपाभावेन **गगनोपमः** । प्रकृतिप्रभास्वरत्वमनसिकारेण **सर्वसत्त्वानां मनसि-जात**त्वात्तथा । सर्व[7]सत्त्वेष्वधिमुक्तिवशेन वज्रधरादिप्रतिभासरूपत्वात् **सर्वसत्त्व-मनोजवः** ॥ ११ ॥

सर्वसत्त्वेन्द्रियार्थज्ञः सर्वसत्त्वमनोहरः ।
पञ्चस्कन्धार्थतत्त्वज्ञः पञ्चस्कन्धविशुद्धधृक् ॥१२॥

सर्वसत्त्वेन्द्रियेति । **सर्वसत्त्वानां** मृदुमध्याधिमात्ररूपाणी**न्द्रियाणि** तेषा**मर्थः** [8]सप्रपञ्चनिष्प्रपञ्चमव्याहतमहासुखसमाधिना **जानाती**ति तथा । सर्वसत्त्वानां मनांसि विकल्पचित्तानि हरति तानि निःस्वभावीकरोति (तीति) **सर्वसत्त्वमनोहरः** । **पञ्चस्कन्धार्थ**त्वं पारमार्थिकवज्रेण सर्वतथागतव्यूहस्य तथतायां प्रवेशस्त**ज्ज्ञाना**त्तथा । उक्तञ्च —

रूपस्कन्धगतादर्शे भूधातुनयनेन्द्रियम् ।
रूपं च पञ्चमं याति क्रोधमैत्रेयसंयुतम् ॥ इत्यादि ।

प्रभास्वरोत्थाना[त्] प्रकृतिप्रभास्वरतां पञ्चस्कन्धार्थं विशुद्धं धरतीति **पञ्चस्कन्धविशुद्धधृक्** ॥ १२ ॥

---

१. ख. अस्थि । २. ख. द. सत्त्वापकरणात् । ३. ग. मार्गे । ४. ग. यातः । ५. क. ग. महासङ्गः । ६. ख. लया । ७. ख. सत्त्वेष्वेव स्वाधि भो. Sems Can Kun La Raṅ Gi Mos Pahi (सर्वसत्त्वे स्वाधिमुक्ति) । ८. क. ग. सप्रपञ्चनिष्प्रपञ्चात्यन्त निष्प्रपञ्चम० ।

सर्व[1] निर्याणकोटिस्थः सर्वनिर्याणकोविदः ।
सर्वनिर्याणमार्गस्थः सर्वनिर्याणदेशकः ॥१३ ॥

सर्वनिर्याणेति । **सर्वनिर्याणकोटौ** युगनद्धसमाधौ **स्थित**त्वात्तथा । अवाच्य-नैरात्म्यं सुखवेदकत्वात् **सर्वनिर्याणकोविदः** । महासुखरत्नत्वेन निःसङ्गत्वेऽपि महाकरुणाबलेन श्रावकादिमार्गे स्थितत्वात् **सर्वनिर्याणमार्गस्थः** । महासुखकाय-धर्मेण धर्मधातुः **सर्वनिर्याणं** तस्य **देश**[2]**को**ऽविकल्पेन प्रकाशकः ॥ १३ ॥

द्वादशाङ्गभवोत्खातो द्वादशाकारशुद्धधृक् ।
चतुःसत्यनयाकारः अष्टज्ञानावबोधधृक् ॥१४॥

द्वादशाङ्गेति । अविद्यादिद्वादशाङ्गनिरोधेन पीठोपपीठादिस्थानमहासुखत्वेन वा **द्वादशाङ्गभवोत्खातः** । उक्तञ्च—

परपीठेति प्रज्ञोक्ता आत्मपीठमुपायकम् ।
अनयोरद्वयीभावो [3]योगपीठ इति स्मृतम् ॥
तत्त्वपीठं तदुत्पन्नं तद्रहितं च यद् भवेत् ।
सहजेति समाख्यातं वाक्पथातीतगोचरम् ॥ इति ।

अन्यत्र च—

पीठं स्त्रीगुह्यपद्मं प्रभवति समये वज्रमेवोपपीठं
क्षेत्रं छन्दोहमेलापक[4]चितिभुवनं तद्वदेवं समस्तम् ।
पीठं वामाङ्गपूर्वं ह्यपरमपि तथा दक्षिणञ्चोपपीठम्
एवं क्षेत्रादि सर्वं करचरणगतं चाङ्गुलीजानु[5]सीम्नः ॥ इति ।
(का० त० ३.१६६)

ग्राह्यग्राहकाकारविविक्तद्वादशायतनधारित्वाद् **द्वादशाकारशुद्धधृक्** । प्राकृत-कल्पितसुखं दुःखम् । तुर्यालक्षणः समुदयः । ज्ञानमण्डलान्तर्गतकायवाक्चित्तप्रकृति-निरोधो [निरोधसत्यम्] । निरालम्बस्वचित्तप्रतिभासजगद्बुद्धबिम्बदर्शनं मार्गः । एतत्सर्वाद्वयत्व**माकारो** यस्य स तथा । विचित्रादिचतुष्टय निःस्पन्दादिचतुष्टय महारति-ज्ञानाष्टकधारणा**दष्टज्ञानावबोधधृक्** ॥ १४ ॥

---

१. श्लोकेऽस्मिन्, क. ख. प्रतौ निर्याण स्थाने निर्वाण इति पठ्यते । २. ख. कोऽथ-विकल्पेन । ३. ख. योगी । ४. ख. द. चित्रि । ५. ख. सीम्ना ।

द्वादशाकारसत्यार्थः षोडशाकारतत्त्ववित् ।
विंशत्याकारसंबोधिर्विबुद्धः[१] सर्ववित् परः ॥१५॥

द्वादशाकारेति। निःस्प(स्य)न्दविपाकपुरुष(षा)कारवैमल्यक्षणानां प्रत्येकं त्रैगुण्याद् द्वादशाकारा द्वादशभूमयः संवृतिपरमार्थसत्याभेदेन तद्योगाद् **द्वादशाकारसत्यार्थः**। तत्र कायवाक्चित्तविवेकनिःस्प(स्य)न्दभेदेन प्रथमं त्रिकं निर्माणकायस्य। आभास-प्रतिभास-प्रकृतिनिराभासविपाकभेदेन द्वितीयं त्रिकं संभोगकायस्य। चित्तचैतसिकाविद्यापुरुष(षा)कार[वैमल्यविपाक]भेदेन तृतीयं त्रिकं धर्मकायस्य। आनन्दद्वयविरमसहजानन्दवैमल्यभेदेन चतुर्थत्रिकं ज्ञानकायस्येति। प्राणक्षयेण रजो निरोधाद्वा निरोधितमेषवृषादिद्वादशराशित्वेन वा द्वादशभूमिलाभाद् द्वादशाकारसत्यार्थः। षोडशानन्द[२]कलां शुक्रनिरोधेन **षोडशाकारतत्त्वं वेत्ती**ति तथा। सांसारिकषोडशकला-[क्षयतोऽ]क्षरत्वात् षोडशाकारतत्त्ववित्। षडङ्गभावनया विशुद्धावधूतीविशुद्धत्वेन पञ्चस्कन्ध-पञ्चधातु-पञ्चेन्द्रिय-पञ्चायतनविशुद्ध्याकारावबोधाद् **विंशत्याकारसम्बोधिः**। अविद्यानिरोधाद् **विबुद्धः**। सर्वबुद्धमय[३]भावग्रामावबोधात् **सर्ववित्** ॥ १५ ॥

अमेयबुद्धनिर्माणकायकोटिविभावकः ।
सर्वक्षणाभिसमयः सर्वचित्तक्षणार्थवित् ॥१६॥

अमेयेति। सर्वनिर्वाणैकलोलीभूताप्रमेयबुद्धनिर्माणरूपभावग्रामस्य श्वाससमूहस्य महासुखत्वेनैकक्षणे विभावनात्तथा। अनेन मध्य[४]निमित्तमुक्तम्। प्रतिश्वासं सर्वश्वासानां महासुखेन बोधात् **सर्वक्षणाभिसमयः**। **सर्व**सत्त्वानां **चित्तक्षणानां** च महासुखत्वेनैव **वेत्ती**ति तथा ॥ १६ ॥

नानायाननयोपायजगदर्थविभावकः ।
यानत्रितयनिर्यात एकयानफले स्थितः ॥१७॥

नानायानेति। **नानायाननयोपायेन** चतुरङ्ग-षडङ्गबिन्दुयोगादिना **जगदर्थं** महासुखत्वेन **विभावयति** स्फारयतीति तथा। ज्ञानकायत्वेन कायवाक्चित्तनिर्यातत्वाद् **यानत्रि**[५]**तयनिर्यातः**। **एक**मद्वितीयं **यानं फलं** हंकारास्तत्र **स्थितः** ॥ १७ ॥

क्लेशधातु[६]विशुद्धात्मा कर्मधातुक्षयङ्करः ।
ओघोदधिसमुत्तीर्णो [७]योगकान्तारनिःसृतः ॥१८॥

---

१. क. 'सर्वबुद्ध' इत्यधिकः। २. ख. कला। ३. ख. भावग्रामहावरोधात्। ४. भो. mTsban Ma Med Pa (अनिमित्तं)। ५. ख. तया। ६. च. विशुद्धात्म। ७. छ. योगः।

क्लेशधात्विति। अविद्याया विनाशित्वात् **क्लेशधातूनां विशुद्धात्मा** यस्य स तथा। ते च क्लेशधातवोऽष्टादश अस्थि-चर्म-मांस-रक्त-स्नायु-मज्जा-मेदः-शुक्र-श्लेष्म-विण्मूत्र-खेट-[1]सिहा(घा)ण-यकृत-प्लीहा-पिशित-मल-रोमाख्याः। पापपुण्यविकल्पाभावात् **कर्मधातुक्षयंकरः**। सर्वप्रकृतिनिरोधेन ज्ञानपारगत्वाद् **ओघोदधिसमुत्तीर्णः**। ताश्च प्रकृतयो विरागो मध्यमविरागोऽतिविरागो यन्मनो गतागतम् शोको मध्यमशोकोऽतिशोकः [2]सौम्यं विकल्पो भीतं[3] तृष्णा मध्यमतृष्णा [4]अतितृष्णा उपादानं [5]निःशुभ्र क्षुत्तृषा वेदना समवेदना अतिवेदना विदविद् धारणा पदं प्रत्यवेक्षणं लज्जा कारुण्यं स्नेहो मध्यमस्नेहोऽतिस्नेहश्चकितं सञ्चयो मात्सर्यमिति त्रयस्त्रिंशत् क्षणाः प्रज्ञाज्ञानस्य। रागो रक्तं तुष्टं मध्यमतुष्टं अतितुष्टं हर्षणं प्रामोद्यं विस्मयो हसितमा[6]ह्लादनमालिङ्गनं चुम्बनं [7]चूषणं स्थैर्यं वीर्यं मानः करणं हरणं बलमुत्साहः साहसं मध्यमसाहसमुत्तमसाहसं रौद्रं विलासो वैरं शुभं वाक्स्फुटं सत्यम् [8]असत्यं निश्चयो निरुपादानं दाहत्वं चोदनं शौर्यं अलज्जा धूर्तत्वं दुष्टत्वं शठकौटिल्यमिति चत्वारिंशत् क्षणा उपायज्ञानस्य। मध्यरागो विस्मृतिर्भ्रान्तिस्तूष्णीं खेद आलस्यं धन्धत्वमिति सप्तक्षणा आलोकोपलब्धिज्ञानस्य। एताश्च दिवारात्रिप्रवर्त्तनाभेदेन षष्ट्युत्तरशतं सम्भवन्ति। सकलविकल्पभक्षा**द्योगकान्तारनिस्सृत**योगो ज्ञानसमापत्तिमात्रं कान्तारं दुरवबोधात् ॥ १८ ॥

क्लेशोपक्लेशसंक्लेशसुप्रहीणसवासनः ।
प्रज्ञोपायमहाकरुणा-अमोघजगदर्थकृत् ॥१९॥

क्लेशोपक्लेशेति। **क्लेशोपक्लेशसंक्लेशानां** अविद्यादीनां **सुप्रहीणा सुष्ठुवासना** यस्य स तथा। षडङ्गयोगेन साधिता महामुद्रा प्रज्ञा तदद्वयीभूता **महाकरुणा** तया [9]**अमोघं** अवन्ध्यमव्याहतसुखं **जगदर्थङ्करोती**ति तथा ॥ १९ ॥

सर्वसंज्ञा[10]प्रहीणार्थो विज्ञानार्थो निरोधधृक् ।
सर्वसत्त्वमनोविषयः [11]सर्वसत्त्वमनोगतिः ॥२०॥

सर्वसंज्ञेति। समापत्त्यादिसंज्ञया अभावात् **सर्वसंज्ञाप्रहीणार्थः**। **विगतं ज्ञानं** [12]ग्रहण**मर्थो** [13]बाह्यञ्च यस्य स तथा। अत एव निरास्रवधर्मतामात्रत्वा**न्निरोधधृक्**। सर्वसत्त्वानां मनसि अविकल्पयोगेन संभूतत्वात् **सर्वसत्त्वमनोविषय** अविषयो अगोचरो वा, अत एव **सर्वसत्त्वमनोगतिः** ॥ २० ॥

सर्वसत्त्वमनोऽन्तस्थः तच्चित्तसमताङ्गतः ।
सर्वसत्त्वमनोह्लादी सर्वसत्त्वमनोरतिः ॥२१॥

---

१. ख. सिहानण। २. द. सौख्य। ३. क. ख. ग. 'मध्यमभीतमतिभीतम्' इत्यधिकम्। ४. ख. 'अतितृष्णा' नास्ति। ५. भो. dGe Bral (निःशुभं)। ६. क. ग. भो. 'आह्लादनं' नास्ति। ७. ख. द. 'चूषणं' नास्ति। ८. भो. 'असत्यं' नास्ति। ९. ख. अमोघ। १०. च. छ. प्रहाणार्थो। ११. क. ख. ङ. सर्वबुद्ध। १२. क. प्रहण। १३. क. वाचे।

सर्वसत्त्वेति । **सर्वसत्त्वानां मनोऽन्तः** धर्मधातुरूपत्वेन ज्योतिरूपत्वं तिष्ठतीति तथा । तेषां सर्वसत्त्वानां **चित्तसमता** तथतारूपेण **तां गतः** [1]प्राप्तः, सर्वेषां धर्मतारूपेणाविशेषात् । विपर्यासव्यावृत्तमहासुखज्ञानस्योदयात् **सर्वसत्त्वमनोह्लादी** । अनास्रवसुखसंजनकत्वात्**सर्वसत्त्वमनोरतिः** ॥ २१ ॥

> [2]सिद्धान्तो [3]विभ्रमापेतः सर्वभ्रान्तिविवर्जितः ।
> निःसंदिग्धमतिस्त्र्यर्थः सर्वार्थस्त्रिगुणात्मकः ॥२२॥

सिद्धान्तेति । सदसत्पक्षविगमेन परमनिष्ठारूपत्वेन **सिद्धान्तः** । पुद्गलादिविभ्रमापेतत्वाद्**विभ्रमापगतः** । कल्पितपरतन्त्रपरिनिष्पन्नवर्जितत्वात् **सर्वभ्रान्तिविवर्जितः** । लौकिकलोकोत्तरसिद्धान्तपरिज्ञानेन सत्त्वानामविपरीततत्त्वोपदेशान्**निःसन्दिग्धमतिः** । त्र्यर्थः प्रज्ञयार्थः साध्यः सर्वसुखस्वभावत्वात् **त्र्यर्थः** । निखिलस्थिरचलपदार्थ[4]रूपत्वात् **सर्वार्थः**, निरावरणसत्त्वरजस्तमोगुणैकस्वभावत्वं **त्रिगुणात्मकः** ॥ २२ ॥

> पञ्चस्कन्धार्थ[5]स्त्रिकालः सर्वक्षणविभावकः ।
> एकक्षणाभिसम्बुद्धः सर्वबुद्धस्वभावधृक् ॥२३॥

पञ्चस्कन्धेति । षडङ्गयोगेन स्वाधिष्ठानस्फुटीभावात् पञ्चस्कन्धानामर्थो बुद्धः **पञ्चस्कन्धार्थः** । नित्यत्वेन **त्रिकालः** । **सर्व**विकल्पश्वास**क्षणान्** महासुखेन भावयति वेधयतीति तथा । **एकस्मिन्नेव च** तुर्य**क्षणे** सर्वभावाभिन्नं समन्तभद्राभिधान**मभिसंबुद्धो** वेत्ता, अत एव **सर्वबुद्धस्वभावधृक्**, सहजकायधारीत्यर्थः ॥ २३ ॥

> [6]अनङ्गकायः कायाग्र्यः कायकोटिविभावकः ।
> अशेषरूपसन्दर्शी रत्नकेतुर्महामणिः ॥२४॥
> इति समता[7]ज्ञानगाथाश्चतुर्विंशतिः ।

अनङ्गेति । चूडामणिचक्रगतत्वेना**नङ्गकायो** धर्मधातुर्वज्रानङ्गः, स एव सुखसञ्चयरूपत्वात्**कायाग्रं** यस्य स तथा । महासुखत्वेन कायकोटिं [8]विभावयतीति **कायकोटिविभावकः** । अत एव विनेयाभिप्रायेण **अशेषरूपसन्दर्शी** । सर्वजनरञ्जनार्थेन सुखरत्नाङ्कितः केतुः **रत्नकेतुः** । महामणिस्थितत्वान्**महामणिः** ॥ २४ ॥

इति द्वादशाङ्गनिरोधद्वादशभूमिप्रतिलम्भविशुद्धचा समताज्ञानगाथाश्चतुर्विंशतिः ॥ ९ ॥

---

१. क. ग. 'प्राप्तः' नास्ति । २. ख. ग. घ. ङ. छ. सिद्धान्त । ३. ङ. विभ्रमापगतः । ४. ख. द. स्वरूपत्वात् । ५. क. ख. ग. त्रिष्काल, घ. स्त्रिष्काल ६. ग. घ. च. छ. अनङ्गकाय । ७. ख. ज्ञानस्तुतिगाथाः । ८. ख. भावयति स्फारयतीति ।

कृत्यानुष्ठानज्ञानम्

इदानीं पञ्चदशकृत्यानुष्ठानगाथामुखेनानावरणसंस्कारस्कन्धामोघसिद्धिरूपेण तदेव परमाक्षरज्ञानमाह—

सर्वसंबुद्ध[1]बोद्धव्यो बुद्धबोधिरनुत्तरः ।
अनक्षरो मन्त्रयोनिर्महामन्त्रकुलत्रयः ॥१॥

सर्वसंबुद्धेति । त्र्यध्ववर्त्तिभिः सर्वसम्बुद्धै**र्बोद्धव्यः** साक्षात् कर्तव्यः सम्यग् ज्ञानस्वभावः । स एव मञ्जुश्रीर्ज्ञानकाय इति यावत् । उक्तञ्च—

त्वदधीनाभिसम्बोधिः पिता त्वं सर्वदेहिनाम् ।
संभूताः संभविष्यन्ति त्वामासाद्य तथागताः ॥

कायवाक्चित्तस्वरूपावबोधरूपत्वादद्वयश्रीरेव **बुद्धबोधिः** । चतुर्थाभिसम्बोधि-रूपत्वा**दनुत्तरः** । अविद्यमानवाच्यवाचकसम्बन्धेन धर्मधातुपरमाक्षरयोगात्मा [2]**अनक्षरः** । रूपगुणादिभिर्वच[3]नातीत इत्यर्थः [4]सहजज्ञानत्वेन **मन्त्राणां** लौकिकादीनां **योनि**रुत्पत्ति-हेतुत्वाद् भगवानेव । रेचकपूरक[5]कुम्भकाक्षरत्वेन स्वसंवेद्य[6]त्वान्**महामन्त्र**नयं **कुलत्रयं** कायवाक्चित्तानन्दपरमानन्दविरमानन्दरूपं यस्य स तथा ॥ १ ॥

सर्वमन्त्रार्थजनको महाबिन्दुरनक्षरः ।
पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः[7]षडक्षरः ॥२॥

सर्वमन्त्रार्थेति । [8]शान्तिकादिपौष्टिकादिप्रत्याहारलक्षणो लौकिको मन्त्रः । परमाक्षरयोगेन बिन्दुनादा[9]त्मको लोकोत्तरो मन्त्रः । स एव साध्यत्वादर्थः **सर्वमन्त्रार्थो** महामुद्रार्थः, तस्य **जनक** उत्पादकः । अ क च ट त प य श क्ष ओं (ह)काराकारेण सह दशवर्गदशप्राणादिवायूनां मध्यमाप्रवाहत्वेन एकलोलीभूय सर्वशरीरेषु लीनत्वा-**न्महाबिन्दु**र्भगवान् । परमार्थरूपत्वा**दनक्षरः** । [10]परमार्थसुखज्ञानं वज्रसत्त्वः । उक्तञ्च **मूलतन्त्रे—**

कायवाक्चित्तधातूनां त्राणभूतो यतस्ततः ।
मन्त्रार्थो मन्त्रशब्देन शून्यताज्ञानमक्षरम् ।
पुण्यज्ञानमयो मन्त्रः शून्यताकरुणात्मकः ॥ इति ।

---

१. छ. बोधाग्र्यो । २. ख. अक्षरः । ३. क. नाभीत । ४. क. सहजोकार० । ५. ख. कुम्भकारत्वेन । ६. द. 'त्वात्' नास्ति । ७. क. छ. शताक्षरः । ८. ख. शान्तिकपौ० । ९. ख. त्मकोत्तरो । १०. भो. mChog Tu Mi ḥGyur Pahi (परमाक्षर) ।

ज्ञानस्कन्धविज्ञानस्कन्धज्ञानधात्वाकाशधातुमनःश्रोत्रशब्दधर्मधातुदिव्येन्द्रियभग-मूत्रस्रावशुक्रच्युतिरूपाणां निरावरणता प्रत्येकं स्वस्व[1]विषयग्रहणविवर्जितत्वं समरसैकलोलीभूतत्वं पर(प्रथ)माक्षरशून्यं योगिस्वसंवेद्यम्, न सर्वाभावलक्षणम्। तदेवाह–तमाकारशून्यं रेखामात्रमनुच्चार्य कर्तृकाकारं मध्ये, संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणस्पर्शवागिन्द्रियविट्स्रावाणामेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्नात् पूर्वेण, इकारशून्यं दण्डाकारं द्वितीयाक्षरशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातुचक्षुरसपाणिगतीनां निराव[2]णता मध्यानाहतचिह्नाद्दक्षिणेन ऌकारशून्यं बिन्दुद्वयं तृतीयाक्षरशून्यम्। संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वारूपपादे[3]न्द्रियादानानां निरावरणता मध्यानाहतचिह्नाद्वामेन, बिन्दुरूपमेकमनुच्चार्यमूकारशून्यं चतुर्थाक्षरमहाशून्यम्। रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रियगन्धपाय्वालापानां समरसत्वमेकलोलीभूतत्वं, मध्यानाहतचिह्नात् पश्चिमेन, तद्[4]हलाकृतिः एकारशून्यं पञ्चाक्षरशून्यम्। एवं वंकारः पञ्चाक्षरो महाशून्यो निरालम्बकरुणात्मकः, परमाणुधर्मतातीतः, प्रतिसेनातुल्यो योगिगम्यः, तदाधारभूत एकारो धर्मोदयरूपः सर्वाकारशून्यतास्वभावो बिन्दुशून्यः षडक्षरः। तथाहि– विज्ञानस्कन्ध आकाशधातुश्रोत्रधर्मधातुभगशुक्रच्युतीनां निरावरणशून्यता। पूर्वोक्ता मध्यानाहतचिह्नस्योर्ध्वे कवर्गात्मकं ककारव्यञ्जनमनुच्चार्यं प्रथमं बिन्दुशून्यम्। संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणेन्द्रियस्पर्शवाग्[5]विट्स्रावाणां निरावरणसर्वाकारशून्यता। पूर्वोक्तचिह्नस्य पूर्वे चवर्गात्मकं चकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं [द्वितीयं] बिन्दुशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातुचक्षुरसपाणीन्द्रियगतीनां सर्वाकारनिरावरणशून्यता। दक्षिणचिह्नस्य दक्षिणे टवर्गात्मकं टकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं तृतीयं बिन्दुशून्यम्। संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वारूपपादेन्द्रियादानानां निरावरणशून्यता। उत्तरचिह्नस्योत्तरे पवर्गात्मकं पकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं चतुर्थबिन्दुशून्यम्। रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रियगन्धपाय्वालापानां निरावरणशून्यता। पश्चिमचिह्नस्य पश्चिमे तवर्गात्मकं तकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं पञ्चमं बिन्दुशून्यम्। ज्ञानस्कन्धज्ञानधातुमनःशब्ददिव्येन्द्रियमूत्रस्रावाणां सर्वाकारनिरावरणशून्यता। मध्यानाहतचिह्नस्याधस्तात् शवर्गात्मकं शकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं षष्ठं बिन्दुशून्यमिति। एवं **बिन्दुशून्यः षडक्षरो** धर्मोदयः। कुलिशधर एकारः शून्यता सालम्बा प्रतिसेनास्वरूपिणीति। एतेन [6]**पञ्चाक्षरो महाशून्यः**। स्वरसमूहः [शुक्र] चन्द्र इत्युच्यते। बिन्दुशून्यः षडक्षरो व्यञ्जनसमूहो रजः सूर्य इत्युच्यते। अत्र च शुक्रं चन्द्रो वंकारो वज्रं, रजः सूर्य एकारः पद्मम्, अनयोर्वज्रपद्मयोरेकत्वं वज्र[7]सत्त्व इति। वज्रं परमसुखं, ज्ञानं शुक्रं, [8]सत्त्वः सर्वाकारप्रज्ञाबिम्बं ज्ञेयमिति। ज्ञानविज्ञानाधिष्ठितं निरावरणमेकलोली[9]भूतत्वं जगदर्थकारी वज्रसत्त्व इति। एतच्च **विमलप्रभायाम्** (भाग-१, पृ० ४७–५०) उक्तं ज्ञेयमिति ॥ २ ॥

---

१. क. विषयं ग्रहणं। २. क. णगतां, ख. द. णतां। ३. क. ०न्द्रियादीनां। ४. क. फलाकृतिः। ५. ख. चित्त। ६. ख. पञ्चाक्षर। ७. ख. सत्त्वं। ८. क. सत्त्वं। ९. द. भूतं।

सर्वाकारो निराकारः षोडशार्धार्धबिन्दुधृक् ।
अकलः कलनातीतश्चतुर्थध्यानकोटिधृक् ॥३॥

सर्वाकारेति । सर्वाकारनिराकारहेतुरुक्तः । प्रत्याहारेण यो दृष्टो भावो घटादिकः प्रतिसेनातुल्यप्रतिभासः **सर्वाकारः** । कल्पनापोढा [1]भ्रान्तप्रत्यक्षदर्शनात् **निराकारः** परमाणुधर्मतातीतः कल्पनारहितत्वात् पिहितापिहितनेत्रगम्यः । एवं सर्वाकारनिराकारो हेतुः प्रज्ञापारमिता शून्यता सर्वाकार[2]वरोपेता तदुत्पन्नं [3]फलं परमाक्षरसुखं **षोडशार्द्धार्द्धबिन्दुधृक्** महाप्रज्ञाज्ञानमित्युच्यते तथागतैः । उक्तञ्च—

सर्वाकारवरोपेता शून्यता हेतुनो[4]दिता ।
अनालम्बा कृपा पश्चाज्जगदर्थकरी फलम् ॥ इति ।

षोडशानां कलानामर्द्धमष्टौ तदर्द्धं चत्वारो बिन्दवः कायवाक्चित्तज्ञानलक्षणाः, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्यावस्थाजनकाः । तान् धारयतीति षोडशार्द्धार्द्धबिन्दुधृक् । समयचतुष्टयपालकः वज्रसत्त्वो महाराग इत्यर्थः । अकलः शुक्लपक्षपञ्चदशकलारहितः । तासामन्ते स्थितः शुक्लपूर्णिमावसाने कलनातीत इति । कलना कृष्णप्रतिपत् तत्राप्रतिष्ठितः कलनातीतः सहज इत्यर्थः । **चतुर्थध्यानकोटिधृ**गिति प्रथममानन्दसुखध्यानं, द्वितीयं परमानन्दसुखध्यानं, तृतीयं विरमानन्दसुखध्यानं, चतुर्थं सहजानन्दसुखध्यानम् । पञ्चमी दशमी [पञ्चदशमी] पूर्णा । पूर्णान्ते बिन्दौ परमाक्षरसुखध्यानं स्थितं तस्य कोटिरग्रभागः सुखपरिपूर्णता तां धरतीति चतुर्थध्यानकोटिधृक् ॥ ३ ॥

सर्वध्यानकलाभिज्ञः समाधिकुल[5]गोत्रवित् ।
समाधिकायः कायाग्र्यः सर्वसंभोग[6]कायराट् ॥४॥

सर्वध्यानेति ।

[7]ज्ञेयं ज्ञानोदयस्तर्को विचारस्तत्प्रयोगतः ।
तृतीयं प्रीतिसंकाशं चतुर्थं सुखसंग्रहः ।
पञ्चमं तु सदालोकं निरभ्रं गगनसन्निभम् ॥ इति ।
(गु० त० १८.१४४, १४५, १५१)

पञ्चध्यानकलाभिज्ञत्वात् **सर्व[ध्यान]कलाभिज्ञः** । सर्वधर्मसमतादिसमाधिसमूहसामर्थ्यवेतृत्वात् **समाधिकुलगोत्रवित्** । **समाधिकायो** धर्मकायोऽयमेव सम्भोगनिर्माणकाययो**रग्र्यो** यस्य स तथा । धर्मकायाभिन्नसंभोगकायेन सर्वपर्षन्मध्ये राजत इति **सर्वसम्भोगकायराट्** ॥ ४ ॥

---

१. क. भ्रान्ता । २. ख. वरोपिता । ३. ख. फल । ४. क. ०रुदितः, ख. रोदितः, भो. rGyu Ñid Dañ Po Nas (हेतुनादिता) । ५. क. ख. ङ. गोत्रधृक् । ६. क. कायकोटिविभावकः । ७. गु० त० गुह्यं तर्कोदयं तर्कं विचारं ।

निर्माणकायः कायाग्र्यो बुद्धनिर्माणवंशधृक् ।
दशदिग्विश्वनिर्माणो यथावज्जगदर्थकृत् ॥५॥

निर्माणकायेति । अनाभोगबहिर्जगदर्थनानाप्रकृतिको निर्माणकाय एवान्येषां **निर्माणानां मध्येऽग्र्यो निर्माणकायककायाग्र्यः** । सर्वभावसहितत्रिकुलपञ्चकुलादिवंशस्य प्रभास्वरत्वेन धारणात्तथा। दशदिक्षु विश्वस्य निर्माणस्फरणं यस्य स तथा। यथा[वत्]स्वजगदर्थकरणाद् **यथावज्जगदर्थकृत्** ॥ ५ ॥

देवातिदेवो [1]देवेन्द्रः सुरेन्द्रो दानवाधिपः ।
अमरेन्द्रः सुरगुरुः प्रमथः प्रमथेश्वरः ॥६॥

देवातिदेवेति । महारागात्मककायत्वेन ब्रह्मात्मकत्वाद् **देवातिदेवः** । प्रभास्वरचित्तवज्रत्वेन विष्णुस्वभावत्वाद् **देवेन्द्रः**। रत्नान्तरुष्णीषगमनेन बलिरूपत्वात् **सुरेन्द्रः** । अनुपमाद्वयश्रीधर्मामृतलाभेन राहुस्वभावत्वाद् **दानवाधिपः** । [2]नैरात्म्ये ऐरावतगतित्वेन पुरन्दरस्वभावत्वाद**मरेन्द्रः** । निःस्वभावी(वि)सर्वधर्मप्रकाशनेन बृहस्पतिस्वभावत्वात् **सुरगुरुः** । महासुखशुक्रदान्तवशीकृतप्रादेशिकक्षणा(स्कन्धा)दिविघ्नगणत्वेन विघ्नाधिपत्वात्**प्रमथः** । कायवाक्चित्तमुक्तिरूपत्र्यम्बकस्वभावत्वात् **प्रमथेश्वरः** ॥ ६ ॥

उत्तीर्णभवकान्तार [3]एकः शास्ता जगद्गुरुः ।
[4]प्रख्यातदशदिग्लोको धर्मदानपतिर्महान् ॥७॥

उत्तीर्णभवेति । सर्वसत्त्वानां सम्यग्ज्ञानप्रवर्तकत्वेन **उत्तीर्णभवकान्तारः** । **एको**ऽद्वितीयः । **शास्ता** नानादुःखदुःखितानां महा[5]सुखोदयशासनात् । सर्वप्रपञ्चोपशमेनाविचलितसुखज्ञानविहारित्वाज्**जगद्गुरुः** । **प्रख्याता दशदिक्षु** पुण्यसंभारादिना प्रसिद्धा[6]**लोका** बोधिसत्त्वादयस्तेषु सम्भोगकायादिप्रतिभासतया **धर्मदानपतिः** । **महान्** स्थिरचलात्मकत्वेन व्यापी ॥ ७ ॥

मैत्रीसन्नाहसन्नद्धः करुणावर्मवर्मितः ।
प्रज्ञा[7]खड्गो धनुर्बाणः क्लेशज्ञानरणञ्जहः ॥८॥

मैत्रीति । सहजानन्दसुखं[8][चित्तं] **मैत्री** सैव सर्वाङ्गव्यापनात् **सन्नाहस्तेन सन्नद्धो** निचितः चित्तविक्षेपापनयनात् । पूर्वोक्त**करुणावर्मणा वर्मितो** रक्षितः । वैमल्यगतमहामुद्रा **प्रज्ञा** सैव **खड्गो** यस्य स तथा । **धनु**र्नादो **बाणो** बिन्दुस्तदद्वैतरूपत्वात्तथा । महाराग[9]समाधियोगाच्च्युति[10]वासनाभक्षणात् **क्लेशज्ञानरणञ्जहः** ॥ ८ ॥

---

१. क. ख, ङ. देवेन्द्रोऽसुरेन्द्रो । २. क. नैरात्म्यं । ३. च. एकशास्ता । ४. ग. घ. च. छ. प्रख्यातो । ५. ख. सुखोदयः । ६. ख. लोको । ७. क. खड्गः । ८. संस्कृतप्रतिषु नास्ति, गृहीतस्तु भोटानुसारी ९. ख. समायोग । १०. ख. वासनाद् भक्ष० ।

मारारिर्मारजिद्वीरश्चतुर्मारभयान्तकृत् ।
सर्वमारचमूजेता सम्बुद्धो लोकनायकः ॥९॥

मारारीति। प्रभास्वररत्नाक्रान्तकायवाक्चित्तरागत्वेन **मारारिः**। वज्रसत्त्वेन प्राणापाननिरोधान्**मारजिद**जयः, अत एव **वीरः**। मैत्र्यादिस्वभावत्वाज्जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्तितुर्यक्षयाच्**चतुर्मारभयान्तकृत्**। प्रकृतिनिर्मलस्वाधिष्ठानतया **सर्वमारचमूजेता**। षण्मण्डलाधिपतित्वात् **सम्बुद्धः**। भवरागतृष्णामलप्रहीणत्वाल्**लोकनायकः** ॥ ९ ॥

वन्द्यः पूज्योऽभिवाद्यश्च माननीयश्च नित्यशः ।
[1]अर्चनीयतमो मान्यो [2]नमस्यः परमो गुरुः ॥१०॥

वन्द्य इति। शुभतीर्थज्ञानप्रवेशेनाविद्यादिमलप्रक्षालनेन सदेवकानां लोकानां वन्दनार्हत्वाद् **वन्द्यः**। सर्वसिद्धान्तपारगत्वेन **पूज्यः**। अनाहतनादाश्रितसर्व[धर्म]सद्धर्म-भाषित्वेन पूजार्हत्वा**दभिवाद्यः**। पञ्चकामगुणेन धर्मोदयान्तर्गतत्वेऽपि बोधिदायकत्वात् श्रावकादीनां **माननीयः**। निर्जितक्लेशत्वेन परिपूर्णगुणत्वाद् बोधिसत्त्वानामर्चनीयतमः। सर्वतथागतानां मातृत्वेनाद्वयसुखावबोधरूपत्वान्**मान्यः**। मन्त्रमुखचर्याचारिणां सत्सुखात्मकत्वान्**नमस्यः**। सर्वसत्त्वानां महासुखाकारेण सर्वतथागतहृदयविहारित्वात् **परमो गुरुः** ॥ १० ॥

त्रैलोक्यैकक्रमगतिर्व्योमपर्यन्तविक्रमः ।
त्रैविद्यः श्रोत्रियः पूतः षडभिज्ञः षडनुस्मृतिः ॥११॥

त्रैलोक्यैकेति। **त्रैलोक्यैकक्रम**स्याद्वितीयसहजानन्दस्य **गति**रनुभवस्तेन वा गति-र्व्याप्तिरस्य। **व्योम्नि पर्यन्तो विक्रमः** सहजरूपतया क्रीडनं यस्य स तथा। निराभासस्य स्फरणरूपतया रूप इति यावत्। तिस्रो विद्याः कामावचररूपावचरमहामुद्रासिद्धि[3]साधिका यस्य स एव **त्रैविद्यः**। श्रुतिमात्रेणापि परमसुखकारित्वेन सुविशुद्धत्वात् **श्रोत्रियः**। चतुर्थरूपेण नित्योदयात् **पूतः** [4]पवित्रः। तद्ग्राह्यग्राहकैकत्वेनाद्वयज्ञानित्वात् **षडभिज्ञः**। षट्चक्रसमाधिप्रविष्टदानादिपारमिताधारणस्मरणरूपत्वात् **षडनुस्मृतिः** ॥ ११ ॥

बोधिसत्त्वो महासत्त्वो लोकातीतो महर्द्धिकः ।
प्रज्ञापारमितानिष्ठः प्रज्ञातत्त्वत्वमागतः ॥१२॥

बोधिसत्त्वेति। सर्व[5]धर्मानासक्तमहायानार्थावबोधाद् **बोधिसत्त्वः**। [6]अपरिमित-सुखेन सत्त्वतर्पणान्**महासत्त्वः**। लौकिकसंकल्परहितत्वाल्**लोकातीतः**। अचिन्त्यपञ्च-

---

१. क. अर्चनीयश्चतमो। २. क. नमस्य। ३. क. समाधिकायस्य। ४. ख. पवित्र। ५. ख. धर्माणां। ६. ख. अपरमि०।

कामोपभोगसुखेन सत्त्वोद्धरणमहाप्रभावात्(वत्वात्) **महर्द्धिकः**। [1]सुचन्द्रत्वेन सर्वोपकल्पविगमात् **प्रज्ञापारमितानिष्ठः**। [2]**प्रज्ञातत्त्वं** महामुद्रा[3]स्वरूप**मागतः** प्राप्तः ॥ १२ ॥

आत्मवित्परवित्सर्वः [4]सर्वीयो ह्यग्रपुद्गलः।
सर्वोपमामतिक्रान्तो ज्ञेयो ज्ञानाधिपः परः ॥१३॥

आत्मविदिति। सर्वप्रपञ्चातिक्रान्तत्वेन गगनरूपत्वा**दात्मवित्**। स्वपरयोरद्वैतबोधात् **परवित्**। अशेषभावस्वभावसंदर्शनात् **सर्वः**। भावाभावयोरद्वैतबोधत्वात् **सर्वीयः**। महासुखात्मकज्ञानकायत्वा**दग्रपुद्गलः**। अनुपमधर्मकायरूपत्वात् सर्वलोकोपमामतिक्रान्तस्तु **सर्वोपमामतिक्रान्तः**। सहजत्वेन प्रत्यात्मवेद्यत्वा**ज्ज्ञेयः**। सुखग्राहकत्वेन ज्ञानाधिपत्या**ज्ज्ञानाधिपः**। अत एव **परः** ॥ १३ ॥

धर्मदानपतिः श्रेष्ठश्चतुर्मुद्रार्थदेशकः।
पर्युपास्यतमो जगतां निर्याणत्रययायिनाम् ॥१४॥

धर्मदानेति यथाभव्यता(तया) अविपरीतधर्मदानाद् **धर्मदानपतिः**। मनसोऽपि त्यागाद् धर्मदानपतित्वेन **श्रेष्ठः**। कर्ममुद्रा-महामुद्रा-ज्ञानमुद्रा-समयमुद्रार्थस्य **देशकः** प्रकाशकः। **चतुर्मुद्रार्थ**प्रकाशनादेव **निर्याणत्रय**[5]**यायिनां** भूचरखेचरमहामुद्रासिद्धिगामिनां जगतां पर्युपास्यः। उक्तञ्च [6]चतुर्मुद्रोपदेशे, तद्यथा—

कर्मज्ञानमहामुद्रासमयाख्यः प्रभास्वरः।
हेतुर्भाव्या तथा प्राप्या चतुर्थोऽविनश्वरः ॥

हेतुरिति प्रथमं [7]कर्ममुद्रोद्भूतं यत्सहजमच्युतसुखम्। उक्तञ्च भगवता तत्सत्यमेव, किन्तु संवृत्या लौकिकदृष्टान्तेना[8]दर्शमिव न परमार्थतः। तस्मात्तीक्ष्णेन्द्रियेण [9]न ग्राह्या कर्ममुद्रा। कर्ममुद्रा च स्तनकेशवती कामधातुसुखस्य हेतुः। कर्म चुम्बनालिङ्गनगुह्यस्पर्शवज्रस्फालनादिव्यापारात्मकं, तेनोपलक्षिता मुद्रा प्रत्ययकारिणी। प्रत्ययोऽत्र क्षरसुखलक्षणः। मुदं सुखविशेषं राति ददाति इति मुद्रा भाव्या। ज्ञानमुद्रा, सा च स्वचित्तपरिकल्पिता विश्वमात्रादिदेवीस्वभावा पूर्वानुभूता रूपधातुसुखस्य हेतुः। ज्ञानं पूर्वहसितरमितादिभावनालक्षणं, प्रत्ययोऽत्र स्पन्दसुखलक्षणः। स्कन्धधात्वायतनादिदेवताकारेण विशोध्य मण्डलचक्रस्वभावं यथा विधिना स्फुटीकृत्य मन्थमन्थानयोगेन ज्ञानवह्निं प्रज्वाल्य यावद् दग्धेऽहं स्रवते शशी ललाटकण्ठहृन्नाभिवज्रकमलकर्णि[10]काग्रतः।

---

१. ख. 'सु' नास्ति। २. ख. प्रज्ञात तत्त्वं। ३. ख. सुरूप। ४. च. छ. सार्वीयो। ५. क. यानां। ६. क. ग. 'चतुर्मुद्रोपदेशे' नास्ति। ७. ख. द. कर्मोद्भूतं। ८ क. दर्शनमिव। ९. ख. द. 'न' नास्ति। १०. ख. ग. द. कागतः।

बोधिचित्तरूपेण विषयेन्द्रियसमस्तमहासुखसागरस्य यदेकलोली[१]भूततन्मयसमाधिमा[२]पन्नो भूत्वा तिष्ठेत् यावत् श्रीमहामुद्राऽभिमुखी भवतीति प्राप्त्या। महामुद्रा स्वप्नेन्द्रजालमनोमयसदृशी। महती चासौ [मुद्रा] महामुद्रा चेति कृत्वा महत्त्वं पुनरस्याः सर्वाकारवरोपेतत्वं न प्रादेशिकत्वम्, [३]मुद्र्यतेऽनेनेति बोधिचित्तवज्रेण मुद्रा। प्रत्ययोऽत्र स्वचित्तपरिकल्पनाधर्मरहितो धूमादिनिमित्तपूर्वकः स्वचित्तप्रतिभासो योगिगम्यः प्रतिसेनावदिति। तामालिङ्ग्य यावत्समयमुद्रा साक्षात् क्रियते। अविनश्वरा परमाक्षरस्वरूपिणी सा च फलरूपमहामुद्रा। [४]मुद्रं परमाक्षरसुखलक्षणं राति सर्वकालमा[५]दत्ते पूर्णावस्थायामचलयोगेनेति मुद्रा। महत्त्वं चास्याः प्रहाणमहत्त्वेनाधिगममहत्त्वेन। यत्र प्रहाणमहत्त्वं [६]सवासनसर्वावरणप्रहाणलक्षण[७]स्वभावकायाख्यप्रभास्वरसाक्षात्करणलक्षणम्। अधिगममहत्त्वं तु परिशुद्धसर्वबुद्धधर्मात्मकयुगनद्धाख्य[८]कायसाक्षात्करणम्। यत्पुनः शरदमलमध्याह्नगगनसन्निभं[९] शून्यतैकरस[१०]प्रभास्वरसाक्षात्कार एव सकलबुद्धधर्माधिगमोऽशेषविश्वार्थसम्पादनरूपेण। तत्र सर्वबुद्धधर्माणां बिम्ब(द्य)मानत्वात्। अत एव धर्माणामाश्रयः कायो धर्मकाय इत्याचक्षते। तत्र च प्रतिभासेनाप्यधिगमव्यवस्थायां घटप्रतिभासे घटाद्यधिगमो प्रसङ्गो दुर्निवारः किञ्च सांख्यदर्शनमदूषणं स्यात्। अपि च, मायास्वप्नगन्धर्वपुरप्रतिसेना[११]वत् कल्पितमशेषस्कन्धधात्वायतनादिदर्शनं संवृतिसत्यदर्शनं स्वाधिष्ठानं चोच्यते। संवृतिसत्यमेव परमार्थसत्यं प्रभास्वरपरिशुद्धमादर्शादिरूपं वैरोचनाद्याधेयदेवतावृन्दं कूटागाराद्याधारमण्डलं च तदेव [१२]च लोकोत्तरमण्डलतया सर्वतन्त्रराजेषु गीयते। समस्तबुद्धधर्मस्वभावतया च तदेव सत्यद्वयाद्वैधीभावस्वभावं युगनद्धाख्यमुच्यते, तस्माद्युगनद्धकाय एव धर्मकायः सांभोगिक स्वाभाविककायाभ्यां पृथग्भूतो योगिप्रत्यक्षवेद्यः। उक्तञ्च **नागार्जुनपादैः**— "यो नैको नाप्यनेक" इत्यादिना धर्मकायलक्षणम्। "लोकातीतामचिन्त्याम्" इत्यादिना सम्भोगकायस्य। "सत्त्वानां पाकहेतोः क्वचिदनल इव भाति यो दीप्यमानः" इत्यादिना निर्माणकायस्य। "त्रैलोक्याचारमुक्तम्" इत्यादिना महासुखकायस्य। उक्तञ्च **स्वदर्शनमतोद्देशे**—

रूपराशिरनन्तो मे निर्माणकाय उत्तमः।
रुतराशिरनन्तो मे सम्भोगकाय उत्तमः॥
धर्मराशिरनन्तो मे धर्मकायः प्रकीर्तितः।
सुखराशिरनन्तो मे सुखकायोऽक्षरः परः॥ इति।

---

१. क. कृत। २. ख. पन्न। ३. ख. द. मुद्रा ते। ४. ख. मदं। ५. ख. दत्त। ६. ख. द. सर्वासन। ७. क. स्वभाविकाख्य। ८. ख. द. 'काय' नास्ति। ९. क. सम्बित। १०. ख. सुप्रभा। ११. ख. वित्। १२. ख. 'च' नास्ति।

एवञ्च षोडशीकलाबोधः परचित्तज्ञानप्रतिशब्दसदृशशब्दाधिगमाशेषरूपसन्दर्शनज्ञानलक्षणं चतुःकायस्वरूपमावेदितम् । उक्तञ्च **श्रीकालचक्रे**—

न प्रज्ञा नाप्युपायः सहजतनुरियं धर्मकायो बभूव
प्रज्ञोपाय[1]स्वभावः खलुविगततमो ज्ञानविज्ञानभेदात् ।
सोऽयं संभोगकायः प्रतिरवक इवानेकसत्त्वार्थकर्त्ता
सत्त्वानां पाकहेतोर्भवति पुनरसौ बुद्धनिर्माणकायः ॥ इति ।
(का० त० ५.८९)

इति कायवाक्चित्तज्ञानविशुद्ध्या मुद्राचतुष्टयमुक्तम् । **श्रीआदिबुद्धे** चोक्तम्—

क्षरः क्षरः (क्षरोऽक्षरः) ततः स्पन्दो निःस्पन्द[2]विमलो परः ।

अब्जे वज्रप्रवेशः शिखिनि च मरुतो बिन्दुपातस्तृतीयः
एतद्योगत्रयस्य प्रकटितनियता कायवाक्चित्तमुद्रा ।
रागारागान्तका(गा)द्या परमसुखनिधिर्योगगम्या चतुर्थी
मुद्राणां सैव माता भवति सुफलदा श्रीगुरोर्वक्त्रमेषा ॥ इति ।
(का० त० ३.१२६)

उक्तञ्च **वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्रे**—

कर्ममुद्रां समासाद्य धर्ममुद्रां विभावयेत् ।
[3]तत्र (तत) ऊर्ध्वं महामुद्रा तस्याः समयसम्भवः ॥ इति ।

अन्यत्र च—

तां मोक्षलक्ष्मीमविनष्टसौख्यीं(ख्यां) त्यक्त्वा शुभां भगवतीं युवतिं रमन्ते ।
प्रायेण पूर्वाऽर्ज्जितमुग्रकर्मं येनामृतं त्यज्य विषं पिबन्ति ॥ इति ।

श्रीआदिबुद्धे च—

एता मुद्राश्चतस्रोऽक्षरसुखफलदा योगिना भावनीयाः
सर्वस्मिन् सर्वकालं सुरतरतिगतैर्लोकमार्ग[4]प्रयुक्तैः ।
ग्रामारण्यश्मशानेऽशुचिशुचिनिलये वेश्मदेवालये च
वर्णावर्णा[5]भियुक्तैस्तनुबलसुखदैरन्नपानादि[6]युक्तैः ॥ इति ॥ १४ ॥
(का० त० ५.७४)

---

१. मु. स्वरूपः । २. द. विमलोपमः । ३. द. ततरूर्द्ध । ४. भो. Rab Grol (प्रमुक्तैः) । ५. मु. भिचारै० । ६. मु. योगैः ।

परमार्थविशुद्धश्रीस्त्रैलोक्यसुभगो महान् ।
सर्वसम्पत्करः श्रीमान् मञ्जुश्रीः श्रीमतां वरः ॥१५॥

इति कृत्यानुष्ठान[1]ज्ञानगाथाः पञ्चदश ।

परमार्थेति । **परमार्थे** ज्ञानेन **विशुद्धश्री**रद्वय[2]धीर्यस्य स तथा । सर्वसत्त्वार्थकरणात् **त्रैलोक्यसुभगः** । व्यापित्वं **महान्** । सर्वसुखसम्पदाधारभूतत्वात् **सर्व**[3]**सम्पत्करः** । सर्व[4]योगिनां [5]प्रियरत्नाच्युतत्वाच्छ्**रीमान्** । सर्वधर्माद्वयात्मकत्वान्**मञ्जुश्री**रद्वयश्रीः । ज्ञानकायत्वेन **श्रीमतां वर** इति ॥ १५ ॥

निरावरणपञ्चदशकलाविशुद्धया सर्वतथागत-
समाधिगतकार्यकारणलक्षणकृत्यानुष्ठान-
ज्ञानगाथाव्याख्या ॥१०॥

१. ख. ज्ञानस्तुतिगाथाः । २. क. वीर्यस्य । ३. ख. संपत्सुखाकरः । ४. क. योगिनीनां ।
५. ख. प्रियदर्शनाच्यु० ।

पञ्चतथागतस्तुतिः

नमस्ते वरद[1]वज्राग्र्य भूतकोटे नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते शून्यतागर्भ बुद्धबोधे नमोऽस्तु ते ॥१॥

बुद्धराग नमस्तेऽस्तु [2]बुद्धकाम नमो नमः ।
बुद्धप्रीते नमस्तुभ्यं बुद्धमोद नमो नमः ॥२॥

बुद्धस्मित नमस्तुभ्यं बुद्धहास नमो नमः ।
बुद्धवाच नमस्तुभ्यं बुद्धभाव नमो नमः ॥३॥

अभवोद्भव [3]नमस्तुभ्यं नमस्ते बुद्ध[4]संभव।
गगनोद्भव नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्ञान[5]सम्भव ॥४॥

मायाजाल नमस्तुभ्यं नमस्ते बुद्धनाटक ।
नमस्ते सर्वसर्वेभ्यो ज्ञानकाय नमोऽस्तु ते ॥५॥

इति पञ्चतथागत[6]स्तुतिज्ञानगाथाः पञ्च ।

एवं च वज्रसत्त्वादिद्वारेण सृष्टिक्रमनिर्देशः। इत्यनन्तरान्तरा व्यतिक्रमनिर्देशस्तु आम्नायगोपनार्थः। अनाहतनादोल्लासत्वेन सत्त्वाशयवशेन तथा प्रतिभासाद्वा संगीतिकारैस्तथैव लिख्यत इति ।

इदानीं 'नमस्ते' इत्यादिपञ्चगाथाभिस्तमेव भगवन्तं वज्रधातुमहामण्डलान्तर्वर्त्तिनं पञ्चज्ञानमुखेन स्तुवन्नाह—तत्रादर्शज्ञानद्वारेण **नमस्ते वरदे**त्यादि, **बुद्धरागे**त्यादि समताज्ञानमुखेन, **बुद्धस्मिते**त्यादि प्रत्यवेक्षणाज्ञानमुखेन, **अभवोद्भवे**त्यादि कृत्यानुंष्ठानज्ञानात्मना, **मायाजाले**त्यादि सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्वभावेन। वैरोचनरत्नसंभवामिताभामोघसिद्ध्यक्षोभ्यरूपतथागतस्वभावेन इत्यर्थः। तत्र प्रथमश्लोकेन कारणमुक्तं शेषैश्च कार्यमिति । तथा च हेतुज्ञानं प्रत्ययज्ञानं [7]धर्मज्ञानं भावनाज्ञानं मुक्तिज्ञानं च। हेतुरादर्शज्ञानम्, प्रत्ययः समताज्ञानम्, प्रत्यवेक्षणा धर्मज्ञानम्, कृत्यानुष्ठानं

---

१. छ. वज्राग्र । २. क. ख. ङ. बुद्धकाय । ३. ग. घ. नमस्तेऽस्तु । ४. क. सम्भवः । ५. क. सम्भवः । ६. ख. ज्ञानस्तुतिगाथाः । ७. क. मर्मज्ञानम् ।

भावनाज्ञानम्, मुक्तिज्ञानं सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्। एवं च पञ्चाकाराभिसम्बोधि-भावना [1]सूचिता। तेन **मूलतन्त्रे पञ्चाकारज्ञानस्तवे** पञ्चश्लोकैः पञ्चाकारभावना भगवतोक्ता, तद्यथा—

शून्यो भावसमूहोऽयं कल्पनारूपवर्जितः।
दृश्यते प्रतिसेनैव कुमार्या दर्पणे यथा॥ इति।

लोकोत्तरसत्यं रूपस्कन्धादर्शज्ञानम्।

सर्वभावसमो भूत्वा एको भावोऽक्षरः स्थितः।
अक्षरज्ञानसंभूतो नोच्छेदो न च शाश्वतः॥ इति।

वेदनास्कन्धः समताज्ञानम्।

सर्वसंज्ञात्मका वर्णा अकारकुलसम्भवाः।
महाक्षरपदप्राप्ता न संज्ञा न च संज्ञिनः॥ इति।

संज्ञास्कन्धः प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्।

अनुत्पन्नेषु धर्मेषु संस्काररहितेषु च।
न बोधिर्नैव बुद्धत्वं न सत्त्वो नैव जीवितम्॥ इति।

संस्कारस्कन्धः कृत्यानुष्ठानज्ञानम्।

विज्ञानधर्मतातीता ज्ञानशुद्धा ह्यनाविलाः।
प्रकृतिप्रभास्वरा धर्माः धर्मधातुर्गतिं गताः॥ इति

विज्ञानस्कन्धः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्।

तथा **लघुतन्त्रे**ऽप्युक्तम् एकोत्तरशतादिवृत्तत्रयेण चक्रचिह्नादितथागतस्कन्ध-लक्षणम्। तद्यथा—

चक्रं स्वच्छं समन्तात्त्रिभव इति सुखं रत्नमस्यैव रागः
पद्मं क्लेशक्षयोऽसिः कुलिशमपि महाज्ञानकायो ह्यभेद्यः।
छेदोऽज्ञानस्य कर्त्री वरषडपि कुलान्येभिरुत्पादिता ये
तेऽप्येवं वेदितव्याः खमिव समरसाः स्कन्धधात्विन्द्रियाद्याः॥

यस्मिन्वै जातिरूपं व्रजति निधनतां तन्महारूपमुक्तम्
यस्यां संसारदुःखं व्रजति निधनतां सा महावेदनोक्ता।
यस्यां संसारसंज्ञा व्रजति निधनतां सा महावज्रसंज्ञा
यस्मिन् संसारवृद्धिर्व्रजति निधनतां वज्रसंस्कार एव॥

---

१. क. सूचिका।

यस्मिन् निद्राद्यवस्था व्रजति निधनतां तच्च विज्ञानमुक्तं
यस्मिन्नज्ञानभावो व्रजति निधनतां तन्मुनेर्ज्ञानमेव ।
एते वैरोचनाद्याः परमजिनवराः षड्विधाः षट्कुलानि
अन्ये षड्धातुभेदा अवनिशिखिपयो मारुताकाशशान्ताः ॥ इति ।
(का० त० ५.१०१-१०३)

अर्थस्तु—चतुरानन्दस्वभावत्वाद्वरदवज्राग्र्य इति सम्बोधनम् । सुखभोगालयत्वेन भूतकोटीति आर्षत्वात् । सुखशून्याद्वयत्वेन **शून्यतागर्भः** । दृष्टान्तरूपत्वेन **बुद्धबोधिः** प्रभास्वरप्रवेशो **नमस्कारः** । महारागरूपत्वाद् **बुद्धरागः** । विरमानन्दत्वेन धर्मकायत्वाद् **बुद्धकायः** । बुद्धैर्वा काम्यत इति **बुद्धकाम** [इति] पाठः । शून्यतागर्भसहजानन्दरूपत्वेन **बुद्धप्रीतिः** । द्वयप्रहाणेनाद्वयसुखप्रमोदलाभाद् **बुद्धमोदः** । एतेन प्रत्ययज्ञानमुक्तम् । [1]सुखमयज्ञानप्रकाशकयोगाद् **बुद्धस्मितः** । सहजचण्डालीज्योतिषा सकलज्ञेयमण्डलव्यापनाद् **बुद्धहासः** । कर्माङ्गनाद्वारापि अवधूतीपद[2]प्रापितप्राणादिवायुत्वेन अनाहतनादोल्लासरूपत्वाद् **बुद्धवाचः** । [3]धर्मकायाभिन्नसम्भोगत्वेन **बुद्धभावः** । शून्यतासम्भूतचतुःकायत्वाद**भवोद्भवः** । स्वाभाविकत्वाद् **बुद्धसंभवः** । स्वयम्भूरूपत्वाद् **गगनोद्भवः** । तुर्यातीतास्तिनास्तिव्यतिक्रान्तस्वसंवेद्यत्वाज्**ज्ञानसंभवः** । महामायासमुद्भूतपरमसुखत्वेन **मायाजालः** । सहजस्फुरत्स्थिरचलरूपत्वेन **बुद्धनाटकः** । सर्वत्र सम्बोधनम् । षोडशानन्दरूपत्वेन बहुत्वात्**सर्वसर्वेभ्यः** । समन्तभद्रमहासुखज्ञानकायस्याग्रत्वाज्**ज्ञानकाय** इति ॥ १-५ ॥

इति पञ्चतथागतज्ञानस्तुतिगाथाः
पञ्च ॥ ११ ॥

---

१. द. सुखमद्वय० । २. ख. प्रापितः । ३. ख. कर्मकामाभि० ।

अनुशंसा

इयमसौ वज्रपाणेः वज्रधरभगवतो ज्ञानमूर्तेः सर्वतथागतज्ञान-कायस्य मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्यावेणिकपरिशुद्धा नामसङ्गीतिस्तवानुत्तरप्रीति-प्रासादमहोद्बिल्यसंजननार्थं, कायवाङ्मनो[1]गुह्यपरिशुद्धयै, अपरिपूर्णपरि-शुद्धभूमिपारमितापुण्यज्ञानसंभारपरिपूरि[2]शुद्धयै, अनधिगतानुत्तरार्थस्या-धिगमाय, अप्राप्तस्य प्राप्त्यै, यावत्सर्वतथागत[3]सर्वधर्मनेत्रीसंधारणार्थं च मया देशिता, संप्रकाशिता, विवृता, विभजितोत्तानीकृता, अधिष्ठिता चेयं मया वज्रपाणे वज्रधर तव सन्ताने चित्ते सर्वमन्त्रधर्मताधिष्ठानेनेति ।

इति प्रथमचक्रस्येयमनुशंसा एकादश पदानि ॥

पुनर[4]परमियं वज्रपाणे वज्रधर नामसङ्गीतिः सुपरिशुद्धा, पर्यवदाता, सर्वज्ञज्ञानकायवाङ्मनोगुह्यभूता, सर्वतथागतानां बुद्धबोधिः, सम्यक्संबुद्धानामभिसमयः, सर्वतथागतानामनुत्तरः, धर्मधातुगतिः सुगतानाम्, सर्वमारबल[5]पराजयो जिनानाम्, दशबलबलिता सर्वदश-बलानाम्, सर्वज्ञता सर्वज्ञज्ञानानाम्, आगमः सर्वधर्माणाम्, समुदागमः सर्व[6]बुद्धधर्माणाम्, विमलसुपरिशुद्धपुण्यज्ञानसंभारपरि[7]पूरी सर्वमहाबोधि-सत्त्वानाम्, प्रसूतिः सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धानाम्, क्षेत्रं सर्वदेवमनुष्यसम्पत्तेः, प्रतिष्ठा महायानस्य, संभवो बोधिसत्त्वचर्यायाः, निष्ठा सम्यगार्यमार्गस्य[8]निकषो विमुक्तीनाम्, उत्पत्ति[9]र्निर्वाणमार्गस्य, [10]अनुच्छेदस्तथागतवंशस्य, प्रवृद्धिर्महाबोधि[11]सत्त्वकुलगोत्रस्य, [12]निग्रहः सर्वपरप्रवादिनाम्, विध्वंसनं सर्वतीर्थिकानाम्, पराजयश्चतुर्मारबलचमू[13]सेनायाः, संग्रहः सर्वसत्त्वा-नाम्, आर्यमार्ग[14]परिपाकः सर्वनिर्याणयायिनाम्, समाधिश्चतुर्ब्रह्मविहार-

---

१. ग. गुह्यधर० । २. ग. परिशुद्धया । ३. ग. सद्धर्म । ४. ग. अपरं । ५. ग. पराजयः । ६. ग. बुद्धानाम । ७. ग. पूरिः । ८. ग. परीक्षा । ९. ख. ग. निर्याण । १०. क. अनुपच्छेद । ११. ग. सत्त्वानां । १२. क. विग्रहः । १३. ग. सेनानां । १४. ख. परिप्रापकः ।

विहारिणाम्, ध्यानमेकाग्रचित्तानाम्, योगः कायवाङ्मनोऽभियुक्तानाम् विसंयोगः सर्वसंयोजनानाम्, प्रहाणं सर्वक्लेशोपक्लेशानाम्, [1]व्युपशमः सर्वावरणानाम्, विमुक्तिः सर्वबन्धनानाम्, मोक्षः [2]सर्वोपधीनाम्, शान्तिः सर्वचित्तोपप्लवानाम्, आकरः सर्वसम्पत्तीनाम्, [3]परिहाणिः सर्वविपत्तीनाम्, [4]पिधानं सर्वापायद्वाराणाम्, सत्पथो [5]विमुक्तिपुरस्य, अप्रवृत्तिः संसारचक्रस्य, प्रवर्तनं धर्मचक्रस्य, उच्छ्रितच्छत्रध्वज[6]पताका तथागतशासनस्य, अधिष्ठानं सर्वधर्म[7]देशनायाः, क्षिप्रसिद्धिमन्त्रमुखचर्याचारिणां बोधिसत्त्वानाम्, भावनाधिगमः प्रज्ञापारमिताभियुक्तानां, बोधिसत्त्वानाम्, शून्यताप्रति[8]वेधोऽद्वयप्रति[9]वेदभावनाभियुक्तानाम्, निष्पत्तिः सर्वपारमितासंभारस्य, परिशुद्धिः सर्वभूमिपारमिता[10]परिपूर्याणाम्, प्रतिवेधः सम्यक्चतुरार्यसत्यानाम्, सर्वधर्मैकचित्तप्रतिवेधश्चतुःस्मृत्युपस्थानानाम्, [11]यावच्छन्दपरिसमाप्तिः सर्वबुद्धगुणानामियं नामसङ्गीतिः।

इति द्वितीयचक्रस्येयमनुशंसा[12]पदानि द्वापञ्चाशत् ॥

पुनरपरं वज्रपाणे वज्रधर इयं नामसङ्गीतिः सर्वसत्त्वानामशेषकायवाङ्मनः[13]समुदाचारपापप्रशमनी, सर्वसत्त्वानां सर्वापायविशोधनी, सर्वदुर्गतिनिवारणी, सर्वकर्मावरणसमु[14]च्छेदनकरी, सर्वाष्टक्षणसमुत्पादस्यानुत्पादनकरी, अष्टमहाभयव्युपशमनकरी, सर्वदुःस्वप्नविनाशनकरी, सर्वदुर्निमित्तव्यपोहनकरी, दुःशकुनविघ्नव्युपशमनकरी, सर्वमारारिकर्मदूरीकरणी, सर्वकुशलमूलपुण्योपचयकरी, सर्वायोनिसो(शो)[15]मनसिकारस्यानुत्पादनकरी, सर्वमदमानदर्पाह-

---

१. ग. उपशमः। २. ग. सर्वपदीनाम्। ३. ग. परिहानि। ४. क. विध्वंसनं, ख. पिथनं, ग. पिधन। ५ ग. विमुक्तिमार्गस्य। ६. ग. पताकाभिः। ७. क. देशनायां। ८. क. बोधो। ९. क. ०वेध, ख. वेधाभियुक्तानां। १०. क. ख. परिपूर्ये। ११. क. ख. यावत परिसमाप्तिः। १२. क. तत्पदानि। १३. क. ख. समुदाचारः। १४. ख. च्छेदनी। १५. क. ख. मनस्कारानुत्पा०।

ङ्कारनिर्घातनकरी, सर्वदुःखदौर्मनस्यानुत्पादनकरी, सर्वतथागतानां हृदयभूता, सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां गुह्यभूता, सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धानां रहस्यभूता, सर्वमुद्रामन्त्रभूता, सर्वधर्मानभिलाप्यवादिनां स्मृतिसंप्रजन्यसंजननी, अनुत्तरप्रज्ञामेधाकरी, आरोग्यबलैश्वर्यसम्पत्करी, श्रीशुभशान्तिकल्याणप्रवर्धनकरी, यशःकीर्तिश्लोकस्तुति[1]प्रकाशनकरी, सर्वव्याधिमहाभयव्युपशमनकरी, पूततरा पूततराणाम्, पवित्रतरा पवित्रतराणाम्, धन्यतमा धन्यतमानाम्, [2]सर्वमाङ्गल्यतमा सर्वमाङ्गल्यतमानाम्, शरणं शरणार्थिनाम्, लयनं लयनार्थिनाम्, त्राणं त्राणार्थिनाम्, परायणं परायणानाम्, द्वीपभूता द्वीपार्थिनाम्, अगतिकानामनुत्तरगतिभूता, यानपात्रभूता भवसागरपारगामिनाम्, महाभैषज्यराजभूता सर्वव्याधिनिर्घातनतया, प्रज्ञाभूता हेयोपादेयभाव[3]विभावनतया, ज्ञानालोकभूता सर्वतमोन्धकारकुदृष्टचपनयनाय, चिन्ता[4]मणिराजभूता सर्वसत्त्वाशयाभिप्रायपरिपूरणाय, सर्वज्ञज्ञानभूता मञ्जुश्रीज्ञानकायप्रतिलम्भाय, परिशुद्धज्ञाना[5]दर्शभूता पञ्चचक्षुप्रतिलम्भाय, षट्पारमितापरिपूरीभूता आमिषाभयधर्मदानोत्सृजनतया, दशभूमिप्रतिलम्बभूता पुण्यज्ञानसंभारसमाधिपरिपूरणतया, अद्वयधर्मता द्वयधर्मविगतत्वादतथतारूपता, अनन्यधर्मताध्यारोपविगतत्वात्, भूतकोटिरूपता परिशुद्धसर्वतथागतज्ञानकायस्वभावतया, सर्वाकारमहाशून्यतारूपता अशेषकुदृष्टि[6]गतिगहननिर्घातनतया, सर्वधर्मानभिलाप्य[7]रूपेयं नामसंगीतिः यदुताद्वय[8]धर्मतावतरणार्थं नामसंधारणप्रकाशनतया।

इति तृतीयचक्रस्येयमनुशंसा[9]पदानि द्वापञ्चाशत्।

पुनरपरं वज्रपाणे वज्रधर कश्चित् कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा मन्त्रमुखचर्याचारी [10]इमां भगवतो मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य सर्वतथागतज्ञानकायस्य भगवतो ज्ञानमूर्तेरद्वयपरमार्थां नामसङ्गीतिं नामचूडामणिं

---

१. क. ख. संप्रकाश०। २. क. ख. सर्वमङ्गल०। ३. क. ख. विभावनया। ४. ख. मणिभूता। ५. क. ख. दर्शन। ६. क. ख. गहनगति। ७. क. ख. भूतेयं। ८. क. ख. धर्मतार्थं। ९. क. तत्पदानि। १०. ग. बोधिसत्त्वानामिमां।

[illegible]रिसमाप्तामन्यूनामखण्डामेभिरेव गाथापदव्यञ्जनैः प्रत्यहं त्रिकालं धारयिष्यति, वाचयिष्यति, पर्यवाप्स्यति, योनिशश्च मनसि करिष्यति, परेभ्यश्च विस्तरेण [1]यथासमयं [2]यथावत्संप्रकाशयिष्यति, प्रत्येकं चान्यतमान्यतमं [3]नामार्थं मञ्जुश्रीज्ञानकायमालम्बनीकृत्य एकाग्रमनसा भावयिष्यति, अधिमुक्तितत्त्वमनस्काराभ्यां समन्त [4]मुखविहारविहारी [5]सर्वधर्मप्रतिवेधिकया परमया अनाविलया [6]प्रज्ञाविद्धया श्रद्धया समन्वागतः सन् तस्य त्र्यध्वाबद्धसंगिनः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाः संगम्य समागम्य [7]सर्वधर्ममुखान्युपदर्शयिष्यन्ति, आत्मभावं चोपदर्शयिष्यन्ति, सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाधिष्ठानं च सर्वकायवाङ्मनोभिस्तस्य सन्ताने [8]चित्ते सम्यगधिष्ठास्यन्ति, सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानुग्रहेण चानुग्रहीष्यन्ति, सर्वधर्मवैशारद्यप्रतिभानश्चोपसंहरिष्यन्ति, सर्वार्हच्छ्रावकप्रत्येकबुद्धाश्चार्यधर्म-[9]प्रमाणतयात्मभावं चोपदर्शयिष्यन्ति दुर्दान्तदमकाश्च [10]महाक्रोधराजानो महावज्रधरादयो जग[11]त्परित्राणभूता नानानिर्माणकायैरोजोबलं तेजोऽप्रधृष्यतां सर्वमन्त्रमुद्राभिसमयमण्डलान्यु[12]पसंहरिष्यन्ति, अशेषाश्च मन्त्रमहाविद्याराज्यः सर्वविघ्नविनायकमारारिप्रत्यङ्गिरा [13]महापराजिताः सरात्रिन्दिवं प्रतिक्षणं सर्वेर्यापथेषु रक्षावरणगुप्तिं करिष्यन्ति, ये च ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्ररुद्रनारायणसनत्कुमारमहेश्वरकार्तिकेयमहाकालनन्दिकेश्वरयमवरुण - कुबेरहारतीदशदिग्लोकपालाश्च [14]ते सर्वे सततसंमितं रात्रिन्दिवं गच्छतस्तिष्ठतः शयानस्य निषण्णस्य स्वपतो जाग्रतः समाहितस्यासमाहितस्य च एकाकिना बहुजनमध्यगतस्य यावद् ग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीगतस्य इन्द्रकीलरथ्याप्रतोलीवीथीनगरद्वारराजमार्ग[15]चत्वर श्रृङ्गाटकनगरान्तरापणपण्यशालामध्यगतस्य यावच्छून्यागारगिरिकन्दर-

---

१. ग. यथाशयं। २. ग. यावत्। ३. ग. नामार्थ। ४. क. ख. सुख। ५. ग. 'सर्व' नास्ति। ६. क. ख. ग. प्रज्ञानुविद्ध्या। ७. ग. बुद्धधर्मं। ८. क. ख. 'चित्ते' नास्ति। ९. ग. 'प्रमाणतयात्म' नास्ति। १०. ग. महावज्रक्रोध। ११. ग. परिपाल०। १२. क. उपदेशयिष्यन्ति देशयिष्यन्ति। १३. ख. 'महा' नास्ति। १४. क. 'ते सर्वे' नास्ति। १५. क. चतु।

नदीवनगहनोपगतस्य उच्छिष्टस्यानुच्छिष्टस्य मत्तस्य प्रमत्तस्य [1]सदा सर्वथा रक्षावरणगुप्तिं करिष्यन्ति, रात्रिन्दिवं च परं स्वस्त्ययनं करिष्यन्ति, ये चान्ये देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या ये चान्ये ग्रहनक्षत्रगणपतयो याश्च सप्तमातरो याश्च यक्षिणीराक्षसीपिशाच्यस्ताः सर्वाः सहिताः समग्राः ससैन्याः सपरिवाराः सर्वेर्यापथेषु [2]परां रक्षावरणगुप्तिं करिष्यन्ति, परं च तस्य काये ओजोबलं प्रक्षेप्स्यन्ति आरोग्यमायुर्वृद्धिं चोपसंहरिष्यन्ति ।

इति चतुर्थचक्रस्येयमनुशंसा [3]पदान्येकोनविंशतिः ।

पुनरपरं वज्रपाणे वज्रधर य इमां नामसङ्गीतिं नामचूडामणिं प्रत्यहमखण्डसमाधानतस्त्रिःकृत्वा कण्ठगतामावर्तयिष्यति, पुस्तकगतां वा पठमानः प्रवर्तयिष्यति, भगवतो मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्य रूपमालम्बयन्, तद्रूपमनुचिन्तयन् तद्रूपमनुध्यायन् तमेव रूपं निर्माणकायेनाचिरादेव विनयवंशमुपादाय रक्षति, गगनतलगताश्च बुद्धबोधिसत्त्वाः नानानिर्माणरूपकायैः सहगता रक्षन्ति, न च तस्य [4]सत्त्वस्य जातु कथमपि दुर्गत्यपायपतनं भविष्यति, न नीचकुलोपपत्तिर्भविष्यति, न प्रत्यन्तजनपदोपपत्तिर्भविष्यति, न हीनेन्द्रियो भविष्यति, न मिथ्यादृष्टिकुलोपपत्तिर्भविष्यति, नाबुद्धकेषु बुद्धक्षेत्रेषूत्पत्स्यते, न च बुद्धोत्पादविमुखता तद्देशितधर्मविमुखपरोक्षता भविष्यति, न च दीर्घायुष्केषु देवेषूत्पत्स्यते, न च दुर्भिक्षरोगशस्त्रान्तःकल्पेषूत्पत्स्यते, न च पञ्चकषायकालेषूत्पत्स्यते, न च राजशत्रुचोरभयं भविष्यति, न सर्वोपकरणवैकल्यदारिद्र्यभयं भविष्यति, नाश्लोकाभ्याख्याननिन्दायशोऽकीर्तिभयं भविष्यति, सुजातिकुलगोत्रसम्पन्नश्च भविष्यति, समन्तप्रासादिकरूपवर्णसमन्वागतश्च भविष्यति, प्रियो मन आपः, परमसुखसंवासः, प्रियदर्शनश्च लोकानां भविष्यति, शुभसौभाग्यादेयवाक्यश्च लोकानां भविष्यति, यत्र यत्रो-

---

१. क. ख. सर्वदा, सर्वथा सर्वप्रकारं । २. क. ख. 'परां' नास्ति । ३. क. ख तत्पदानि । ४. क. ख. महासत्त्वस्य ।

पत्स्यते, तत्र तत्र जातिस्मरो भविष्यति, महाभोगः महापरीवारोऽक्षय-परीवारश्च भविष्यति, अग्रणीः सर्वसत्त्वानामग्रगुणसमन्वागतो भविष्यति, प्रकृत्या च षट्पारमितागुणसमन्वागतो भविष्यति, चतुर्ब्रह्मविहारविहारी भविष्यति, स्मृतिसंप्रजन्योपायबलप्रणिधि[3]ज्ञानसमन्वागतश्च भविष्यति, सर्वशास्त्रविशारदो वाग्मी च भविष्यति, स्पष्टवागजडः पटुश्च भविष्यति, दक्षोऽनलसः संतुष्टो महार्थो वितृष्णश्च भविष्यति, परम-विश्वासी च सर्वसत्त्वानामाचार्य[4]गुरुसंमतश्च भविष्यति, अश्रुतपूर्वाणि च तस्य सर्वशिल्पकलाभिज्ञाज्ञानशास्त्राणि चार्थतो ग्रन्थतश्च प्रतिभा-समागमिष्यन्ति, सुपरिशुद्धशीलाजीवसमुदाचारचारी च भविष्यति, सुप्रव्रजितः रूपसंपन्नश्च भविष्यति, अप्रमुषितसर्वज्ञता[5]बोधिचित्तश्च भविष्यति, न जातु श्रावकार्हत्प्रत्येकबुद्धनियमाव[6]क्रान्तिगतश्च भविष्यति।

इति पञ्चमचक्रस्येयमनुशंसा[7]पादान्येकपञ्चाशत्।

एवं वज्रपाणे वज्रधर अप्रमेयगुणसमन्वागतोऽसौ मन्त्रमुखचर्या-चारी भविष्यति, अन्यैश्चाप्रमेयैरेवं प्रकारैर्गुणगणैः समन्वागतो भविष्यति, अचिरादेव वज्रपाणे वज्रधर परमार्थनामसङ्गीतिसंधारकः पुरुषपुद्गलः सुसंभृतपुण्यज्ञानसंभारः क्षिप्रतरं बुद्धगुणान्समुदानीयानुत्तरां सम्यक्संबो-धिमभिसंभोत्स्यते अनल्पकल्पापरिनिर्वाणधर्माणां सर्वसत्त्वानामनुत्तर-धर्मदेशकोऽधिष्ठाता दशदिक्सद्धर्मदुन्दुभिर्धर्मराजः।

इति षष्ठचक्रस्येयमनुशंसा[8]प्रमेया।

इदानीमनुशंसा पदानामपि कियदपि विभज्यते। **इयमसाविति** साक्षादनुभूयमान-सुखाधिगतित्वेन प्रकृतिप्रभास्वरत्वाज्**ज्ञानमूर्त्तिः** नामसंगीतिः सहजानुभूतिः नित्यं सहजशुद्धस्वभावत्वेन पञ्चकामोपभोगेऽपि क्लेशामिश्रत्वा**दावेणिकपरिशुद्धा** अनुत्तर-

१. क. ख. पद्यते। २. क. च पटु भविष्यति। ३. ख. 'ज्ञान' नास्ति। ४. ख. 'गुरु' नास्ति। ५. क. ख. महाबोधि०। ६. क. क्रान्त। ७. क. तत्पदानि। ८. ख. तत् पदानि अप्रमेयानि।

मार्गत्वादनुत्तरप्रीतिः। अनुभूयमाननिमित्तत्वेन **प्रसादसंदर्शनात्** (**संजननात्**) **महोद्विलो** बोधिचित्तवज्रस्वभावत्वेन **कायवाङ्मनोगुह्य**भूता [1]**सद्धर्मनेत्री** प्रज्ञापारमिता तस्याः सन्धारणमद्वयज्ञानरूपतापादनं षडङ्गयोगेन संवृत्तिपरमार्थस्वरूपबोधिचित्तवज्रस्य प्रकाशनाद् **देशितेत्यादि** पद-षट्कं **अधिष्ठानं** स्थिरीकरणं षट्चक्रवर्त्तित्वात्प्रथम-चक्रस्यानुशंसाभावात्।

प्रकृतिप्रभास्वरत्वेन **सर्वज्ञज्ञानम्। बुद्धबोधि**श्चतुर्थज्ञानानुभूतिः। [2]**अभिसमयः** प्रभास्वरनिराभासज्ञानसाक्षात्कारः। सर्वाकारशून्यतास्वभावत्वाद् **धर्मधातु**[3]**गतिः**। दश-विधधूमादिनिमित्तबलयोगाद् **दशबलबलिता**। महासुखत्वेनागमनादा**गमः**। अनाभोगे-नाधिगमरूपत्वात् [4]**समुदागमः**। सर्वप्रपञ्चरहितत्वेन **विमलत्वम्**। शून्यत्वेन निर्माणकायबुद्धबिम्बदर्शनात् **प्रसूतिः**। परिशुद्धनाडीचक्रात्मकत्वात् **क्षेत्रम्**। फलरूपेण स्थित[5]त्वात् **प्रतिष्ठा,** संवृतिर्महायानं परमार्थे वज्रयानम्। चर्याविरोधबोधरूपत्वाद् **बोधिसत्त्वचर्या**। पर्यवसानप्राप्तिहेतुत्वान्नि**ष्ठा**। तत्त्वपरीक्षास्थानत्वा**न्निकषः**। विशिष्टनिर्याणोपायत्वा**दुत्पत्तिः**। अनाभोगेन तथागतकृत्यकरणा**दनुच्छेदः**। प्रभास्वरा-धिष्ठानात्**प्रवृद्धिः**। व्यापकत्वात् **संग्रहः**। अचिन्त्यरूपत्वात् **समाधिः**। प्रज्ञादिपञ्च-विधध्यानरूपत्वाद् **ध्यानम्**। ज्ञानमात्रालयत्वा**द्योगः**। विकल्पानां निराभासनात् **प्रहाणम्**। रागादिबन्धना[6]पगमहेतुत्वात्[वि]**मुक्तिः**। सम्यग्ज्ञानस्वभावत्वा**न्मोक्षः**। सहजसुखविहारित्वा[7]**च्छान्तः**। प्रभास्वरत्वे**नाकरः**। सर्वविपत्तीनां सर्वदोषाणां तक्षण-रूपत्वा**[त्परिहाणिः]**। [8]**पिधानम्** अपायद्वाराणां, नरकप्रेततिर्यगात्मापायद्वाराणाम्। सम्यग् बोधिमार्गत्वात् [**सत्**]**पथः**। प्रतीत्यसमुत्पादविच्छेदाद् **अप्रवृत्तिः**। यथा-भव्यतया धर्मचक्रप्रवर्तनहेतुत्वात् **प्रवर्त्तनम्**। वज्रयानत्वेन श्रावकादिविजयरूपत्वा-**दुच्छ्रितच्छत्रध्वजपताका**। योगस्थिरीकरणहेतुत्वा**दधिष्ठानम्**। मन्त्रमुखचर्या-चारिणां बोधिसत्त्वानां मन्त्रपदपाठादिना प्राप्तेः **क्षिप्रसिद्धिः**। साक्षात्काररूपत्वाद् **भावनाऽधिगमः**। शून्यताविशेषसिद्धान्तरूपत्वात् **शून्यताप्रतिवेधः**। फलहेत्वात्मकतयाऽ-**द्वयप्रतिवेधाभियुक्तानां** निर्विकल्पप्रतिवेधरूपत्वा**त्परिशुद्धः**। अद्वयज्ञानत्वात् **सर्वधर्मैक-चित्तप्रतिवेधः**।

दुर्निमित्तं मृत्युचिह्नादि देवपुत्रादेः शुक्रा(सूकरा)दि कुक्ष्युत्पत्त्यर्थ(पादि)-मलिनवासनादि [9]दुःशकुनम्। वज्रधातुमहामण्डलादिभावनया **सर्वमारारिकर्मदूरी-करणी**। सर्वसमाधिलाभात् सर्वायोनिशोमनस्कारा**नुत्पादनकरी**। उत्कर्षचेतसः पर्यादानं **मदः**। चित्तसमुन्नति**र्मानः**। अतिमानो **दर्प्पः**। अहंकृतिः **अहङ्कारः** कायिकं दुःखं मानसिकं दौर्मनस्यम्। तथागतनिर्जातत्वाद् **हृदयभूता**। परमगोप्यत्वाद्

---

१. ख. सर्वधर्मनेत्री। २. भो. mÑon Pa rTog Pa (अभिगमः)। ३. क. गति। ४. भो. Yaṅ Dag Pa Grub Paḥo (संसिद्धः)। ५. ख. द. 'त्वात्' नास्ति। ६. क. पगतम। ७. ख. शान्ति। ८. क. पिधनं। ९. क. दुष्कुलम्, द. कुशलम्।

गुह्यभूता। मन्त्रनयक्रमेण एवं प्रकाश्यत्वात् **रहस्यभूता**। अविकल्पकर्ममुद्रादिसेवा-साध्यहेतुत्वात् **सर्वमुद्रामन्त्रभूता**। **आरोग्यं** नीरोगता, **बलं** कायिकं सामर्थ्यमैश्वर्यं हस्त्यादिसम्पत् धनधान्यादि। **श्री**रद्वयत्वात्। **शुभं** दशकुशलप्रधानत्वात्। **शान्ति**र्योगाभ्यासात्। **कल्याणमा**दिमध्यान्तमङ्गलत्वात्। **यशो** बोधिचित्तप्रपूरणात्। **कीर्ति**रभिषेकादिप्रकाशनात्। **श्लोको** बुद्धत्वदायकत्वात्। **स्तुति**र्मार्गदानेन। अष्टानवतिक्लेशाः **सर्वव्याधयः**। **पूततरा** पुण्यज्ञानसम्भारपूरणेन। सर्वप्रपञ्चमलप्रक्षालनात् **पवित्रतरा** ज्ञानसंभारोपचितत्वेन हृदयदौष्ठुल्यापनयनात् तीर्थिकादिज्ञानिषु बुद्धधर्मस्थापकत्वाद् **मङ्गल्यतमा**। अनाथानां शरण्यत्वात् **शरण्यम्**। रतिहेतुत्वा**ल्लयनम्**। स्वस्वधर्मेण **त्राणार्थिनां** पालनात् **त्राणम्**। परित्राणविरहिणां **परायणम्**। निर्वाणपुरप्रापणात् **द्वीपभूता**। सर्वाकारनिराकारशून्यताप्रकाशनेन **ज्ञानालोकभूता**। **पञ्च चक्षूंषि** मांसादीनि। ग्राह्यग्राहकाभावाद**द्वयधर्मता** अवधूतीगतत्वेन सर्वारोपविगमात् **तथतारूपता**। निःस्वभावत्वात् **सर्वधर्मानभिलापरूपा**।

मन्त्रमुखेन श्रुति(त)चिन्ताभावनाचर्या चरतीति, तथा नाम्ना चूडामणिः सर्वतथागतकुलोद्भवानामिति **नामचूडामणिः**। अविकलबुद्धगुणयोगात् **सकलपरिसमाप्ता**। सर्वधर्मार्थसम्पूर्णा**मन्यूनामखण्डाम**नभिभवानां(वनी)यां धारयिष्यति ग्रन्थार्थतः। **वाचयिष्यति** मण्डलानां पुरःसरं वचनात्। **पर्यवाप्स्यति** चिन्तातः। **योनिशश्च मनसि करिष्यति** भावनातः। ओजसो बलं सामान्यमोजोबलं **तेजसोऽप्रधृष्यति** तेजो अन्तः स्फुरितम्। तेजोमाहात्म्यप्रत्यङ्गिराप्रतिपक्षभूता। **पञ्चकषायाः** सत्त्वदृष्टिकल्पायुःपरिस्फारलक्षणाः। **अश्लोकाभ्याख्यानन्दिावादपूर्वकप्रत्याख्यानम्**। **प्रियो मन आपो** मनोग्राही। **अधिष्ठितोऽ**न (नु)र्वर्त्तिनो **दशसु दिक्षु धर्मदुन्दुभि**र्यस्य स तादृशो **धर्मराज** इति धर्मराजाधिपतिर्भविष्यतीति सम्बन्धः॥१२॥

मन्त्रविन्यासः

ॐ सर्वधर्माभावस्वभावविशुद्धवज्र अ आ अं अः प्रकृतिपरिशुद्धाः सर्वे[1]धर्माः यदुत सर्वतथागतज्ञानकायस्य मञ्जुश्रीपरिशुद्धितामुपादायेति। [2]अ आः सर्वतथागतहृदय हर हर ॐ हूं ह्रीं भगवन् ज्ञानमूर्तिवागीश्वरमहावाच सर्वधर्मगगनामल सुपरिशुद्धधर्मधातुज्ञानगर्भ आः।

इति मन्त्रविन्यासः।

ॐ सर्वधर्माभावस्वभावविशुद्धवज्र अ आ अं अः प्रकृतिपरिशुद्धाः सर्वधर्माः, यदुत सर्वतथागतज्ञानकायस्य मञ्जुश्रीपरिशुद्धितामुपादायेति। अ आः सर्वतथागतहृदय हर हर ॐ हूँ ह्रीं भगवन् ज्ञानमूर्ति(र्ते) वागीश्वरमहावाच सर्वधर्मगगनामल सुपरिशुद्धधर्मधातुज्ञानगर्भ आः।

आदिमध्यान्ताधिष्ठानोऽयं मन्त्रः। तथाहि–बोधिचित्तमकारः, भूमिपारमिताचर्यास्वभावाकारः। बुद्धत्वसूचकः अंकारः। महानिर्मा(र्वा)णद्योतको अःकारः। ज्ञानकायाधिष्ठानक आःकारः। कायवाक्चित्तरागाधिष्ठानका ॐ हूँ ह्रींकाराः धर्मधातुवागीश्वरात्मकं(क) स्थिरचलरूपावस्थितपरिधर्मकायाः मुद्रार्थः आःकारोऽन्ते विहित इति॥ ३१॥

•

---

१. क. धर्मा। २. क. अः आः।

उपसंहारः

अथ वज्रधरः श्रीमान् हृष्टतुष्टः कृताञ्जलिः ।
प्रणम्य नाथं संबुद्धं भगवन्तं तथागतम् ॥ १ ॥

अन्यैश्च बहुभिर्नाथैर्गुह्येन्द्रैर्वज्रपाणिभिः ।
स सार्द्धं क्रोधराजानैः प्रोवाचोच्चैरिदं वचः ॥ २ ॥

अनुमोदामहे नाथ साधु साधु सुभाषितम् ।
कृतोऽस्माकं महानर्थः सम्यक्संबोधिप्रापकः ॥ ३ ॥

जगतश्[1]चाप्यनाथस्य विमुक्तिफलकाङ्क्षिणः ।
श्रेयोमार्ग्गो विशुद्धोऽयं मायाजालनयोदितः ॥ ४ ॥

गम्भीरोदारवैपुल्यो महार्थो जगदर्थकृत् ।
बुद्धानां विषयो ह्येष सम्यक्संबुद्धभाषितः ॥ ५ ॥

इति [2]उपसंहारगाथाः पञ्च ।

आर्यमायाजालषोडशसाहस्रिकान्महायोगतन्त्रान्तःपातिसमाधिजालपटलाद् भगवता श्रीशाक्यमुनिना भाषिता भगवतो मञ्जुश्रीज्ञानसत्त्वस्याद्वयपरमार्थानामसङ्गीतिः परिसमाप्ता ।

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ॥

अथेत्यनन्तरं यः प्रथममध्येषितवीर**वज्रधरः** संप्रोवाचोच्चैरिदं वच इति सम्बन्धः। तदात्मसुखनिष्पत्या **हृष्टः**, आयतिसुखनिष्पत्या **तुष्टः**[3]। सम्यक्संबोधिप्रापकः, श्रेयोमार्गः, मायाजालमन्त्रनीत्योदितः। **महा**निति स्वपरोदयनिबन्धनार्थः। **कृत** इति अयं च मार्गो बुद्धानामेव गोचरो नान्येषामिति स्थितम् ॥ १४ ॥

अमृतकणिकानाम श्रीनामसङ्गीतिटिप्पणी समाप्ता।

कृतिराचार्यरविश्रीभिक्षुणेति(भिक्षोरिति)।

---

१. क. ख. चास्य । २. क. उपसंहारश्लोकोऽयम् । ३. इतः परं 'ख' प्रति नोपलभ्यते ।

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ॥

[1]अब्दे व्योमवियत् षडाननयुते कृष्णे सचैत्रे (सिते) फाल्गुणे,
षष्ठम्या अनुराधके गुरुदिने शुद्धिश्च योगे इमे ।
बुद्धैर्भाषितधर्मसारनिचयं श्रीनामसङ्गीतिकं
सत्त्वानां हितहेतवे विलिखितं श्रीरूपराजेन च ॥

यस्मिन् श्रीमणिसंघनाम्नि च महावैहारसंतिष्ठसे(ते)
श्रीमद्वज्रविलासिनी भगवतीं पादारबिन्दार्चितं(ता) ।
वज्राचार्यकुलोद्भूत(भवः) सुगुणवान्धर्मज्ञशास्त्रागमं(मः)
शास्ता(ज्ञाता)श्रीरविचन्द्रपादप्रभ(भा)वात् ख्यातो महीमण्डले ॥

यथा दृष्टं तथा लिखितं लेखिको (लेखकस्य) नास्ति दोषः । शुभमस्तु सर्वदा ।

●

१. श्लोकद्वयं प्रतिलिपिकर्तुरस्ति न तु टीकाकारस्य ।

आदर्शज्ञानम्

वज्रभैरवभीकरः ॥२५॥

क्रोधराट् षण्मुखो भीमः [1]षण्नेत्रः षड्भुजो बली।
दंष्ट्राकरालः कङ्कालो [2]हलाहलः शताननः ॥१॥

इदानीं वज्रभैरवभीकर इत्यादिपादेन सार्द्धदशश्लोक्या आदर्शज्ञानस्य व्याख्यानमाह— वज्रमवधूती, तस्या अनन्तरे(अन्तरे) [3]भैरम्भ[4]वायुरया(वा)-दनाहतादुत्थितात्सुखमयरूपादिस्कन्धतया महासुखस्वभावो [5]दृष्टिविकल्पानां नियमभावं करोतीति **वज्रभैरवभीकरः** ॥ २५ ॥

क्रोधराडिति। क्रोधराट् विरमानन्दादनन्तरं राजत इति **क्रोधराट्**। महासुख-स्वभावो मञ्जुश्रीरूपः। षण्मुखानि उपायभूतानि प्रत्याहारादि[6]**षण्मुखानि** यस्य स तथा। सर्वदुःखच्छेदकत्वेन **भीमः**। स्कन्धधात्वायतनेन्द्रियविषयकर्मेन्द्रियाणा[7]मन्त-र्हितत्वात्। आकाशमिव स्वच्छत्वेन षण्नेत्राणि षडभिज्ञास्वभावानि यस्य स **षण्नेत्रः**। षड्विषयान्महासुखस्वभावतया भुक्त इति **षड्भुजः**। महारागात्मकज्ञानेन स्कन्धादि-वेगसामर्थ्याद् **बली**। [8]द्रंष्टा चण्डाली तस्या गुरूपदेशात् ज्वलितायाः [9]शिखरभूतत्वाद् **दंष्ट्राकरालः**। कं सुखं कलयतीति **कङ्कालः**। हलाहल आकाशज्ञानतया वज्रान्तः प्राणबन्धः ते[न] सकल[10]नाडीगतसुखतया शतमनन्तानि आननानि सुखज्ञानानि यस्य स **हलाहलशताननः** ॥ १ ॥

यमान्तको [11]विघ्नराजो वज्रवेगो भयङ्करः।
विघुष्टवज्रो हृद्वज्रो मायावज्रो महोदरः ॥२॥

यमान्तकेति। **यमं** द्वयं स्वपराभिनिवेशस्तस्या**न्तको** युगनद्धवाहीत्यर्थः। **विघ्नो** मारः स्वचित्तप्रसरः "मारः स्वचित्तं न परोऽस्ति मारः" इति। तद्विनाशेन राजत इति **विघ्नराट्**। वज्रस्य सम्यग् ज्ञानस्य **वेगः** [12]प्रसरः तद्रूपत्वात्तथा। [illegible]दबिन्द्वेकीकरणेन सकलविकल्पकवलनाद्(लीकरणाद्) **भयङ्करः**। अनन्तरोक्तक्रमेण शून्यताकरुणयोर-

---

१. ङ. षट्नेत्र, छ. षड्नेत्रः। २. च. हालाहल। ३. ख. भैरम। ४. ख. वायुरयथा०। ५. क. ख. द्रष्ट। ६. क. ग. द. षट्कानि। ७. द. ०मन्तरहित्वात्। ८. ख. तं द्रंष्टा, द. [illegible]। ९. क. ख. शेखर। १०. क. नाभी। ११. क. ख. घ. विघ्नराट्, च. विघ्ननराट्, ङ. विघ्नराट्। १२. क. ग. प्रसवः।

पुनः कीदृशम् ? **मणी**त्यादि। **मणि**: रश्मिविशेषस्त**न्मयी** तत्त्वे तु **शिला** यस्य तच्चित्तविश्रामाख्यशैल**मारूढम**ध्यासितं तत्रैवास्य शबरस्य लोकनाथेन विनयनात्। अत एव **गूढं** गुरुगम्भीरतरसमाधिसमापन्नं ततश्च **निरापदं** निर्बाधं कृतकृत्यम्। [1]एतेनास्य मार्गज्ञानं परार्थकारित्वं दिवाकरादिविशिष्टत्वं ऋद्धिशालित्वं स्थानविशेषोपलक्षितगुरु[2]तनुगृहीतत्वं फलस्थत्वं संसारपारगत्वं चोक्तम्। ततश्चैनं दृष्टान्तमवधार्य निर्विचिकित्सैः स्वहिता[3]वहितै[4]रतावहितैर्भवितव्यमित्येव(?)भङ्ग्या प्रतिपादितम्। अथवा परमाक्षरज्ञानप्रकाश[5]क**श्रीकालचक्र**व्याख्यासाक्षि**श्रीनामसङ्गीतिं** विवरितुकामोऽवबुद्धपरमादिबुद्धो बुद्धत्वाभिलाष्ययमाचार्यः षडङ्गयोगैकसाधनं [6]सहजं सोपायं प्रस्तुवन्नाह—विषयेत्यादि। अत्रापि शबराधिपं नमामीति योगः। कथं भूतमित्याह—विषयेत्यादि। विषयाः पञ्चरूपादयः। विषयिणश्च पञ्चचक्षुरादयः तन्म[7]ध्ये व्योम्न आश्लेषे ज्ञानस्य सति प्रवृत्तानि निमित्तानि धूमादीनि यस्य स तथा, तं। तदुक्तम्—"आकाशासक्तचित्तैः" (का० त० ५.११५) इत्यादि अनेन प्रत्याहारध्यानाङ्गे प्राह। यदुक्तम्—

> प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे।
> प्रज्ञातर्को विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम्॥ इति।
> (का० त० ४.११६)

"दृष्टे बिम्बे ततः कुर्यात्प्राणायामं निरन्तरम्" इति वचनात्, पुनराह—रवीत्यादि। रवी रसना शशी ललना तयोर्वर्त्मनि शुषिरेऽप्रवृत्त्या। तमो वर्त्मनि च मध्यमायाम्[8]प्रवृत्त्या प्रबन्धवृत्त्या[9] इति प्राणायामः कथितः। तदुक्तम्—"प्राणायामो द्विमार्गस्खलनमपि भवेन्मध्यमे प्राणवेशो" (का० त० ४.११६) इति।

शरारीति शरा पञ्च अरा चक्रारास्तद्योगादरिचक्रम। तत्र नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीषपञ्चचक्रे[10] गतागतत्वेन चलक्रियं चलनकर्मकमिति धारणोक्ता। तदुक्तम्—"पुनरपि दशधा[11] धारणा रत्नपाणिः" (का० त० ४.११५)। "बिन्दौ प्राणप्रवेशो ह्युभयगतिहतो धारणा चैकचित्तम्" (का० त० ४, ११६) इति। धारणानन्तरमवश्यं चण्डाली ज्वलतीत्युपदेशस्तदाह—स्फुरदित्यादि। स्फुरतो दीपस्य उरूत्तरस्य शून्यतालम्बनान्महत्तरस्य ज्ञानज्योतिषः श्रुतिः प्रबन्धवृत्तिर्यस्मात्तमित्यनुस्मृतिरुक्ता। तदुक्तम्—

---

१. ग. एते नाथस्य। २. ख. तपा। ३. क. ख. च। ४. ख. ग. रभाव। ५. ख. कं। ६. क. सहज। ७. ग. मध्य। ८. ख. ग. 'प्र' नास्ति। ९. ग. 'अ' इत्यधिकम्। १०. ख. ग. चक्र। ११. क. ग. विधा।

"कण्ठात्यालोकनं यद्भवति खलु तनो चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात्" ॥ इति ।

(का० त० ४.११७)

शबरं सुखवरं तमेवाधिपं राजानं, सर्वधर्माणां सुखेनाधिपत्यात् । यदुक्तम्—

कामजाल घणपशरील अलिउल दह दिहें ।
अनुपम शबरमिलीला काउ सीक [1]मण गुणें ॥ इति ।

अनेन ज्ञानज्ञेयैकलोलीभावेनाक्षरसुखं [2]वैमल्यं फलमुक्तम् । यदुक्तम्—"ज्ञेयोपायात्मकेनाक्षरणसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिः" (का० त० ४.११७) इति । समाध्यङ्ग[3]मुक्तं, तदेवाह—**मणी**त्यादि । मणी रत्नं तन्मयी तत्स्वभावा, शिला यस्य तस्यैलस्य सुमेरोः कङ्कालदण्डस्य तन्मणिमयशिलामारूढं कङ्कालमध्यशुषिरेणोत्थितं महासुखचक्रगतम् । यदुक्तम्—"वज्राच्छुकं समाध्या व्रजति शिरसि वैमल्यसौख्यप्रपूर्णम्" इति । अत एव गूढं संवृतं श्रावकाद्यगोचरं च । अक्षरत्वादेव निरापदं निर्विघ्नम् । यदुक्तम्—

गिरीवर शिहरं उतुङ्ग थलि शबरि जहि किअ वास ।
ण उलंघिअ पञ्चाणणे हि करि वर दूरी आस ॥

वरगिरिः स एव [4]प्राचीनः(रः) तस्य शिखरं शृङ्गं तदेव महासुखाधारमुत्तुङ्गा महास्थली । शबरेण वज्रधरेण यत्र कृतो वासः स च न लंघितो नाघ्रातः पञ्चाननेन पञ्चमहामण्डलात्मकप्राणपवनसिंहेन । ततश्चित्त करिवरस्यदूरतरा लंघनाशेति । नमामि तत्प्रवणस्तदेकतानः कथं भवामीत्याशंसति ।

अमृतेत्यादि । परमाक्षरज्ञानसिद्धिसुधानिधिमपेक्ष्यामृतस्य स्वल्पतरा कणिका सैवाचरति यज्ज्ञानं या लक्षतिलकगौडगोपालभूपतिगुरोः पण्डितचक्रचूडामणे**र्धर्माकरशान्ति**चरणादधिगतं ज्ञानं **तद्दृप्यते** लिख्यते **समासात्** संक्षेपात् । **स्वस्मृतये** आत्मस्मरणाय । मम मन्दमेधसः केनैतत् ग्राह्यमित्यौद्धत्यपरिहारे अथवा परमगम्भीरदुरवगाह [5]मार्गस्यास्य गृहीता [6]रोधदुरात्मायैवमुक्तम् । यथोक्तम्—

मम तावदनेन याति वृद्धि कुशलं भावयितुं प्रसादवेगः ।
अथ मत्समधातुरेव पश्येदपरोऽप्येनमतोऽपि सार्थकोऽयम् ॥ इति ।

(बो० च० १.३)

---

१. ख. ग. पण । २. ग. वैमल्य । ३. ग. 'मुक्तं' नास्ति । ४. ख. प्राचितः । ५. क. मार्गरत्नस्या । ६. ख. रोद्यत्त ।

कुत्र टिप्यते इत्याह—परमाक्षरस्य सहजस्य सोपायस्य नानाव्यावृत्तिभेदभिन्नानां नाम्नां संज्ञानां सम्यग्ज्ञानमर्थकथनं यत्र [1]तस्यां नामसङ्गीतौ स्वग्रन्थाभिधेयसम्बन्धकथनमेतत् ।

प्रसादयति चेतांसि बुद्धि[2]पूर्वं प्रवर्त्तिनाम् ।
पूर्वापरार्थसमृद्धानि दानोद्दीपित(ति) कथयति ॥

इति न्यायाद् धर्मानुसारिणां च प्रसादाय निदानमाह—**इहे**त्यादि । **इह** वाक्यालङ्कारे **खलु** निश्चयेन निखिलवज्रयानार्थसंग्रहभूतत्वाद् अस्यास्तद्यानदेशनायाः स्थानपर्षदध्येषकदेशकादिकथनं प्रवृत्त्यङ्गत्वेन तत्तदेव धान्यप्राधान्याद्धान्यवर्षणाच्च चतुर्णां राज्ञां तत्र सिद्धेः श्रीधान्याख्यकटकोऽस्ति नितम्बोऽत्रेति वा । श्रीपर्वतस्य द्वादशयोजनानामर्वाक् श्रीधान्याख्यकटकेषु स महापरिनिर्वाणे संस्कारचिन्तायां भवत्वाच्चैत्यं महत्त्वमसृजे गदक्षय[3]निःश्रेयसमाश्रयत्वात् । स्थानसम्पदुक्ता नानातन्त्र**मायाजालकालचक्रा**द्यास्तदध्ययनाद्यधिमुक्तेः । तदुक्तम्—

त्रैलोक्यविजयो नाम समयो मारमर्द्दनः ।
तस्मिन्पूर्वामुखः शास्ता रत्नसिंहासने स्थितः ॥

पञ्चरश्मिमयैर्व्यूहैः पूरयन् स जगत्त्रयम् ।
बोधिसत्त्वसुरारीन्द्रदेवेन्द्रैः पूजितः प्रभुः ॥

पञ्चाङ्गैर्मौलिसंयुक्तैः प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
स्वस्वासने निषण्णास्ते मन्त्रयानश्रुतार्थिनः ॥

अभिज्ञालाभिनः केचिद् बोधिसत्त्वाः सुरादयः ।
हृष्टतुष्टाशयाः सर्वे मनसा चिन्तयन्ति ते ॥

दीपङ्करेण या पूर्वं मन्त्रयानस्य देशना ।
कृताऽस्माकं च कर्तव्या गौतमेनाद्य साधुना ॥

अथातः सम्भलाख्यातो वज्रपाणिविनिर्मितः ।
सुचन्द्रनृप आयातः स्वहृद्यां श्रीधर्मधातुके ॥

आदौ प्रदक्षिणं कृत्वा शास्तुः पादाम्बुज[4]द्वयम् ।
रत्नपुष्पैः समभ्यर्च्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा संबुद्धस्याग्रतः स्थितः ।
तत्तस्याध्येषकः शास्त्र(स्तु)श्चन्द्रः संगीतिकारकः ॥ इति ।

---

१. ग. तस्य । २. क. ख. पूर्व । ३. क. निःश्रेयमा । ४. ख. ग. द्वयः ।

संदेशोपकरश्चोक्तः। **श्रीशाक्ये**त्यादिना देशकः। **चैत्रे**त्यादिना कालविशेषः।
सूक्तम्—

गृध्रकूटे महाशैले प्रज्ञापारमितानयम्।
संदेश्य बोधिसत्त्वानां महायानं निरुत्तरम्॥

अथैकस्यां महाचैत्यां धर्मधातुकमण्डले।
बोधिसत्त्वादिभिः सार्धं विजहार तथागतः॥ इति।

श्रीत्यादि वागीश्वर[1]नायकमण्डलं वर्तयित्वा तद् विनेयान्विनाय तदुपरि गगने नक्षत्रमण्डलवदादिबुद्धमण्डलं विस्फार्य तद्दिने परमादिबुद्धविधिनाभिषिच्य देवा-दिभ्यो यानं देशितं, तत्र **बृहदादिबुद्धो** द्वादशसाहस्रि[2]को लघुस्तु स्रग्धरावृत्तेन सार्धं द्विशतः। **बृहत्समाजः** पञ्चविंशतिसाहस्रो लघुरष्टादशशतम्। **हेवज्रः** पञ्चलाक्षिक इत्यादि। **उक्तमि**त्यादि गतार्थम्। **तत्र चेयमि**त्यादिना पिण्डार्थमाह—तै वै विधयः सुसंगृहीं[ताः] **सर्वे**त्यादि येषां लक्षणं प्रपञ्चश्चेति न्यायात्। पिण्डार्थे व्युत्पन्नः सुखेनावय-वार्थमवधारयतीति कृत्वा। परमत्र दुरवगाहो यः परमार्थः शून्यता तस्य निर्यासः[3] सारः सहजस्तस्या[4]धिकरणमाधारो **नामसङ्गीतिः**। तस्य [5]भावस्तत्त्वं तेन। यदुक्तम्—

शून्यतादर्शनं प्रति पृथग्जनाः सर्व एव जात्यन्धाः॥ इति।

वज्रधरो वज्रसत्त्वः। **परमाक्षरज्ञानं** वक्ष्यमाणं, **सर्वे**त्यादि **बुद्धानां हृदयभूत**-मिति सर्वतथागतज्ञानकायत्वाद् मञ्जुश्रियः बोधिसत्त्वानाञ्च यतो विकल्पक्लेशा बोधिसत्त्वानां ते विकल्पाश्च परमाक्षरे सवासना निरुध्यन्त इति। **षट्कुले**त्यादि षण्णाडीरूपषडारचक्रेऽमी वज्रसत्त्वादयः प्रत्येकं षट्प्रकाराः। तत्राधः शङ्खिनी स्वरूपारेऽक्षरज्ञानम्। रसनारूपदक्षिणारेऽक्षरवेदना। अवधूतीरूपोर्ध्वारेऽक्षरविज्ञानम्। विण्नाडीरूपपश्चिमारेऽक्षररूपम्। मूत्रनाडीरूपपूर्वारेऽक्षरसंस्कारः। ललनारूपोत्तरा-रेऽक्षरसंज्ञा इति षट् स्कन्धाः। त एव षट् कुलानि उद्दानम्। ऊर्ध्वेऽवधूतीविज्ञानं ज्ञानं शङ्खिन्यधोगतपश्चिमे विड्वहा, रूपं पूर्वे संस्कारमूत्रधृक्। संज्ञोत्तरारे ललनारसना-सव्यवेदनेति षट्, महासुखे चतस्रः, ललाटे षोडश, कण्ठे द्वात्रिंशत्, हृदयेऽष्टौ, नाभौ चतुःषष्टि, गुह्ये द्वात्रिंशदिति द्वाषष्ट्यधिकशतनाड्यः। तदुक्तम्—

उष्णीषेऽब्धिर्ललाटे जलधिहतयुगाः श्लेष्मधातुप्रकोपाः
कण्ठे दन्ता हृदब्जे नयनहतयुगाः पित्तधातुप्रकोपाः।

---

१. क. नायकं। २. ख. काः। ३. ख. सा। ४. ख. 'धिकरणमाधा''''त्वेन व्या' नास्ति। ५. क. तावत्तत्त्वं।

नाभौ गुह्योऽब्धिषष्टिर्नृपतिरपि तथा वायुधातुप्रकोपाः
गुह्योऽन्या दिक् च षट्कं प्रकटितनियताः सन्निपाता निरोधा ॥ इति ।
(का० त० २.५९)

एतद्वृत्तव्याख्यास्ति, श्रीमान्नक्षत्रमण्डल इत्यस्य व्याख्या टिप्यते । गाथाश्च षोडशाध्येषणाः, षट् प्रतिवचो, द्वे कुलेक्षणे, तिस्रो माया[जाला]भिसंबोधिर्वज्रधातुश्चतुर्दश, सुविशुद्धौ धर्मधातुः पादोनपञ्चविंशतिः, पादाधिकदशादर्शः, कराब्धिः प्रत्यवेक्षणम्, समताम्भोधिनयने, कृत्यानुष्ठानकं तिथिः, पञ्चज्ञानस्तुतिः पञ्च, द्वाषष्टिशतकारिकाः । नाडीनिरोधः प्राणायामेन अनुशंसादिकमित्यादिशब्देन मन्त्रस्तुतिः संप्रहर्षोपसंहारस्तुतिश्च ग्राह्या ।

तत्र तावदित्यादिनाऽवयवार्थव्याख्यामारभते, तत्र **अथे**त्यादि । [1]मूलमेवं मयाद्यर्थत्वेन व्याचष्टे । **अकारेणे**त्यादि शून्यता वज्रसत्त्वः प्रज्ञा, करुणाक्षोभ्य उपायः । तदुक्तम्—

कं तत्सुखं रुणद्धीति करुणा ज्ञानमुत्तमम्[2] ।
शून्यता प्रतिसेनैव सर्वभावस्य दर्शनम् ॥ इति ।

अयमत्रोपदेशः । विश्वबिम्बम् अध्वत्रैधातुकाकारं वक्ष्यमाणं सर्वाकारवरो[3]पेता शून्यतोक्ता, तत्र योगिचित्तस्य परमाक्षरक्षणे महासुखेन प्रवेश एवं शब्दवाच्यः । तदुक्तं **कालचक्रे**—"शून्ये ज्ञानं विमिश्रं भवति समरसं चाक्षरं शाश्वतं च" इति (का० त० २.३)।

एतदेवाह **तयोरि**ति शून्यता करुणयोरद्वयत्वं च विना सुखोदयं न स्यादिति तदुपायो **मणी**त्यादिना वज्राब्जयोग उक्तः । **एकारे**त्यादि पूर्वार्धं व्याचष्टे । **आकाशे** विश्वबिम्बे **वज्रसत्त्व**श्चित्तं । **काया**दिसमरसमिति कायवाक्चित्तयोगं व्याचष्टे **कायो बिन्दुरिन्दुः शुक्र**मिति पर्यायाः । एवं **वागा**दि चित्तं तमोगुणः । यतोऽविद्यावशात् वासनाभिश्चित्तं चित्तमुच्यते । एतेषां सत्त्वरजस्तमसां योगोऽवधूत्यां व्यवस्थितः । उक्तञ्च—

तत्रादौ विरमस्य शेषपदवी रागस्य मध्यक्षणे
त्यक्त्वा स्त्रीसुखमन्यदक्षरसुखं गृह्णाति यस्तन्मयः ।
स श्रीमान् घनसारमुद्रणविधौ विज्ञो गुरोराज्ञया
स्वानन्दासवपानघूर्णितमना नाभ्येति मोहं सुधीः ॥ इति ।
(गुह्यावली-३)

---

१. क. मूलमेव । २. ग. मुत्तमः । ३. ग. पेतं ।

ततश्चायमत(नु)क्रम उत्पत्तिक्रमे कृताभ्यासः प्रत्याहारेण दशनिमित्तानि निशादिवसयोगेन दृष्ट्वा दशममहाबिन्दुमध्ये विश्वबिम्बं दृष्टं ध्यानेन स्थिरीकृत्य प्राणायामेन मध्यं विशोध्य धारणया बोधिचित्तं स्थिरीकृत्यानुस्मृत्या ज्वलितचण्डालीकः प्रज्ञोपायसमापत्त्या समाध्यङ्गेन परमाक्षरं साहजं साक्षात् कुर्यादिति। अथ शब्दमेवमर्थं व्याख्याय वज्रधरपदं मयार्थत्वेन व्याचष्टे **अत एवेत्यादि**। पूर्वोक्तमेवं शब्दवाच्यं [1]वज्रम्। **असत्संकल्पे**त्ययोनिशोमनस्कारसमुत्थाः पञ्चोपादानस्कन्धाः तेषु सत्स्वहंममकारप्रसृता रागाद्याः क्लेशाः मार्गभावनाविरोधिनो देवपुत्रमारलयौद्धत्यादयो विघ्ना अनिरोधितप्राणत्वादन्ते मृत्युरिति। माराश्चत्वारो लोके एतैरभेद्यत्वात्। एते च चित्तनिर्मिताः।

सत्त्वलोकमथ भाजनलोकञ्चित्तमेव रचयत्यतिचित्रम्।
कर्मजं हि जगदुक्तमशेषं कर्मचित्तमवधूय च नास्ति॥

इत्युक्तेराह **अत** इत्यादि। अतश्चोक्तम्—

स्वचित्तमेव मर्त्तव्यं मारयेच्चित्तमेव च।
स्वचित्तमेव संबुद्धो बोद्धव्यं चित्तमेव च॥ इति।

बहिः करे पञ्चशूकवज्रमुक्तज्ञानापत्तिसूचकमेव **श्रुतमित्यर्थः**। **श्रीमानित्याह**। श्रीरित्यादि "श्रीकारमद्वयं ज्ञानम्" इति वचनात्। [2]अत्र निदलन(दान)माह—**एवमित्यादि**। **एवमित्ये**वंकारस्वरूपो वज्रो वज्रधरः सहजबिन्दुधृक् सुखशून्यताऽभिन्नात्मा स [3]एव श्रुतं ज्ञातं सुखमिति कृत्वा मयात्मनात्मैव ज्ञात इत्यर्थः। **तन्त्रेष्विति** समाजादिषु एवं मया श्रुतमिति यद्वचनं तस्य एवं मया ज्ञातमित्येवार्थः। **वज्रेति** भगवान् शुक्रमध्यस्थः सर्वतथागतकायवाक्चित्तं वज्रयोषिद्भगेष्वित्यनुवदति **वज्रस्त्रीणां भग** इति। भगाश्चात्रशिरःकमलाद्या एव। **एकस्मिन् समय** इति बिन्दुमोक्षत्रयेण कायादिबिन्दुत्रयानन्तरं परकमलगतो मण्यग्रगतः विजहारेति बुद्धक्षेत्रं प्रविष्ट इति। **अत्रेति** केवलनीतार्थव्याख्या, पक्षेऽन्या वज्रपाणिः। **व्याख्यातेत्यादि अहं** शाक्यसिंहो धर्मश्च धर्मकायत्वात्। श्रोता च यदुक्तं षट्कोटौ "वज्रपाणिः पुनर्नान्यो महावज्रधर एव" इति। **स्वगणै**रानन्दपरमानन्दादिभिः। **साध्योऽहं** सहजरूपत्वात्। जगतः क्लेशशासनात् शास्ता। लोकोऽहं प्रकृतिपरिशुद्धत्वाल्लोकस्य लौकिकस्तथतारूपत्वात्। सहजानन्दरूप "आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्" इत्युक्तेः। स च परमान्ते विरमादौ ज्ञेयः। **अभावो (भावो)** विश्वबिम्बं **नैव भावो** बाह्यभावानुपलम्भस्वभावत्वात्। **बुद्धो** वस्तुतत्त्वावबोधात्। ततश्च ये मूढाः कुसीदाश्च ते मां न जानन्ति। सुखमवति रक्षतीति **सुखावती** दिव्यवज्रयोषिद्भगस्तत्राहं विहरामि तत्रैव परं प्रथमं सहजानुभवः सुखेन विकल्पश्वासलये। उक्तं च—

---

१. ख. वज्रः, ग. वज्र। २. ख. ग. 'अत्र निदलनमाह' नास्ति। ३. ख. एवं।

सहज कप्परे वेविठिअ सहज विलेहूरे शुद्ध।
कअ पता पाणिए मीसले राजहंस जिम दुद्ध॥ इति।

ततो वज्रधरोऽ[1]ग्रतः स्थितस्तथागतमिदमाहेत्यादि सम्बन्धं नेयार्थे बालावतारणाय। तदुक्तम्—

श्रद्धावतां प्रवृत्यङ्गं शास्ता पर्षच्च साक्षिणी।
देशकालौ च निर्दिष्टौ .... ॥ इति।

(प्रज्ञा० पिण्डा०-३)

हरिहरेत्यादि। यदुक्तम्—"हरिहरब्रह्मपुरन्दर रे सवें चित्त आंत्र वाहिउ" इत्यादि। अयन्त्रितप्राणास्तेऽपि संसारिणस्तेषामिति अहोरात्रिकाणामुक्तप्रवेशनिर्गमश्वासानां सहजज्ञानविद्धतया श्वसनरूपोपघातात्तथा। तदुक्तम्—

प्राणापानक्षयेणैव द्वादशाङ्गक्षयो भवेत्।
हेतुफलनिरोधेन को न बुद्धो भविष्यति॥ इति।

अच्युतबोधिचित्तबिन्दुभिर्द्वासप्ततिसहस्रनाडीः पिपर्त्ति पूरयतीति परप्राणिनश्चेति "श्वस् प्राणने अन् वेति" धातुः प्रपूर्वः प्राणनं प्राणः श्वसनं स एषामस्तीति प्राणिनः श्वासाः। एषां गतिविबन्धो घातनम्। वैरिदारणं नाम यो वीरक्रमो बाह्ये स[2] नात्रोक्तः किन्तु देहे प्राणवातनिरोधक एव। **स तेषामि**त्यादि प्राणवातमाकृष्य यः प्रवेशयितुं शक्तः समाधि[3]बलेन तं प्रतोदमुक्तम्। यदाह—

सर्वमेव व्रती कुर्यात् त्यक्त्वा सत्त्वस्य वञ्चनाम्।
सत्त्वा बुद्धा न बुद्धस्त्वपर इह महान्विद्यते लोकधातौ
तेषामाराधनेन त्वपरिमितभवश्छिद्यते निर्विकल्पात्।
द्रोहं कुर्वन्ति योगी व्रजति हि नरकं रौरवाद्यं महान्तं
तस्माच्चित्ते विशुद्धेऽप्यबुधबुधजनानां विरुद्धं न कुर्यात्॥ इति।

(का० त० ५.६६)

कायवाक्चित्तमिति कायादिबिन्दवस्तयो ललाटकण्ठहृदिस्थास्तान्नाभिगतज्ञानबिन्दुना सहैकलोलीकर्तुं सहजैकरसतया शीलं यस्य। **चतुर्बुद्धासना**नि ललाटादीन्यमोघसिद्ध्यादिस्थानानि तत्रासीनं क्रमेण वज्रपद्म[4]वरटकस्थमनुभूतमानन्दादिरूपमिति। व्याप्यं [5]त्रयं, व्यापकं सहजम्। चतुर्विधं कायसहजानन्दवाक्सहजानन्दादि-

१. क. ग्रत, ख. ग्रताः। २. ग. सम्मतोक्तः। ३. ग. वसेन। ४. ग. वरस्थ। ५. क. ग. त्रय।

भेदात्। **बुद्धबिम्बमि**ति विश्वबिम्बं त्र्यध्वत्रैधातुकाभिन्नम्। भावितप्रत्याहारादिभिर्बोधिचित्तं स्थिरीकृत्य बिम्बाशक्तः स्यादित्यर्थः। **विगतरव** इति निश्चलो मध्यमत्वादित्युपायः। एवं "प्राणिनश्च त्वया घात्या" (हे० त० २.३.२९) इत्यादिगाथा विवृण्वन् पञ्चगुह्यान्याह—**योगी**त्यादि। प्राणस्यातिपातनं निश्चेष्टीकरणं स्वरहीनो सुखानुच्चार्यः स्वयं प्रभवति हृदयेऽनाहतनादः। निरावरणे देहे सर्वज्ञस्य ज्ञानभूमेर्द्वादशभूमेर्ग्रहणं स्तेयमुक्तम्। शुक्रबिन्दुपाते यत्सुखं सा परदारस्य वज्रसत्त्वप्रज्ञायाः सेवाऽक्षरसुखतः। प्राणापाननिरोधे या चण्डाली [1]ज्वलति सा प्राणायामानलः। तेन बोधिचित्तचन्द्रस्य द्रुतस्य कुलिशमुखेन पानमूर्ध्वतः सहजजनकं मद्यपानमुक्तम्।

तत्र प्रकृतिसिद्धिं शुक्रचारमाह—**उष्णीषे**त्यादि। शुक्लप्रतिपदादौ चन्द्रकलावृद्ध्या पूर्णिमान्ते वामपादाङ्गुष्ठाद् बोधिचित्तमुष्णीषं याति। कृष्णप्रतिपदादौ उष्णीषाद् दक्षिणपादाङ्गुलीर्याति। तत्र शुक्लप्रतिपदादि वामपादाङ्गुलीपर्वाणि प्रथमे। द्वितीयायां द्वितीये, तृतीयायां तृतीये, चतुर्थ्यां वामपादसन्धौ, पञ्चम्यां जानुसन्धौ, षष्ठ्यां कट्यूरुसन्धौ, सप्तम्यां वामकराङ्गुलीप्रथमपर्वसन्धौ, अष्टम्यां मध्यसन्धौ, नवम्यां तृतीये, दशम्यां करसन्धौ, एकादश्यां बाहुसन्धौ, द्वादश्यां स्कन्धबाहुसन्धौ, त्रयोदश्यां हृदये, चतुर्दश्यां कण्ठे, पूर्णिमायां ललाटे। तदन्ते तूष्णीषं। पुनः कृष्णप्रतिपल्ललाटे द्वितीया, कण्ठे तृतीया, हृदि चतुर्थी, सव्यस्कन्धसन्धौ शुक्रस्य स्यात् शेषं वामवत्। **सा चर्ये**ति वामसव्यनाडीवाहवशेन गतस्य शुक्रस्य मध्यमावाहेन गुह्यादिषट्चक्रेष्वध्य(धो)गमनादूर्ध्वगमनं चर्या सर्वदाऽभ्यस्ता महामुद्रासिद्धिदा स्यात्। तामेवान्य[था] व्याचष्टे **एके**त्यादि। प्राणवाहनत्वाच्चित्तं प्राणास्तेषां मध्यप्रवेशे निश्चेष्टतावधस्ततोऽद्वयत्वादेकचित्तम्। वस्तुतः सत्त्वाभावान्मृषा। समसुरतेनोभयोः क्षरतोः पुनर्विवृत्त्या तया [2]अदत्तस्य रेतसो ग्रहः। **स्वाभसुन्दरी**ति स्वचित्तस्याभामात्रा महामुद्राविश्वबिम्बम्। **ईश्वरत्वा**दिति स्थैर्याधिपत्यात्। तदुक्तम्—

तच्च लिङ्गः सदायोगी ऊर्ध्वरेताः सदा भवेत्॥ इति।

यथेत्यादि। यथारुतोऽर्थोऽन्यत्रापि **विलासवज्रा**दौ सुलभत्वादिह नोक्तः। एतेन सम्बन्धादिकं टिप्पण्यां स्वीकृतमेव। ततश्च यः कश्चिदिहेर्ष्याशल्यविद्यमानस(म)न्यावि ''..........गतिसम्बन्धादिरहितेयमिति। उपेक्षणीय सदेवानां प्रियोऽविदितशास्त्रतत्त्वः। तथाहि चतुर्थचक्र**स्यानुसंशायामुक्तम्** "प्रत्येकं चान्यतमान्यतमं नामार्थं मञ्जुश्रीज्ञानकायमालम्भ(म्ब)नीकृत्य एकाग्रमनसो भावयिष्यति अधिमुक्तितत्त्वमनस्काराभ्यां समन्तसुखविहारविहारो सर्वधर्मप्रतिवेधिकया परमयाऽनाविलया प्रज्ञानुविद्धया

---

१. क. ज्वलित। २. ग. अदत्तकस्य।

श्रद्धया समन्वागतः सन् तस्य त्र्यध्वानध्वसमङ्गिनः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वाः सङ्गम्य समागम्य सर्वधर्ममुखान्युपदर्शयिष्यन्ति'' (पृ० १०३) इति प्रत्येकं पदानि सहजार्थान्युक्तानीति किं मन्त्र सम्बन्धादिना। नन्वन्यत्र ''मुक्तिर्मोक्षो विमोक्षाङ्गो विमुक्तिः शान्ततः शिवः'' (ना० सं० ८.१९) आदिपर्यायानामप्यर्थभेदः परिकल्प्यतेऽत्र तु भङ्ग्या सहजार्थ सर्वत्रेति [1]ग्राम्यता दूषणमप्यदूषणमेव। यतः सहजैकरूपस्य मञ्जुश्रियो नामसङ्गीतिरियम्। ''वागीशो वाक्पतिर्वाग्मी'' (ना० सं० ६.९) इत्यादि यावत् सम्भवैः शोभनवचनैर्गुणसारैक [त्रयो] विंशतमे संघौ(घा)तः प्रकृतः। यदुक्तं गुणशब्दा—

येनैते गुणसमुदायश्च येन जगति त्वं।
तेनेमास्तुर्याद्यास्त्वपि गुणसंज्ञाविधायन्ते॥

इत्यादि गुणयोनिश्च यः सहज एव। तदुक्तम्—

सहज इह निव्वाण हि धाविउ।
नच्च परमथे एकत्ते साहिउ॥
पुनस्तापरिआणै अण्ण न को वि।
अवरें गेण्णें सव्व विमोवि॥
सोवि पट्टिज्जेइ मोवि गुणिज्जइ।
सत्थपुराणै हिं बुज्झाणिजइ॥
नाहि सो दिट्ठ जो ताउण लक्खइ।
एक्के वर गुरु पाआ पेक्खइ[2]॥

इत्यादि दोहादौ सहज एव वाच्यः त्रिविधायां **जिनजनन्यां** ''रूपं शून्यं वेदना-संज्ञासंस्कारविज्ञानं शून्यम्'' इत्यादि पदैः सहज एव वाच्यो यावत्।

[3]चतुरशीतिसाहस्रे धर्मस्कन्धे महामुनेः।
तत्त्वं ये तु न जानन्ति सर्वे ते निष्फलाय वै॥

इत्यत्र तत्त्वं सहजमेवेति निश्ची[4]यताम्॥१॥

स्फुटीभूतेति स्वपुण्यगुरूपदेशात् प्रतीतः। **तेनेति** महामुद्राख्यो न सहजलाभ उक्तः। **विकसितमि**त्यादिना कर्ममुद्राया सहजप्रवेश उक्तः। **पञ्चचक्षुरि**ति मांसदिव्य-

---

१. क. शून्यता। २. द्रष्टव्यं दोहोकोष पृ० १७–१८। ३. चतुर्देवीपरिपृच्छासूत्र दो. को. पृ. १४९। ४. ख. येत्।

प्रज्ञाज्ञानभेदेन । अथवानेकस्वच्छजलभाजनप्रतिफलितेन्दुवद्योगिनां हृद्यक्षर-सुखदो नाथः [1]प्रथमत इति त्रिधा व्याख्या । वज्रेत्यादि । कं सुखमलङ्करोतीति कमलः ततः प्रभास्वरं ज्ञानम् । **एवमि**त्यादिना । [2]व्याप्यानामानन्दादित्रयाणां व्यापकः [3]सहजस्तत्संबन्धेन । आनन्दादिपर्यायकायादिचतुर्बिन्दुभिः परमाक्षरसुखज्ञानरूपभोक्ता । अस्य प्रज्ञालक्षणं **कालचक्रे—**

> दिग्वर्षं यावदेका भवति दशविधा दर्शनस्पर्शनीया
> तस्मादालिङ्गनीयाः सरसजलधयः सेवनीयाश्चलाद्या ।
> विंशद्वर्षोर्ध्वमुद्राः परमभयकराः क्रोधभूतासुरांशाः
> सेकार्थं षट्चतस्रः समसुखफलदाश्चापरा भावनार्थम् ॥
>
> (का० त० ३.११८)

एकवर्षमारभ्य यावद् दशवर्षा मुद्रा एका प्रज्ञापारमिता भवति । दशविधा दानादिविशुद्ध्या । सा दर्शनीया स्पर्शनीया च । तस्माद् दशवर्षाद् एकादशवर्षाद्या विंशतिवर्षा यावत् । रसाः षट् जलधयश्चतस्र इति दशमुद्रा आलिङ्गनीया सेवनीयाश्च । चलाद्या इति वायुधात्वादित्वे विशुद्धिरुक्ता विंशद्वर्षादूर्ध्वं [4]मुद्राः परमभयकराः क्रोधांशा अतिनीलादिदशक्रोधदेवीरूपत्वात् । एकविंशतिवर्षाद्या अष्टौ भूतांशाश्चर्च्चिकाद्यष्टदूतीरूपत्वात् । तत्र एकोनचत्वारिंशद् वर्षाद्या अष्टावसुरांशाः श्वानास्याद्यसुरीरूपत्वात् । षट्चत्वारिंशद्वर्षा यावत् भावनार्थम् । सेकार्थं षट्चतस्र एकादशवर्षाद्या एव समसुखफलदा यथासम्भवः । पुनरुक्तम्—

> मुद्रोक्ता भावनार्थं दिननिशिसमये नैव रागक्षयार्थं
> वाग्वज्रं तर्पणार्थं न खलु मदकरं मन्त्रिणामुक्तमेवम् ।
> सर्वाहारः सुखार्थं प्रतिदिनसमयेऽजीर्णहेतोर्न चोक्तं
> श्रीचर्यासिद्धिहेतोर्भ्रमण[5]मिह चितौ क्रीडनार्थं न रात्रौ ॥
>
> (का० त० २.१२३)

मुद्रया सेकश्च—

> श्रीप्रज्ञास्पर्शनं यत्प्रथममपि कुचे कुम्भसेकः स एव
> गुह्याद्गुह्याभिषेको भवति शशधरास्वादनालोक[6]नाभ्याम् ।
> प्रज्ञाज्ञानाभिषेके सकलजिनकुलैः शोधयित्वाङ्गवक्त्रै-
> र्मुद्रा शिष्याय देया [7]जिनपतिगुरुणा साक्षिणश्चात्र कृत्वा ॥
>
> (का० त० २.११९)

---

१. क. प्रथत । २. ग. व्याख्यानाम । ३. क. ख. सहजं । ४. क. मुद्रा । ५. मु. णमपि । ६. मु. नाड्यां । ७. मु. जिनमणि ।

तद्दोषोऽप्युक्तः—

त्रस्ता विभ्रान्त[1]चित्ता शठपरवशगा व्याधियुक्ता प्रसूता
क्रुद्धा स्तब्धाथ लोलाऽनृतकलहरता स्वाङ्गहोनाऽविशुद्धा।
एताः प्रज्ञाभिषेके सुनिपुणगुरुणा वर्जनीया नरेन्द्र
पूर्वोक्ता बुद्धभक्ता गुरुसमयधरा वन्दनीयाऽर्चनीयाः॥

(का० त० ३.१२१)

मुद्रायाश्चित्तशुद्ध्या पुण्यमप्युक्तम्—

या काचिद् वज्रपूजां ददति हि वनिता पुण्यहेतोस्त्रिशुद्ध्या
आचार्यायेन्दुवक्त्रा कुवलयनयना दिव्यगन्धानुलिप्ता।
यत्पुण्यं भूमिदाने गजतुरगरथानेककन्याप्रदाने
तस्यास्तत्सर्वपुण्यं भवति नरपते खस्थचन्द्रार्कसीम्नः॥ इति।

(का० त० ३.१२९)

द्विकल्पराजेऽप्युक्तम्—

न चर्या भोगतः प्रोक्ता या ख्याता भीमरूपिणी।
स्वचित्तप्रत्यवेक्षाय स्थिरं किं वा चलं मनः॥

(हे० त० २.२.२२.)

एवं विधमित्यादि। एवं शब्दाभिधेयं पूर्वोक्तमेव वज्रवरमुल्ला[2]लयन् विनेयसन्ताने प्रभास्वररश्मिस्फरणेन परार्थोपायं व्याख्या[3]य [4]स्वार्थं व्याचष्टे—**अथवेत्यादि**। [5]अन्त्यनिमित्तेन विश्वबिम्बगतचित्तेन। तदेवाह—**करुणे**ति शून्यता बिम्बे करुणा[6]रूपयोगीचित्तमज्जनात्। बोधिचित्तमुष्णीषमनुनयन्। हस्तक्रिया साम्यमस्योर्ध्वनयनाद् मिथ्यार्थः कामवितर्कादिस्तस्यावकाशो यथा न स्यात् प्राबन्धिकत्वान्मार्गस्य॥ २॥

भृकुटीत्यादिना नयनोपायसूचनम्। यैस्तु ललाट[7]तटबलिरित्युक्तम्, ते रहस्यानभिज्ञा एव। षडङ्गं वक्ष्यमाणं प्रत्याहारादि। **अन्तद्वयं** भावाभावौ। ताभ्यां रहितैरनयोरत्यन्तदुष्टत्वात्।

किञ्चित् कल्पपरिग्रहो ग्रह इव ग्रासाय बद्धग्रह-
स्तद्योगः सहसोज्झितश्चिरतरा पारप्रयाता प्रसूः॥

---

१. मु. चिन्ता। २. क. लासयन्। ३. ख. व्याख्या। ४. ग. स्वार्थ। ५. क. ख. अन्य। ६. ग. ज्ञेय। ७. ख. तत्।

इति वचनात् विचा[रा]नुभवं विपर्यासत्वात् । तात्पर्यमाह—अत्रापि विकल्पाप-[illegible]सुखैः[1] । **आदर्शादीति** समताप्रत्यवेक्षणाकृत्यानुष्ठानसुविशुद्धधर्मधातुज्ञानानि । [illegible] प्रभास्वरत्वेन प्रकृति[2]चित्तस्य प्रभास्वरेत्युक्तेः —

[3]जत वि चित्तहि विफ्फुरइ तत्त विणाह सरुअ ।
अण्ण तरङ्ग कि अण्ण जलु भवसम खसम सरुअ ॥

इति वचनाच्च । **समाधिस्थैरिति** मैत्रीमहासुखबलेनैव मारपराजयात् । बीभत्सं विकृतं क्रोधरूपम् । तदुक्तम्—

सेवायामादियोगो नभसि दशविधश्चक्रिणः क्रोधदृष्ट्या
दृष्ट्या विघ्नान्तकस्यामृतपथगतया चोपसाध्ये षडङ्गः ॥ इति ।
(का० त० ४.१२०)

अक्षयत्वं व्योमसमरसत्वाद्वीरबीभत्सयोः कृपाप्रज्ञार्थयोरैक्येन लोकोत्तरमहाराग-रूपः । तदाह [4]सरहः —

करुणा [5]रहिअ जो सुण्ण हि लग्गु
णउ सो पावइ उत्तिम [6]मग्गु ।
अहवा करुणा केवल भावइ
जन्मसहस्से[7] मोक्ख ण पावइ ॥
[8]सुण्ण करुण जइ जोउण सक्कइ
णउ भवे णउ णिव्वाणे थक्कइ ॥ ३ ॥

आकाश इत्यादि ।

विनाशयति दुर्दृष्टा शून्यता मन्दमेधसम् ।
दुर्गृहीतो यथा सर्पो विद्या वा दुष्प्रसाधिता ॥
(म० शा० २४.११)

इति वचनात् । भव्यानामेव प्रकाशयद्भिः । **स्वमित्यादि**—

नान्येन कथ्यते सहजं न[9] कस्मिन्नपि लभ्यते ।
आत्मना ज्ञायते पुण्याद् गुरुपर्वोपसेवया ॥
(हे० त० १.८.३६)

इत्युक्तेः । **महेत्यादि**, यदाह—

धूमादिनिमित्तेन प्राणायामेन मध्यवाहेन ।
विद्याव्रतेन वज्रपातेनैवोर्ध्वशुक्रेण ॥ इति ।

---

१. ख. वादकसुखैः । २. ग. श्चितस्य । ३. दो. को. पृ. १२८ । ४. दो. को. पृ. ४८ । ५. दो. को. छड्डि । ६. क. ख. ग. लग्नो । ७. ग. 'न' नास्ति । ८. क. जइ पुण वेण्ण, ख. ग. भजइ पुण वेण्ण । ९. दो. को. सहस्सहि ।

त्यक्तेत्यादि। त्यक्तं सकलुषचित्तत्वात् कर्म[1]मुद्रां कल्पितत्वाद् ज्ञानमुद्रां च त्यक्त्वा **भावयेद् दिव्यमुद्रामि**ति महतीं। **कूटस्थमि**ति नित्यां "उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा तथागतानां स्थितैवैषा धर्माणां धर्मता यदुत तथता" इति वचनात्। **अनुविद्धामि**ति तत्रान्तर्गतामुक्तां सैव महामुद्रा **तेन साधिते**ति तां बिना च्यवनात्। तदाह—

[2]रुअणे सअल वि जोहि णउ गाहइ
कुन्दुरु खणहि महासुह साहइ।
जिम तिसिओ मिअ-तिसिणें धावइ
मरइ सो सोसहि णभजलु कहिं पावइ॥

रुअणें भावनायां सर्वधर्मशून्यतां यो न गाहते समापत्तौ स किं महासुखं साधयति। यथा-"तृषितो मृगतृष्णां धावति स शुष्यति नभसि जलाभावाद्" इति। जगद्योगीशरीरं तां तां गतिं गच्छतीति कृत्वा लोकातिक्रान्ताः [3]...... विगमेन विवृत्त्योर्ध्वनयनात्॥४॥

हृष्टेत्यादि। कायादीनां बिन्दुवायुचित्तानामैक्यं मध्यमावाहे सत्त्वानामिमं मार्गमाख्यातुं मुदितैः। क्रोधो द्वेषवज्रोऽक्षोभ्यः शुद्धशून्यतां आकाशधातुरूपधातुत्वात्। तत्र तत् साक्षात्कारेण यदि वा विरमः पर्यन्तो यस्य तत्र क्रोधदृष्ट्या यतनात् स एव क्रोध उक्तः। उभयत्र विगत[4]शुद्धैरिति योज्यं बुद्धस्येव निर्विकल्पार्थसामर्थ्यात्। नाथ्यन्ते याच्यन्ते मुमुक्षुभिरिति **नाथै**र्योगीन्द्र[5]सेव्यैः एकीभूतैः कृपाप्रज्ञाभ्याम्। यदुक्तम्—

निःस्वभावपदे प्रज्ञा निःस्वभावे [6]गता कृपा।
एकीरूपा धिया सार्धं गगने गगनं यथा॥ इति।

प्रणतेति महासुखप्रह्वैस्तदेकरुचित्वात्॥५॥

प्रणम्येति। अच्युतत्वात् प्रबुद्धं सुखं साक्षात्कृत्वेत्यर्थः। **भग्ने**ति ललाटोद्गततोयं गुह्यगतज्ञानबिन्दौ जातं प्रभास्वरज्ञानं तद्यस्यास्ति तं। **तथे**ति उष्णीषाद् यथाऽगतं मण्यग्रं विवृत्या ततः पुनरुष्णीषं तथैव गतमित्यर्थः। **आगत** इत्यादि। विश्वं षट्[7]चक्रं व्याप्य निश्चलः स्थित इत्यर्थः। तदुक्तम्—

जिवेस्त न मारि हण सएल न आणि।
हणं विण मांसे भुसुकु धरणय इसि हण॥ इति।

---

१. ख. ग. मुद्रात्। २. दो. को. पृ. ३५-३६। ३. क. मच्छन्द ख. प्रच्छन्द, ग. सच्छन्द। ४. क. शुद्धि। ५. क. स वैः। ६. क. गत्वा। ७. ख. ग. चक्राणि।

कृतेत्यादि प्राणापानसंघट्टनमर्थः। यदुक्तम्—

वातैः संघट्टमानैस्तडिदनलशिखा द्रावयेन्मूर्ध्नि चन्द्रं
यो यो बिन्दुर्द्रुतोऽस्माद् गलहृदयगतो नाभिगुह्ये निरुद्धः।
बिन्दोः स्पन्दद्रवं यत् [1]कुलिशमणिगतं सन्निरुद्धं ध्वजाग्रे
प्रज्ञाज्ञानक्षणं तद् यदि ददति सुखं बिन्दुमालाऽच्युतेन॥ इति।
(का० त० ५.७५)

एतदेवाह—**इदमि**त्यादि॥ ६॥

मद्धितेति। एतत् प्रागुक्तं कस्यार्थे साध्यमित्याह— मम परेषां……………
कथं [2]ममशब्दवाच्यः, उच्यते—तथतारूपेणाभेदाद् यदि वा परार्थसेवनया बुद्धत्वमिष्ट-मिति। तत्प्रयोजनमपि [3]ममैव तदाह—"स्प(पु)ष्णाति षष्टयापो पोष्यन्तु स्वमेव ददाति [4]स" **अन्वि**त्यादि असत्सङ्कल्पहाला(ना)देव बुद्धत्वम्। यदाह—

प्रभास्वरं कल्पनया विमुक्तं प्रहीणरागादिमलावलेपम्।
ग्राह्यं न च ग्राहकमग्रसत्त्वास्तदेव निर्वाणवरं जगाद॥ इति।

महेति सुखेन व्यापनात्। यदुक्तम्—

सहज महातरुअ फलिअ उए तैलोअ।
खसम सहावें रे बाधा न मुक्तकोवीति॥

षोडशेति। कायानन्दकायपरमकायविरमकाय[5]सहजश्च। एवं वाचश्चित्तस्य [6]ज्ञानस्य चेति चतुश्चतुष्कैः षोडशानन्दाः। **प्रादेशिका** आत्मीयाः। [7]बिन्दूनां स्कन्धा-देश्च निरोधोऽनुपलम्भः सहजोदयानन्तरं सर्वदेवि(वी)त्वम्। तदुक्तम्—

स्वच्छः कायोऽणुनष्टः प्रभवति खसमो लक्षणाद्यैः प्रपूर्णः
स्वच्छं त्रैलोक्यमेवावरणविरहितं स्वप्नवद्भाति विश्वम्।
भाषाऽच्छिन्ना समन्तात् परहृदयगतानेकभाषान्तरेण
चित्तं सत्सौख्यपूर्णं न चलति [8]सहजालिङ्गितं सर्वकालम्॥
(का० त० ५.१६४)

इति सिद्धिलक्षणमुक्तम्। **अकारो** गुह्य(ह्ये) प्रज्ञा, हूँ महासुखे उपायः। अनयोरव-धूतीशुषिरेण समापत्तिः। एतद् द्वयं बद्धं यत्र स युगनद्धः। **यथे**त्यादि सम्बन्धनम्॥ ७॥

१. ग. कुलेश। २. क. सम। ३. ग. सैव। ४. ग. 'इत्याह' इत्यधिकम्।
५. क. ख. सहजकायश्च। ६. क. ज्ञानं चेति ७. ख. बिन्दु। ८. क. ख. सहज।

अज्ञेति। यथा पङ्कमग्नास्तत्रासक्ताश्चान्यं धृत्वा चोत्तरन्ति तथाऽज्ञानदर्शितं [1]त्रैलोक्यमविद्याऽसंगस्थानं भगवदाश्रयेण चोत्तीर्यते। **च्युतिदुःखमि**त्यादि व्यक्तम्। यदुक्तम्—

पापं रागविनाशतः प्रियतमाद्वेषो यतो जायते
द्वेषान्मोह [2]इतः स्ववज्रपतनाच्चित्तस्य मूर्च्छा सदा।
अन्यस्मिन् विषये प्रवृत्तिरखिलासत्खानपानदिके
चित्तं तेन विडम्बितं हृतसुखं षट्जन्मसु भ्राम्यति॥ इति।
(वि० प्र० १, पृ० ४)

प्रकृतीति वैमल्यविशुद्धितः प्रकृतिप्रभास्वरसाक्षात्कारः॥ ८॥

सहजेत्यादि। सम्बुद्धा विकसिता बुद्धिरस्यास्तीति। सर्वज्ञेयव्याप्तिरुक्ता। **सर्वे**त्यादिनाऽऽकाशयोग उक्तः। तदुक्तम्—"आकाशे धर्मोदये चित्तवज्रप्रवेशाद्" इति। **षडि**त्यादि। गुरूपदेशाद् महासुखं प्रविशतां श्वासानां तत्तेन शासनात्। यदाह—

यत्तु विषअ सअ जलहि जल।
तत्तु विसमरस होई॥ इति।

अत इति। अत एव कारणात्। तदुक्तम्—

नासाग्रे सर्षपान्ते चलति न चित्तं यस्य।
स गुरुवरो चलिते कुरु प्राणायामं तस्य॥ इति।

कायादि तत्त्वोपदेशाद्वा। यदुक्तम्—

फेनपिण्डोपमं रूपं वेदना बुद्बुदोपमा।
मरीचिसदृशी संज्ञा संस्काराः कदलीनिभाः॥
मायोपमं च विज्ञानमुक्तमादित्यबन्धुना॥ इति।

महेति। समोयन्ते साक्षात्क्रियन्ते इति। समय एव तत्त्वम्। रक्षणीयादीनां वा तत्त्वम्। **इन्द्रिये**तीन्द्रियाणां प्रभास्वरप्रसूतत्वात्तत्त्वेन वेति। यदाह—

दुर्गन्धाद्भुतभूतकोटिजलधिः पञ्चप्रपञ्चोर्मयः
स्कन्धाख्याः सह सम्भवन्ति विषमा विद्या[3]निलान्दोलनात्।
शान्तौ तस्य सहैव यान्ति विलयं येनैव दूरीकृतं
तैः पीतं जिनशासनामृतमिदं [4]भ्रष्टाः सुदूरं परैः॥ इति।

अतः परमार्थवेदित्वादेव परः॥ ९॥

भगवन्निति। व्याख्यातार्थत्वात्पुनर्नोच्यते। एवमन्यदपि ज्ञेयम्। **ज्ञानकायो** ज्ञानबिन्दुसमूहः। चतुर्थः सहजश्चतुश्चक्रे चतुर्बिन्दुधृक्। विवृत्यव्याघ्राद्या **गौ**रिति

---

१. ग. त्रिलोक्य। २. ग. इति। ३. ख. नाद्वलत, ग. दोलत्। ४. क. ख. स्रष्टाः।

(त्रिकूटोर्ध्वगमनमिति)। अनाहताधारः, क च ट त प स इति वक्ष्यमाण षडक्षरात्मक एवैरेकारनिष्पत्तेः। तस्य पतिर्वं वज्री। अ इ ऋ [१]उ ऌ इति पञ्चाक्षरो बिन्दुयोगान्महाशून्यः। एकारस्तु बिन्दुरहितः। संकेते[ने]ति कं सुखमलङ्करोतीति कमलम्। सुखावती, "सुखेन साधयेद् बोधिम्" इति। "सुखितस्य चित्तं समाधीयत" इति। "न विरागात् परं पापं पुण्यं न सुखतः परम्" इति। "सौख्येन संगृहीताः पञ्चानन्तर्यकारिणो येन" इति।

दुष्करैर्नियमैस्तीव्रैर्मूर्त्तिः शुष्यति दुःखिता।
दुःखाद् विक्षिप्यते चित्तं विक्षेपात् सिद्धिरन्यथा॥

इत्यादिवचनात्। अयमाशयः कामसुखक्षणिकानुक्तमध्यान्तौ हित्वा निष्प्रपञ्चचर्यया बोधिः साध्येत्येवं व्युत्पादनमस्य। हृदयविहारित्वादिति। मन इन्द्रियत्वेन हृदिस्थत्वं साक्षाद् भवतीत्यनादिस्थित एव निरावरणत्वे दृश्यः स्यात्। ...[२]गोचरो भवति न तूत्पद्यते। सर्वाकारान्तर्गतमिति शून्यतायाः सर्वगतत्वात्। सर्वरूपं शून्यतैव भवेद् भाव इत्यादि उक्तेः। आकाशवदकृत्रिमत्वेन योगिवेद्यं गुरूपदेशात्॥ १०॥

अर्थ्यते साध्यत इत्यर्थः। "एको भावः सर्वभावस्वभावः" इत्युक्तेरुदारार्थाम्। महेत्यादि। महामुद्रानुरागात्सञ्जातं निःस्पन्दतः सुखम्। "महाप्रज्ञाभिषिक्तः स यतो निस्पन्दतां गत" इति वचनात्। श्रावकादीति। यदाह—

महायानमभिज्ञानां श्रेयसा धन्वतैव हि।
[३]यद्भूतेवाध्वनष्टानां दूर[४]नाशानु शीघ्रता॥ इति।

त्र्यध्वेत्यादि। "उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा [५]तथागतानां स्थितैवैषा धर्माणां धर्मता तथता" इत्युक्तेः। आदीत्यानन्दादीनामपि सहजत्वापादनात्। रविणेति चण्डालीज्ञानसूर्येण नाभिपद्मादिविकाश(स)नात्। नाम्नोपलक्षितं सम्यक्ज्ञानं (गानं) नामसङ्गीतिः। कस्य नाम्नेत्याह —नामेत्यादि, व्यक्तम्॥ ११॥

येति। सहजरूपा वस्तुतोऽनुत्पन्नत्वात् प्रतिश्रुत्कवत्। एतेनेति। नामसङ्गीतिमन्त्रयानं देशितम्। ननु दीपङ्करादिग्रन्थे न विरोध इत्याह—भव्येति परमगम्भीरभव्यानामेव न सामान्येन॥ १२॥

मायाजालाभिसम्बोधिरुक्तलक्षणा उत्तरतन्त्रमन्त्रमहासुखज्ञानमेवाऽविकल्पेति गोचरस्यैवे[६]यत्ता स्यात् शेषं सुबोधम्। [७]अशेषं भावप्रथममज्ञानम्। [८]तच्च भावविकल्पवासनया स्यात्॥ १३–१६॥

॥ अध्येषणा॥

---

१. ख. ऌ उ। २. ख.ग. '... गोचरो ... तूत्पद्यते' नास्ति। ३. क. यद्भूते वा। ४. क. नाशान्। ५. क. 'तथागतानां' नास्ति। ६. क. वेयन्ता। ७. ख.ग. अश्लेषं। ८. क. तत्, ग. तव।

प्रतिवचनम्

यद्यद्यस्य प्रियं पूर्वं तत्तत्तस्य समाचरेत्।
न हि प्रतिहतः पात्रं सद्धर्मस्य [1]कदाचन ॥ इति।

प्रशंसापुरःसरं प्रतिवचनसङ्गीतिः। **अथेति** वा शकनं शाकः शक्तिर्भगस्तत्र भवः शाक्यो वंकारः। कायत्रयभेदाभावमननान्**मुनिः**। **वज्रधरो** वज्रसत्त्वः। **ऋगी** देवी, **अरल्लि**र्भगवान्। एतौ च लोकेश्वरमञ्जुश्रीरूपौ विज्ञेयौ। [2]तन्न विरुद्धं ना-[व]वितर्क्यं नाविचार्य भाषणम्। नाथश्च निःप्रपञ्चस्तत्कथं देशनादिकमित्याह—**सत्त्वे**त्यादि। तदाह—

सान्निध्यमात्रतस्तस्य पुंसश्चिन्तामणेरिव।
निश्चरन्ति यथाकामं क्व प्रादिभ्योऽपि देशना ॥ इति।

वक्ष्यते च—

शून्या कल्पितमायात्व [3]सत्यत्वेन विकल्पिताः।
तुर्याद्यवस्थाया भावा विवर्ज्जेया(वर्ज्या)स्तीर्थिके मते ॥

प्रज्ञाबुद्ध्या तु—

धर्माणां प्रविचयमन्तरेण नास्ति
क्लेशानां यत उपशान्तयेऽभ्युपायः।
क्लेशैश्च भ्रमति भवार्णवेऽत्र लोकः ॥

(अभि० को० १.३)

इति वचनात्। **ज्ञानकाया** ज्ञानबिन्दवः। **संवृतिज्ञानं** मायोपमभावबोधः। **परमार्थज्ञानं** सर्वधर्मानुपलम्भः। **अप्रतिष्ठे**त्यनासक्तिस्थितिः। **एकमि**त्यादिगाथाम् "एकपादतलाक्रान्त" (ना० सं० ९.४) व्याख्याने वक्ष्यति। **निर्णमये**त्यादि। "दृश्यते बिन्दुकश्च, तन्मध्ये बुद्धबिम्बं विषयविरहितानेकसंभोगकायम्" (का० त० ५.११५) इति वचनात्। महाबिन्दुमध्ये विश्वबिम्बं दृश्यते। विश्वबिम्बादित्यनन्तरोक्तात्। ज्ञानावधूतीं स्थिरीकृत्य कृष्णरेखाकारामित्यादि विशेषणम्। तदुक्तम्—

आकाशं [4]स्तब्धदृष्टया जलधररहितं[5] योगिनालोकनीयं
यावद्वै कृष्णरेखा स्फुरदमलकरा दृश्यते कालनाड्याम् ॥ इत्यादि।

(का० त० ५.११६)

---

१. म. शा. कथंचन। २. ग. मेतन्न। ३. ख. ग. सत्यद्वयेन। ४. क. ख. ग. तच्च।
५. ख. तः, ग. त।

प्रत्याहारे महामुद्रा आकाशं शून्यलक्षणं ।
नासिकाप्रदेशे च यत्रैवारोपितं मनः ॥
निमित्तान्ते तु या रेखा तस्यां बिम्बं चराचरम् । इत्युक्तेः ॥ १ ॥

चण्डालीज्योतिः प्रकाशं च सन्दर्श्य **संसारहेत्विति** ।

परमानन्दं भवं प्रोक्तं निर्वाणं च विरागतः ।
मध्यमानन्दमात्रम् ………………॥ (हे० त० १.८.३४)

इत्युक्तेः आनन्दादिरूपकाया । बिन्दूनां सहजे प्रवेश्य तद्रूपतापादनेन शोधकम् । **त्रैलोक्यमा**लोकादित्रयम् । तन्निराभासकारि स्वरूपं **मणीति** । जाग्रदादिविकल्पवासनान्निर्विकल्पं व्याचष्टेऽध्येषणानन्तरमित्यनेन । **वज्रे**(ज्जे)त्यादि । वज्राग्रमेव विकल्पकपाटम् । तदभ्यन्तरे चौरा जाग्रदाद्यवस्था मया प्राप्तास्तान्सर्व[1]मारान्दलयित्वा महासुखं लब्धमिति ॥ २ ॥

कायादीति । ललनादिनाडीत्रयम् । स्वयम्भवतीति स्वयम्भवाऽनाहतगिरा करणभूतया सहजमनुभूतवान् । **सकलेति** ।

आभासेन यदा मुक्तो वायुवाहनताङ्गतः ।
तदा तत्प्रकृताः सर्वा अस्तव्यस्ताः प्रवर्त्तयेत् ॥ इति ।

प्रपञ्चरहिता ततो निष्कलुषा प्रकृतिनिराभासीकरणात् ॥ ३ ॥

लौकिकेति । अहं भोक्ता एते भोगाः सुखदा इत्याद्यासङ्गे । लौकिकविद्यादर्शनमार्गहेया । तन्नाशे पापहेतुक्लेशनाशात् । यदाह—

कृत्वा दर्शनहेयानां क्लेशानां सर्वसंक्षयम् ।
ज्ञेयावरणहानाय भावनायां प्रयुज्यते ॥ इति ।
(महा० सू० १३.५)

लोकोत्तरसर्वशून्यताविकल्परूपो दृष्टान्तात्मा सहजस्तृतीयसेकः । प्रज्ञाज्ञानं तस्मादपि निरावरणश्चतुर्थः । शेषमुक्तार्थम् ॥ ४-६ ॥

॥ प्रतिवचनम् ॥

---

१. ग. मारं ।

षट्कुलावलोकनम्

षट्कुलचक्राणामेव देशनीयत्वात्तदवलोकनमाह– **शाक्येत्यादि**। कुलं गोत्रं धातुः। **सर्वेत्यादि**। बोधिद्वैतच्युतश्चित्तं शुक्रेण चक्राणां व्याप्तिः। तदुक्तम्—

जिम जले पाणिअ ढालिउ तेअ ण भुजाअ।
तिसु मण रअणारे समरस गअणें समाअ॥ इति।

वज्रकमलयोः कर्णिके गूढगोचरो यस्याक्षोभ्यस्य मन्त्री सुखं दीपनं [1]सहजस्य कुत आह–भासन(षण)इत्यपि पाठ इति। दीपनार्थोऽपि मन्त्रिधातुरित्यर्थः। **मण्डले-त्यादि**सूक्ष्मयोगेन चक्रं धारयति धर्मोदये स्फरणेन। **कायवागित्यादि**। नाभेरभ्यन्तरपुटे चतस्रो नाड्यो ज्ञानस्वभावाः। अन्यास्तु बहिश्चतुःषष्टिस्तदन्तर्द्वादश तदन्तरष्टौ कायवाक्चित्तचक्रं क्रमाद् [2]ज्ञायत इति लोकः। लोका कायादिज्ञानस्यागमस्य त्वात्मक्षये तज्ज्ञेयम्। **वितेति** शरीरजननाद्बीजबिन्दुः॥ १॥

लोकेत्यादि। लोकेन लोक्यते, **आलोकादय** इत्यादिना आलोकाभास तदुपलब्धिः। निर्गतं स्पन्दादनास्रवमर्थः। निःस्पन्दानन्दं शुक्रं यत्र कुलिशो विवृत्या नाभ्यादौ वैरोचनादि प्रागेव निस्पन्दादिना व्याख्यातम्। **तन्त्रे** देहे, **येति** प्रज्ञापूर्णिमान्ते षोडशी सा यस्यानन्ताकाशा[3]नन्ततया शिरसि स कुलिशेऽर्ध्ववज्रान्विते स षष्ठ इत्यर्थः। उक्तञ्च **वज्रगर्भे**—"इह वैरोचनो भूमिचक्रे नायकः, अक्षोभ्य आकाशे, अमिताभ उदके, रत्नसम्भवस्तेजसि, अमोघसिद्धिर्वायौ, वज्रसत्त्वो ज्ञानचक्रे नायक इति।" संवृति-परमार्थो सुखशून्यताऽद्वयज्ञानम्॥ २॥

॥ [षट्] कुलावलोकनम्॥

---

१. ग. सहजस्या। २. ख. ग. 'ज्ञायत''''''' ज्ञेयम्' नास्ति। ३. क. ख. नन्तया।

मायाजालाभिसम्बोधिक्रमः

अविद्या हेतुनिर्मितत्वान्मायाजालस्येव त्रैलोक्यस्याभिसम्बोधिरनुपलब्धिरस्ति "कुमुते ! [अस्ति] तच्चित्तं यच्चित्तमचित्तम्" (अ० सा०, पृ० ३) प्रकृतिश्चित्तस्य प्रभास्वरा।

आइ ण अन्त ण मज्झ [1]तहिं णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परममहासुह णउ पर णउ अप्पाण॥ इत्युक्तेः।
(दो० को० पृ० २१)

इमाह(म्)गाथेत्यादि। 'ॐ वज्रतीक्ष्णाय ते नम' इत्यादि मन्त्राः। मन्त्रनीतौ अद्वयं महासुखरूपम्। यदाह—

साकारा च निराकृतिर्भगवती प्रज्ञा तयालिङ्गित
उत्पादव्ययवर्जितोऽक्षरसुखो हास्यादिसौख्योज्झितः।
बुद्धानां जनकस्त्रिकायसहितस्त्रै[2]काल्यसंवेदकः
सर्वज्ञः परमादिबुद्धभगवान् वन्दे तमेवाद्वयम्॥ इति।
(वि० प्र० १, पृ० १)

"न प्रज्ञा नाप्युपायः सहजतनुरियम्" (का० त० ५ ८९) इति च। पारमितानीतावद्वयं स्वाभाविकः [3]कायः। तदुक्तम्—

सर्वाकारां विशुद्धिं ये धर्माः प्राप्ता निरास्रवाः।
स्वाभाविको मुनेः कायस्तेषां प्रकृतिलक्षणः॥ इति।
(अभि० अ० ८.१)

विशुद्धि प्राप्ता ये धर्मा बोधिपक्षादयस्तेषां या प्रकृतिः शून्यता नैरात्म्यमित्यर्थः। अत इति। गाथाया फलभूतस्येति तत्त्वं "तत्त्वस्य साधनं नान्यद्" इति कृत्वा। तत्त्वं च चतुःकोटिरहितम्। तदुक्तम्—

विकल्पितं यत्तिमिरप्रकाशात् केशादिरूपं वितथं तदेव।
येनात्मना [4]पश्यति शुद्धदृष्टिस्त[थैव त]त्तत्त्वमिहाप्यवेहि॥ इति।

तैमिरिकदृष्टं केशाद्यतैमिरिको यथा पश्यति तत्तत्त्वमिति। अन्यस्येत्यात्मात्मीया-[दि]दुर्भावस्य विपर्यस्तत्त्वेन। यदाह—

---

१. मु० 'तहिं' नास्ति। २. ग. कल्प। ३. क. कायं। ४. ख. पश्यन्ति।

दूरादालोकितं रूपमासन्नैर्दृश्यते स्फुटम्।
मरीचिर्यदि वारि स्यादासन्नैः किं न दृश्यते॥
(रत्ना० १.५२)

मरीचिस्तोयसदृशी यथा नाम्भो न चार्थतः।
स्कन्धास्तथात्मसदृशा नात्मानो नापि तेऽर्थतः॥ इति।
(रत्ना० १.५४)

भावग्रहोऽतस्मिस्तद्ग्रहाद् भ्रमः। [1]भ्रान्तेश्च संसारहेतुत्वम्। यदाह—

अहङ्कारं तावत्तदनु ममकारस्तदुभय–
प्रसूतो रागादिस्तदहितमते[2]र्द्वेषदहनः।
ततः शेषः क्लेशस्तदुदयिनः कर्मविसराद्
विसारी संसारः [3]शरणरहितो दारुणपरः॥ इति।

अनुत्पादरूपमिति। यदुक्तम् "अनुत्पादस्तत्त्वं मतिरपि नयेभ्यः प्रभवति" इति। **मन्त्रनयात्मक** इति यानयोरनुत्पादं प्रत्यविशेषात्। तथाहि—**प्रज्ञापारमितायामुक्तम्**— "आकाशे स योगमापत्स्यते, यः प्रज्ञापारमितायाम्" इत्यादि। अत्रापि "आकाशासक्तचित्तैः" (का० त० ५.११५) इत्यादि। हेतुरनुत्पादः फलञ्च। यादृशो हेतुस्तादृशं फलं न हि क्रोद्रवात् शाल्यङ्कुरः सम्भवति। तदुच्यते– **न [4]सत्ये**त्यादि। स्वयमेव व्याख्यास्यति। मध्यान्तराले भवा मध्यमकधीः। प्रतिपन्मार्गो बोधिः क्षयानुत्पादयो[5]र्ज्ञानं मलानाम्। तन्निमित्तं मृग्यत इति मार्गः। सिद्धं वक्ष्यमाणयुक्त्या गम्यतेऽनेनेति यानं महच्च तच्छ्रावकादेर्यानात्। तेन व्यवहरन्ति। तेषां [6]सा भावेन प्रतिष्ठिता। यदाह—

विसआसत्ति म बन्ध करु अरे वढ़ सरहें वुत्त।
मीण पअङ्गम करि भमर पेक्खह हरिणह [7]जुत्त॥
(दो० को० पृ० ३१)

मीनो रसे जले, पतङ्गो रूपे वह्नौ, करी स्पर्शे करिण्यां, भ्रमरो गन्धे पद्मे, हरिणयूथं शब्दे गीते सदा सङ्गाद् बध्यते। नापि भावोच्छेदे मिथ्यादृष्टौ सर्वविकटविपाकं सुचरितमपि पुद्गलस्य मिथ्यादृष्टेरित्युक्तेः—

---

१. ग. भ्रान्तश्च। २. ख. विष। ३. ग. शरणहितो। ४. क. सस्येत्यादि। ५. क. ख. ज्ञाने। ६. ख. स्व। ७. क. ख. जह्न।

[1]विनाशयति दुर्दृष्टा शून्यता मन्दमेधसम्।
[2]दुर्गृहीतो यथा सर्पो विद्या वा दुष्प्रसाधिता ॥ इति वचनात्।
(म० शा० २४.११)

किञ्चित् कल्पपरिग्रहो ग्रह इव ग्रासाय बद्धग्रह-
स्तत्त्यागः सहसोज्झितश्चिरतरा पारप्रयाता प्रसूः।

इत्थं सत्पथविप्लवे दिशति यश्चित्तव्यतीतं नभो
बिम्बं व्योमदयात्मनं(कं) वरगुरुं वन्दे सदा सर्वदा ॥

वारणं प्रागपुण्यस्य मध्ये वारणमात्मनः ।
सर्वस्य वारणं पश्चाद् यो जानीते स बुद्धिमान् ॥
(च० श० ८.१५)

ससांख्यौलूक्यनिर्ग्रन्थपुद्गलस्कन्धवादिनम् ।
पृच्छ [3]लोकं यदि वदत्यस्तिनास्तिव्यतिक्रमम् ॥
(रत्ना० १.६१)

इमां हि निर्वाणपुरैकवर्त्मनीं
तथागतादित्यवचो हि भास्वतीः (तीम्)।
निरात्मतामार्यसहस्रवाहितां
न मन्दचक्षुर्विवृतामपीक्षते ॥

सा न सत्या वस्तु भवतु एकत्वमन्यत्वम्वा नातिक्रामतीति न्यायादेकमनेकं वा स्यात्। यन्नैकं नाप्यनेकं तन्न सत्यं[4] सर्वार्थे वासत्। एकानेकवियुक्तञ्च विश्वम्…। यतः—

षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता ॥ (वि० १२)

सांशत्वेऽध ऊर्ध्वं चतुर्दिग् भावेनैकं वस्तु न सिध्यति। यावत् परमाणुनिरंशत्वे च—

षण्णां समानदेशत्वात् पिण्डः स्यादणुमात्रकः ॥ (वि० १२)
गिरिरप्यणुमात्रः स्यादन्योन्यप्रवेशेऽणूनाम् ॥ इति।

---

१. ग. विरागयति। २. मु. सर्पो यथा दुर्गहीतो। ३. क. ख. ते के। ४. ख. ग. 'यथा खपुष्पं' इत्यधिकम्।

एकैका एव च बह्वोऽनेके [1]भण्यन्ते। एका[2]सिद्धौ तेऽप्यसिद्धा इति **न सत्या। नासत्या** स्फुरद्रूपत्वात्। "बाधाशतसहस्रेऽपि स्फुरद्रूपं क्व [3]गच्छतु" यदनुभूयते तन्नासत् यथाकाशं सर्वथाऽसतः शशविषाणादेरनुभवाभावात्, अनुभूयते चेयं स्वसंवेदनमयत्वादस्याः। न च **तदुभयी** सत्यासत्यरूपा प्रत्येकपक्षभाविदोषोपहतत्वात्। **नाप्यनुभयी** प्रथमद्वितीयपक्षोक्त[4]युक्तेः। तदाह—

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः॥ इति।

सदसत्सदस[5]च्चेति यस्य पक्षो न विद्यते।
उपालम्भश्चिरेणापि तस्य [6]वक्तुं न शक्यते॥ इति ॥

(च० श० १६.२५)

सांख्ये मध्यमे दिगम्बरे लोकायते कोटिचतुष्कमेतत्क्रमाज्ज्ञेयम्। उक्तश्चतुःपक्षविपक्षविषयत्वात्। सा धीश्चतुष्कोटिर्मुक्ता यज्ज्ञानं यद्विषयं तत्तदाकारबोधिः। यथा नीलज्ञानं नीलाकारं चतुष्कोटिविनिर्मुक्तविषया च मध्यमकधीः। उल्लेखमिदं सत्यताभिनिवेश इयं तु ज्ञातजग[7]न्मायात्वान्निरुल्लेखा, नत्वेवं दानादिप्रवृत्तिर्न स्याद्दद्वैतशिखरारोहेण प्रवृत्ति[8]निवृत्तय इत्युक्तेः। दानादीनपि तथाऽधिगच्छतीति चेत्, अधिगच्छतु। दानादिवृत्तिः कथमित्युच्यते। देयदायकप्रतिग्राहकोपलम्भे [9]सत्येव सम्भवात्। अत आह—**सर्वाकृतिवरमयी**ति। यदाह—

सर्वाकारवरोपेता शून्यता हेतुरादिता।
अनालम्बनकृपा पश्चाज्जगदर्थकरी फलम्॥

अयमाशयः कार्यमोहौ न वार्यते यतो दानादिपुण्यसंभारमन्तरेण ज्ञानसम्भारो न स्यात्तदभावेन बोधिरतः प्रयोगकाले ज्ञातमिथ्यात्वान्न पापे सज्जति पुण्ये तु प्रवर्त्तते बोधाविव शून्यत्वेऽपि। पुण्यसम्भारस्य फलं च सम्भोगनिर्माणकायौ। ज्ञानस्य धर्मकायः सहजश्च। अतो दानादिपञ्चकं मध्यमकधिया शोध्यमन्यथा दानादेः पारमितात्वमेव न स्यात्। नापि [10]महामुद्रासहकारित्रा[11] (त्रं)। यदाह—

---

१. क. भण्यन्ति। २. ग, सिद्धै। ३. क. ख. गचछन्तु। ४. ख. युक्तः, ग. युक्तैः। ५. क. ग. द्वेति। ६. क. ख. ग. कर्तुं। ७. ग. त्सास्त्र। ८. ग. निवृत्त। ९. क. सत्यमेव। १०. ख. समुद्रा। ११. ग. अपि।

एकेन तत् साक्षिमता यथेष्टं देशं समस्तान्धगणः सुखेन।
आकृष्यते तद्वदिहा[1]क्षिहीनानादाय धीर्याति गुणाञ्जिनत्वम्॥ इति।

(मध्य० ६.२)

एतदेवाह- **अयमि**त्यादिना। **सदसदादी**ति। यत्सत्तन्नोत्पद्यते, यथाकाशम्, उत्पद्यन्ते च दानादयः। यदसत्तन्नोत्पद्यते यथा कूर्मरोम, उत्पद्यन्ते च दानादय इति। यदुत्पत्तिमत्तत्कारणाधीनमकारणस्याकाशादेरनुत्पत्तिमत्त्वात्। कारणं च बीजादिनिरुद्ध-श्चेद्धेतुश्चिरनिरुद्धमपि स्यात्। अनिरुद्धचेत्तदवस्थे बीजेऽङ्कुरः स्यान्न चास्ति, तदाह—

न निरुद्धान्नानिरुद्धाद्बीजादङ्कुरसम्भवः॥ इति।

अहेतुका इत्यप्ययुक्तमतिप्रसंगात्, सर्वं सर्वत्र स्याद्। **तथाही**त्यादि। येषां च हेतुं विना स्वरूपेण न भावस्तेषामभावोऽपि निर्हेतुको न युक्तो भावोच्छेदत्वाद् अभावस्य, अतः न भावा नाप्यभावा दानादय नात्य(प्य)नेन मायोपमाः संवृतिसत्यरूपा इत्युक्तम्। यदाह—

मोहः स्वभावावरणाद्धिसंवृतिः
सत्यं तयाख्याति यदेव कृत्रिमम्।
जगाद तत्संवृतिसत्यमित्यसौ
मुनिः पदार्थं कृतकञ्च संवृतिम्॥ इति।

एतेनैतदुक्तम्—त्रैलोक्यमायाजा[2]लस्या[भिसम्बोधिः] सूचितेति। तस्माद्दानादयः। तत्फलं च मायाद्दोहा (देहो) दिव्यपञ्चकामबुद्धक्षेत्र[3]सुवर्णादिता च विशिष्टा रागादयस्तत्फलं च देहो विषयभाजनलोकश्चाविशिष्टः सर्व एवाप्रतिष्ठिताः। [4]मायेवेति दृढाधार्यस्य सस्त (तः) न बाधां कुरुते तस्य। [5]उपरते भवनिर्वृतिर्बुद्धेर्भवति। सभाजनमद्वयसिद्धिरित्यनुशंसः। ततो भावादिविकल्पोऽभूतपरिकल्प एव। यदाह—

अभूतपरिकल्पोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते।
शून्यता विद्यते त्वत्र तस्यामपि स विद्यते॥ इति।

(म० वि० १.२)

स्थितमित्यादिना प्रतिज्ञां निगमयति। **इदानीमि**त्यादिना द्वितीयाङ्गमाह। **अध ऊर्ध्वदेव्योरि**ति भूचरीखेचर्योः। **आदिस्वरा**ऽकारस्तज्जा। सुविशुद्धरूपाऽसेचन-

---

१. क. स्थि। २. ख. ग. जालस्यात्तत्र ब्याति साध्वधिः, क. तत् व्यतिमाध्वनिः। ३. ग. सुवर्ग। ४. ग. मायेष्विति। ५. ग. उपरनते।

कर्मूर्तिः। **धर्मधातुः** शून्यता। सर्वधर्मा बोधिपाक्षिकास्तत्स्वभावत्वात्। आर्या[1]दीति गौर्यायाः। पृथिव्या महासूर्यमण्डवर्च्चसा समन्तप्रभा, अमितप्रभा महावज्रप्रभास्वरा। गगनप्रभा गगनवत् सुप्रतिष्ठिता, वज्रप्रभा [2]सरो''' नना प्रभातिसेकप्रतिवृता। पद्मप्रभा स्वभावशुद्धधर्मनिर्मला। कर्मप्रभा बुद्धकर्मकरा, अनुपमा निःपरिग्रहा। निरुपमा सर्वोपमाप्रतिवेद्यभूता। प्रज्ञा[3]......... सर्वज्ञता महाप्रभास्वरा। "प्रत्यात्मवेद्या योगिज्ञानप्रपूरिकेति"। इति पुक्कस्याद्या[4] विषयदेव्यो बाह्यगौर्याद्याः। पञ्चदशात्मकनैरात्म्यामण्डलस्थानां सर्वासामेव मध्यमरूपत्वान्निरुल्लेख्या निष्प्रपञ्च-देवतायोगेन सत्त्वानामभूतविकल्पोल्लेखच्छेदिकाः। तृतीयमर्थमाह—**परी**त्यादि। **तदेवे**ति चित्तम्। तदाह—

सर्वस्वं सर्वबुद्धानां स्वचित्तं धर्मसंग्रहः।
धर्मनैरात्म्ययोगेन मारयेद् म्रियते स्वयम्॥ इति।

आदिस्वरेति। यदुक्तम्—

हृदि तिष्ठति [5]यच्चित्तं रक्तमीषच्च पीतकम्।
आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तिता॥ इति।

अनुत्पादादिना विश्वबिम्बे समरसं स्वचित्तमत्तयोरस्थितेश्चतुःकोटिमुक्तम्। यदुक्तम्—

प्रज्ञाज्ञानञ्च [6]चित्तं भवति दशविधस्तस्य चाभास एव
सेकोऽस्मिन्मज्जनं यद्विमलशशिनिभा[7]दर्शबिम्बोपमा वै।
तस्मिन् निर्वाणसौख्याच्युतमपि सहजं चाक्षरं वै चतुर्थं
यस्यैतद्वद्ध्वक्त्रं हृदय[8]मुखगतं वर्तते श्रीगुरुः सः॥

(का० त० ५.११४)

प्रज्ञेति ग्राहकचित्तम्। **ज्ञानमि**ति ग्राह्य आदर्शाभासो दशविधो धूमादिः। तत्र ग्राह्ये ग्राहकस्य प्रवेशोऽत्र षडङ्गप्रत्याहारादिचतुर्भिर्मज्जनमुच्यते। तस्मात्मज्जनाद् निर्वाणसुखादच्युतं सहजमप्यक्षरं चतुर्थम्। इदं ज्ञानं वक्त्रं यस्याचार्यस्य हृदयगतं स्वानुभवम्। मुखगतं शिष्यप्रतिपादनाय श्रीवज्रधरः स इति। स्फरणं तदेव। **सर्वे**त्यादि स्थितः स्फुरितपरिवारैर्वेष्टितश्चित्तराजो नृत्यतीति। **आगन्तुकमि**ति। यदाह—

चित्तस्य यासौ प्रकृतिः प्रभास्वरा न जातु सा द्यौरिव याति विक्रियाम्।
आगन्तुकैरागमनादिभिर्ह्यसावुपैति संक्लेशमभूतकल्पजैः॥ इति।

---

१. क. दीप्ति। २. क. स्वरो, ख. सनो। ३. क. मातृका त्रुटितः। ४. क. या। ५. ख. यश्चित्तं। ६. ग. स्वचित्तं। ७. क. ख. दश। ८. मु. सुख।

अवशिष्टं व्याचष्टे **जिन** इत्यादि। एवं पारमितामन्त्रनीत्योः —

एकार्थत्वेऽप्यसंमोहाद्बहूपायाददुष्करात्।
तीक्ष्णेन्द्रियाधिकाराच्च मन्त्रनीतिः प्रशस्यते ॥ १ ॥
(अ० व० सं०, पृ० २१)

पीठेत्यादि। द्वादशस्थानं यच्छरीरं तद्व्यापिनी [1]बोधिचित्तकल्प(ला)सूचकान्यकारादीनि। द्वादशैवाक्षराणि द्वादशकलामहासुखाकारत्वादासामेव। **गुह्ये**त्यादि। प्रतिभूम्यष्टादशशतश्वासक्षयात्। **अथवे**ति कायादित्वादानन्दस्य ह्रस्वत्वाच्च ह्रस्वस्वराः। **द्विरूपतये**ति दीर्घत्वात्। उभयस्वरात्मत्वं गुणाक्षरत्वात्। **त्रिवज्राभिन्नमि**ति तृतीयसेकाभिन्नचतुर्थम्। ॐ इत्यादि।

ब्रह्मा कायो हरो वाग् हरिरपि च मनः प्राणिनां ते त्रिवेदाः।
ॐकारस्ते त्रिवर्णाः [2]शशिरविहुतभुक् ते त्रिनाड्यो गुणाश्च ॥
(का० त० ४.२०२)

इत्युक्तेः। कायाद्ये तत्र। ॐकारार्थः। त्रिवर्णा अ उ म इति। **च्यवने**ति। यदाह—

येनाक्षरं न लब्धमक्षरसौख्यं समीहते दुःखम्।
सर्वो मृगयति तोयं तृषितोऽपि न चातको [3]भूस्थम् ॥ इति।
(वि० प्र० १, पृ० ५)

इत्थमिति। निरावरणत्वेन त्रिलोकं व्याप्य सहजस्योदयात्। संभोगादि तत्तद्व्रूपेण प्रथनात्। नाभ्यादि चक्रमध्यस्थत्वात्। **स्थितो हृदी**ति मूलम्। **यत्काय[4]मि**-त्यादिगाथात्रयेण सहजसंभोगनिर्माणकायत्रयलक्षणमुक्तम्। निर्माणकायलक्षणमुक्तं निर्माणस्यानन्तत्वाद् नाना वर्णोदिता। कायाद्युपलम्भलयः प्रभास्वरमहायोगे। यदाह—

[5]चित्त मरइ जहिं पवण तहिं लीना होई।
सअ संवेअण तत्त फल कास कहि बज्जाई ॥ इति ॥ २–३ ॥

॥ मायाजालाभिसम्बोधिः ॥

---

१. ग. बोधिचित्तं। २. ग. शनि। ३. ख. भू स्थानं। ४. क. मिति। ५. द्र० दो० को० पृ० ४।

वज्रधातुमण्डलम्

स्कन्धाद्याकारत्वात् **सर्वाकारः**, "सर्वतः पाणिपादाद्यं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्" इति कृत्वा **सर्वेन्द्रियः**। निरोधितप्राणत्वेनाक्षरबिन्दुरूपो मायाधरो यो बोधिचित्तवज्रस्तस्य स्फरणविश्वबिम्बरूपनिरावरणस्कन्धादिचक्रं वज्रधातुमण्डलद्वारेणाह। **तदुक्तम्—**

[1]कालोऽक्षरसुखज्ञानमुपायः करुणात्मकः।
ज्ञेयाकारं जगच्चक्रं श्रीप्रज्ञा शून्यतात्मकम्॥ इति।
(वि० प्र० १, पृ० ११)

अथेत्यादि। गाथास्तिस्र इत्यन्त उपोद्घातोऽयं यदर्थः कृतः सेयं नामसङ्गीतिः कथ्यते। इत्याह—**तद्यथा** योगिचित्तस्य विश्वबिम्बलयान्**महामुद्राद्वैधरूप**त्वं सहजस्यानुभवस्**सहजज्ञानम्**। तदुपायमाह—**मणी**त्यादि। [1]**अकारेणे**त्यादिना भिन्नबुद्धि[2]निरासात्। पर्यायितामाह। तदुक्तम्—

एतत्प्रभास्वरं रम्यं धर्मतत्त्वं यदुच्यते।
प्रज्ञापारमिता सैव सर्वमारप्रभञ्जनी॥ इति।

तत इति। तया महाद्वययोगात्। अत एवाह-**प्रज्ञे**त्यादि। **स चे**त्यादिना गुह्यशुषिरादिगतानाहतनाद उच्यते। यदुक्तमा**दिबुद्धे—**

अकारसंज्ञया प्रोक्तो धर्मधातुर्महाक्षरः।
वज्रयोर्निर्जिनेन्द्राणां कायवाक्चित्तकारणम्॥ इति।

निर्माणसंभोगधर्मकायहेतुरित्यर्थः स्कन्धानां धातुभिरिन्द्रियाणां विषयैः सहैक्यं मण्डले। तत्तद्देव[3]तायै "चण्डालीज्वलिता नाभौ" इत्याद्युक्तेः। **ज्वलन्तमि**त्याद्युक्तार्थम्। **हृदे**ति। गुह्यवरटकादौ चक्रहृदि। **सकले**त्यादि। यदुक्तम्—

या सर्वज्ञतया नयत्युपशमं शान्तैषिणः श्रावकान्
या मार्गज्ञतया जगद्धितकृतां लोकार्थसंपादिका।
सर्वाकारमिदं वदन्ति मुनयो विश्वं [4]यया संगता-
स्तस्यै श्रावकबोधिसत्त्वगणिनो बुद्धस्य मात्रे नमः॥ इति॥१॥
(अभि० अ० १.१)

---

१. ख. 'अकारेणेत्यादि' नास्ति। २. ग. निरासा। ३. क. ख. तान्य। ४. क. ख तया।

प्रभेत्यादि। प्रभास्वरोदये दशमण्डलसञ्चारः प्रकृतिधर्मो न वहति। तत्राकाशाद्यं सदा वामे भूम्याद्यं दक्षिणे क्रमादिति पञ्चविज्ञानस्कन्धादिमण्डलानि पञ्चपृथिव्यादि-धातुरूपाणि आह, क्रमस्तु—

मूले पृथ्व्यम्बु वामे प्रवहति हुतभुग्दक्षिणे मूर्ध्नि वायु-
र्मध्ये व्योमद्वयोश्च प्रवहति विशु(षु)वं नासरन्ध्रे क्रमेण॥ इति।
(का० त० २.४७)

वामोऽत्र नासावंशपार्श्वं सर्वेषामुत्तरो मेरुरित्युक्तेः। लयक्रमस्तु—

पृथ्वी तोयं प्रयाति ज्वलनमपि जलं पावको मारुतञ्च
वायुः शून्यं च शून्यं व्रजति दशविधं वै [1]निमित्तं निमित्तम्।
सर्वाकारं प्रयात्यक्षरपरमसुखानाहतं ज्ञानकायं
ज्ञानादृद्धिश्च सिद्धिर्भवति नरपते जन्मनोहैव पुंसाम्॥ इति।
(का० त० ५.१२२)

वज्रधरो युगनद्धकायः। निर्विकल्प उत्पादादिविकल्पाभावात्। [2]मध्या(ध्यमा) प्रवेशरूपत्वान्नपुंसककायः। [3]तेषामित्यभिलाषानां मञ्जुश्रीः सर्वसत्त्वरुतधर्मदेशक-हेतुकत्वाद् हेतुरुग्रः मध्यमासुखसंवेदकत्वादेवोपलम्भोऽन्याश्रयः सुप्रबन्धेन। विश्वस्यैव प्रभास्वरत्वबोधाद् वाचामपि। तद्धेतुमाह—परमाक्षरहकारमहासुखस्य साक्षात्कारात्॥ २॥

महेति उत्तरपदस्थो महाशब्दः प्रज्ञावादी। महती महा यस्य स स्थित्या उपसर्जनमस्येत्युत्तरपदे ह्रस्वत्वं पूर्वपदे **"आन्महतः समानाधिकरणे"** इत्यात्वम्। **महे**त्यादि। सत्त्वानुरागान्महारागः। **तथाविध** इति। रागप्रतिपक्षत्वाद् भूमिपूरितत्वादिति द्वादशभूमीश्वरत्वेन, कामजयाद् [4]**वज्रानङ्गः**। **अत एवे**ति सत्त्वानुरागात्। तदुक्तम्—

परमाक्षरसुखापूर्णो भूमिभिः परिपूरितः।
महारागो महासत्त्वः सर्वसत्त्वरतिङ्करः॥ इति।

अक्षोभ्य इति परमा[5]न्तेऽसंक्षोभात्। अत **एवाचलः**। तदुक्तम्—

बोधौ व्यवस्थितः सत्त्वो बोधिसत्त्वस्ततोऽचलः।
द्वेषादिक्लेशसंघानां महाद्वेषो महारिपुः॥ इति॥ ३॥

---

१. ग. 'निमित्तं' नास्ति। २. ख. ग. सन्ध्या। ३. अमृ. सर्वेषामभिलापानां। ४. ख. 'वज्रानङ्गः' नास्ति। ५. ख. ग. ते संक्षो०।

मोहातिक्रान्तत्वादिति। महाशून्यमतिक्रम्य प्रभास्वरप्रवेशात्। **मूढे**त्यचित्तताज्ञप्त्या परमान्ते स्निग्धस्य च्युतेर्महाक्रोध उष्णीषदृष्टिः। **काये**त्यादि। [1]बिन्दुश्वासाश्वा (?) चित्तानां [2]मध्यायामेकरसीकृते। तदुक्तम्—

समयं चन्द्रामृतं गुह्यमच्युतिस्तस्य भक्षणम्।
समग्रशेषोऽनया वृत्या मूढधीर्मोहसूदनः॥ इत्युक्तेः॥ ४॥

लोकोत्तरसुखलाभाद् महालोभः। परमाक्षरदेशेन सत्त्वानामपि लोभसूदनात्। यदुक्तम्—

एकत्वं सर्ववज्राणां प्रज्ञाकायाक्षरैः सह।
[3]महाक्रोधो महाशक्रमाराणां क्रोधरूपिणाम्॥ इति।

महाक्षरसुखोपायात् सत्त्वार्थं न त्यजेत् क्वचित्।
सत्त्वान्मोक्तुं महालोभः [4]क्षरलोभः निसू(षू)दनः॥
संसारसुखमनित्यमप्राप्तमपीह ते महामूढाः।
साम्राज्यसुखं प्राप्तं विद्वान् [5]संत्यजति मोक्षाय॥ इति।

'महाकाम' (५.५) इत्यत आरभ्य 'महामायेन्द्रजालिक' (५८) इत्यन्तेन षोडशानन्दव्याख्या। निर्माणसंभोगधर्मसुखकायात्मका आनन्दादयश्चत्वारः। तत्र **जाग्रदि**त्यादि। जाग्रदादिवत् सहजं न भवति। ज्ञानस्थानं नाभिचक्रं चित्तवाक्कायस्थानानि हृत्कण्ठललाटाख्यानि एष्वपि न स्थितम्। महामुद्रया सहैव परं सहजं स्यात्। **भावे**त्यादि। भावस्याप्यनुपलम्भरूपतापादनात्[6]। भावाभावयोर्विवेकविरहितो घनानन्दमयः प्रबोधस्य ज्ञानस्य महिमा [7]यत्र स्वयं राजते। किंभूतः व्योमान्तरव्यापको ज्ञेयावरणरूपभावग्रामस्यानुपलम्भात्। अत एव नीलपीतादिनानाकारे विश्वबिम्बगते [8]स्वविसारणी या निर्मलता तयाऽऽत्मादर्शे स्फुरन्मण्डल इव सर्वगतलोकोत्तरसुखालयः स[9] सहजानन्द[10]श्चतुर्थः एकनाम्ना ज्ञेयः। **ऊर्णे**त्यादिना। आनन्दभेदमाह—सुखविष[11]यानुभवान्महदस्ति यत्तरलमित्यानन्दः हृत्पद्ममेव सद्मगृहं तदभ्यन्तरे [12]गुप्तमास्तीर्णं यदनल्पविकल्पा एव तल्पं शय्या तत्र वलितमावर्जितञ्चित्त(त्र)मत एवालिङ्गनचुम्बनादिव्यग्रतया विचित्रम्। ग्राह्यरहितत्वादु**त्तमम**िति परम उक्तः। नाभ्यब्जस्य ग्रहणे एका निष्ठा निश्चयो यस्य चित्तस्य तद्ग्राहकत्वस्याप्यभावाद**खिल**[13]**व्यासङ्गभङ्गेनोज्ज्वल-**

---

१. ख. ग. बिन्दुश्चासाव। २. क. सन्ध्या। ३. क. ग. क्रोधे। ४. ख. अक्षर। ५. ग. स त्यजति। ६. ग. याजनात्। ७. ख. द्यत्रजे। ८. ग. ष्वविसा। ९. ग. 'स' नास्ति। १०. क. ख. चतुर्थमेक। ११. ख. ग. यार्थं। १२. अमृ. क्लप्त। १३. ग. लसङ्ग।

मिति विरमः। वज्राग्रसंगात्सुभगं [1]कमनीयं सुखं भुक्तं मयेति विकलपस्याप्यभावान्न द्वैतसुखमहान्तरमादिकर्मकस्य प्रज्ञाज्ञान[2]सेके **प्रसरतीत्**यादि व्यक्तम्। मण्यग्रान्तःशिखरं शान्तमभ्यालम्बनत्यागात्। अभ्रान्तमिव पद्मस्थं मनः किमपि सहजप्रकारं तनोति॥ ५-८॥

बाह्यशब्दादीति। विश्वबिम्बेऽपि शब्दादिरस्तीति बाह्यमुक्तम्। अनभिनिवेशो [3]लाभ्यादृष्टलोकधर्मेषु च॥ ९॥

अन्यथेति। उपाय[4]प्रणिध्यादिक्रमात्, अन्यथा महाबलो महोपाय इति सुखसंयुक्तजगदिति। यदाह—"अन्धाः पश्यन्ति रूपाणि शृण्वन्ति वधिरा" इत्यादिना। अथ नगरप्रवेश इति। **मारे**त्यादि। मृत्युर्मारादिर्माराावरणानि क्लेशज्ञेया समापत्त्याख्यानि क्रोधैर्जिनैः। [5]**लवमात्रमि**ति।

न बोधिर्निःक्लेशः स्थितगतिरवाप्नोति परमा
सुदीर्णक्लेशश्च स्वहितमपि कर्तुं न लभते।
इति प्राप्तं बोधिं स्थिरविहितवीर्येण भवता
न निर्देशाः क्लेशास्तृणलवलघुत्वं तु गमिताः॥

इति न्यायात्। **चतुर्विंशती**ति शिरःशिखासव्यकर्णशिरःपृष्ठेषु पीठके, वामकर्णे भ्रुवोर्मध्ये चक्षुःस्कन्धोपपीठके। कक्षयोःस्तनयोः क्षेत्रे, नाभिनासिकयोरुप[क्षेत्रे], मुखकण्ठयोश्छन्दोहे, हृदि मेढ्रे तदन्तिके, मेलापके लिङ्गुदे, उपमेलोरुजंघयोः, श्मशानाङ्गुल्यङ्घ्रिपृष्ठे, तदुपाङ्गुष्ठजानुनोः। क्रमाद् गत्यागती। **चिन्ते**त्यादि। लोके मन्मथस्य दशावस्थाः प्राण्यङ्गे या उक्तास्ता एव वज्रिणो **दशधूमादिनिमित्तानी**ति। को जिनः कश्च कामस्तयोर्द्वीन्द्रियसुखबिन्दुरूपेणैव स्थितेः। विंशतिशिखरमिवाज्ञानं यत्रासौ तस्य भावः। **महारसविद्धे**ति। अयमाशयः।

यथा लोहैकदेशेऽपि संस्थितो हि महारसः।
लोहं तीव्राग्निसंतप्तं वेधयेदासमन्ततः॥
तथैवेह प्रवेशेऽपि संस्थितं सुखमक्षरम्।
चित्तं कामाग्निसंतप्तं वेदयेदा[6]समन्ततः॥ इति।

चतुर्थध्यानं स्मृत्युपेक्षाविशुद्धी द्वे अदुःखासुखा वेदना। चतुरङ्गञ्चतुर्थं च तदेकाग्रतया सहेति॥ १०-१४॥

॥ **बोधिचित्तस्फरणः** ॥

---

१. ख. क्रम। २. क. ख. मेके। ३. क. लास्य। ४. क. ख. प्रणिधा। ५. अमृ. बल। ६. क. समन्तात्।

सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्

सुविशुद्धमाह—**वैरोचने**त्यादि। महामुनिलक्षणमप्युक्तम्—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः [1]स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ इति।
(गीता २.५६)

मन्त्रतत्त्वं महासुखमयबोधिचित्तम्। वागेव वज्रं तस्य साधकं श्वासनिरोधकमर्थः। **ज्ञानत्रयमा**लोक आलोकाभास आलोकोपलब्धिश्च। **चित्तयाते(मात्रे)** स्वाधिष्ठाने मायामय[2]त्वे। बाह्यजापं प्रत्याहारं वज्रजापभावनान्तरायकत्वात्। मन्त्रार्थो [3]मन्त्रसाध्यो भगवान् वज्रधरात्मा स्वयं यतस्तस्मादन्तरायिकं कथं जपे। ... स्यमादिना **सुख**रूपतैव पूर्णावस्था। अन्य[द्] भावान्तरमुत्पत्तिक्रमादि "गुरुप्रसादीकृतमन्तरालमनपवन" इत्यादि। **समाधी**त्यादि। प्रज्ञोपायात्मकाक्षरसुखाज्ज्ञानबिम्बे एकक्षणाभिसम्बोधित्वनिष्पत्तिः। **प्रणिधि**रष्टम्यां भुवि। **दशपारमिता**नामिति। नाथादेव पारमितानामात्मलाभात्। नाधाराधेयलक्षणमिति तद्विकल्पाभावात् ॥ १-२ ॥

दानात् **प्रमुदित**त्वादि(तादि)। दानाद्यैकैकपारमितापूरणे प्रमुदिताद्यैकैकभूमिलाभः। वज्रोपमसमाधिना समन्तप्रभा जिनभूमिः। **ते चे**ति वायुश्चित्तं संबोधिचित्तं रक्तं मज्जास्थिस्नायुमांसमिन्द्रियाणि। **चर्मे**ति दशधातवः। एषां परमाक्षरसिद्धरसेन। यतो माया देहः स्याद् "आश्रयस्य परावृत्तौ विभुत्वं लभ्यते परम्" इत्युक्तेः। **आकाशे**त्यादि। व्योम्ना समरसानि चित्तानि येषां तैरर्धोन्मीलितलोचनैरवधूतीगतश्वासैः। **शून्याद्धूमो मरीचिः खद्योतः प्रदीप** इति। निशायोगेन चत्वारि पश्यति। ततो निरभ्रगगने दिवायोगेन ज्वालाचन्द्रार्कक्रृष्णरत्नविद्युन्नीलचन्द्रभासान् षट् इति दशनिमित्तानि। **तन्मध्ये** महाबिन्दुमध्ये बुद्धबिम्बं [4]सर्वाकारघटपटादिबिम्बदर्शनं बाह्यविषयशून्यमविकल्पानेकसंभोगकायात्मकबिम्बदर्शनमेकक्षणे सर्वभासप्रतिभासो मायावत्। **प्रत्ये**त्यादि। योगिशरीरे विषयविषयिसम्बन्धेन विज्ञानस्याप्रवृत्तिः। **आत्मे**त्यादि। भगवति ग्राह[5]कचित्ते स्वात्मनि स्वप्रतिभासे विश्वबिम्बे ग्राह्यचित्ते विलयङ्गते प्राणानामधिपे वाहके स्वामिनि सति। प्रवेशनिर्गमश्वासगणे च शान्ते जीवानिले प्राणवायौ हृदि नियमि(न्त्रि)तो यो ज्योतिःप्रसरः प्रभा-

---

१. ग. स्थिर। २. क. ते। ३. ख. ग. स तु। ४. ख. 'सर्वा..... ....बिम्ब' नास्ति। ५. ग. कश्चि।

स्वरतगो ध्यानाङ्गेन प्रबन्धवृत्तिर्योगिनामयं ग्राहकचित्तस्य स्वाङ्गादेव निर्गतो [1]तत्राज्ञानतमाः त्रैलोक्यमा[2]क्रमति त्र्यध्वत्रिधातुव्याप्ता विश्वबिम्बोदयात्। **प्रज्ञाज्ञा-नञ्चे**त्यादि वक्ष्यति चात्रापि। **अपू(र्व्वे)वें**त्यादि। अपूर्वोऽयं वसन्त आगत हे शबर सुख[3]वर। [4]त्वत्प्रसादादित्याकूतम्। यतोऽम्बरं **फुल्लमि**ति फलति च। पुष्पादि-कञ्च धूमादीत्येव। योगी च तानि [5]दृष्ट्वाऽपि नोत्तोलयति नापि स्पृशति निर्विकल्प-समाधिस्थत्वात्। **विरहे** तु समाधिव्युत्थानाददर्शने क्रीडां करोति सविकल्पो मोक्ष-निमित्तदर्शनात्। पवननिरोधमाह—**अनिमिषे**त्यादि। संहृत्य सर्वतश्चिन्तास्तिमित-मानसोऽनिमिषनयनो गुरूपदिष्टे दृष्टिमाधाय चित्तं निरुणद्धि ततः पवनो बध्यते मध्यमायां प्रविष्टः। **कल्पे**त्यादि। विकल्पनिरोधे बुद्धिर्नस्य(श्य)तीति **चन्द्रकीर्तिपाद** प्रभृतयः। तान्निषेधयति। **कुधिय**स्ते यतोऽस्मादेव विकल्पः क्षयादुदारधियामनिर्व-चनीयं विश्वबिम्बमुदेति नभसोऽप्यधिकव्यापित्वेऽपि व्योम्नो चित्तविरहात्। **प्रज्ञे**ति बिम्बालोकनम्। वितर्कविचारप्रीतिसुखचित्तैकाग्रतापञ्चाङ्गध्यानं प्रथमम् ॥२॥

दशमण्डलान्याक्रियन्ते मध्यान्तराकृ[6]ष्यन्ते येन स तथा। **बिन्दावि**ति नाभ्यादि-चक्रस्थे। **सहजे**त्यादि। दश कामावस्थाः परमाक्षरज्ञानसाधनसामर्थ्याद्बिलानि यस्य। परमाक्षरसाधनत्वञ्च धूमादीनां सहजचण्डालीद्योतनसामर्थ्यात्। चण्डाल्या आलोकनमालोकस्तनौ यश्चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात्। **प्रज्ञे**ति कर्माङ्गिना। **ज्ञानबिम्बे** विश्वबिम्बे। **एवञ्चे**त्यादि [7]चतुष्कः(र्थः) षडङ्गयोगसाध्य एव। **अस्ये**त्यादि प्रत्याहाराङ्गम्। **पिहिते**त्यादि ध्यानाङ्गम्। **निरोधवज्रे**ति वायुकल्पनिरोध एव वज्रं तत्प्राप्ते चित्ते निमित्तस्य धूमादेरुदयः स्यात्। रत्नालोकः कृष्णरत्नवदाभासः रत्नप्रदीपोऽदाहकत्वाद्दीप [8]एव चन्द्रालोकश्चन्द्राभासः सूर्यप्रदीपः सूर्याभासो दीप्तः(पः) सर्वाकारदर्शी विश्वबिम्बं प्रभास्वरम्। प्रत्ययार्थो योगी प्रत्यात्मवेद्यः। **ज्ञेयानी**त्यादि। यथा धूमो वह्निरव्यभिचारिलिङ्गम्, तथा महामुद्रासिद्धेर्धूमादिः। तदुक्तम्—"शून्ये एकाग्रं मनः कृत्वा दिनमेकं परीक्षयेद्" इति वचनात्। षरमादिबुद्धे वज्रपदं महामुद्राभावनामार्गो धूमादिकः प्रकटो न गुरुपारम्पर्यक्रमागतः। उक्तञ्च—

सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्षयेत्।
यदि न स्यात् प्रत्ययस्तु तदा तन्मे मृषावचः॥

न चान्यद् मन्त्रादिसाधनं धूमादिनिमित्तं विहाय यदि नैकेन स्यात्। आदि निमित्तं चैतत्। **करोती**त्यादि। स्तब्धता निमेषाभावात् शून्यताकर्त्री तद्

---

१. क. ख. ततो। २. ग. क्रामति। ३. ग. वरं। ४. क. 'त्वत्' नास्ति। ५. क. दृष्ट्वा। ६. क. ष्यते। ७. ग. चतुष्टः। ८. क. एवं।

योगिनां स्तैमित्यं प्रपञ्चाभावात्। **विमले**त्यादि। यस्मिन् विमलनभसि मेघाद्यावरण-[1]रहिते निमित्ते[2]ऽस्तगलावलम्बितया व्यापारिते लोचनार्धाऽर्द्धोन्मीलिते **स्फुरदुरुक-रुणया**ऽऽर्द्रीत्स रसादाशयाच्चितात्। आश्चर्यं विकल्पकचित्तम[3]श्नाति निःस्वभावी-करोतीति तस्मात्। अनेन संप्रदाय उक्तः। उक्तञ्चाष्टाक्षरेण न किञ्चिदपि चिन्तयेदित्युपदेशः।

> उत्पाद्य च मनोमूलं कृत्वा शून्येऽथ **घर्षणम्**।
> अविद्या तिमिरार्थानामञ्जनं हि [4]यतः परः॥
> मनोमूलमालम्बत अनालम्बा प्रशाम्यति॥ इत्युक्तेः।

घर्षणं शून्ये मीलनम्। तदुक्तम्—

> [5]सव्वरुअ तहिं खसम करिज्जइ।
> खसम सहावें [6]मण वि धरिज्जइ॥
> सो वि [7]मणु तहि अमणु करिज्जइ।
> सहज सहावें सो परु रज्जई॥
> (दो० को०, पृ० ३२)

अनेन सर्वाकारनिराकारो हेतुरुक्तः। **सदसदि**त्यादि। चतुष्कोटिरहितः। अकस्माद् विकल्पहेतुमनपेक्ष्य दुर्गच्छन्नखिलधूमादिनिमित्तानुगतः स्वानुभवो जायत इति शेषः। शून्यतायाः[8]सम्बन्धी। **आदावि**त्यादि आदिरा[9]श्रयः अन्त आलम्बनं ताभ्यां मुक्तः [10]मध्यमात्रं मध्यमामाश्रितः। तत्र [11]स्थिरः क्रमात्तन्मध्यमात्रामपि यो वर्ज्जयेदस्य ज्योतिर्दर्शनिमित्तानि स्युः। **इहे**त्यादि। [12]अन्तरालावगमो महागुरुप्रसादेन पुण्यज्ञानवतामेव गोत्रवतां स्यात्। स च **मध्यमात्र**शब्देनोक्तः। अयं ह्यवगमो योगीश्वराणां **वज्रगीतौ चर्यादौ** संवृतेर्भवस्य निर्वाणपद उच्यते। तदेवाह—**मूढा** इत्यादि। हे मोहपुरुषाः सति मुमुक्षुत्वेऽन्तरालकुलक्षणं निरूपयत। यदि कदाचिज्जानीथ तदायं मोहजालो विलोप्यते। **पट(ढ)** इत्यादि। प्रथमं यदि आयासो विक्षेपभूमिस्त्रिजगदालम्बनं विशुद्धः शून्यतया तदा निरूपयतः क्रमाद् दृष्टिर्निरुद्धा भविष्यति निरन्तरं पश्यतामेव। **अच्छ** इत्यादि। आस्तां किं बहुवर्णितेन। धर्मस्य प्रामाण्यं यत्तदर्धोद्घाटितलोचनो भूत्वा दृष्टिविश्रामक्षणे जानीहि स्वयमेव। **उ** इत्यादि। उदितगगनमध्ये अद्भुतं पश्य हे **भुसुकु**। शून्यस्वरूपं **भुसुकु** फुल्लितमनुपमपुष्पं

---

१ क. ख. रहितो। २. ग. ऽस्मदा। ३, क. ख. नोति। ४. ग. मतः। ५. क. ख. ग. सब्वभाव। ६. क. ख. ग. चीअ। ७. क. ख. ग. चीअ अचीअ। ८. क. ख. सम्बन्ध। ९. ग. राश्रयः। १०. क. 'मध्यमात्रं' नास्ति। ११. ख. स्थितः। १२. ख. ग. अन्तरावगमो।

नृह्णामकुसुममनर्घमूल्यं [1]एतत्पुष्पं धूममरीच्यादिनानावर्णं तच्च पुष्पितं शून्य एवारण्ये। **अम्बरे**ति। हे मातरम्बरं पुष्पितं अहो गम्भीरमप्रतिष्ठानं यत् [2]प्रमादादेवम्। **चित्ते**त्यादि। चित्तस्याचित्तत्वेऽज्ञानरजनी [3]प्रभाता। ततः **शान्तिपादो** दीपनिमि[4]त्तं प्रज्वाल्य दर्शनादिमार्गमामुखयति। **उ इ** [5]**अ** इत्यादि। रात्रिशेषयामे **भुसुकु** तारोदेति। तत्राज्ञानरजनी[6]शेषे खद्योतोऽन्यप्रस्तारेत्युक्तः। खद्योतश्चेदुदितः **शान्ति**र्भणति रात्रौ शेषप्रहरो वर्त्तते प्रभातप्रायमित्यर्थः। **पुनरमी**त्या(**पुणिमे**त्या)दि। निमित्तरूपपूर्णिमा-चन्द्र उदितो यदा चित्तराजो निर्मलीकृतस्तदा। आश्चर्यमनाहतः। कं सुखं रुणद्धीति करुणा। डमरुर्ध्वनति। **आर्यदेवो** निरालम्बो राजति। **वामे**ति। वामे सव्ये च ललना रसनेऽपि न स्थः भणति **कृष्णपादो**ऽन्तराले न प्रागुक्तेन मार्ग इति। अनुभवस्य ज्ञानस्य बोधिरत्नम्। स्वस्य संवेदनं सुष्ठु गभीरमेतत्। यतो मुच्यते नागरः प्राज्ञ एव। मूढस्तु बध्यत एव। फुल्लित्वा पञ्च निमित्तपुष्पाणि नीलानि तत्रैव। **अ ए** निरालम्बे दत्तमर्पितं चित्तं महाफलम्। **तथे**ति। किमेतत् कृत[7]सद्भूतं यच्चन्द्रसूर्यौ च द्वौ दीपौ ज्वलतः। इति हसति **शान्तिस्तुष्टः**। अत्रार्थे स्वयं स एव साक्षी। आकाशं कर्तृनिमित्तानि प्रसूतं दृष्ट्वा। पुनः गम्भीरधर्मश्रुतिमात्रपरितुष्टो यः स मूढः। यतो निश्यन्धकारे निमित्तं किमपि तेन न दृष्टम्। गगनशिरसि यदा धूमादि पुष्यति **शान्ति**र्भणति तदेव परं भ्रमः त्रुट्यति। **अन्ते**त्यादि। अन्तराले पूर्वोक्ते मनः पवननयनानि समकालं यदि निपुणो [8]योजयति तदाऽवश्यमुत्पद्यन्ते। जिनगुणा एव रत्नानि। एतदेव दशदिक् त्र्यध्वबुद्धप्रवचनरहस्यम्। **विविहे**ति। विविधविकल्पवर्जितं यदि चित्तं स्यादन्तराले च नयनं कृतं स्यात्तदा धूमादिदशविधो मार्गः स्फुटं प्रतिभाति। **णिअ** इति। निजमात्मी[9]यं मनः संकल्पालम्बनरहितं यदि स्यादर्धोद्घाटितलोचनसहितम्। एवं कुर्वतो यदा मध्य-मायां विशति वातस्तदा वज्रानलधूम उत्तिष्ठतीत्यादि प्रवचनादसंशयमयं मानो भावनीयः॥ ४॥

एतेनेति। धूमादि विश्वबिम्बस्तेनादावेव योगिनो निर्विकल्प एव मार्गः। तदुक्तम्—"षडङ्गे धूमादिमार्गो बिम्बनिष्पत्तिरक्षरक्षणलाभश्चादिनिमित्तम्" इति। **महारागे**त्यादि। प्रज्ञोपायाद्वयरागसुखेन स्कन्धादिसेवनं मध्यम्। तदुक्तम्—"पर-माक्षरक्षणैरष्टादशशतैरादिभूमिलाभः। पञ्चाभिज्ञा अदृष्टायाः शून्यताया दर्शनं लौकिकसिद्धिप्राप्तिर्मध्यनिमित्तम्" इति। **महे**त्यादि। [10]तथतात्मकत्वेन शून्यता अच्युत-बिन्दुत्वेन करुणा। ततः प्रज्ञोपायात्मकेनाक्षरणसुखवशाद् ज्ञानबिम्बे समाधिरिति

---

१. क. 'एतत् पुष्पं' नास्ति। २. ग प्रसादा। ३. क. ख. प्रभावा ४. ग. त्त ५. क. ए। ६. क. 'शेषे' नास्ति, ख. शेष। ७. क. संग्रह। ८. क. योज्यति। ९. क. य। १०. ग. तथात्मक०।

समाध्यङ्गमुक्तम्। यदाह—"बुद्धत्वं वज्रधरत्वमेकविंशतिसहस्रैः षट्शताधिकैः परमाक्षरक्षणैर्द्वादशभूमिलाभाद् महामुद्रासिद्धिरन्तनिमित्तम्" इति। **अविपरीतसुखमिति**। च्युतिसुखेन यथा [1]**भूतस्पर्शात्**। **धूमादिति**। अनास्रवत्वात्। **पञ्चेत्यादि**। विश्वस्यैव प्रभास्वरत्वेन प्रथनाद्। यदाह—

सौख्येन संगृहीताः पञ्चानन्तर्यकारिणो येन।
अभिषेकेण जिनेन्द्रैः प्रज्ञोपायात्मके तन्त्रे॥ इति।

अन्येति। अन्यवाचः सम्भिन्नप्रलापत्वात्। **एतेनेति**। आद्यन्तमध्यनिर्विकल्पत्वेन। अत एवोक्तम्—"आदिमध्यान्तकल्याणीं नामसङ्गीतिमुत्तमाम्" (ना० सं० १.११) इति। **यथेत्यादि**। उत्पत्तिक्रमभावना विकल्पभावना। मध्ये प्रभास्वरामुखीकाराय। अन्ते फलभूता एतदादिर्कमिकापेक्षयोक्तम्। उत्पन्नक्रमश्चात्राधिमात्रापेक्षः। [2]**हेतुनेति**। "तत्त्वस्य साधनं नान्यद्" इत्युक्तेः। शालिबीजादेव तदङ्कुरः। **विकल्पेति**। यथा रागचित्ताद् द्वेषचित्तम्। **निर्विकल्पेति**। यथा धूमादनन्तरं मरीचिः। **यथेत्यादि**। कर्पासबीजात् कर्पासवृक्षः, ततः कर्पासफलम्। स्वहेतु प्रतीत्य जन्म तत्॥ ५॥

सुखेति। **सुखं** शून्यता **शुक्रमुपायः**। तदित्यद्वयरूपस्य [3]विश्वस्य विनेये। **भूतमिति**। तत्त्वं तदनुभवस्थानकोटिस्थितोऽस्थानयोगेन। **नैरात्म्यमिति**। धर्मपुद्गलयोर्निराभासतानन्तरं बिम्बमेव **सिंह**स्तस्मिन्दृष्टेऽनाहतध्वनिर्जायते। [4]**भीत्यं** सिद्धान्तः। अस्थिरत्वं निर्विषयत्वेनामूलत्वात्। **वादिन** इति। परचित्तगतप्रपञ्चा एव वाच्याः॥ ६॥

महेत्यादि। यदुक्तम्—

[5]स्कन्ध भूअ आअतण इन्दी।
सहज सहावें सअल [6]विवन्दी॥ इति।
(दो० को०, पृ० १)

अव्याहतेति। निरोधितप्राणत्वादच्युतसुखत्वेन। **यथैवेति**। आनन्दाद्यनुभूय। **त्रैधातुकेति** कायवाक्चित्तम्। **मनोजवा** सिद्धिरिति शेषः। तथागतश्चासौ मनोजवश्चेति कर्मधारयः। **रागादीत्यानन्दादित्रयम्**। **अविद्यादीति**।

---

१. क. ग. भूतास्पर्शात्। २. क. ख. हेतुफलेति। ३. ख. विश्वविनेये। ४. अमृभियं। ५. मु. कन्ध। ६. क. ख. ग. विविन्दी।

पूर्वक्लेशदशाविद्यासंस्काराः पूर्वकर्मणः।
सन्धिस्कन्धास्तु विज्ञानं नामरूपमतः परम्॥
प्राक् षडायतनोत्पादात् तत् पूर्वत्रिकसंगमात्।
स्पर्शः प्राक् सुखदुःखादिकारणज्ञानशक्तितः॥
वित्तिः प्राग् मैथुनात् तृष्णाभोगमैथुनरागिणः॥
उपादानं तु भोगानां प्राप्तयो(ये) परि[1]धावतः॥
स भविष्यद्भवफलं कुरुते कर्मतद्भवः।

पुनर्जातिजरामरणञ्च। एतैश्चाङ्गैः—

छादनाद्रोपणाच्चैव नयनात्संपरिग्रहात्।
पूरणात् त्रिपरिच्छेदादुपभोगाच्च [2]कर्षणात्॥
निब्रन्धनादाभिमुख्याद् दुःखनात् क्लिश्यते जगत्॥ इति।
(म० वि० १.११-१२)

सहजोदयेऽविद्यानिरोधात्संस्कारनिरोधो यावज्जातिनिरोधाज्जरामरणनिरोध इति। वज्रमणी रत्नम्। प्रत्याहारेण शून्यतालम्बनाद् विकल्पजयः। प्राणायामेन वायुजयः। **षट्**स्वित्युष्णीषादिषु। चतुरङ्गानि सेवोपसाधनमहासाधनानि। षडङ्गानि प्रत्याहारादीन्येव च(ब)लानि तैर्विजयी॥ ७॥

गण्यते संख्यायत इति गणस्तं वज्राग्रनिरोधितो बिन्दुर्विवृत्त्या व्याप्नोति। आचार्यः सविकल्पानामपि निर्विकल्पसहजतापादनात्। पञ्चस्कन्धधात्वायतनानां वैरोचनजिनादिरूपाणां सुखेनाप्यायनात्। अत उक्तम्—'ॐ सर्वतथागतानुरागण वज्रस्वभावात्मकोऽहम्' इति। तथागतानां विद्याः पृथिव्यादिरूपा लोचनाद्या गणा रागाद्यशीतिप्रकृतयो वा। बोधिचित्तस्यैवोपायत्वात् स्वामित्वञ्च। **तत्त्वदिति**[3]। विनेयवर्जनार्थमृद्धया नानारूपसंदर्शकत्वात्। **प्रभ[ा]वो**ऽभिज्ञादिः। अनुभावो महासुखस्य। प्राणादीनां [4]सुखेन मज्जनकरः सहज एव। यदुक्तम्—

सहजें णिच्चल ये ण किअ
समरस णिअमण राअ।
सिद्धो सो पुण त क्खणे
णो जरा मरण विभाअ॥ इति।

धन्धतादीति। परमोज्ज्वलपटुस्ववेदनत्वादज्ञानसंशयमिथ्याज्ञानादीनामनेयः। नयोऽध्यक्षधूमादिमार्गः॥ ८॥

---

१. ग. धातवः। २. ख. ग. कर्म। ३. ख. 'साधन' इत्यधिकम्। ४. ग. सुखे निम०।

अर्थप्रतिसंविदिति। वाङ्मात्रेण परेषामर्थप्रतिलम्भनात्। **शब्दप्रतिसंविदि**ति। अनाहतध्वनिवेदनात्। **धर्मप्रतिसंविदि**ति। प्रागम्भो घटितो घनेन नितराम्भो[1]विलीनो भवेदम्भो रूपमये(पै)ति। [2]नैव विविधो मध्येऽपि वर्षोपलः। तत्तादृक्प्रकृति-प्रभास्वरमयम्ता(मा)द्यन्तकोटिद्वयमध्येऽपि स्फुरितप्रभास्वरमयस्त्रैलोक्यमालोक्य-तामित्यादि। नालोकबोधनाद् वाचः श्वासवायोर्नियमनात् पतिः। प्राणायामादि-रेवाभ्युदयहेतुरिति प्रतिभानात्**प्रतिभानप्रतिसंवित्**। **अनन्ते**त्यनन्तसत्त्वबोधनात्। संवृतिसत्याश्रितत्वात् सत्यवाक्। "मायैव संवृतेः सत्यम्" इति वचनात्। मायादेहस्य शुद्धिः शून्यता सैव हेतुः परमार्थसत्यम्। "[3]तत्त्वस्य साधनं नान्यद्" इत्युक्तेः सत्यवादो। **चतुःसहजे**ति। कायसहजो वाक्चित्तज्ञानसहजः स चाविकल्पत्वेन सर्वभावानुपलम्भरूपत्वात् **शून्यताऽभिन्नः**। शाताद्वैतत्वेन **करुणाऽभिन्नः** ॥ ९ ॥

चतुःशतेत्यादि। प्रतिभूमिमष्टादशशतश्वासनिरोधादष्टमीभूमिरचला। **क्लेश-वशादि**ति। करुणावशात्तु संसरन्त्येव। यदाह—

वत्तु (? बुद्धं) प्रथमतो वन्दे त्वां महाकरुणामथः (थ)।
ययैव मयि दोषज्ञस्त्वं संसारे धृतश्चिरम्॥ इति।

खड्ग इवेति। यथा वीरकराद्च्युतोऽसिः। शक्रः शरीरे स्फरति। प्रत्येके जिनाद्याः प्रज्ञाबिन्दुरूपाय(द्य)त्वादासां नायकः। **येभ्य** इति। षट्चक्रशुषिरेभ्यो महासुखोदये विकल्पक्लेशदुःखानि नश्यन्ति, तेषु यातो गतः। **महाभूतानां** पृथिव्यप्तेजो-वाय्वाख्यानाम्। पञ्चमहाभूतबीजं महासुखबोधिचित्तमुपादाय साम्प्रा(मग्र्या)जायते द्वीन्द्रियस्पर्शात् कठिना पृथिवी। बोधिचित्तद्रवो जलम्। घर्षणात्तेजोद्भूतवहः संजायते गगनान्नाडोशुषिरात्समीरणः सुखमाकाशं एभिः पञ्चभिर्महाभूतैः परिपूर्णा सकलस्य सुरासुरादेरुत्पत्तिर्भवति। रे मूर्ख एतच्च शून्यं विद्धि यतः सुखादाकाशरूपाद्बीजं ततो भूतानि। तैर्देहिन इति बीजं यस्य नूनं तस्य प्ररोहः सत्यतः। कुतः **हेवज्रे** च [4]बोलो वज्रं कक्कोलः पद्मम्। तयोर्योगो मीलनं तेन स्पर्शस्ततः काठिन्यधर्मिणी पृथिवी जायते। ततो बोधिचित्तद्रवाकारादब्धातुजन्म। द्वीन्द्रियघर्षणात्तेजः। गमनाद्वायुरुक्तः। सत्सुख-माकाशमिति। पञ्चभिर्मिलितैः शरीरं स्यात्॥ १०॥

विकल्पेति। चित्तं क्लिश्यन्ति बाधन्ते इति विकल्परूपान् **क्लेशानरीनि**त्यर्थः। **बोधी**त्यादि। दृष्टान्तदार्ष्टान्तिक[5]मुखेन वक्तुमशक्यं यत्तत्त्वमुखं तद्बोधिचित्तप्रयोगे-णोत्पादितं येन शास्त्रा तस्य भावः। तेन शास्तुः परिसमाप्तार्थत्वाद् भवस्वरूपपरिज्ञानाद्

---

१. ग. लीनो। २. ग. सैव। ३. क. ख. तत्त्वं तस्य। ४. ग. बोल।
५. क. ख. सुखेन।

कामास्रवः क्षीणः। च्युति[1]सुखं तुर्या तदतिक्रमान्नैःस्वाभसंकाशाद् [2]द्विधा दृष्ट्या कामास्रवः क्षीणः [3]चतुर्थानुभवादवेत्य[4]प्रमादेन सत्कायादिदृष्ट्यास्रवः। **यस्येति**। वज्रिणो यतो वा लोकस्य। **पञ्चेत्यादि**। क्लेशारिनिषूदनाज्जलूषा संबोधिलक्ष्मीः। कुतः कस्यैते जगदुद्धृतिप्रणिधयः सिध्यन्ति बोधिं विना। तद्बोधिचित्तं प्रयोगेणोत्पादितं येन। शास्ता प्रभास्वरेण प्राकृतस्य शोधितत्वात्। सत्त्वानुरागस्तूपादेय एव। मण्यग्रादुष्णीषं यावद् व्याप्य स्थिते विषयान्तरे चित्तस्याप्रचारादनभिभवनम्। **द्वीन्द्रियेति**। "महामुद्रैकयोगेन सिद्धिं याति तदक्षरम्" इति वचनात्। **पञ्चेत्यादि**। अनास्रवसुखप्राप्त्याऽऽयत्यां सुखलाभी। **अच्युतेति**। श्रावकादिवत् [5]प्राप्तफलाद[6]भ्रंशात्। **सहजेति**। कायाकर्मण्यता कायोपप्लवः। चन्द्राद्यरिष्टं वागुपप्लवः। चित्ताकर्मण्यता चित्तोपप्लवः। **विरागादीत्यादिना** शीतिप्रभृतयः॥ ११॥

विद्येत्यविद्या विपक्षत्वात्तृतीयम्। आचरणं सादरनिरन्तरभावनाचतुर्थमज्जनम्। तदुक्तम्—

प्रज्ञाज्ञानं च चित्तं भवति दशविधं तस्य चाभास एव
सेकोऽस्मिन्मज्जनं यद्विमलशशिनिभादर्शबिम्बोपमे वै।
तस्मिन्निर्वाणसौख्याऽच्युतमपि सहजं चाक्षरं वै चतुर्थं
यस्यैतद्बुद्धवक्त्रं हृदयसुखगतं वर्तते श्रीगुरुः स॥ इति।
(का० त० ५११)

ग्राह्यचित्ते ग्राहकचित्तस्य प्रवेशो मज्जनं अनास्रवसुखत्वाद्भवसुखात्प्रशस्तं गतः। अनुपरावृत्त्या वा। यावद् गन्तव्यस्वागतः। तदाह—

प्रशस्तन्नगतास्तीर्थ्याः शैक्षाणां पुनरागतिः।
अशैक्षानुगतः सर्वं त्रिधाऽपि सुगतो गतः॥ इति।

स्कन्धेत्यादि। लक्ष्यन्ते प्रलक्ष्यन्ते इति "स्कन्धाद्यालोक इत्याख्याता" इति वचनात्। पर आनन्दत्रयादुत्तमः। **आत्मेत्यादि**। सत्कायादिदृष्टिप्रहाणात्। यथा प्रणिधानम्। सत्कायदृष्टिमच्छाद्य सर्वासद्दृष्टिमातृकाणां निस्पृहा भवभोगेभ्यो भविष्यामः। कदा वयमिति। **सुखं भुक्तं मयेति**। सूक्ष्मविकल्पः प्रहीणग्राह्यग्राहकस्यापि सोऽपि चतुर्थेन सम्भवति। **न कार्यं** इति। अस्यापि विकल्पत्वात्। "स्वर्णः निगडः किं न निगडः" इति न्यायात्। "मायैव संवृतेः सत्यम्" इत्युक्तेर्मायोपमं यत्स्वाधिष्ठानं तद्रूपमेतत्। यदाह—

---

१. क. ख. सुख। २. ख. अन्य। ३. ग. चतुष्टया। ४. ख. ग. प्रसादेन। ५. ग. प्राक्। ६. ग. भंगात्।

मोहः स्वभावावरणाद्धिसंवृतिः सत्यं तयाख्याति यदेव कृत्रिमम् ।
जगाद तत् संवृतिसत्यमित्यसौ मुनिः पदार्थं कृतकं च संवृतिम् ॥ इति ।

अतः परमस्याभावा[1]त्परमश्चार्थश्चाविसंवादकत्वात् परमार्थसत्यं प्रभास्वरम् । यदाह—

विकल्पितं यत्तिमिरं प्रकाशात् केशादिरूपं वितथं तथैव ।
येनात्मना पश्यति शुद्धदृष्टिस्तत्तत्त्वमित्येवमिहाप्यवेहि ॥ इति ।

त्रैधातुकं विश्वबिम्बम् । नीयते प्राप्यते बुद्धत्वमनेनेति **नयः** । **तदिति** । सत्यद्वयं तद्दर्शी, सत्यदर्शित्वेनैव श्वासचक्रनिरोधकः ॥ १२ ॥

[2]**सारो** योगिज्ञानहेतुत्वात् । विशिष्टो रमो विरमः कोटिपर्यन्तः सेकज्ञानमात्मनः । **दानं** परेभ्यो देशना । **निर्वाणसुखं** सर्वधर्मसमतया प्रवृत्तेः स्थलमिव । अत एव क्षेममायाति पथ्यम् । कैवल्यमावरणरहितत्वात् । धर्मता तत्त्वं तद्रूपः कायो धर्मकायस्तन्निष्पन्नः सहजकायः । विश्वबिम्बं स्वचित्तं प्रतिबिम्बम् । यदाह—

णिम्मल सअल सहाओ णिअ पति माया अपेक्खणे रतो ।
समरसमहरसमत्तो विलसइ जोइस्सरो णिव्वम् ॥ इति ।

क्लेशनिसू(षू)दनादिति । संकल्पप्रभवो रागो द्वेषो मोहश्च कथ्यते शुभाशुभविपर्यासात् सम्भवति प्रतीत्य हि ।

शुभाशुभविपर्यासात् सम्भवन्ति प्रतीत्य ये ।
तेभ्यो भावा नु विद्यन्ते तस्मात् क्लेशा न तत्त्वतः ॥

इत्युक्तेः । **अत** इत्यादि । शून्यताविकल्पस्यापि दुष्टत्वात् । यदाह—

अनुत्पादेति शून्येति निरालम्बेति शून्यता ।
यो भावयति मन्दात्मा न तां भावयते ह्यसौ ॥
शुभाशुभविकल्पानां सन्ततिच्छेदलक्षणा ।
कथिता शून्यता बुद्धैर्नान्यतः शून्यता मता ॥ इति ॥ १३ ॥

एवंकाररूपयुते शून्ये एकारे धर्मोदये चित्तवज्रप्रवेशादिति । **धर्मे**त्यादि । श्रावकप्रत्येकयानयोर्महायानेऽन्तर्भावात् । उक्तञ्च—

महाया[3]नोद्भवं यानं द्वितीयमपि चोच्यते ।
भवाध्वपरिखिन्नानां विश्रामार्थं न तत्त्वतः ॥ इति ।

---

१. ख. परमश्चार्थ्यंत । २. क. मारो । ३. ग. नाद्भयानकं ।

सर्वाश्रय उभययानपिण्डार्थत्वात् पितामाताऽशेषधर्मप्रसवनात्। तदेवान्येनापि **एषोक्ता**(ए माता)स्त्रीलिङ्गत्वात्, व पिता पुंस्त्वात्, बिन्दुर्योगः। परमादभुतभयात्म-कत्वात्। प्रकारान्तरमाह—पद्ममाह्लादकत्वाद्वज्रं तु भेद्याभेदकत्वात्। बीजं तन्नैष्यन्दः। योगत्रयं कायवाक्चित्तानि। प्रज्ञागुह्यस्थो नादः। अनभिलाप्य [1]ज्ञानोदय-क्षेत्रत्वात्। सुरताधिपो वंकारः। अनाहतं विक[2]ल्पैरनालीढत्वात्। अक्षराणि परमाक्षरज्ञानानि। उक्तक्रमेण यो बीजानाम(विजानात्य)क्षरद्वयधर्माणां [3]मुद्रासंकेतोऽ-शेषवाङ्मयालिकाल्यात्मकत्वात्। तदात्मकः **स तत्त्वज्ञ** इति मार्गावस्था। **धर्मचक्रप्रवर्तक** इति फलावस्था। गगनस्यालोकनं **धर्मधातुः। बं सुगतव्यूह**स्तत्रस्थं विश्वबिम्बम्। ए इत्याद्येकारपर्यायाः। **वमि**त्यादि वंकारपर्यायाः। **एवंकारे**त्यादि। शून्यताकरुणा-रूपिणी महामुद्रा। एवंकारो येन प्रतीतस्तेन योगीन्द्रेण स्कन्धधात्वायतनादीनां तत्स्व-भावत्वमपि प्रतीतम्। यतः सैव महामुद्राधर्मकरण्डरूपा। धर्मा हि धर्मकायादयस्तेषां करण्डकमाधारः सैव। **रे** सम्बोधनं निजप्रभोर्वज्रधरस्यवेश आभरणं परमिति। **धर्मधातुः स्वाधिष्ठानमिति**। "भावेभ्यः शून्यता नान्या न च भावोऽस्ति तां विना"। इत्यभेदे-नोक्तः। **सहजे**ति। ज्ञानचण्डालोज्वालया मणिव्यपदेशकारणमाह— प्रकृत्या प्रभास्वर-मण्यन्तर्गतसुखरश्मिरूपः। सुखरहिताज्ज(च्छ)तात्सूर्याद्यालोकादुत्कृष्टत्वात्**परः। धर्मे**-त्यादि। वज्रमुखेन सहजबिन्दुरसास्वादनैश्वर्यात्। तदुक्तम्—"ब्रह्मचर्यं सदा(तथा)नेन वज्रानल" इत्यर्थः। स्वदृष्टमार्गोक्त्या समाधिबलेन च महासुखोत्पादनेन लोकान् रञ्जयति प्रीणयति स्वाधिष्ठानस्थ शून्ये विश्वबिम्बे दर्शनस्योप[4]देष्टा ॥ १४ ॥

साधितशून्यतत्त्वेन गगनगञ्जसमाधिना तत्तद्दर्शनशक्तः सर्वधर्मवशितया। बुद्धैर्वज्रधरैश्च कृता या भावना तत्राभ्यासाद् ग्राह्यादिविकल्पा अपि सहजे प्रवेशिताः। यदुक्तम्—

> य(ज)त्त वि चित्तहि विस्फु(फ्फु) रइ तत्त वि णाह सरूअ।
> अण्ण तरङ्ग कि अण्ण जल(लु) भवसम खसम सरूअ ॥ इति।
> (दो॰ को॰, पृ॰ ७२)

अत एवेति। यदाह—

> यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयस्तत्रैव योजयेत्।
> चलित्वा यास्यते कुत्र सर्ववर्त्म हि तन्मयम् ॥ इति।

---

१. ग. ज्ञानोदये। २. ख. ग. पान्या। ३. ख. ग. षड्। ४. ख. देशा।

अभीत्यादि। निर्विषीकृत्य भक्षणान्नान्तरायिकत्व शंकाऽपि। **प्रभे**त्यादि। वस्तुनो ह्यदय अवस्तुधर्मत्वान्न जायते नो म्रियते वाध्य(ध्व)नो न जीर्यतीति। धातुगोत्रं प्रकृतिश्चित्तस्य प्रभास्वरेत्युक्तेः। **काये**त्यादि। प्रभास्वरादेव कायत्रयप्रथनात्। सहजोदये क्षरणासम्भवादव्ययः। अन्यमनपेक्ष्य योगिविषयः स्वयं भवति [1]अकृत्रिमत्वात् सहजः। यदुक्तम्—"[1]अकृत्रिमः स्वभावो हि निरपेक्षः परत्र च" इति। **एतेने**त्यादि। यदुक्तम् "विकल्पान्निर्विकल्पस्योदयोऽतत्त्वे वर्त्मनि स्थितत्वात् तं तत्त्वं समीहत" [2]इति, तदुत्पत्तिक्रमसहितभावनापेक्षयाऽत्रत्वधिमात्रस्योत्पन्नक्रम इति न विरोधः॥ १५॥

महाकृपैव रागस्तेन रक्तं यदचित्तचित्तमविकल्पं तेन समाधयङ्गामुखीकारसुखं पुण्यम्। **न विरा**गेत्यादि व्यक्तम्। महामुद्रामित्युपायभूतं[3] सुखज्ञानं यस्य तस्य भावस्तस्मात्। एवं दशाप्राप्तोऽवश्यं सूच्यते। यथा—

गिरीन्द्रशिखरात्कश्चित्पतते नेच्छन् अजातपक्षश्छिन्नपक्षो वा स चेदर्द्धमार्गे नेच्छेच्च्युतिं तथापि च्यवते। एवं गुरोर्लब्धोपदेशो विमोक्षमनिष्टावपि मुक्तो योग्य एव मुक्तिहेतोर्बोधिचित्तस्य सुदृढं ग्रहणात्। अन्यत्राप्युक्तम्—

इह जन्मनि तत्त्वतो निर्वाणं साधिगच्छति।
प्राप्नोत्ययत्नतोऽवश्यं पुनर्जन्मनि कर्मवत्॥ इति।

द्वादशभूमिज्ञानं ज्ञानसंभारः। वज्रपर्यङ्कश्चित्तं ज्ञानसम्भारः। "वज्रपर्यङ्कतश्चित्तं मण्यन्तर्गतमीक्षयन्" इत्युक्तेः। मण्यन्तर्गतानुपलम्भसुखज्ञानादेवाऽऽदर्शाद्यनन्तज्ञानस्फरणात्। तदेवाह—**सर्वे**त्यादि। विनेयवशादनन्तनिर्माणस्फरणात् सर्वत्र पाणिपादाक्षिशिरोमुखादिकमस्य सर्वसत्त्वप्रत्यवेक्षणात्स्मृ(श्रु)तिमान्। सर्वज्ञेयाव्यावृत्य व्याप्यज्ञाने[4] स तिष्ठतीति। कायानन्दादिषोडशकलत्वेन महत्। **चण्डे**त्यादि। धारणानुस्मृतियोगजाविकल्पज्ञानेनेत्यर्थः। मायोपमत्वेन स्वाधिष्ठानाधीनस्कन्धादित्वेन प्रतिभासस्य सत्त्वात् संज्ञानी (ज्ञानवान्)। अलीकभ्रान्तादर्शनात्सदसज्ज्ञानी। अनन्तरोक्तपुण्य[5]ज्ञानसम्भारै[री]दृशसंभृतिफलमाह॥ १६॥

सर्वेत्यादि। शाश्वतोऽप्रच्युतप्राच्यरूपत्वाद् आकाशवत्। नाडीनां प्रज्ञानां बोधिचित्तेनोपायभूतेन रञ्जनात्। कायादेः शून्यतया सहैकीकरणाद्। यदाह—

---

१. क. अकृति.। २. ख. ग. 'इति' नास्ति। ३. ख. भूतः, ग. भूत। ४. ग. नं।
५. क. ख. 'ज्ञान' नास्ति।

यदि किंचिदुपलभेयं प्रवर्तयेयं निवर्तयेयं वा।
प्रत्यक्षादिभिरर्थैस्तदभावान्मेऽनुपालम्भः ॥ इति।

(वि० व्या० ३०)

ध्यानं दृष्टधर्मसुखविहाररूपम्, तृतीयसेकरूपमणौ चतुर्थं उष्णीषे जिन[1]ज्ञाना-न्यादर्शादीनि। तेषां कायश्च यः। कुमार्या यथा सुरतसुखं बिन्दु(वेत्तु)मशक्यं सुरतं विना। तथा स्वानुभवैर्वेद्यम्। **वक्तुमि**त्यादि व्यक्तम्। विकल्पवायुभ्रान्तिहेतुर्यदाह—

तैस्तैर्विषयसंक्लेशैर्दिवा [2]विभ्रमितात्मनाम्।
गाढं स्वप्नेऽपि तद्वेगाद्विषमं वासनाविषम् ॥ इति।

परमार्थरूपत्वात्परमश्चासावाद्यश्चानादित्वादकारप्रश्लेषतः सहजेन शोध-नादनास्रवकायादित्वात् ॥ १७ ॥

जाग्रदादीनां हेयत्वेऽपि तुर्यातीते सहजेन विशोधनादुपादेयता। **बुद्ध** इति सम्बुद्धो बोधनाद्रतेरित्युक्तेः। **पञ्चकुलं** वैरोचनाद्याः। तदा सेको बिन्दुरूपः। **बोलो** वज्रं **कक्कोलः** पद्मं ताभ्यां योगे कठिनस्पर्शात्काठिन्यवासना स्यात्।

शून्यतैव भवेद्भावो वासना वासिता सती।
वातावर्त्तदृढीभूता आप एव यथोपलाः॥

इत्युक्तेः। सैव पृथिवीधातुस्तस्य दृढत्वेन मोहधर्मत्वात्। तद्विशुद्धिर्वै-रोचनः। बोधिचित्तं हि द्रवरूपं तच्चाब्धातुर्भूतानां तेन सम्बन्धात्। अपामच्छ-त्वेनाक्षोभ्यरूपता। विज्ञानस्याच्छत्वेन सादृश्यात्। अक्षोभ्यश्च द्वेषविशुद्धिः। द्वीन्द्रिय-घर्षणात्तेज उष्मा तज्जो रागस्तद्विशुद्धोऽमिताभः। कक्कोले यच्चित्तं तत्समीरणरूपङ्ग-तिमत्त्वात्। भार्या च समीरणः। इर गताविति पाठात्। वायुविशुद्धोऽमोघसिद्धिः। सुखं सुरतानन्दं तदेव रागमासङ्गलक्षणत्वात्। तदेव रक्तं जगद्रञ्जनात्। तच्चाकाशरूपं निःस्वभावत्वात्तच्च पिशुनो रत्नेशः। परार्थप्रकाशनान्महासुखेन। **अथवे**त्यादिना पञ्चाकाराभिसम्बोधिमाह—[3]आदर्शज्ञानवांश्चन्द्रः समतावान् सप्त-[4]सप्तिकः। बीजैश्चिह्नं स्वदेवस्य प्रत्यवेक्षणमुच्यते। सर्वैरैक्यमनुष्ठानम्, **बिम्बनिष्पत्तिः** शुद्ध[5]धर्मतेत्युक्तेः। मातापितृशुक्रशोणितसमुदाये चन्द्रम् आदर्शरूपम्। रेतः समता-सूर्यरत्नाभ्यां सम्भवो रागस्येति रत्नसम्भवः। पद्मवज्रमणिजरागोऽमिताभः, अतश्च मणि पद्मे हूँ इति मन्त्रः। चलनाद्यनुभवात् कृत्यानुष्ठानं गर्भान्निर्गतिः सुविशुद्धधर्म-

---

१. ग. मन्या। २. ग. 'वि'नास्ति। ३. ख. आदर्शन। ४. ग. सप्तिकाः। ५. ख. 'धर्म ''''''सुविशुद्ध' नास्ति।

धातुरिति पञ्चज्ञानात्मकः। **सुखे**त्यादि। विशेषेण षोडशादूर्ध्वरेतस्त्वात्। **पूर्वे**ति। विश्वबिम्बान्तनिमित्तदर्शनेन [1]स्थैर्यलाभनिरावरणत्वं मायोपमता पञ्चबुद्धमुद्रितत्वात्। प्रत्याहारादेः सुभावितत्वात्तत्फलभूतानि पञ्चमांसदिव्यबुद्धप्रज्ञाज्ञानचक्षूंषि यस्य स तथा। समाधेरनुपलम्भरूपत्वा**दसङ्गज्ञानधृक्**॥ १८॥

सर्वचित्तचरितानां प्रभास्वरत्वेनावबुद्धानां सुखरूपत्वादनास्रवत्वेन जननात्। वज्रमणिरेव रत्नं तदन्तःसुखचिद्राशि। उक्तश्चतुरशीतिसहस्रचित्तचरितावबोधाद् बुद्धः स्वचित्तं तस्य पूतः सहजः प्रेमाश्रयत्वात्। निर्विकल्पप्रतिबोधो यश्चरितानां ततो जात इत्यर्थः। **परः**श्चतुर्थः। वरेणोघेन (णान्येन) योजना**द्वरः**। **प्रज्ञे**ति ग्राह्यत्वात्। भवत्यस्मादिति **भवः**। तदुद्भवः प्रभास्वरः। **महे**त्यादि। संभुज्यत इति **संभोगो** यतोऽत्रैवोक्तं—"वज्रशिखरप्रोत्फुल्लवरकमलं मञ्जुस्तदेव श्रीरद्वयज्ञानाश्रयत्वात्" इति। दशबलादिबुद्धधर्माणां योनिर्यदाह—

बीजं येषामग्रयानाधिमुक्तिर्माता प्रज्ञा बुद्धधर्मप्रसूत्ये।
गर्भस्थानं ध्यानसौख्यं कृपोक्ता धात्रीपुत्रास्तेन जाता मुनीनाम्॥ इति।

भवमानन्दत्रयम् "परमानन्दं भवं प्रोक्तम्" (हे० त० १ ८.३४) इत्याद्युक्तेः। तस्यान्तर्भूतं सहजम्॥ १९॥

सर्वकल्पनेत्यादि। यस्मात् कल्पनादिनिर्विषयत्वादसारम्। वज्रवद्वेत्तुमशक्यमभेद्यभेदकञ्च। **श्रद्धावता**मिति। श्रद्धा त्रिविधा। यदाह—

[2]सति सम्प्रत्ययः श्रद्धा [3]प्रसादो गुणवत् सति।
गुणवत्सति शक्ये चाभिलाष इति सा त्रिधा॥

सद्यः तत्क्षणं। करुणादीति। कृपादिना शोधिते चित्ते पदं प्रतिष्ठां करोति। **मातापितृस्थानीय** इति। यदुक्तम्—

हिताशयेनेह यथा जिनात्मजो व्यवस्थितः सर्वजगद्विपाचयन्।
तथा न माता न पिता न बान्धवः सुतेषु बन्धुष्वपि सुव्यवस्थिताः॥
तथा जनो नात्मनि वत्सलो मतः कुतोऽपि सुस्निग्धपराश्रये जने।
यथा कृपात्मा परसत्त्ववत्सलो हिते सुखे चैव नियोजनान्मतः॥
(म० सू० ८.१४-१५)

तच्चेत्यादि। संवृतेः पञ्चस्कन्धात्मकस्यात्मनः सत्यदर्शनं चिह्नं निमित्तम्। रात्रिनिमित्तं दोषान्तम् आदिनाविद्यान्तवादि। अत्र **गगनोद्भव** इत्यादिना

---

१. ग. स्थैर्यम्। न निरा०। २. क. मति। ३. क. प्रमादो।

षन्निमित्तानि पूर्वोक्तानीति "दशज्ञानविशुद्धात्मा"(ना० सं० ६.३)इत्यादि व्याख्याने प्रतिभासो ज्वालादि। **विकल्परहित[चित्त]त्वादि**ति। श्वासविकल्पलय एव ज्वालादिदर्शनात्। **ज्वाले**ति ज्वलद्वह्निः। **चन्द्र** इति। पूर्णचन्द्र[1]मण्डलम्, तथा **सूर्यः**। **राहुः** कृष्णरत्नवदाभासः। **सर्वे**त्यादिना विश्वबिम्बमुक्तम्। **बुद्धबिम्बमि**हामनसिकारस्तदाह—

अभावं भाव[नां मत्वा समं ध्यात्वा] निराश्रयम्।
अमनस्कं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥ इति २०-२१॥

स्वामी महाबिन्दुस्तेनास्या मुद्रणात्। **महासुखे**ति। मन्त्रसुखवदाकूतमित्युक्तेः। पारमार्थिकश्चन्द्रः प्रभास्वरो महतः सत्त्वराशेरर्थकरणान्**महार्थकृत्**। **बिन्दु**र्महासुखचक्रगतः। **उद्भूत** इति वृद्धि गतः। **ऊर्णे**त्यादि। वज्राग्राद्रूर्ध्वगतया तेजो[2]राशेर्मुखं द्वारं यदूर्णामार्गस्तेन गत्वा। ज्ञानसत्त्वः सर्वजिनोष्णीषद्वारेण बहिर्निःसृत्योर्ध्ववज्रो जातः शिखायां येन शाक्यमुनिना मनोभवो बिन्दुनाऽऽत्मवज्रसकाशात् तृतीयबलेन स्वललाटं नीतः। तस्य चक्रं च वज्रं महोष्णीषगं कृतं किं च यस्य शास्त्रः शून्यता [3]सालम्बा प्रतिसेनेव भावदृष्टेः। कृपा वऽनालम्बनी लोकोत्तरमज्ञानत्वात्कं तत्सुखं रुणद्धीतीत्याद्युक्तेः। श्रेय"....." त्वा देवादिगुरवे विश्वस्यासाधारणक्लेशदुःखनाशिने नमः। स्वाधिष्ठानेति। यदाह—"गुरुः स्वाधिष्ठानादथ हरति चित्तं मतिमताम्" इति। **निराभासस्य** निर्विकल्पस्य।

पृथिव्यप्सु जलं वायौ वायुर्व्योम्नि [4]प्रतिष्ठितः।
अप्रतिष्ठितमाकाशं वाय्वम्बुक्षितिधातुषु॥

इति वचनादाकाशस्येव निराकारचित्तस्य स्थितिरप्रतिष्ठिता। ततश्च शून्यताभावनया [5]आकाशभावमेवेति। शून्यतायामधिपत्यलाभी वियत्पतिरुक्तः॥ २२॥

आत्मभाव इति सुखरूपत्वात्। यदाह—

कालोऽक्षरसुखज्ञानमुपायः करुणात्मकः।
ज्ञेयाकारं जगच्चक्रं श्रीप्रज्ञा शून्यतात्मिका॥ इति।
(वि० प्र० १, पृ० ११)

---

१. ख. ग. मण्डलः। २. क. राशिसुखं। ३. क. ग. सालम्ब्या। ४. ख. 'प्रतितिष्ठ:' नास्ति। ५. ख. ग. साकाश।

सहजानन्दरूपेणेति। यदाह—

सुखं नीलं सुखं पीतं सुखं सर्वं चराचरम्।
सुखं भावः सुखाभावो वज्रसत्त्वः परं सुखम्॥ इति।

सत्त्वविनयनार्थं बुद्धक्षेत्रादेः[1] सुवर्णादित्वं स्वस्य च हरिहरादिरूपत्वं करोतीति विश्वरूपी। मन्त्रमुद्रादिविधानाद्विधाता। **सहजात्मकतये**ति।

आत्मा वै सर्वबुद्धत्वं [सर्व]सौरित्वमेव च।
न वन्दयेदिमान्देवान्काष्ठपाषाणमृण्मयान्॥

इत्यादावप्ययमेवाभिप्रायः। बाह्यकर्ममुद्रा[2], अध्यात्मधर्ममुद्रा या तत्सेवया व्युत्पाद्य सम्भवेनानतिक्रमणीयः क्लेशैः। यदाह—

क्लेशस्तस्करसंघोऽयमवतारगवेषकः।
प्राप्यावतारमश्नाति हन्ति सङ्गतिजीवितम्॥ इति।

ऋषिरिति। ऋषि गतौ इह कृष्यादिभ्य इतीक्। परमार्थाधिगमादृषिः। महान् परमाक्षरप्राप्तेः॥ २३॥

कायेत्यादि। बिन्दुप्राणविकल्पनिरोधनात्। अत एव **लोके**त्यादि। **महासमयो** महामुद्रा तद्योगात्प्रभास्वरसुखं मन्त्रम्। **रत्नानि** दुर्लभोत्पादान्निर्मलत्वात् प्रभावतः "लोकालङ्कारभूतत्वादश्यत्वान्निर्विकार" इत्युक्ते रत्नानीव धर्मादिकायाः फलभूताः। **अनादिनिधनत्वादि**ति।

पूर्वा प्रज्ञा[3]यते [4]कोटिर्नेत्युवाच महामुनिः।
संसारोऽनवराग्रो हि नास्यादिर्नापि पश्चिमम्॥
नैवाग्रं नावरं यस्य [तस्य] मध्यं कुतो भवेत्।
तस्मान्नात्रोपपद्यन्ते पूर्वापरसहजक्रमाः॥ इति।

धर्मदेशनार्थे यमधिगम्य। **त्रियाने**त्यादि। आनन्दादिरूपयानत्रयादुत्तमस्य प्रकाशकः। **खवज्रे**त्यादि। खवज्रो योऽब्धातुः सितरक्तबिन्दुस्तन्मध्ये मण्डलचक्रभावना सूक्ष्मयोगेन। कायवाक्चित्त[5]वज्रो वज्री तदहङ्कारमभित्तिगतचित्रबद्धयात्वा तिष्ठेत्॥ २४॥

---

१. क. ख. त्रादि। २. ख. 'मुद्रा.......धर्म' नास्ति। ३. क. यतो। ४. ख. टीत्यु। ५. ख. 'वज्रो बोधिचित्त' नास्ति।

अमोघः सफलः। तथतां विदर्श्य बोधिचित्तसुखेन सत्त्वसंग्राहकत्वात्। षडङ्गोऽर्थ-श्चायमेव।

दृढं सारमसौशीर्यमच्छेद्याभेद्यलक्षणम्।
अदाही अविनाशी च शून्यता वज्रमुच्यते॥

तदुपमसमाधिना वायुनिरोधः। वज्रोपमसमाधिनैवाचित्तस्येति सवासनसकल-विकल्पजालस्य बन्धः प्राणवायुना बद्धेन ग्रहः। स बोधिबीजत्वात् शुक्रस्य। वज्रसुखे-नाक्षरामृतपाने सर्वसुखसमाधयः। यथाह **संवरतन्त्रे**—"ब्रह्मचर्यं तथानन (नेन)" इति। वासुकिनाम्ना ज्ञानस्कन्धशङ्खिनीपर्यायेण मध्याशुषिरेणाधस्ताद्बोधिचित्तमाकृष्य ब्रह्मरन्ध्रं गत्वा ललनाद्वारेण नाडीस्फरणतः स्कन्धादिप्रीणनम्॥ २५॥

हृदयैकनाडीति। अन्यासां वक्ष्यमाणत्वात्। **सहजानन्देति**। तद्रूपबोधि-चित्तस्याधेयस्य भेदात्। चन्द्रपदविशुद्ध्येत्याधारभेदात्। अत्र पादोनत्वेऽपि परत्र पादाधिक्यमिति समुदायसंख्याया न विशेषोऽन्योन्यसाम्बन्ध्यञ्च सूचितम्।

॥ सुविशुद्धम्॥

आदर्शज्ञानम्

आदर्शज्ञानमाह—भैरम्भवायुरयं तु राक्षसास्यं समाकुञ्च्य समुज्जन्यप्रभास्वरं तेनानन्देन विकल्पनिरोधनम्। विशिष्टो रमो विरमस्तदनन्तरः सहजः। सुखं द्वारमुपाया इत्यनर्थान्तरम्। दुःखहेतून्विकल्पानभिया(जा)नाति ॥ २५ ॥

शून्यतया लङ्घयतीति **भीमः**। **स्कन्धे**त्यादि। एतेषामनुपलम्भ एव षडभिज्ञोदयात्। **महासुखस्वभावतये**ति प्रभास्वरीकृत्य। **महे**त्यादि।

तथा देहैकदेशेऽपि संस्थितो हि महारसः।
देहं कामाग्निसन्तुष्टं वेधयेदासमन्ततः॥

इत्याशयः। **गुरूपदेशादि**ति। धारणाबलात् सर्वधर्मान्दशतीति **दष्टा** "चण्डाली ज्वलिता नाभौ दहति पञ्चतथागतान्" (हे० त० १.१.३१) इत्यादिवचनात्तस्योर्ध्वगतत्वादुन्नततया करालो दन्तुरः। अत एव **कमि**त्यादि। **आकाशे**ति। शून्ये स्थिरचित्तत्वेन। **तेने**ति प्राणबन्धेन। **शतम**न्तोपलक्षणम् ॥ १ ॥

अन्तक इति। तं निराभासीकरणात्। **युगनद्धवाही**ति। शताद्वैतरूपविशेषेण। **ही**त्यभिलषितार्थम्। सत्त्वानामिति विघ्नः। स्वचित्तप्रसरो विकल्पजालास्तद्विनाशेन निरोधेन प्रभास्वरप्रविष्टो राजति। **वज्रस्ये**त्यप्रतिहतशक्तित्वात्। **वेगो** मनोजवो महासुखेनामुखीकृतत्वात्। **नाद** इति गुह्यचक्रस्थः। **बिन्दुर्**महासुखस्थः हूंकारः। तयोर्मीलने सूक्ष्मविकल्पानामपि निरसनेन [1]भयदः। मीलनञ्च मध्यशुषिरेण। **अनन्तरे**ति। नादबिन्द्वैक्यमहासुखेन। उपलम्भरूपकृपायाः शून्य[2]तयैक्यबोधाद्धर्मधातुरूपोऽनाहतध्वनिर्महाशब्दो विघुष्टः। वज्रमभेद्यभेदकमस्य विघुष्टेन वज्रमिवेति वा। कृतचित्तं बोधिचित्तं **वज्रमभेद्यमस्ये**ति हृद्वज्रः। त्रैधातुकं सकलमेव मनोविवर्तमात्रत्वान्माया। तद्वज्रं शून्यताज्ञानं यस्य धर्मधात्विति शून्यतया। भावानां व्यापनान्महद्विमलानन्तनभोनिभ[3]मुदरं ज्ञानमयं यस्य ॥ २ ॥

रन्ध्रद्वयेति। ओडियानदक्षिणकर्णरन्ध्रकोलमुखीसाधनेन सुख[4]वज्रहेतु कुलिशजालन्धराख्यशिखाचक्रं रन्ध्रञ्च कुलिशं तत्रेश्वरत्वात्। **वज्रे**त्यादि। सहजोद्भूतास्तथागतास्तद्रूपश्च मञ्जुश्रीः। **दिव्ये**ति। सहजसुखत्वेन बुद्धैरनुभूयतेऽभेदेनेत्यभेद्यं

---

१. ख. भयदो। २. ग. तैक्य। ३. ग. सूदनं। ४. क. ख. वज्रे।

सारश्च हृदयं तेषामेव। व्यापि[1]त्वाच्छून्यत्वादनावृतेश्च नभसा सदृशः। [2]नैरुक्तः सलोपः। अथवा न भवतीति नभिः। **अचलः** सहजानु(न्न) चलतीति। विपक्षैरचलत्वाद्वा। **सर्वे**त्यादि। सर्वनाडीगतबिन्दूनामेकत्रावधूत्यां समरसीभूयोष्णीषभतेर्महोष्णी[3]षो मञ्जुश्रीरत एव देव्या एकजटाया इवाटोप उक्तः। तथतालम्बनात्सतसुखसंवित्त्याक्षरबोधिचित्तेन रोमकूपपर्यन्तव्याप्त्या श्वेतगजचर्म एव पटं सार्द्रं महासुखं स्निग्धं बोधिचित्तं पटमिव दधतीति श्रीसंवररूपो वा मञ्जुश्रीः ॥ ३ ॥

हाहेति। हास्यध्वननानुकारः। व्युत्पादिघोरातिक्रमार्थत्वान्महाघोरः। **हीही**ति सर्वमारसंत्रासको ध्वनिः। महासुखचक्रप्रवेशद्वारं वज्ररन्ध्रं तत्र उपक्रमः। **क्रोधदृष्टे**ति बालभयजनकत्वाद्भयानकः।। आकारादिदीर्घस्वराष्टकयुक्तहकारेण हासादट्टहासः। **महाहास**श्चित्तोल्लासो यस्य प्रतिपक्षाभावेन दृष्टधर्मसुखविहारहासो वज्रमिव यस्य महारवस्त्रैलोक्यबोधनो महासुखदेशनाध्वनिः ॥ ४ ॥

[4]वज्रमिवाभेद्यं सत्त्वं बोधिचित्तं यस्य स वज्रसत्त्वः। **बोधी**त्यादि। धारणाङ्गबलादविरतप्रवृत्तज्ञानबिन्दुरूपत्वाद् महासत्त्वः। वज्रमणिशिखरान्तर्बोधिचित्तरश्मिदीप्त्या राजत इत्यर्थः। **अत एवे**ति। निरतिशयानाभोगवाहिसुखत्वान्महासुखः। अप्रतिष्ठितं सुखरूपं निर्वाणं प्रतिगतो वेगयोगात्। **सदसदादी**ति। शून्यतैकनिम्नत्वेन। **वज्रादी**ति। वज्रमणौ वायुचित्तनिरोधाद् हूँकारेण निरुद्धस्य बोधिचित्तस्य [5]विवृत्त्या प्रवेशाद् हूँकाररूपता ॥ ५ ॥

दक्षिणकर्णशिखाशिरोऽङ्गुष्ठेषु चतुर्षु संचारक्रमेण चतुरानन्दचतुर्ध्यानस्वभावता। नासाश्व(श्वा)सस्यावधूत्यां प्रवेश्य निरोधितत्वादवधूतो, वज्रमभेद्यत्वात्। बाणरूपमायुधञ्च श्वासवाहखण्डनात्। क्लेशनिकृन्तनात् खड्गमिव ज्ञानम्। कृन्तनञ्च प्रभास्वरे प्रवेश्येति महासुखाधारतोक्ता। **अत एवे**ति। अविद्याप्रतिपक्षो हि [6]ज्ञानं क्लेशश्चाविद्याप्रभवाः सवासनाः। अतस्तद्वासनामपि निकृन्तति। **पञ्चे**त्यादि। विश्वं नानावर्णवायुः पञ्चतथागतवर्णत्वाद्वज्रञ्चाभेद्यत्वात्तदुक्तमिति **वज्रजापे–पञ्चे**त्यादिना (पं० क्र० २.१४)। पञ्चज्ञानमयत्वं वायोः स्थैर्ये सत्युत्तरोत्तरक्रमाभ्यासादादर्शज्ञानादीनांमुत्पत्तियोग्यतया उत्पन्नत्वे तु तत्स्वभावतैवाश्वासो वायुरूर्ध्वस्थितो द्वीन्द्रियसमायोगे महारागानले द्रवीभूय वज्रमार्गेण निर्गत्य प्रज्ञायाः पद्मनासाग्रेषु बिन्दुरूपेण पृथिव्या [अ]पि पञ्चभूतस्वभावं पतति। यमुत्पत्तिक्रमभावको मण्डलचक्रं सूक्ष्मयोगं भावयेत्, स एव वामरु(ऊ)र्ध्वप्राणविवराच्चतुर्मण्डलपरिपाट्या निश्वसनप्राणायाम

---

१. ग. ताच्छू। २. ग. निरुक्तः। ३. ग. षोयं। ४. क. ख. ग. वक्त्र। ५. ख. 'विवृत्यां वधूत्यां' नास्ति। ६. क. ख. ज्ञान।

उच्यते। पञ्चमन्त्रत्वं वैरोचनादिपञ्चरश्मिस्वभावत्वात्। महारत्नत्वं वायुस्थिरीभावे सति चिन्तारत्नवदभिमतार्थकरणात्। प्राणिति श्वसितीति [1]प्राणः सर्वतो याम्यते संयम्यते चित्तमाभासत[2]यान्यतमप्रकृतिविशेषस्फरणेनेत्यायामश्चेति प्राणायामो वायुः। तदुक्तम्—"यत्र यत्र स्थितो वायुस्तां तां प्रकृतिमुद्वहेत्" इति। तमेव श्वासं स्थिरीकर्तुं हृदि स्वमन्त्रसमाधिसत्त्वे ध्यात्वा तस्य बिन्दूर्ध्वनादात्मकं[3] चित्तं चिन्तयेत्। नासाग्रे घ्राणेन्द्रियविवरे। **सर्षपी**ति। सर्षपो वायुः सर्षपफलवच्च सूक्ष्मसाधर्म्यात्। पञ्चतथागतवर्णरश्म्यात्मका वायव एव चरन्तीत्याह—**तच्चे**त्यादि। वामे व्योमादिक्रमादक्षोभ्यादिरूपम्। दक्षिणे पृथिव्यादिक्रमाल्लोचनादिरूपम्। **प्रभृति**शब्दात् खद्योतादि। वस्तुविरहात् प्रतिभासमात्रत्वम्। अक्षरत्वादभेद्यत्वम्। अद्वयज्ञानं प्रज्ञोपाययोगाज्जातं युगनद्धमेकं वज्रमिव। **विकल्पसुखे**ति। च्युतिजनकत्वाद् भवहेतुः। यदाह—

> को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाऽप्यशुभेऽपि वा।
> स्पृश्यमानो दहत्येव चन्दने ज्वलितोऽप्यसौ॥
> नाधारभेदाद्भेदोऽस्ति वह्लेर्दाहकतां प्रति॥ इति।

(आ० मा० ६-७)

ज्ञानेत्यादि। वज्रमणिमध्यादुत्थितज्ञानदीप्त्या महासुखानुभवनं ततो मांसादिचक्षुः करालमुच्छ्रितमन्यतो विशिष्टम्। वज्रज्वालावद्योगिनां शिरश्चक्रबोधिचित्तवज्रमारोहतीति तथा। तदेवाह—**महे**त्यादि। प्राणापाननिरोधेन गुरोरधिष्ठानाज्जाते ज्ञानस्यावेशोऽन्यचित्तज्ञानादि-कायस्य कम्पनादि-वाचो मन्त्रपाठादिश्च स्यात्। अयं च सेककाले ज्ञानरूपो मञ्जुश्रीरेवेत्याह। **त्रैधातुके**त्यादि। सहजसुखेन सर्वव्यापनान्महावेशः। "सर्वदृष्टिप्रहाणाय शून्यतामृतदेशना" इत्युक्तेश्चतुर्थोदये शून्यनिम्नस्य प्रबन्धेन सुखज्ञानान्यक्षीणीव प्रवर्त्तन्ते शत[4]मुपलक्षणम्। पञ्चचक्षुप्रतिलम्भाद्विश्वसाक्षात्कारेऽव्याहतलोचनः॥ ७॥

सार्द्धत्रिकोटिरोमसम्बद्धा देहाभ्यन्तरस्थाः शुक्रवहा या नाड्यस्तासामङ्कुरः स्वरूपप्रतिभासः। स एव तनुस्तस्यानाभोगज्ञानात् स नाथः यतो द्वासप्ततिसहस्र एव शुक्रवहो ज्ञानवज्राणि रोमाणीव निरन्तरोद्गतानि। तान्येवैकः श्रेष्ठो महासुखितो विग्रहो यस्य स तथा। सहजस्य ज्ञानमात्रत्वादाकाशमिव तनुरस्य[5]। **वज्रे**त्यादि। कृतपूर्वसेवस्य रजस्वलया सह योगे समग्रसामग्रीकस्य पुण्यवत एवैवं ज्ञानकायः स्यात्। **वज्रसारे**त्यादि। देवपुरुषेन्द्रियशुषिरेण बोधिचित्तस्य गत्यागतो सा वज्रचिह्ना नाडी। यद्विकारे बोधिचित्तं श(झ)टितं निःसुखं निःसरति॥ ८॥

---

१. क. प्रायः। २, ग. यान्यतप्रकृति। ३. ग. त्मका। ४. ख. मुख। ५. ग. स्या।

लयभोगादिक्रमेणेति। महासुखचक्राद्विलीनस्य बोधिचित्तस्य पुल्लीरेऽधिकारो जालन्धरे [1]भोग [2]उड्डियाने लय इति क्रमेण चतुर्विंशतिशिरः शिखादिस्थानेषु सञ्चारक्रमेण तत्तत्स्थानगतबिन्दूनां माला। तेषां बिन्दूनामेकेन चित्राद्वैतेन बोधाद् द्वैतज्ञानी। वज्रमक्षरसुखं शुक्रं तेनासमन्ताद्भ्रणं पुष्टिस्तेनालं समर्थः कृतो भूषितः। **दिव्येति**। महामुद्रासुखध्वनिर्हाहा तस्य विकाशो यत्र स तथा। **निरि**त्यादि। अनाहतनाद इत्यर्थः। **वियदि**त्यादि। स्वर्गङ्गावधूती तन्मुखे किंभूते रसनाललनामध्यस्थे। गुर्वादेशात्प्राणापानसंघट्टनेन मध्यायां पवनप्रवेशे कृते प्रज्ञोपाय[3]योगे मण्यग्रे चित्तस्याचित्ततया निर्विकल्पसुखानुभवरसिका योगिनोऽक्षरसुखवशाद् यं नादं मध्यान्तर[म]नुभवन्ति कमप्यनिर्वचनीयं स जयत्युत्कृष्यते। स संभोगकायो जिनो विजयते यस्य जगत्तादात्म्यमापद्यते। [अ]नादिकालप्रवृत्तम्, अतो भेदेनानुपलम्भात् [4]किमुषसि सव्यवामपुटरोधेऽवधूत्यां सूर्येन्दुरोचिभ्यां संमिश्रा संध्या सम्बन्धिनीव श्रीर्यस्य। उक्तम्—

> ग्रस्ते चन्द्रार्कबिम्बे नभसि न च दिवा नैव रात्रिः कदाचिद्
> सा सन्ध्या देहमध्येऽप्यमृतपदगता योगिनां सर्वकालम्।
> पक्षक्षीणो यथेन्दुर्व्रजति समरसं सूर्यबिम्बेऽम्बरस्थः
> प्राणापानक्षये वै स्फुटमपि च तनौ सिद्धिकाले स रोधः॥ इति।
>
> (का० त० ५.१६१)

सव्यवामवाहे मध्याग्रस्तेन भस्मारोपितचित्तस्यामृतपदं ललाटान्तर्गता सन्ध्या भवति। बहिः कृष्णपक्षे क्षीणश्चन्द्रो नभसि भानुलीनो यथा स्यात्। स रोधः सिद्धिकाले तनौ प्राणापाननिश्चलीभावे स्फुटमनुभूयते। यश्च आभासिनि चित्ते सति विश्वबिम्बरूपा महामुद्राख्या या कामिनी तया सह समरसक्रीडासुखस्यैकोऽद्वितीयो नादो ज्ञानात्माऽक्षयतनुः स एव संभोगकायोऽत्र वाक्स्वरूपत्वात्। यतः संभोगकायात्संलीयमाना अपि स्वरा अकारादयो व्यञ्जनानि कादीनि तत्परिणतलक्षणानुव्यञ्जनविराजिततनुत्वात्संभोगस्य आलिकालिमयत्वाद् द्वादशाङ्गप्रवचनस्य रुचयश्च सत्त्वार्थं यतः स्फरन्ति सत्त्वार्थं निष्पाद्य संहरन्ति धर्मतायां विशन्ति। आपातालादधो वैरम्भादूर्म(र्ध्व)लक्षणफलो यस्य। संभोगभूमेर्यस्य महासुखनादस्येश्वरो ब्रह्माद्वयचित्तचैत्तकलापरूपो धर्मकायः। स एव स्तम्भ इवाभवः स्थिरत्वात्। ततो जातः संभोगो वज्री देवदुन्दुभिरिवानाहतध्वनिः। **कायादी**त्यादिना। चक्षुरादिनैःस्वभाव्यं व्याप्य सुखनादः। ततश्च वज्रं महासुखज्ञानं घोषयत्यन्तर्जल्पत्यनुभवतीत्यर्थः। आदर्श-

---

१. ग. 'भोग' नास्ति। २. ख. ग. ओड्डियाने। ३. ख. योगेन। ४. ख. दृगतिमु०।

ज्ञानस्व[1]भावः। 'संभोगकायो वाग्रूप' इत्येवमुक्तः। महासुखादिचक्रेष्व[2]क्षरं ज्ञानं यस्य स तथा ॥ ९ ॥

बिन्दुश्च प्राणवायुज्ञानं च विज्ञानं च एतैरेकीभूतत्वान्मनोज्ञो नादोऽस्य। **वज्रेत्यादि**। महतः परमाक्षरबिन्दो[3]र्नंदनमात्रत्वात्। **आलोकादीति**। कृतपूर्वसेवस्य प्रज्ञायोगे ब्रह्मरन्ध्राद्गलति बोधिचित्ते सपरिकरस्य प्रवृत्तिविज्ञानस्यानुपलम्भान्निर्विकल्पानालम्बनश्चन्द्रांशुवन्निर्मल आलोक उदेति। बोधिचित्ते सर्वाङ्गसन्धि व्याप्नुवति क्लिष्टमनोविज्ञानानुपलम्भादालोकाभासः सूर्यांशुप्रकाशसंकाशः। मणिमूलं गते तु स प्रकृतिरालयविज्ञानानुपलम्भादालोकोपलब्धिः। सायंसन्ध्या प्रकाशसदृशी आलोकादिति। [4]लोक एव त्रैलोक्यं तदेवैकं [5]आस्फालकसमाधिना भावमहान् सर्वेष्टार्थसाधकत्वात्। **चक्षुरित्यादि**। तत्काले चक्षुराद्यनुपलम्भ एवाकाशधातुः। स एव निष्ठा यस्य तादृशो घोषः। **सुखनादो [य]स्येति** तथा। निःस्वभावतामित्यनेकार्थत्वाद्यु(?घु)ष्टेः। तन्मध्ये वरः सुखेनाधिकः षट्चक्रव्यापिना। तदुक्तम्—"स्फुरदुरुकिरणार्द्रादाशयादाश्रयणाद्" इति। हृदि त्रै(त्वे)कनाड्याः प्रागुक्तत्वात्। शेषाः सप्त गुह्याधो विण्मूत्रशुक्रनाड्यस्तिस्रः, शोणितवहा रसना ॥ १० ॥

॥ आदर्श[6]ज्ञानम् ॥

---

१. ख. भावा। २. ग. क्षर। ३. ख. ग. 'नदन' नास्ति। ४. ग. आलोक।
५. क. आस्फानक। ६. ख. 'ज्ञान' नास्ति।